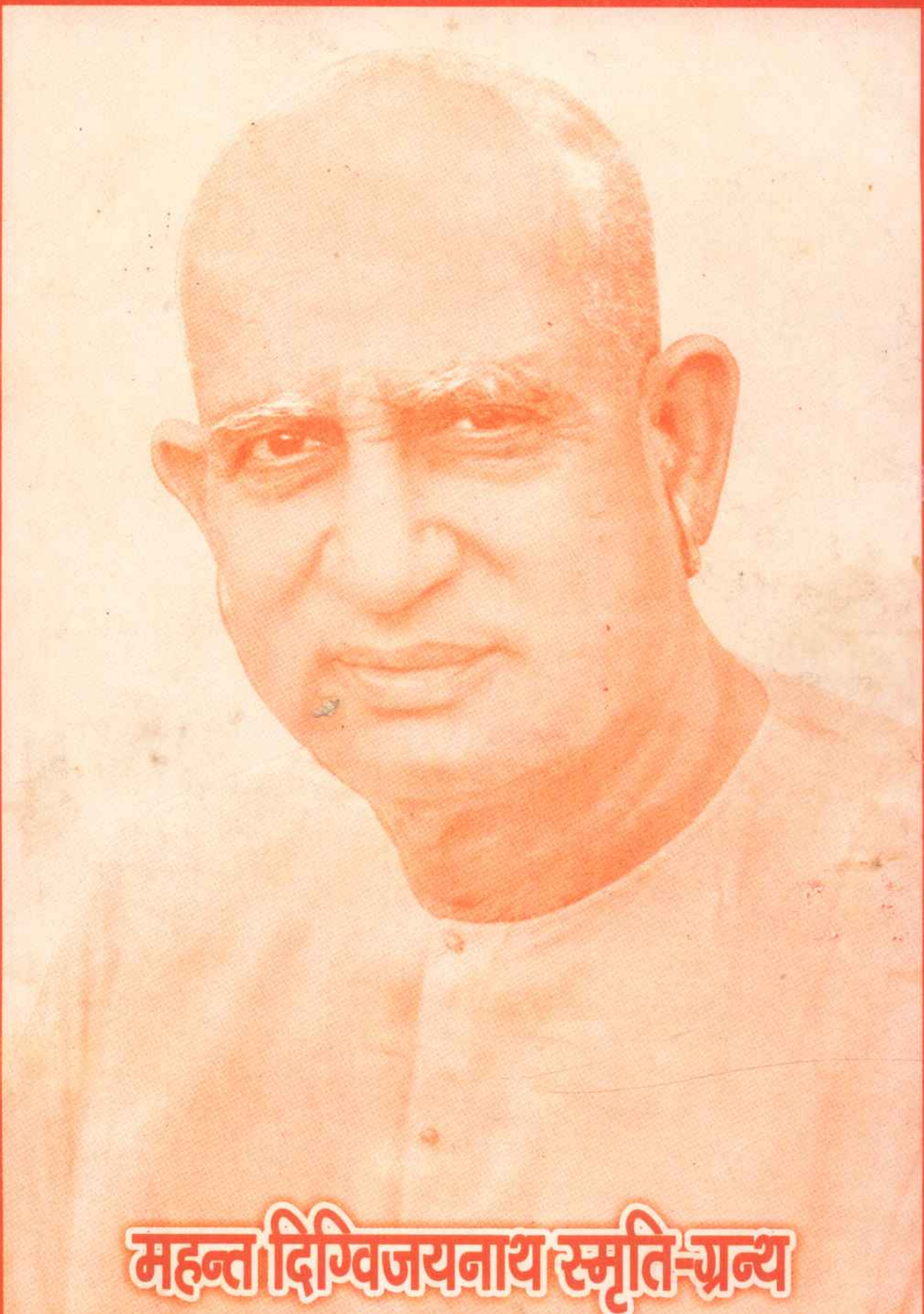

महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति-ग्रन्थ

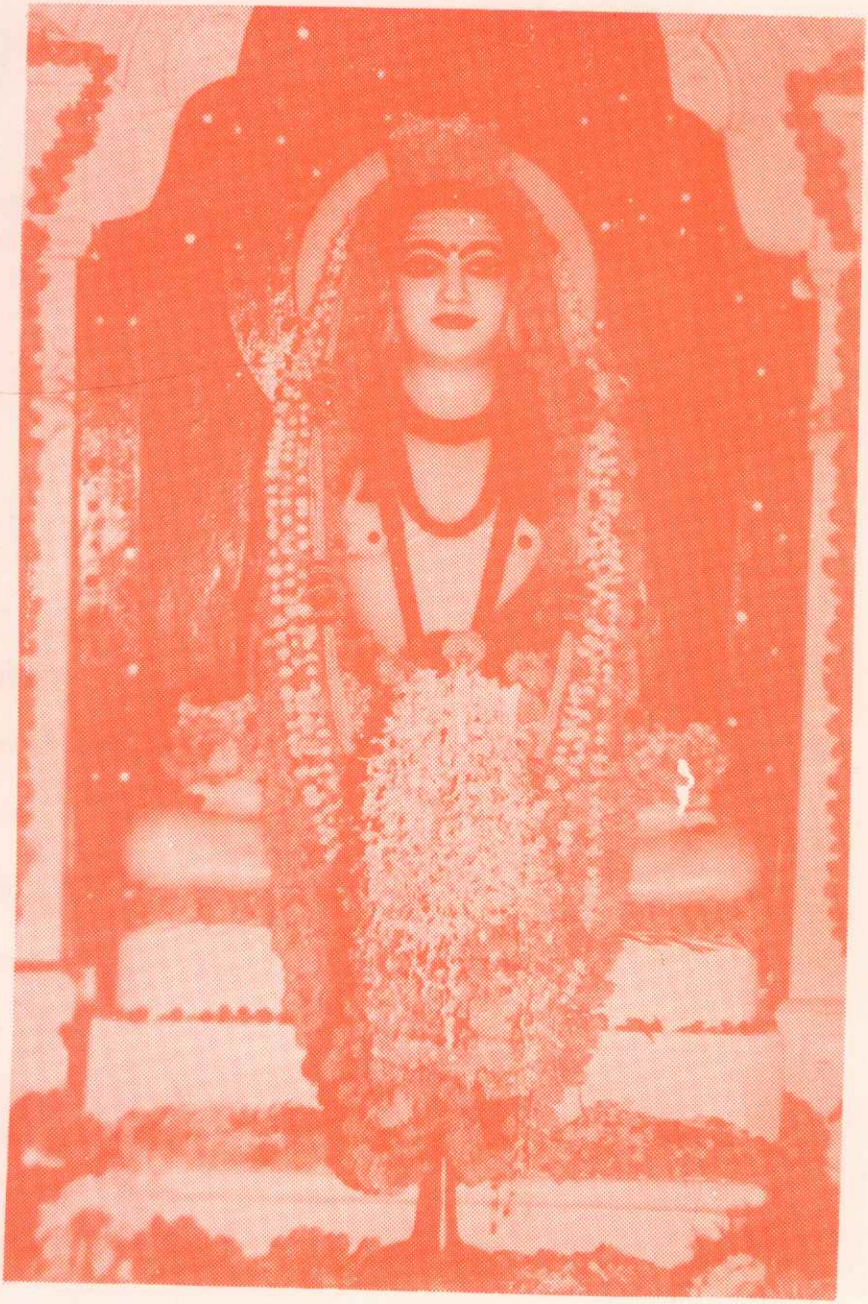

महायोगी गोरखनाथ

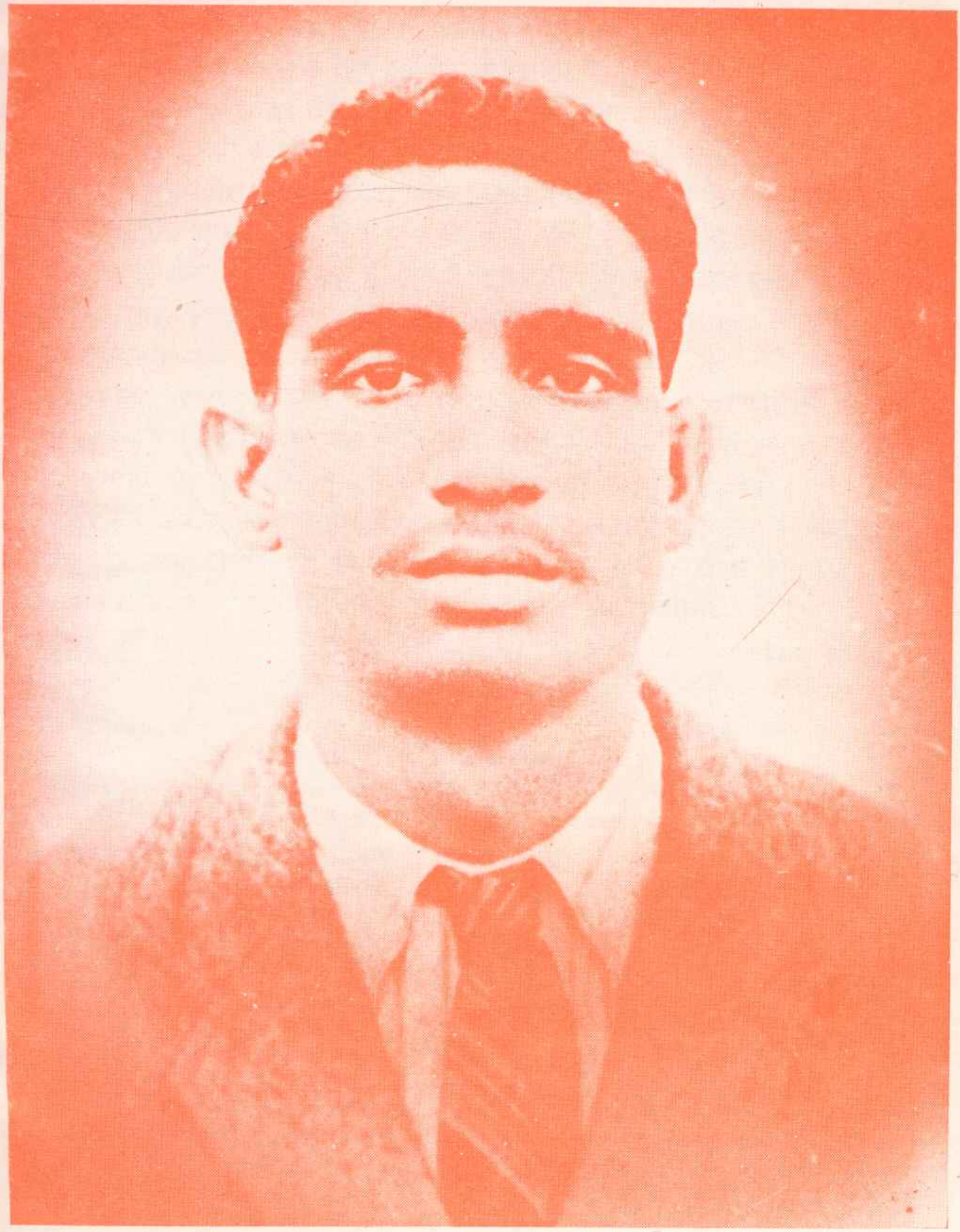

युवक राणा नान्हू सिंह (महन्त दिग्विजयनाथ)

प्रकाशकीय

पूज्य गुरूदेव ब्रह्मलीन महंत दिग्विजयनाथ जी का जीवन भारतीय संस्कृति, धर्म, शिक्षा, संस्कार, साधना एवं आदर्श के लिए समर्पित था। समग्र हिन्दू जनता के लिए वे एक प्रकाश–स्तम्भ थे। वे बालारूण के समान देश के क्षितिज पर स्वर्णिम आभा विकीर्ण करते हुए उदित हुए और हिन्दू जाति एवं धर्म की रक्षा में तत्पर रहकर मध्यह्न के सूर्य के समान अपनी प्रतिभा के प्रखर आलोक से समग्र देश को आलोकित किया। आज वे स्मृतिशेष हैं। एक सच्चे कर्मयोगी की भाँति उनका व्यक्तित्व संघर्षों में विकसित हुआ था। धर्म, शिक्षा, समाज आदि राष्ट्र–सेवा के विविध क्षेत्रों में उन्होंने जो ठोस रचनात्मक कार्य किये हैं, वे उनकी स्मृति को सजीव रखने के लिए पर्याप्त हैं। आधुनिक राष्ट्र–सेवकों का जब कभी सच्चा इतिहास लिखा जायगा, ब्रह्मलीन महंत दिग्विजयनाथ जी का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

पूज्य गुरूदेव के मित्रों, स्नेहियों, श्रद्धालुओं एवं कृपापात्रों का विशाल समुदाय देश के कोने–कोने में फैला हुआ है। यह स्मृति–ग्रंथ उनकी भावनाओं का मूर्त रूप है। एक सांस्कृतिक महापुरूष के गौरव को भौतिक प्रतिक प्रतीकों के माध्यम से स्थायित्व देने की चेष्टा समीचीन न मानकर मैंने उस ब्रह्मलीन योगी की पावन स्मृति को अक्षरब्रह्म के माध्यम से सँजोने का उपक्रम किया और उसी की परिणति इस स्मृति–ग्रंथ के रूप में आप के समक्ष प्रस्तुत है।

यह पावन स्मृति–ग्रंथ 'दिग्विजयनाथ न्यास' की ओर से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरूदेव ने हिन्दू धर्म एवं संस्कृति से सम्बद्ध महत्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन की एक वृहद् योजना बनाई थी और इसी के निमित्त उपर्युक्त न्यास की स्थापना की गई थी। इस न्यास के साथ उनका भावनात्मक लगाव था। इसलिए मैंने इसके माध्यम से उनकी स्मृति को साकार करने की चेष्टा की है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर, डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने प्रधान सम्पादक तथा डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने सम्पादक के रूप में, इस ग्रंथ के प्रकाशन में अमूल्य योगदान किया है। श्री सोमेश्वर सिंह, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दिग्विजयनाथ महाविालय तथा श्री राधेश्याम तिवारी, प्राध्यापक श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, ने सम्पादन एवम् मुद्रण की विभिन्न स्थितियों में निरन्तर संलग्न रहकर जितने मनोयोग से इसे समय से प्रकाशित करने में सहयोग किया है, वह उनके व्यक्तिगत सौजन्य एवम् ब्रह्मलीन महंत दिग्विजयनाथ जी के प्रति निष्ठा के अनुकूल ही है। मैं इन सभी स्वजनों का हृदय से आभारी हूँ।

दि इयूरेका प्रिंटिंग वर्कस, गोरखपुर के संचालक श्री प्रणव दत्त तथा कर्मचारियों ने व्यक्तिगत रूचि लेकर अल्प अवधि के भीतर इस ग्रंथ को प्रकाशित करने में असामान्य तत्परता दिखाई है। मैं इन सभी लोगों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

महन्त अवेद्यनाथ

निवेदन

गोरखपुर सिद्धपीठ के ब्रह्मलीन महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी हिन्दू संस्कृति, धर्म एवं राष्ट्रीयता के अप्रतिम हृदयतिम प्रति हृदयप्रतीक थे। आधुनिक युग की सुप्त आत्मा को जागृत करने वाले महापुरूषों की जो परम्परा सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, डा० विपिनचन्द्र पाल, श्री बाल गंगाध र तिलक, लाला लाजपत राय, वीर विनायक दामोदर सावरकर से होती हुई महामना पं० मदन मोहन मालवीय, सरदार पटेल और राजर्षि टण्डन तक निरन्ध चली आई है, महंत श्री दिग्विजयनाथ जी उसकी अन्तिम कड़ी थे। उन्होंने स्वतंत्रता–संग्राम में एक वीर सेनानी के रूप में भाग लिया था और देश को अखण्ड रूप में स्वतन्त्र देखना चाहते थे। वे हिन्दू संस्कृति के उन सभी तत्वों को सुसंघठित करना चाहते थे, जिन्हें हमारे ऋषियों, तपस्वियों, सिद्धों, धर्म–नेताओं और महापुरूषों ने अपने को उत्सर्ग करके उपलब्ध किया है। गोरखपुर सिद्धपीठ के महन्त के रूप में उन्होंने मठ एवं मन्दिर को भव्य रूप देने का जो महत्वपूर्ण कार्य किया है, वह उनकी कीर्ति को युगों तक अक्षुण्ण रखेगा। गोरखपुर नगर में उन्होंने महाराणा प्रताप शिशु विहार से लेकर दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज और गोरखपुर विश्वविद्यालय तक अनेक शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना का जो पवित्र एवं गौरवपूर्ण कार्य किया है, वह उनकी सांस्कृतिक एवं रचनात्मक दृष्टि का परिचायक है। 'दिग्विजयनाथ न्यास' की स्थापना करके उसके माध्यम से नाथ सिद्धों की साधना, आचार एवं दर्शन से सम्बद्ध बहुमूल्य ग्रन्थों के प्रकाशन की जिस योजना का सूत्रपात उन्होंने किया है, वह प्रेरणाप्रद और अनुकरणीय है। लोकसभा के सदस्य एवं राष्ट्र–नेता के रूप में समय–समय पर राष्ट्रीय स्तर के अनेक जटिल प्रश्नों को सुलझाने के लिए उन्होन दृढ़तापूर्वक दूरदर्शिता पूर्ण सुझाव दिये हैं। उनकी प्रशंसा तो देश के राजनेता तथा विचारकों ने मुक्त कंठ से की है। ब्रह्मलीन महन्त जी का सारा जीवन सच्चे कर्मयोगी का जीवन था। अन्तिम क्षण तक वे हिन्दू जाति, धर्म एवं राष्ट्र

के हित–चिन्तन में लगे रहे। पवित्र उद्देश्य से लक्ष्य निर्धारित करने, साधनों और उपकरणों को संघठित करने तथा दृढ़ संकल्प से उसे पूरा करने की उनमें अद्‌भुत क्षमता और प्रतिभा–सम्पन्न एवं तेजस्वी व्यक्तियों को परखने की विलक्षण शक्ति थी। ऐसे व्यक्तियों को वे सदैव आगे बढ़ाने के लिए तत्पर रहते थे। उनके द्वारा प्रेरित, सहायता–प्राप्त एवं प्रोत्साहित शताधिक योग्य व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों में दायित्वपूर्ण पदों पर योग्यतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। यह इस गद्दी का परम्परागत प्रसाद, गौरव है। नाथसिद्धों के सम्बन्ध में लोकप्रसिद्ध उक्ति है– 'जोगी रहा सो रमि गया बाकी रही भभूत।' बाबा जी की यह भभूत ही उनके श्रद्धालुओं का एकमात्र बल है।

महन्त जी का देश के अनेक गणमान्य नेताओं और विद्वानों से व्यक्तिगत सम्बन्ध था। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, श्री लाल बहादुर शास्त्री, सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर, डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, डा० सम्पूर्णनन्द जैसे लोक नेता और मनस्वी उनका आदर करते थे। नाथपंथी योगियों के लिए तो वे शिव रूप थे ही, अन्य सभी साधु–सम्प्रदायों के अनुयायी सन्त और महात्मा भी उन्हें अपना नेता मानते थे। गोरखपुर की जनता के लिए तो वे सर्वप्रकारेण त्राता और पथप्रदर्शक ही थे।

राष्ट्र और धर्म की निर्भय एवं एकनिष्ठ भाव से ७७ वर्षों तक अनवरत सेवा करके आश्विन कृष्ण ३ सं० २०२६ तदनुसार २८ सितम्बर सन् १९६९ को महन्त जी परम ज्योति में लीन हो गयें उस समय का दृश्य अद्‌भुत था। उनके अन्तिम दर्शन के लिए जनता का समुद्र उमड़ पड़ा था। गोरक्षनाथ मन्दिर का प्रांगण दर्शनार्थियों से भर गया। उस दिन ऐसा अनुभव हो रहा था कि महन्त जी सचमुच 'दिग्विजयनाथ' थे, सबके अपने बाबा जी थे। उनके प्रति जनता की अविचल निष्ठा थी। महन्त जी के ब्रह्मलीन होने का दुखद समाचार सुनकर उनके श्रद्धालु और कृपापात्र ही नहीं, यशःशरीर से परिचित विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के लोग शोक–सागर में निमग्न हो गये। यह दुःख श्रद्धासुमन के रूप में ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ के प्रिय शिष्य उत्तराधिकारी गोरक्षपुर सिद्धपीठ के वर्तमान पीठाधीश्वर महन्त श्री अवेद्यनाथ के पास संचित होने लगा। जिस किसी ने एक बार भी दिवंगत पीठाधीश्वर महन्त जी का दर्शन किया था, वह उन्हें भूल नहीं सकता था। उनके स्मृति–पटल पर महन्त जी के तेजस्वी व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ गई थी। स्मृतियों की यह भाव राशि ही प्रस्तुत प्रयास की मूल प्रेरणा है।

ब्रह्मलीन महंत जी की स्मृति को युग–युग तक मूर्तिमान रखने के लिए उनका कृतित्व ही पर्याप्त है। यह मानते हुए भी गोरक्षपीठ के वर्तमान महंत श्री अवेद्यनाथ जी ने अक्षरब्रह्म के अनन्य उपासक गुरूदेव की पुण्य स्मृति की अर्चना का संकल्प किया। यह ग्रंथ इसी का मूर्त विग्रह है।

प्रस्तुत स्मृति ग्रंथ में सबसे पहले ब्रह्मलीन महंत जी के प्रति देश के कोने कोने से विद्वानों, नेताओं, महात्माओं, मित्रों, स्नेहियों, श्रद्धालुओं और कृपापात्रों द्वार व्यक्त श्रद्धाञ्जलियों को स्थान दिया गया है । इसके बाद महन्त जी के व्यक्तित्व से सम्बद्ध संस्मरणों को रखा गया है। ये संस्मरण उनके स्वभाव, रूचि, प्रकृति एवं कर्म–कौशल के विविध पक्षों को सहज रूप में प्रकट करते हैं। संस्मरणों के बाद उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का एक प्रामाणिक रेखांकन प्रस्तुत किया

गया है। इसी के साथ गोरखनाथ मंदिर का इतिहास, महत्व और महंत–परंपरा का भी परिचय दिया गया है। ब्रह्मलीन महंत श्री दिग्विजयनाथ ने अनेक अवसरों पर हिन्दू महासभा, अन्य धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं तथा लोकसभा के मंच से हिन्दू संस्कृति, धर्म, आचार–विचार तथा शिक्षा एवं राजनीति सम्बन्धी गंभीर और मननीय विचार व्यक्त किये। इस स्मृति–ग्रंथ में उनके जीवन, व्यक्तित्व तथा कृतित्व का परिचय देने के साथ ही उनके द्वारा व्यक्त मौलिक विचारों को 'महंत दिग्विजयनाथ : विचार–दर्शन' शीर्षक से संगृहीत कर दिया है। यह सामग्री अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी है। अंत में विद्वानों के ऐसे शोध पूर्ण निबंधों को स्थान दिया गया है, जिनका सम्बन्ध हिन्दू संस्कृति एवं दर्शन के पक्ष से है, जिसका ब्रह्मलीन महंत जी प्रतिनिधित्व करते थे। इस प्रकार इस स्मृति ग्रंथ में संग्रहीत सामग्री पूज्य महंत जी के पूर्ण व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने का सफल माध्यम बन सकती हे। हमारा विश्वास हे कि इससे ब्रह्मलीन महंत जी के मित्रों, परिचितों, श्रद्धालुओं, स्नेहियों और कृपापात्रों को समान रूप से संतोष प्राप्त होगा।

समयाभाव तथा स्थान संकोच के कारण जिन श्रद्धालुओं के भाव–पुष्पों को हम इस ग्रंथ में समाविष्ट नहीं कर सके हैं, उनसे हम अत्यन्त विनम्रतापूर्वक क्षमा प्रार्थी हैं। समय की संकीर्णता तथा प्रमादवश संपादन–कार्य में अनेक प्रकार की त्रुटियों का रह जाना आश्चर्यजनक नहीं है। श्रद्धालु पाठकों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर अपनी निष्ठा के अनुकूल तत्व ग्रहण कर लें–

संत हंस गुन गुहहिं पय, परिहरि वारि विकार।

गोरक्षपीठ के वर्तमान महंत श्री अवेद्यनाथ जी के हम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने अपने पावन अनुष्ठान के संपादन में योगदान करा हमें अवसर प्रदान किया। अनेक दृष्टियों से अपनी अक्षमता का अनुभव करते हुए भी ब्रह्मलीन 'बाबा जी' के प्रति पूज्य भाव की प्रेरणा से हमने उसे स्वीकार कर लिया। काल क्रम से उनका विश्वास ही हमारी शक्ति बढ़ा गई और प्रस्तुत ग्रंथ का उनकी यशः काया के रूप में अवतरण हो गया। इसको वर्तमान रूप देने में जिन स्वजनों ने यत्किंचित् भी योगदान किया है, हम उन सभी के हृदय से आभारी हैं।

सम्पादक

आश्विन कृष्ण ३, सम्वत् २०२६ वि०

शंकराचार्य मठ, पुरी
१०–१२–१६७१

श्री सम्पादक जी,
श्री महंत दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ
श्री गोरक्षनाथ मंदिर गोरखपुर

श्री गोरक्षनाथ मंदिर गोरखपुर, उत्तर प्रदेश के ब्रह्मलीन महन्त, अखिल भारत हिन्दू महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष, विश्व हिन्दू–धर्म–सम्मेलन के संस्थापक एवं भूतपूर्व संसद सदस्य श्री दिग्विजयनाथ के महान् व्यक्तित्व से सम्पूर्ण भारत भलीभाँति परिचित है। राजनीति, धर्म, संस्कृति, शिक्षा एवं विभिन्न क्षेत्रों में [illegible]प्रभावता किये गये कार्य चिरकाल तक उनकी स्मृति को सँजोये रखेंगे। श्री [illegible] स्थित नव्य मन्दिर का पुनर्निर्माण, महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्, महराणा प्रताप [illegible] कालेज, [illegible]राणा प्रताप इण्टर कालेज, महाराणा प्रताप पालीटेकनीक, श्री गोरक्ष[illegible] संस्कृत [illegible]पीठ, महाराणा प्रताप शिशु शिक्षा विहार आदि संस्थाओं की स्थापना के महा[illegible] कार्य हैं, जो उन्हें यावत् चन्द्रदिवाकरौ अजर–अमर रखेंगे। गोरखपुर विश्वविद्या[illegible] की स्थापना में वे अग्रणी रहे हैं। पूर्वी जिलों की जनता की भावनाओं को उन्होंने स्वर प्रदान किया है। हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दुस्तान के वे मूर्तिमान स्वरूप थे। स्वतंत्रता संग्राम के वे अग्रणी नेता रहे और प्रसिद्ध चौरीचौरा काण्ड के ही प्रमुख नायक थे। जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जो उनसे अछूता रहा हो। ऐसे महान पुरूष की स्मृति को साहित्यिक जगत् में बनाये रखने के लिए श्री महाराज के भक्तों, प्रशंसकों, मित्रों एवं अनुयायियों ने जो निश्चय किया है, वह उनके योग्य ही है। उनकी पावन–स्मृति के अनुरूप एक स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन अवश्य किया जाय।

जगद्‌गुरू शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ

महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी ने एक बार इसी आबू पर्वत पर सन् १९५१ ई० में आकर मुझसे हिन्दू संगठन की महत्वपूर्ण बात की थीं। वे निर्भीक नेता थे। उनका सारा जीवन भारत राष्ट्र एवं हिन्दू संस्कृति की रक्षा के लिए समर्पित था। उनके स्मरण से हिन्दुओं में यदि थोड़ी भी पुनर्जागृति आयेगी तो यह ग्रन्थ–प्रकाशन सफल होगा। हिन्दू जाति धीरे–धीरे जागती है। हिन्दू समाज में सब कुछ है, परन्तु जागृति एवं संगठन की कमी है।

अभिनव सच्चिदानन्द पुरी
जगद्गुरू शंकराचार्य
श्री शारदा पीठ द्वारका

ब्रह्मलीन श्रीमान् म... श्री दिग्विजयनाथजी को भारत का कौन सा ऐसा आस्तिक व्यक्ति है, जो नहीं जानता। उनके द्वारा भारतीय जनता में भारतीय संस्कृति का प्रचार एवं हिन्दू जनता का महान उपकार हुआ है। वे हर प्रकार के जन समाज के लिए व्यवाहारिक एवं पारमार्थिक जीवन के महान् उपकारी थे। ऐसे महापुरूष का दर्शन भी वर्तमान समय में दुर्लभ है। अब तो उनके पवित्र चरित्रों के रूप में ही दर्शन हो सकते हैं। बहुधा हमें उनसे मिलने का अवसर उपस्थित हुआ था– उनके आध्यात्मिक एवं व्यवहारिक जीवन में बहुत ही उदारता का परिचय प्राप्त हुआ है।

शान्तानन्द सरस्वती
जगद्गुरू श्री शंकराचार्य
ज्योतिर्मठ बद्रिकाश्रम

श्रद्धांजलियाँ

सद्वर्णाः सरसाः प्रतिष्ठितपदाः सिद्धाचलाध्यासिनः
सत्पुष्पाः सफलाः पुराणविटपा लोकोपकारोद्यताः।
किं वेदाः? किमुपादपा घनजटावल्लीयुताः शाखिनो
गोरक्षे कृतपल्लवाञ्जलिपुटा मुञ्चन्ति पुष्पाञ्जलिम्।१।

श्री दिग्विजयनाथास्य योगिनो महतः सतः।
आदर्शजीवनं वीतं हिन्दुसेवामयं महत्।२।
सिद्वगम्भीरनाथास्य शिक्षादीक्षाप्रभावतः।
हिन्दुधर्मस्य रक्षार्थं बद्धकक्षो हि यः स्थितः।३।
स्थित्वा गोरक्षनाथस्य गोरक्षपुरमन्दिरे।
गोरक्षा विहिता येन चौरीचौरादिकाण्डतः।४।
सेवाधर्मः कृतो येन महावीरदले महान्।
हिन्दुमहासभामध्येऽध्यक्षता विहिता हिता।५।
महाराणप्रतापाख्यो महाविद्यालयः कृतः।
श्री गोरक्षनाथविद्यापीठं येन प्रतिष्ठितम्।६।
अखिल भारते भाति येन योगिमहासभा।
मठो गोरक्षनाथस्य मन्दिरं सुन्दरं कृतम्।७।
रम्या पुष्करिणी भाति शारदा–संज्ञिताऽन्तिके।
आम्रादिकफलोद्यानं मठे हृद्यं हि विद्यते।८।
दिल्लीलोकसभामध्ये लोकप्रतिनिधिर्बभौ।
भीषणं भाषणं यस्याऽभवद् धर्मविरोधिनाम्।
तस्य स्मृत्यै ग्रन्थरत्नं प्रकाश्य स्वविनेयताम्।
श्रीमानवेद्यनाथोऽयं प्रकाशयति सर्वतः।१०।

योगी नरहरिनाथ : शास्त्री विद्यालंकारः

श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज एक महान् व्यक्ति थे। १९४६ में उनके द्वारा गोरखपुर में आयोजित अखिल भारत हिन्दू महासभा के विशाल ऐतिहासिक अधिवेशन में सम्मिलित होने का मुझे भी अवसर मिला था। उस समय मैंने उनके व्यक्तित्व की एक झलक देखी थी। समस्त साधु समाज को उन पर गर्व है।

जगदाचार्य स्वामी नारदानन्द सरस्वती
नैमिषारण्य, सीतापुर

卐

गोरखनाथ पीठ, गोरखपुर के महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज यों तो सारे विश्व के हितैषी थे, पर, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू राष्ट्र के वे स्तम्भ ही थे। वे अपने सिद्धान्त के पक्के, दृढ़विश्वासी, स्पष्टभाषी और निर्भीक राष्ट्रप्रेमी होने के साथ ही बड़े विचारशील और मिलनसार थे। सभी क्षेत्रों में उनका प्रभाव था, और उनके प्रति सभी का प्रेम था। उन्होंने शिक्षा–क्षेत्र में बहुत वड़े–वड़े कार्य किये। गोरखनाथ मंदिर–क्षेत्र का तो उन्होंने बड़ा सुन्दर पुनर्निर्माण ही करा दिया। गीता प्रेस के प्रति और व्यक्तिगत रूप से मेरे प्रति उनका जो स्नेह और आत्मीयता थी, उसका कोई मूल्य नहीं है। वह विपत्ति में पड़े हुए प्रत्येक व्यक्ति के अवलम्बन थे। हमलोगों के लिए तो उनका बड़ा सहारा था। देशवाशियों का यह कर्तव्य है कि वे उनका अनुसरण करके उनके सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार के द्वारा उन्हे वास्तविक श्रद्धाञ्जलि अपर्ण करें।

हनुमान प्रसाद पोद्दार

卐

श्रद्धेय महन्त जी ने योगी **महासभा, योगी सम्प्रदाय, हिन्दू समाज** तथा समूचे देश की जो सेवायें की हैं, वे बेजोड़ हैं। **वे एक निस्पृह, उदार तथा साथ ही बहुत** ही वीर नेता थे। भारत के इतिहास में उनकी **देन अद्भुत तथा बेमिशाल हे। उन सरीखे निर्भीक** तथा सत्यनिष्ठ व्यक्ति **देश में बहुत ही दुर्लभ हैं।**

महन्त श्रेयोनाथ
भूतपूर्व स्वास्थ मंत्री, हरियाना
गद्दी स्थल बहोर
जिला रोहतक

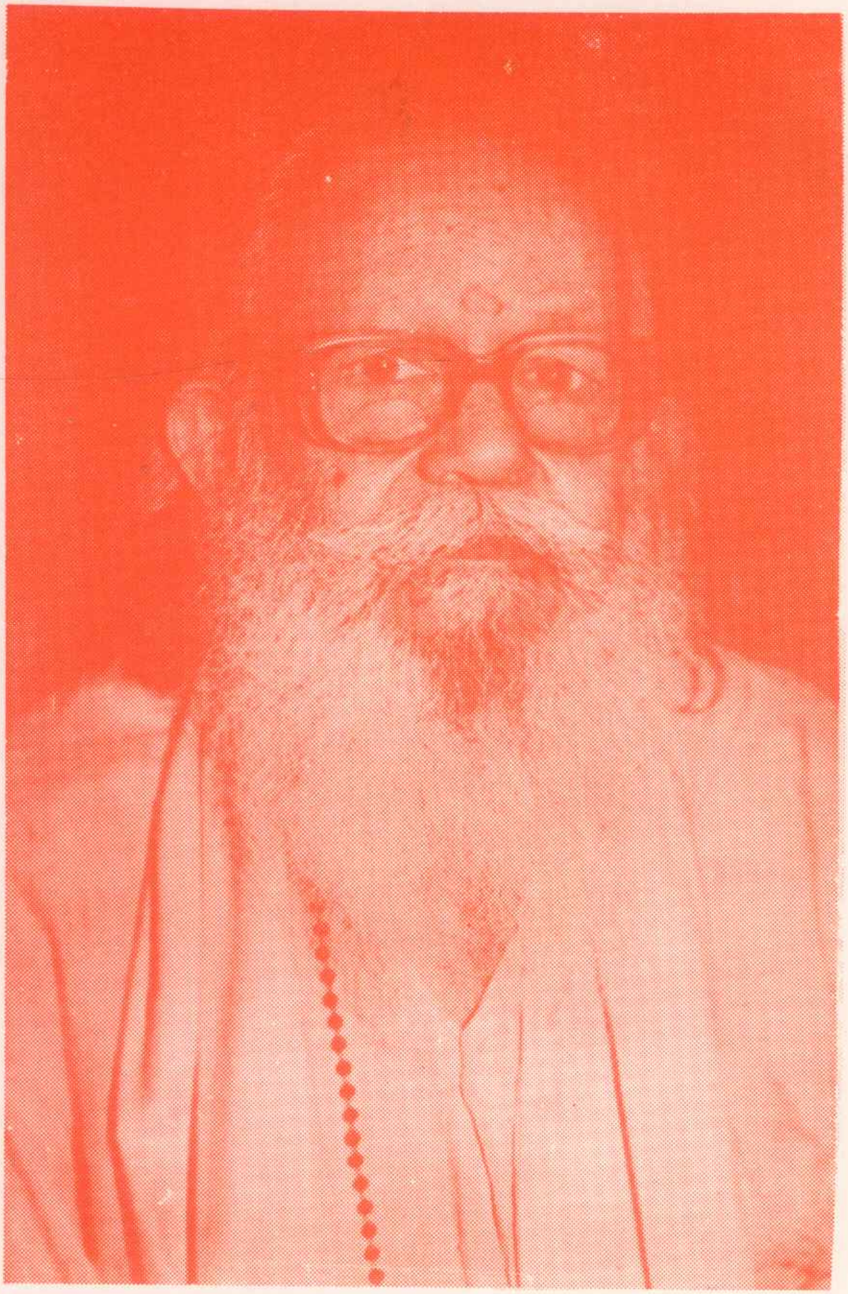

महन्त अवेद्यनाथ
वर्तमान गोरक्षपीठाधीश्वर

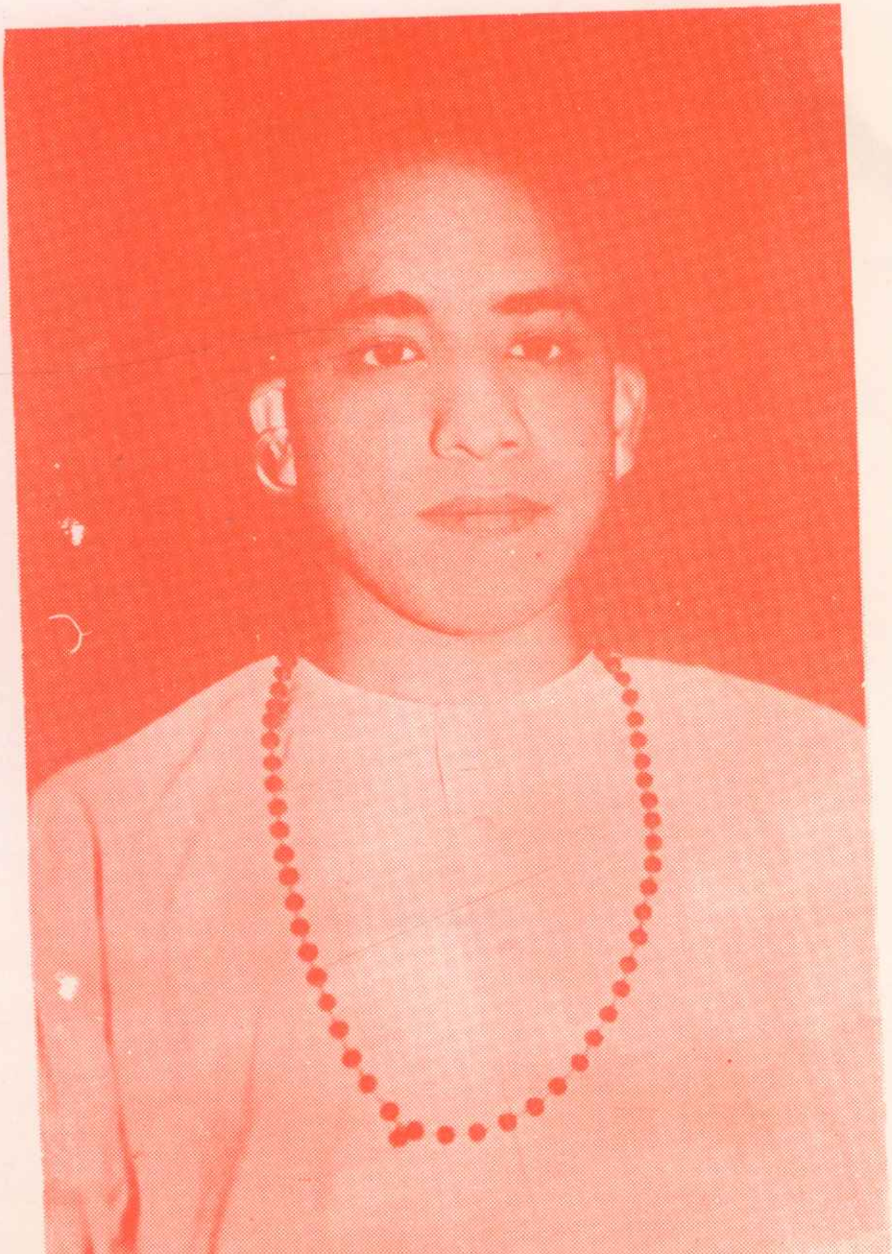

योगी आदित्यनाथ
(पट्टशिष्य, गोरक्षपीठ)

संस्मरणाष्टकम्

गीर्वाण्गीः सेवनसावधाना, आजीवनं दत्तमनोनियोगाः।
नित्यं निरस्ताखिल षट्सपत्ना, नाथा अमी दिग्विजयो समेज्याः ।१।
वैदेशिकैस्तैर्जनसंकुलैश्च, जाता वयं विस्मृतनैजभावाः।
कार्य बुधाः प्रत्यहमात्मबृद्धौ, स्वीयं यशो येन भृशं तनिष्यते ।२।
अस्माकमादौ किमभूद्वरेण्यं, निदेशनं येन जितंजगत्तत्।
अद्यापि विज्ञान–वितान–खिन्ने, कालेजनः सर्व इदं प्रतीक्षते ।३।
आद्यं महत्वं भुवि यस्यजातं तस्यै वनुर्वंशतरोर्वयं बुधाः।
कितद्यशोवारि हि सार्वभौमं, पीत्वा न जाताः किमु सारग्राहाः ।४।
आर्यस्य सर्वस्वनिधिं पुराणं, नैजं यशो राशिममुं विचिन्त्य।
व्यापारिता पूर्वनिबद्धभावना, येनामुना योगिगणाग्रगेण ।५।
गोरक्षपीठं भुवि संस्कृतस्य, येन प्रतिष्ठापितमादरेण।
तस्यस्मृतौ ग्रन्थमिमं प्रकाश्य, सोऽवेद्यनाथोऽस्तु सदा वरेण्यः।
संस्थास्तिसेयं बहुशः समाजे, प्रस्तावि सेवैव ययाजनेषु।
अर्थागमे नाप्यगमे समैव, सदाचलन्ती विरता न जातु ।७।
सन्चालिता शम्भुगुरोः समृतो या, तस्यैव नाम्नास्तिप्रसिद्धिमाप्ता।
अद्यापि तेनैव रयेण सेयं, सेवापरा प्राण–पणेन नित्यम् ।८।

आचार्य पूर्णचन्द ढुंगेल :
प्रधानाचार्य :
जनता महाविद्यालय
सदस्य :
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय

दिनांक २८ सितम्बर की रात को अत्यन्त दुःखद समाचार आकाशवाणी द्वारा सुनने में आया, जिससे प्रत्येक मानव, प्रत्येक हिन्दू एवं साधु सम्प्रदाय विशेषतः नाथ सम्प्रदाय के प्रत्येक व्यक्ति ने महन्त जी के निधन को अपूरणीय क्षति समझते हुए अतिशय दुःख का अनुभव किया। यह स्वभाविक ही हैख क्योंकि कैलाशवासी श्रीमहन्त जी योग की दृष्टि से विश्व की सम्पति थे, हिन्दुत्व की दृष्टि से कट्टर एवं वास्तविक हिन्दू थे। नाथ सम्प्रदाय के तो आप नेमी (कर्णधार) हृदय थे, प्रगति थे, जो कुछ भी थे आप ही थे। आप की सत्ता की तुलना नहीं थी। आज जो अचानक आप के स्थूल शरीर का अभाव हुआ है, यह हम सभी का दुर्भाग्य है और हम दैव की क्रूर दृष्टि के शिकार बने हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। विशेष क्या कहें, आप नाथ सम्प्रदाय के देदीप्यमान दीपक थे, सूर्य थे, प्रकाशपुञ्ज थे। आज हम सब अन्धकार में हैं, परन्तु हमारी दयनीय स्थिति के प्रति दिवंगत आत्मा का पूर्ण ध्यान है, ऐसा हम सब का विश्वास है।

वस्तुतः दैव ने विश्व मानव की दृष्टि में वज्रपात करने की इच्छा से ही आपको हमारे समूह से उठा लिया है। अस्तु, ईश्वर की इच्छा प्रबल है और उसके स्पन्दन के सामने हमारी सारी की सारी इच्छाएं बेकार हो जाती हैं।

अब हम सब सवर्तः यही गोरक्षनाथ जी से याचना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को शान्ति मिले और आपको इस दुःख के सहन करने की शक्ति प्रदान करें। कैलाशवासी आत्मा द्वारा निर्दिष्ट मार्ग प्रशस्त हो, निर्वाध हो, ऐसी कामना एवं सम्वेदना करते हुए भगवान गोरक्षनाथ जी के चरणों में प्रार्थना करते हैं।

क्षिप्रानाथ योगी
एवं उपस्थित बारहपंथ
मृगस्थली (नेपाल)

卐

महन्त दिगिवजयनाथ जी ने न केवल साधु–समाज की सेवा की, अपितु राष्ट्र की सेवा भी की थी। राष्ट्र और साधु–समाज उनकी सेवाओं को कदापि नहीं भुला सकेगा। भारत के इतिहास के साथ उनका नाम सदा जुड़ा रहेगा।

आर्चाय स्वामी गणेशदास
महन्त, साधुबेला
हरिद्वार

卐

साधु समाज, हिन्दुत्व रक्षक दिग्विजयनाथ जी के निधन से हार्दिक दुःख हुआ, श्रद्धान्जलि अर्पित है।

महन्त घनश्याम गिरि
एम०एल०ए०
हरिद्वार

श्रद्धांजलियाँ

श्रीमहन्त दिग्विजयनाथ जी महराज ने देश, राष्ट्र एवं धर्म की बहुत बड़ी सेवा की है। उनका व्यक्तित्व महान् था और जो कोई भी उनसे मिलता था प्रभावित हुए बिना न रहता था। उनके निधन से राष्ट्र की अपूरणीय क्षति हुई है। उनकी स्मृति में प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ के लिए मैं अपनी शुभकामना भेज रहा हूँ।

गोपाल स्वरूप पाठक
उपराष्ट्रपति
जून १५, १९७१

卐

श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी हमारे मित्रों में से एक थे। उन्होंने गोरखपुर में उच्चस्तरीय शिक्षण के प्रोत्साहन–कार्य में बड़ी सहायता प्रदान की है।

श्री कन्हैया लाल मणिक लाल मुन्शी
भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

卐

महन्त जी के निधन से अपार शोक है, उनकी आत्मा की शान्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करता हूँ।

सच्चिदानन्द आश्रम
हृषिकेश

卐

हृदय विदारक शोक ! भगवान से मुक्ति हेतु प्रार्थना।

सुधीर

卐

हिन्दुओं के जागरण का एक स्तम्भ टूट गया। महन्त जी के प्रति हमारी श्रद्धांजलियाँ स्वीकार करें।

हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव
प्रधान मंत्री, उ० प्र० जनसंघ

卐

बड़े बाबा जी के आकास्मिक निधन का सामाचार जान कर हार्दिक दुःख हुआ

जगदीश प्रसाद अग्रवाल
भू० पू० अ० उ० प्र० विधान सभा

श्रद्धांजलियाँ

श्रीयुत महन्त दिग्विजयनाथ जी के देहावसान का समाचार बड़े दुःख के साथ सुना। महन्त जी मेरे अति निकट सम्पर्की तथा सहयोगी थे। उनके अभाव में हमें भारी क्षति हुई है। ईश्वर से प्रर्थना है कि वह श्री महन्त जी की दिवंगत आत्मा को शान्ति तथा हम सबको धैर्य प्रदान करें।

आचार्य भगवान देव
गुरूकुल झज्जर, रोहतक, हरियाना

卐

मुझे महन्त जी के स्वर्गवासी होने का अत्यधिक शोक हुआ।

आचार्य श्री रामकिशोर जी
पीठाधीश्वर राम सनेही वैष्णव सम्प्रदाय
वरनगर, मध्य प्रदेश

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी के निधन से हिन्दू राष्ट्र को महान क्षति पहुँची है। भगवान उनको बैकुण्ठधाम में स्थान दे और आप सब को सान्त्वना प्रदान करे।

पं० रामनाथ कालिया– दिल्ली

卐

श्री महन्त जी के असामयिक निधन पर विद्यालय परिवार अत्यन्त दुःखी है। दिवंगत आत्मा को भगवान शान्ति दे।

अखिलेश चन्द्र (प्राचार्य)
राजा श्री कृष्णदत्त महाविद्यालय
जौनपुर

卐

हार्दिक दुःख। महन्त दिग्विजयनाथ जी के निधन पर मेरी श्रद्धांजलि अर्पित है।

साहू रामऔतार
बरेली

卐

ज्य महन्त जी के आकस्मिक निधन से देश की महान् क्षति हुई है। ईश्वर उनके अवशेष कार्यो ो सम्पन्न कराने का आपको सामर्थ्य दे।

कर्मचारी केन्द्रीय तार घर

श्रद्धांजलियाँ

कुल १०—१२ वर्ष हुए, विद्यापीठ अनुदान आयोग के अध्यक्ष के नाते गोरखपुर के विद्यापीठ और महाविद्यालयो का परिवेक्षण करने के सन्दर्भ में मुझे श्री महन्त जी से परिचित हो जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय उच्चतर शिक्षा—क्षेत्र में जो कार्य उनकी प्रेरणा से चल रहा था, उसकी जानकारी भलीभाँति मिली। इसके अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व का परिचय भी हुआ। अपने मंदिर संलग्न आश्रम में मुझको आमन्त्रित करके उन्होंने आतिथ्य सत्कार किया और साथ—साथ अपनी विचारधाराओं की झलक भी दिखाई, जिससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। इसमें मेरे प्रति उनका कुछ अनौपचारिक सद्भाव भी प्रतीत हुआ। परिणामस्वरूप दिल्ली में दो तीन वर्ष के पश्चात् उन्होंने एक परिसम्वाद अ० भा० परिषद आमंत्रित किया। इसमें भाषण देने का आमंत्रण उन्होंने मुझे दिया। यह कहे जाने पर कि मैं कदाचित आपसे सहमत न हो सकूँगा, परम सत्यान्वेषी महन्त जी ने कहा कि वह कोई प्राक्षेपाई बात नहीं, आप के प्राञ्जल विचार हम सुनना चाहते हैं। यह थी उनके हृदय की उदारता। महन्त जी के स्वार्थत्याग, अध्यात्मप्रदा जीवन, प्रामाणिक विचारधारा, उदारता इत्यादि गुणों की स्मृति जागृत होती है। उन्हें मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित है।

चिन्तामणि द्वा० देशमुख

卐

श्री दिग्विजयनाथ जी के स्वर्गवास से अधिक दुःख हुआ।

माधव सदाशिव राव गोलवलकर
सर संघचालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
नागपुर

卐

पुज्य महन्त जी के अचानक स्वर्गवास का समाचार पाकर मर्माहत हुए। लगन और कृतित्व की वे साकार मूर्ति थे। उनकी क्षतिपूर्ति असंभव है। उनके प्रति श्रद्धांजलि स्वीकार करें। दुःख में मैं आपका सहभागी हूँ।

नाना देशमुख
मंत्री
अखिल भारतीय जनसंघ

卐

परमपूज्य गुरूदेव श्री श्री १००८ ब्रह्मलीन महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज का पुण्य स्मरण आध्यात्मिक जगत में अवश्यम्भावी आलोक सिद्ध होगा। आजके अन्धकारपूर्ण भौतिकवादी संसार में आध्यात्मिकता के दिव्य संदेश की बड़ी आवश्यकता है। सत्य मार्ग के अपनाये बिना क्या आर्थिक क्या सामाजिक और क्या राजनीतिक— किसी भी समस्या का समाधान सम्भव नहीं। पीड़ित मानव जाति के दुखों का अन्त आत्मविश्वास और आत्मदर्शन के बिना स्वप्नमात्र रह जाता

है। आज सत्य–धर्म को छोड़कर ही मानव सभी प्रकार के दुःखों के नरक में ठोकरें खाता दिखाई देता है। ईश्वर के नाम से और आध्यात्मिक विषय से मानो उसे चिढ़ सी हो गई है। वह सांसारिक पदार्थों में ही दुःख की तलाश करता है, परन्तु उसके बदले में हार और दुख ही प्राप्त होता है। श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी के अमृत रूपी संदेश पर चलकर ही उसे दुःखों से निवृति और सच्चे सुख की प्राप्ति संभव हो सकती है। अतः आज के अवसर पर उनकी पुनः स्मृति से उनके अनुयायियों, भक्तों, श्रद्धालुओं तथा जन सामान्य को निश्चय ही सत्य मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलेगी और अन्ततः मानव–कल्याण के द्वार खुलेंगे। मैं इस अवसर पर पूज्यपाद श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महराज को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

बलराज खन्ना
उपमहापौर दिल्ली नगर निगम

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी से मेरा दीर्घकालीन सम्पर्क था। वह बड़े ही सज्जन पुरूष थे और समाज–सेवा को उन्होंने अपने जीवन में प्रमुखता दी।

सत्यनारायण सिंह
राज्यपाल, मध्य देश

卐

देश के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के अतिरिक्त राजनीतिक जीवन में उनका बड़ा प्रभाव रहा है। आशा है, भक्तजन उनके दर्शाये मार्ग का अवलम्बन करते रहेंगे तथा जनसेवा में यथापूर्व रत रहेंगे।

शेर सिंह
राज्यमंत्री, कृषि विभाग, केन्द्रीय सरकार

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी बड़े कर्मठ समाजसेवी और राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति थे। मुझे उनके आशीर्वाद मिलते रहते थे।

भक्तदर्शन
भूतपूर्व राज्यमंत्री, केन्द्रीय सरकार

卐

सच्चे राष्ट्रवादी तथा देशभक्त के साथ महंत दिग्विजयनाथ जी महान् शिक्षा–शास्त्री थे। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवायें सदा स्मरण की जाती रहेंगी।

अन्ना साहब पी० शिंदे
राज्यमंत्री, केन्द्रीय सरकार

श्रद्धांजलियाँ

हिन्दू समाज और धर्म के लिए महन्त जी ने जो कार्य किया, उसको स्थायी बनाने का प्रयत्न होना चाहिए।

अटलविहारी बाजपेयी
अध्यक्ष, जनसंघ

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी आदर्श देशभक्ति, विद्यानुराग साहस एवं शौर्य से ओतप्रोत थे।

रणंजय सिंह
भूपति भवन, अमेठी राज्य

卐

महन्त जी एक दृढ़ राष्ट्रवादी तथा कर्मठ नेता थे। उनकी दृढ़ इच्छा थी कि संसद में राष्ट्रवादी शक्तियाँ संगठित होकर कार्य करें।

प्रकाशवीर शास्त्री
भूतपूर्वमंत्री, भारतीय क्रांतिदल

卐

संसद सदस्य श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महराज एक निर्भीक वक्ता थे। उन्होंने देश एवं धर्म की महान् सेवायें की हैं। उनके द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने में ही हिन्दू जाति व देश का हित होगा।

महेशचन्द्र तिवारी
मंत्री
राष्ट्रीय समाजवादी लोकतांत्रिक दल

卐

महन्त जी के न रहने से हिन्दू राष्ट्र और समाज के एक निर्भीक योद्धा का अंत हो गया।

सत्यकाम
मंत्री
दिल्ली प्रदेश हिन्दू महासभा

卐

महन्त जी के समान दृढ़ पुरूष यदा–कदा ही संसार में उत्पन्न होते हैं। महन्त जी ने जब से हिन्दू महासभा में प्रवेश किया, एकरस होकर तन–मन–धन से उसकी सेवा की। आप जीवन भर हिन्दू मात्र के उत्थान के लिए संघर्षरत रहे। आपके न रहने से हिन्दू राष्ट्र की अपूरणीय क्षति हुई है।

पं० अंजनी नन्दन मिश्र
अध्यक्ष
उत्तर प्रदेश हिन्दू महासभा, वाराणसी

श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी अपने आप में स्वयं एक संस्था थे। उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चिरस्मरणीय सेवायें की हैं। उनकी स्मृति को सँजोये रखना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है।

शिवानन्द तिवारी
सम्पादक
श्वेतनील चक्र साप्ताहिक

卐

श्री महन्त दिग्विजयनाथ मठाधीश होते हुए भी समाज सेवा तथा दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने आजीवन विपरीत परिस्थितियों में दृढ़ता के साथ हिन्दू संगठन का कार्य किया है।

ओऽम् प्रकाश त्यागी
संसद सदस्य

卐

ब्रह्मलीन श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महराज हिन्दू राष्ट्र के अमर पुजारी तथा हिन्दुओं के प्राण थे। उन जैसा महापुरूष युगों के पश्चात् अवतीर्ण होता है।

राजाराम तिवारी
प्रधान मंत्री
अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण संघ

卐

महन्त जी का निधन सुनकर स्तब्ध रह गया, देश की अपूरणीय क्षति हुई है। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दें। समवेदना स्वीकार करें।

राजदेव सिंह
संसद सदस्य

卐

महन्त जी के निधन पर हार्दिक शोक।

चौ० चरण सिंह
भू० पू० मुख्यमंत्री
उ० प्र०

卐

बाबा के निधन पर सोसलिस्ट पार्टी की हार्दिक समवेदना। श्रद्धांजलि स्वीकार करें।

चन्द्रबली सिंह

परमादरणीय, सम्मानयोग्य श्री महन्त जी की असामयिक मृत्यु की सूचना प्राप्त हुई। सुनकर हृदय को बड़ा धक्का लगा कि भारत माता का एक सपूत माता की गोदी को छोड़कर ब्रह्मलीन हो गया। निकट भविष्य में इस रिक्त स्थान की पूर्ति कठिन है। परलोक में महन्त जी की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो। हार्दिक समवेदना एवं सहानुभूति स्वीकार करें।

महाराज श्री १००८ स्वामी कपिलदेवाचार्य

卐

असीम दुःख, श्रेष्ठ राष्ट्रभक्त उठ गया। भगवान धैर्य दें।

रज्जू भैया
प्रान्त संचालक
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, उ० प्र०

卐

श्री महन्त दिग्विजयनाथ के स्वर्गवास से मुझे हार्दिक दुःख हुआ है। महन्त जी की आत्मा की सद्गति के लिए और आप सब की सान्त्वना के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ।

रामचन्द्र विकल
एम० पी०

卐

श्री महन्त जी के असामयिक निधन पर हार्दिक शोक।

यादवेन्द्र दुबे
एम० एल० ए०
राजा जौनपुर

卐

पूज्य महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी के देहावसान पर हार्दिक दुःख हुआ। उनके निधन से हिन्दू समाज का एक कर्मठ नेता और सेवक उठ गया। उन जैसे त्यागी, तपस्वी, निष्ठावान और हिन्दुत्वनिष्ठ व्यक्ति दुलर्भ हैं। भगवान उनको सद्गति दें। मेरी समवेदना स्वीकार करें।

हरदयाल देवगुण
संसद सदस्य

卐

श्री महन्त जी की मृत्यु के समाचार से सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र शोकाकुल है। यद्यपि उनका पार्थिव शरीर हमारे मध्य नहीं है, किन्तु वे अमर हैं और उनका नाम यावत् चन्द्रदिवाकरौ अमर रहेगा।

अनन्तराम शर्मा
मंत्री
हिन्दू महासभा, मुरादाबाद (चन्दौसी)

पूज्य महन्त जी के निधन से हार्दिक कष्ट हुआ। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति और आपको धैर्य प्रदान करें।

बोधनारायण प्रसाद
एडवोकेट
अध्यक्ष, बिहार प्रान्तीय हिन्दू महासभा
पटना

卐

श्री दिग्विजयनाथ जी के देहावसान के दुःखद समाचार से हम सभी लोग अति व्यथित हैं। समाज के इस विपरीत काल में प्रभु आप सब को धैर्य धारण करने की शक्ति तथा महन्त जी की आत्मा को शान्ति प्रदान करें। यही प्रार्थना है।

कृष्ण बल्लभ प्रसाद नारायण सिंह
प्रान्त संघ चालक
राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, बिहार

卐

पूजनीय महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी के दुःखद देहान्त से हिन्दू राष्ट्र, हिन्दू समाज तथा हिन्दू महासभा की अपरिमित क्षति हुई है। हिन्दू महासभा की विनम्र श्रद्धान्जलि।

विक्रम नारायण सावरकर
प्रधान मंत्री, अखिल भारत हिन्दू महासभा
नागपुर

卐

आज प्रातः यह दुःखद समाचार सुन कर कि पूज्यपाद महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज का देहावसान हो गया है, स्तब्ध रह गया। मुझे विश्वास ही नहीं हुआ, किन्तु सत्य तो सत्य ही है और एक दिन इस संसार से सबको जाना ही होगा। अपनी करनी ऐसी होनी चाहिए कि हम हँसे जग रोवे। पूज्यपाद श्री महन्त जी हिन्दूत्व के प्रतीक थे। उनके निधन से हिन्दू जगत् की अपार क्षति हुई है, इसमें कोई सन्देह नहीं। मेरी हार्दिक समवेदना एवं योगिराज के चरणों में पावन श्रद्धान्जलि स्वीकार करें।

पं० मुरलीधर रंकबन्धु शास्त्री
मंत्री, अखिल भारत हिन्दू महासभा
दिल्ली

श्रद्धांजलिया

शिक्षा के क्षेत्र में महामना पं० मदन मोहन मालवीय ने जो अनुपम कार्य किया है, वही कार्य युग–पुरूष पूज्य श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज ने भी किया है। इस सम्बन्ध में समस्त देश उनका ऋणी है।

रामकिशोर तिवारी
मंत्री
राष्ट्रीय शिक्षा प्रसार समिति
उत्तर प्रदेश

卐

श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी सदैव ही देश एवं हिन्दुओं के हितों की रक्षा हेतु जागरूक एवं प्रयत्नशील रहते थे। उन्होंने भारतमाता के सच्चे सपूत होने का परिचय अपने जीवनवृत द्वारा दिया है।

कुँवर रमणसिंह सक्सेना
समपादक
राष्ट्रीय समाचार समिति
गोंडा

卐

अपने बिहार प्रान्त के "आर्यावर्त" हिन्दी दैनिक अखबार में दिनांक २६–६–६६ के अंक में बड़े बाबा के देहान्त की खबर सुनकर दिल को एक जबरदस्त धक्का सा लगा। अब तो ऐसा लग रहा है कि हम सभी हिन्दू अनाथ हो गये। आज के युग में विश्व के सभी धर्मों की अपेक्षा हिन्दू धर्म पर ही संकट के भयंकर बादल उमड़ रहे हैं, ऐसे विकट समय में बाबा जी का देहान्त हो जाना निस्सन्देह हमारे दुर्भाग्य की निशानी है। इस दुःखद समाचार को सुनकर मैंने अपने साथ बहुतों को, जिन्हें हिन्दुत्व से प्रेम है, फूट फूट कर रोते हुए देखा है। अपने रिश्तेदारों द्वारा बड़े बाबा की जो कहानियाँ मैंने बचपन से सुनी है, अब तो उन कहानियों के एक एक शब्द मेरे कानों से टकरा रहे हैं और हृदतन्त्री के तार तार रो रहे हैं। आज क्षत्रिय जाति के गौरव रक्षक एवं हिन्दू धर्म को प्रगति के पथ पर अग्रसारित करने वाला प्रकाशस्तम्भ लुप्त हो गया। मनुष्य तो मनुष्य समस्त भारत की गोमातायें तक आँखों में आँसू लिये उस महान तेजपुञ्ज को अनन्त में एकाकार होते हुए देख रही हैं। छोटे बाबा, इन करोड़ो व्यथित हृदयों को आपको सान्तवना देनी है। वीणा के टूटे हुए तारों को जोड़ना है तथा अपने आप को बड़े बाबा के रूप के प्रतिरूप में हिन्दूओं के समक्ष प्रगट करना है। तभी इन करोड़ो आँखों के आँसू सूखेंगे तथा यही बाबा के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धान्जलि होगी। भगवान हम सबों को इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

अखण्डेश्वर सिंह "बच्चन" मंत्री
अ० भा० श्रात्रिय महासभा, सीवान (सारण)

भूतपूर्व महन्त एवं संसद सदस्य श्री दिग्विजयनाथ जी के आकस्मिक निधन का दुःखद समाचार पढ़कर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया और मुझे अपने ही पर विश्वास नहीं हो रहा था कि मैं किस ऊहापोह में डूब उतरा रहा हूँ, किन्तु विधि का विधान बड़ा विचित्र होता है। अभी कुछ ही दिन पूर्व मैंने स्व० पूज्य महन्त जी को एक पत्र लिखा था, जिसमें दिनांक १०–११ सितम्बर सन १६६६ ई० की अपनी वार्ता का उल्लेख करते हुए उनकी दीर्घायु के लिए मंगल–कामना भी की थी। किन्तु मैं नहीं जानता था, शायद कोई भी काल की इस गति को नहीं जानता था कि यह क्रूर काल असमय में ही पूज्य महन्त जी को सदा के लिए निगल जायेगा और हमलोग किंकर्तव्यविमूढ़ की भाँति उनसे सदा के लिए वंचित हो जायेंगे।

पूज्य महन्त जी स्वतंत्रता संग्राम तथा भारतीय समाज के एक दिग्गज महारथी थे। वे निष्काम कर्मयोगी के रूप में जीवन पर्यन्त गरीबों की सेवा में रत रहे और अन्तिम समय तक उनके मन और हृदय में गरीबों तथा असहायों के प्रति करूणा एवं दया का अपार सागर लहराता रहा। उनकी चितवृत्तियाँ सदा निर्मल और पवित्र रहीं। उनका जीवन एक पारदर्शी की भाँति समाज को सदा प्रतिविम्बित करता रहा। हिन्दू समाज तथा हिन्दूधर्म के तो वे एक अमूल्य रत्न थे, जो हिन्दू समाज के इतिहास में सूर्य की भाँति सदा जगमगाते रहेंगे और भारत तथा भारत के बाहर से भी आने वाली नई पीढ़ियाँ पूज्य स्व० महन्त जी के आदर्शों, सिद्धान्तों एवं जीवन–दर्शन से सदा अनुप्राणित होती रहेंगी।

महन्त जी के ब्रह्मलीन हो जाने से अपूरणीय क्षति हुई है, विशेषकर हिन्दू जन–मानस के समक्ष तो गहरा अन्धकार छा गया है। मैं तो व्यक्तिगत रूप से ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी सभी चिरसंचित अभिलाषायें तथा महत्वाकांक्षायें उन्हीं के साथ सदा के लिए विलीन हो गई। कारण कि श्रद्धेय महंत जी का जो वात्सल्य प्रेम और स्नेह मुझे मिला था, वह अन्यत्र दुलर्भ है। उनके इस पवित्र प्रेम और पवित्र स्नेह को हृदयंगम कर मैं उनकी आत्मा की चिर शांति के लिए परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ और उनके प्रति अपने हृदय से श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ।

भगवान से यह प्रार्थना है कि वे ब्रह्मलीन महन्त जी की आत्मा को चिर शांति प्रदान करें और उनके प्रिय शिष्यों एवं शुभचिन्तकों को शक्ति एवं धैर्य प्रदान करें, जिससे वे इस महान् दुःख को सहन कर सकें।

हरिशचन्द्र त्रिपाठी
यूनिट इंजार्च
लेबर कैम्प, मडुआडीह, वाराणसी

श्रद्धांजलियाँ

शीश, बना सीसोदया, विजय, दिग्विजयमान।
हिन्दू–प्राण महन्त थे, हिन्दी–ध्वजा–समान

जयगोपाल मिश्र

卐

महन्त जी के निधन से हिन्दू महासभा की अपूरणीय क्षति हुई है। उनके कुशल नेतृत्व की देश को भारी आवश्यकता थी।

प्रो० राम सिंह
अध्यक्ष, दिल्ली प्रदेश हिन्दूमहासभा

卐

वे धर्माचार्य के साथ–साथ एक संघर्षशील नेता भी थे तथा वीर सावरकर व भाई परमानन्द के साथ उन्होंने हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिए भारी संघर्ष किया।

भक्त रामशरण दास (पिलखुआ)
प्रसिद्ध सनातनधर्मी नेता

卐

श्री महन्त जी स्वतंत्रता सेनानी, निर्भीक योद्धा और समाजसेवी होने के नाते राष्ट्र की अमर विभूति थे। आप वेदान्त दर्शन के महान् ज्ञाता थे।

पं० ब्रजनारायण ब्रजेश
उपाध्यक्ष, अ० भा० हिन्दूमहासभा

卐

वह हिन्दूमहासभा के वरिष्ट नेता व भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। मुझे और जनता को उनके निधन पर गहरा दुःख है।

श्री विजय कुमार मलहोत्रा
मुख्य कार्यकारी पार्षद (दिल्ली)

卐

महन्त जी ने हिन्दू राष्ट्र में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने में भारी योगदान किया है। वे वीर सावरकर के पथ पर अग्रसर होकर हिन्दू संगठन के कार्य में संलग्न थे।

वि० स० विनोद
सम्पादक, दैनिक प्रभात, मेरठ

महन्त जी की मृत्यु से अत्यधिक दुःख हुआ। मेरी हार्दिक समवेदना स्वीकार करें।

श्री विश्वनाथ दास
भू० पू० राज्यपाल, उ० प्र०

卐

यह क्षति गोरखपुर की ही नहीं, वरन् सारे प्रदेश तथा देश की है।

प्रोफेसर मदन मोहन
भूतपूर्व उपकुलपति
गोरखपुर विश्वविद्यालय

卐

हम लोगों के बीच से बहुत बड़ी विभूति उठ गई और समाज की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति कठिन है।

कुँवर देवेन्द्रप्रताप सिंह
उपसभापति, उ० प्र० विधान परिषद्

卐

उनके निधन से हिन्दू समाज ने अपने एक महान समर्थक को खो दिया है। वे हिन्दू–राष्ट्र–द्रष्टा स्वातन्त्रय वीर सावरकर के अनुयायी थे।

वी० वी गोगटे
भूतपूर्व मेयर, पूना नगर निगम

卐

महन्त जी के निधन से कष्ट हुआ।

चन्द्रभानु गुप्त
भुतपूर्व मुख्य मंत्री, उ० प्र०

महन्त जी के निधन से हिन्दूराष्ट्रवाद के एक निर्भीक वक्ता का अन्त हो गया है।

कोमल प्रसाद एडवोकेट
अध्यक्ष, म० प्र० हिन्दूमहासभा

卐

महन्त जी आजीवन हिन्दू, हिन्दी और हिन्दूस्तान के रक्षार्थ संघर्षरत रहे। उनके निधन से एक परम गो–भक्त नेता से देश वंचित हो गया।

प्रेमचन्द गुप्त
मंत्री, सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति

श्रद्धांजलियाँ

महन्त जी के निधन से हिन्दू जाति को बड़ा आघात पहुँचा है। उनकी महान प्रतिभा और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में की गई सेवाओं के कारण उनका हिन्दू समाज में ऐसा स्थान बन गया था, जिसकी पूर्ति सम्भव ही नहीं।

प्रो० आनन्द प्रकाश
मंत्री, विश्व हिन्दू परिषद, वाराणसी

卐

उनके जैसा गौमाता के लिए लड़ने वाला, जीवन–पर्यन्त हिन्दी, हिन्दू हिन्दुस्तान के हित में संघर्ष करते हुए हिन्दू महासभा का ध्वज फहराने वाला कोई नेता नहीं था।

स्वामी रामचन्द्र 'वीर'
संस्थापक, आर्दश हिन्दू संघ

卐

हिन्दुत्व और हिन्दू महासभा का मुख्य आधार स्तम्भ समाप्त हो गया। उनके प्रेरणापुञ्ज व्यक्तित्व से हम लोग सदैव उत्साह एवं मार्गदर्शन प्राप्त करते थे।

अवध किशोर, एडवोकेट
मंत्री, उत्तर प्रदेश हिन्दू महासभा

卐

वे निर्भीक, सच्चे, हिन्दुत्व के प्रेरक, रक्षक तथा विद्वान व्यक्ति थे। उनके निधन से देश की महान् क्षति हुई है।

भैरव दत्त धूलिया
सम्पादक (कर्मभूमि), गढ़वाल

卐

वे संसद में बहुत अच्छा काम कर रहे थे और हर शुभ कार्य में रस लेते थे। देश को ऐसे ही कर्मठ, त्यागी, निर्भीक तथा निर्लोभ विद्वान् साधुओं की आवश्यकता हे। ऐसे ही साधुजन से साधुओं का सम्मान इस काल में भी देश में बचा हुआ है।

मृत्युज्य प्रसाद
सदस्य, लोकसभा

卐

लोकसभा में अकेले खड़े होकर अपनी बात को कहने का साहस उनमें था और इसलिए वे हम सब के प्यारे थे। महन्त जी के पथ–प्रदर्शन की इस समय अत्यन्त आवश्यकता थी। महन्त जी का आकस्मिक निधन देश की एक बड़ क्षति है, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में आसानी से न हो सकेगी।

नारायण स्वरूप शर्मा
सदस्य, लोकसभा

'उनके उठ जाने से हिन्दी भाषा और साहित्यकी अपूरणीय क्षति हुई।'

नागरी प्रचारिणी सभा

卐

"मुझे मृत्यु का समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ।"

राम सुभग सिंह
रेल मन्त्री, भारत

卐

" इस क्षति की पूर्ति असम्भव है।"

रामनारायण त्रिपाठी
भूतपूर्व उपाध्यक्ष, उ० प्र० विधान सभा

卐

"निधन के समाचार से अत्यधिक कष्ट हुआ, राष्ट्र की अपूरणीय क्षति।"

टी० एन० सिंह
संसद सदस्य

卐

महाराजस्य ब्रह्मीभावः

नाथोत्तरे दिगिवजये मनस्विनी।
धर्मः शौर्य समुत्साहः सर्वे मग्ना इवार्णवे।।
भारतस्यास्य कृत्स्नस्य पद्मसंघनि भे जनः।
शुचं वहति हिन्दूनामस्तं याते दिवाकरे।।
नेता हिन्दूसभायाः मनसि सुविमलः कर्मयोगी महात्मा,
वेत्ता सद्राजनितेः सहृदयसुसखः सज्जनानां सहायः।।
छेत्ता सर्वच्छलानां यवनजनमनः स्थानसंगोपितानाम्,
वक्ता संसत्स्वकस्मादहह विधिवशात्प्राप तद्धामविष्णोः।।

महाराज (मनस्वी ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ) के ब्रह्मीभूत हो जाने पर धर्मशूरता एवं उत्साह ये सभी गुण मानो समुद्र-मग्न हो गए।

हिन्दू-सूर्य के अस्त हो जाने पर समस्त भारतवासी पद्मसमूह के समान शोकभार से व्यथित हैं।

महाराज, हिन्दू सभा के नेता, विमल मन, कर्मयोगी और महात्मा थे। सत् राजनीति के वेत्ता सहृदयों के परम मित्र और सज्जनों के सहायक थे। दुष्ट लोगों के मन में गुप्त छल कपट के छेदन करने वाले थे। संसद के सफल वक्ता थे। अकस्मात् विधि के विधान से आपने परम धाम प्राप्त किया।

आचार्य डॉ० लक्ष्मी नारायण

श्रद्धांजलियाँ

हिन्दू संस्कृति के पुजारी, हिन्दुत्व के मूर्तिमान स्वरूप पूज्य श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज, आधुनिक युग के महाराणा प्रताप थे। उनके नाम और यश से हिन्दू समाज प्रेरणा ग्रहण करता था। उनमें ब्रह्मबल और क्षात्रबल का अद्‌भुत समन्वय था। उनकी स्मृतिमें श्रद्धा सुमन अर्पित करना प्रत्येक हिन्दु का कर्तव्य है। श्री पंथ जूना अखाड़ा और नागा सम्प्रदाय की ओर से मैं नाथ शिरोमणि योगिराज श्री महन्त दिग्विजयनाथ महाराज को श्रदांजलि अर्पित करता हूँ।

स्वामी नारायण गिरि
क्षिप्रातट, पर्णाकुट वन
श्री पंथ जुना अखाड़ा

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी, वीर सावरकर, महामना मालवीय और देवतास्वरूप भाई परमानन्द के सदृश, अहर्निश हिन्दूराष्ट्र के लिए संघर्ष करनेवाले अग्रणी नेता थे। अवसरवादी और धर्म विरोधी राजनीति से उन्हें घृणा थी। उनकी विलक्षण सर्वतोमुखी प्रतिभा को देखकर दंग रह जाना पड़ता था। जब भी वे लखनऊ पधारते थे, मुझे उनका दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होता था। उनकी पावन स्मृति में श्रद्धांजलि सुमन स्वीकार करें।

सरदार त्रिलोचन सिंह
८ शिवाजी पार्क, लखनऊ

卐

परम आदरणीय महन्त दिग्विजयनाथ जी के निधन का दुःखद समाचार पढ़कर ऐसा लगा कि हमलोग अनाथ हो गये। उनकी कृपा से इस जीवन के संर्घष में बहुत साहस मिलता था। मैं इस महान् संकट की बेला में अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करता हूँ।

डा० मोहन सिंह विशेन
इनकम टैक्स आफिसर, कानपुर

卐

श्री श्री १००८ महन्त दिग्विजयनाथ जी के आकस्मिक देहावसान पर यह समिति शोक प्रकट करती है और परमपिता परमेश्वर से अपने पूज्य संरक्षक की दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करती है।

रेवती रमण दास
अध्यक्ष, रामलीला समिति गोरखपुर

जनपद प्राथमिक शिक्षाक संघ, गोरखपुर की कार्य समिति के समस्त सदस्य एवं क्षेत्रीय मंत्री आज की अपनी बैठक में विश्व हिन्दू धर्म सम्मेलन के संस्थापक माननीय श्री बाबा दिग्विजयनाथजी महाराज के आकस्मिक निधन पर महान् शोक प्रकट करते हैं और अनुभव करते हैं कि निकट भविष्य में ऐसे महान् वक्ता और त्यागी पुरूष की क्षति की पूर्ति असम्भव है। भगवान से हम सभी लोग प्रार्थना करते हैं कि कि वह दिवंगत आत्मा का शान्ति प्रदान करते हुए आपके सम्प्रदाय को धैर्य प्रदान करे। आपके दुःख से हम सभी दुखी हैं।

छेदी राम त्रिपाठी

प्रधान मंत्री, जनपद प्राव शिक्षक संघ, गोरखपुर

卐

महन्त जी के निधन का बड़ा क्षोभ हुआ। वह मेरे साथ पूर्वोत्तर रेलवे की जोनल सलाहकार समिति के सदस्य थे और मेरे ऊपर बड़ी कृपा करते थे। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे।

श्रीराम भारती

संगठन मंत्री, अखिल भारत सेवा–समिति, इलाहाबाद

卐

माननीय महन्त जी के निधन से मेरे मस्तिष्क को सर्वाधिक कष्ट हुआ है। महन्त जी न केवल गोरखपुर मण्डल व उ० प्र० के बल्कि राष्ट्र के इने–गिने सच्चे राष्ट्रभक्तों व समाजसेवियों में से थे। वे हिन्दू धर्म और हिन्दूत्व के रक्षक व पोषक थे। उनके निधन से राष्ट्र की अत्यधिक क्षति हुई है।

वे गोरखपुर मण्डल के शिरमौर्य थे। ईश्वर उनकी दिवंगत आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करे, यही मेरी उससे प्रार्थना है। ईश्वर महन्त जी के शिष्यों, अनुयायियों और सहयोगियों को पूर्ण सहयोग व बल प्रदान करे, यही हार्दिक अभिलाषा है।

मोतीलाल प्रसाद एडवोकेट, हाई कोर्ट

अध्यक्ष, निषाद महासभा उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

卐

सिन्ध प्रान्तीय हिन्दू महासभा अपनी विशेष बैठक में आज दिनांक ५–१०–६६ को ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ महाराज के आकस्मिक निधन पर शोक प्रस्ताव करते हुए उनकी शान्ति की प्रार्थना करती है।

पंजू राम वर्मा

अध्यक्ष, सिन्ध प्रान्तीय हिन्दू सभा

स्वर्गीय श्री महन्त दिग्विजयनाथ महाराज जी देश तथा राष्ट्र के पूर्ण हितैषी थे। उनके पंच–भौतिक शरीर के न रहने से न केवल हिन्दू वर्ग को दुःख हुआ है, बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज को क्षति उठानी पड़ी है। हम सपरिवार पूज्य महन्त जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भगवान से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को शांति मिले।

विश्वनाथ प्रसाद केशरवानी
कानपुर

कान्ता प्रेस के प्रबन्धक एवं कर्मचारियों को परमपूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी के आकस्मिक निधन के समाचार से हार्दिक दुख हुआ। पूज्य महन्त जी ने हिन्दू राष्ट्र एवं हिन्दू जाति की उन्नति के लिए आजीवन प्रयास किया। उनकी मृत्यु से राष्ट्र की अपूरणीय क्षति हुई है। हम उनकी आत्मा की शाश्वत शांति के लिए जगन्नियन्ता से प्रार्थना करते हैं।

कान्ता प्रेस, गोरखपुर

परमपूज्य चिरस्मरणीय महंत जी के निधन से हमारा महाविद्यालय परिवार इतना शोक संतप्त है कि हम अपने भावों को सूचारू रूप मे व्यक्त भी नहीं कर सकते। दिवंगत महंत जी हिन्दुत्व के कर्णधार थे। धर्मनिरपेक्षता के नाम पर देश से धर्म को लुप्त करने के चतुर्दिक प्रयासों को विफल करके हिन्दूधर्म ओर हिन्दू जाति को अपने अस्तित्व के प्रति सजग करने का कार्य वह जीवन भर करते रहे। उन्हीं का व्यक्तित्व था कि हिन्दू जाति अपने को भुला न सकी और अनेक प्रहार सहती हुई भी सबकी ललकारों का उत्तर देती रही। इस कार्य में महंत जी शिवाजी और महाकवि भूषण की महान् परम्परा की अप्रतिम कड़ी थे।

महान शिक्षा शास्त्री, धर्मनीतिज्ञ एवं सफल राजनीतिज्ञ के रूप में आप सदैव स्मरण किये जायेंगे। अनेक महाविद्यालयों के अतिरिक्त गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना में महंत जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विद्वानों के वे आश्रयस्तम्भ थे।

महंत दिग्विजयनाथ के गुणों की गणना सहज ही करना सम्भव नहीं है। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि उनकी दिवंगत आत्मा को चिरशांति एवं समस्त हिन्दू जाति को इस अपूरणीय क्षति को सहन करने का धैर्य प्रदान करें।

महाविद्यालय परिवार
बाबा राघवदास डिग्री कालेज, देवरिया

स्वर्गीय मंहत दिग्विजय जी, जो इस विद्यालय के संस्थापक थे, इस महानगर के ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष के एक उच्च कोटि के नेता थे। आप हिन्दू धर्मावलम्बियों के हृदय–सम्राट् थे। आपने सामाजिक क्षेत्र में अपूर्व तथा अमर रहने वाली अनेक कीर्तियों की स्थपना की। विद्या के क्षेत्र में भी आपका अद्वितीय स्थान है। महाराणा प्रताप के नाम पर संस्थापित अनेक संस्थायें आपकी कीर्ति की द्योतक हैं। आपके आकस्मिक देहावसान से समस्त भारत की तथा विशेष रूप से इस नगर की एक अपूरणीय क्षति हुई है। इस अवसर पर हम लोग परमपिता से प्रार्थना करते हैं कि स्वर्गीय महंत जी की आत्मा को परम शांति प्रदान करें तथा गोरखनाथ मठ से सम्बंधित सभी व्यक्तियों को इस अपूर्व क्षति को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करें।

विद्यार्थी एवं कर्मचारी

महाराणा प्रताप पालीटेकनीक, गोरखपुर

卐

मदन मोहन मालवीय इन्जीनियरिंग कालेज के समस्त छात्र एवं कर्मचारी, गोरखनाथ मन्दिर के महंत श्री दिग्विजयनाथ जी के निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करते हैं तथा ईश्वर से प्रार्थना करते हें कि दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

मदन मोहन मालवीय इञ्जीनियरिंगि कालेज, गोरखपुर

卐

महाराणा प्रताप इण्टर कालेज और दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज के अध्यापकों, विद्यार्थियों एवं कर्मचारियों की यह संयुक्त सभा विद्यालय के संस्थापक परम पूज्य महंत दिग्विजयनाथ के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक व्यक्त करती है ओर परम पिता परमेश्वर से दिवंगत आत्मा की शाति के लिए प्रार्थना करती है

विद्यालय परिवार

दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज, गोरखपुर

卐

दु० चु० सा० ख० डिग्री कालेज, मऊनाथ (आजमगढ़) के छात्रों तथा अध्यापकों की यह सभा गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्थापक–सदस्य तथा गोरखपंथ के अनन्य साधक और गोरखनाथ मन्दिर के वर्तमान स्वरूप के अमर शिल्पी महंत दिग्विजयनाथ के आकस्मिक निधन पर गहरा शोक प्रकट करती है तथा परम् पिता परमेश्वर से प्रार्थना करती है कि उनके कोटि–कोटि भक्तों को इस अपूरणीय क्षति को सहन करने की शक्ति दें तथा स्वर्गीय आत्मा को शांति दें।

प्राचार्य

दु० चु० सा० ख० डिग्री कालेज, मऊनाथ भंजन

श्रद्धांजलियाँ

महात्मा गाँधी डिग्री कालेज, गोरखपुर के समस्त छात्र तथा अध्यापक गोरक्षनाथ मन्दिर के श्रेष्ठ महन्त, संसद सदस्य तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय कार्यकारिणी समिति के वरिष्ठ सदस्य श्री दिग्विजयनाथ के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करते हैं तथा ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

प्रधानाचार्य

महात्मा गांधी डिग्री कालेज, गोरखपुर

卐

देवरिया नगरपालिका परिषद् स्वर्गीय श्री महन्त दिग्विजयनाथ के निधन पर अपना हार्दिक शोक प्रकट करती है। यह सभा संतप्त श्रद्धालुओं के साथ अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करती है तथा सर्वशक्तिमान परमात्मा से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके शोक संतप्त शिष्यगण एवं उत्तराधिकारी को महान् शोक सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

भागवत किशोर

नगर पालिका, देवरिया

卐

कृष्णनगर (नेपाल) के नागरिकों की यह सभा हिन्दू संस्कृति के प्रतीक, नेपाल एवं भारत के पुनीत राष्ट्रीय संगठन के अद्वितीय नेता, अखिल भारत हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष एवं उभय राष्ट्रों के जन-प्रिय नेता स्वर्गीय महन्त दिग्विजयनाथ जी के आकस्मिक देहावसान पर शोक-श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आशुतोष भगवान पशुपतिनाथ जी से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत पुण्यात्मा को स्वर्ग में शान्ति एवं शोक-संतप्त भक्तजनों को धैर्य प्रदान करते हुए स्वर्गीय महन्त जी के प्रशस्त मार्ग पर चलकर उनके हिन्दू राष्ट्र के आदर्श-स्वप्न को साकार करने हेतु दृढ़ संकल्प की प्रेरणा प्रदान करे।

शिवनाथ प्रसाद गुप्त

सचिव, श्री ५ महेन्द्र रत्न पुस्तकालय कृष्णानगर (कपिलवस्तु) नेपाल

卐

श्री गोरक्षनाथ योगाश्रम के महन्त परमपूज्य बाबा दिग्विजयनाथ जी के असामयिक एवं आकस्मिक निधन पर महासंघ शोक प्रकट करता है तथा उनकी आत्मा की चिरशान्ति हेतु भगवान से प्रार्थना करता है। उनकी मृत्यु से समाज की जो अपूरणीय क्षति हुई है, उससे समस्त जन समुदाय दुःखी है। भगवान दुःखी हृदयों को शान्ति दे।

हृदय नारायण धर दूबे

महामंत्री

उ० प्र० वि० वि० कर्मचारी महासंघ, गोरखपुर

महात्मा गांधी इण्टर कालेज, गोरखपुर की अध्यापक समिमि, परम पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

अध्यक्ष, अध्यापक समिति
महात्मा गांधी इण्टर कालेज, गोरखपुर

卐

यह सभा श्री महन्त दिग्विजयनाथ के निधन पर शोक प्रकट करती है ओर प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को शिन्ति मिले।
सभा यह भी पारित करती है कि उनके अनुयायियों को ईश्वर इस शोक को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

रामबहादुर सिंह
मंत्री, बार एसोशिएशन, बाराबंकी

卐

पावनस्मृति महन्त दिग्विजयनाथ प्रधान गोरक्षपीठ गोरखपुर के सहसा शरीर त्याग का दुखद समाचार पाकर बाहरसिंह श्रीनेत इण्टर कालेज इन्दुपुर (देवरिया) की प्रबन्ध समिति के सदस्य, शिक्षक, छात्र तथा कर्मचारी शोक विभोर हैं। वे अपनी हार्दिक एवं विनीत श्रद्धांजलियाँ दिवंगत महन्त जी को समर्पित करते हैं और नाथ सम्प्रदाय के उनके शिष्य एवं भक्तों के साथ हार्दिक सहानुभूति, समवेदना एवं शोक का अनुभव करते हैं और गुरू गोरखनाथ से समाधिस्थ महात्मा की चिरशान्ति की कल्याण कामना करते हैं तथा ब्रह्मपदलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी की अभ्यर्थना करते हैं।

महादेव सिंह
अध्यक्ष, बाहर सिंह श्रीनेत इण्टर कालेज, इन्दुपुर, देवरिया

卐

हम बाजार जीयनपुर तथा निकटवर्ती ग्रामों की जनता अखिल भारत हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष, हिन्दू–हिन्दी के प्राण, संसद सदस्य श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज के आकस्मिक निधन से अत्यधिक दुःखी हैं। आदरणीय स्व० महन्त जी महाराज ज्ञानी–विरागी और महाराणा प्रताप की भांति अभिमानी तथा क्षत्रपति शिवाजी के समान बलिदानी थे। श्री महन्त जी के आकस्मिक निधन से हिन्दू समाज में जो रिक्तता आ गई है, उससे पूरे हिन्दू समाज को कष्ट होना स्वाभाविक है।

यह सभा दिवंगत आत्मा की शान्ति तथा शोक सन्तप्त नाथ परिवार एवं हिन्दू समाज को कष्टों को सहन करने की शक्ति प्रदान करने हेतु भगवान शंकर से प्रार्थना करती है।

डॉ० शंकर भूषण शास्त्री
प्रबन्धक,
प्राचीन शिव मन्दिर एवं धर्मशाला समिति, जीयनपुर बाजार, आजमगढ़

श्रद्धांजलियाँ

इस विद्यालय के समस्त अध्यापक एवं विद्यार्थी परम आदरणीय महन्त दिग्विजयनाथ के वैकुन्ठ–वास के समाचार से अत्यन्त शोकाकुल है। हम इस शोक में श्रद्वेय महन्त अवेद्यनाथ तथा गोरक्षनाथ–मन्दिर–परिवार के साथ हैं।

स्वर्गीय महन्त जी का अभाव समाज के विविध क्षेत्रों में सदैव खटकता रहेगा। उनके निधन से शिक्षा–जगत की जो क्षति हुई है, वह अपूरणीय है। उनके जीवन की गाथायें कालान्तर में जन श्रुतियों का स्वरूप ग्रहण कर लेंगी।

अन्त में परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें उनके पद–चिन्हों पर चलने का बल दे।

अध्यापक एवं विद्यार्थी

शिवपति डिग्री कालेज, शोहरतगढ़, जिला बस्ती

卐

पूज्य महंत जी के निधन पर हार्दिक समवेदना।

शिव प्रसाद सेइ

शाहजहाँपुर

卐

श्री महंत जी के दिवंगत होने के समाचार से गहरा दुःख हुआ। मेरी समवेदना स्वीकार करें।

जगदीश गांधी

श्री महंत जी के असामयिक निधन से गहरा धक्का लगा। राष्ट्र की महान् क्षति है और हम लोगों की व्यक्तिगत हानि हुई है। उनकी आत्मा सदैव हमारा मार्ग–दर्शन करती रहे।

त्रिलोकचन्द सेठ, कृष्णचन्द सेठ, निर्भयचन्द सेठ

बरेली

卐

सम्मानीय महंत जी के स्वर्गवासी होने के समाचार से, गहरा दुःख हुआ। हार्दिक समवेदना स्वीकार करें।

सूरज तथा सीता नन्दा

卐

दुःखव्यक्त करने हेतु शब्द नहीं हैं। महंत जी का निधन हिन्दू जगत् की अपूरणीय क्षति है।

डा० कमला दत्त

महान् क्षति, मेरी हार्दिक एवं प्रामाणिक समवेदना स्वीकार करें।

मिथिलेश्वर

卐

अभी अभी पूज्य महंत जी के ब्रह्मलीन होने का समाचार सुना। हार्दिक दुःख हुआ।

भोलेन्द्र सिंह

कुल सचिव, गोरखपुर विश्वविद्यालय

卐

श्री दिग्विजयनाथ महाराज जी का निधन अत्यन्त ही दुःखदायक सिद्ध हुआ। मेरी हार्दिक सहानुभूति एवं समवेदना स्वीकार करें।

रामलाल

卐

श्री महंत जी के निधन के समाचार से मर्माहत हो गया। उनकी आत्मा चिरशांति प्राप्त करे।

शिवाजी सिंह

महंत जी के दिवंगत होने के समाचार से अत्यन्त दुःख हुआ। दिवंगत आत्मा को परमपिता परमात्मा शांति प्रदान करें। उनके भक्तों को शक्ति दें कि वे इस बज्रघात को सहन कर सकें।

हरीराम कमानी

卐

महंत जी की आकस्मिक मृत्यु के समाचार से आश्चर्य चकित रह गया। हार्दिक समवेदना स्वीकार करें।

पी० डी० मसकरा

卐

पूज्य महन्त जी नहीं रहे, यह कल्पना भी कष्टप्रद है। कृपया हार्दिक सहानुभूति स्वीकार करें।

रामनरेश धर दूबे

पूज्य गुरूजी के दुःखद निधन पर गहरी समवेदना।

राजा जगम्मनपुर

श्रद्धांजलियाँ

राजस्थान के नाथ–समाज की हार्दिक शोक समवेदना। पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी का आकस्मिक निधन, योगी समाज की महान् क्षति है।

कन्हैयानाथ (जयपुर)
मंत्री, योग प्रचारिणी सभा

卐

महन्त जी का देहावसान हम सबकी व्यक्तिगत महान् क्षति है। भगवान हमें इस महान् दुःख को सहन करने की शक्ति दें।

डा० महादेव
संसद सदस्य

卐

सम्माननीय महन्त जी के स्वर्गारोहण के समाचार से महाराष्ट्र और विशेषकर पूना में गहरा शोक छा गया। उनके निधन से हिन्दुत्व का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र अस्त हो गया। कृपया इस अवसर पर मेरी हार्दिक समवेदना स्वीकार करें।

वी० रा० पाटिल विधायक
शोलापुर

卐

गहरी समवेदना, हिन्दु महासभा तथा हिन्दू जाति की महान् क्षति।

नित्य नारायण बनर्जी
अध्यक्ष, अखिल भारत हिन्दू महासभा

卐

हार्दिक समवेदना,

न्यायमूर्ति हरिश्चन्द्र पति त्रिपाठी

महन्त जी की मृत्यु की सूचना पाकर गहरा आघात लगा। कृपया मेरी शोक समवेदना स्वीकार करें।

निहालसिंह मजीठिया

卐

महन्त जी के गोलोकवासी होने के समाचार से महान दुःख हुआ। सम्पूर्ण बंगाल प्रदेश और विशेषकर कलकत्तावासियों ने इस समाचार को सुनते ही अपना कारोबार बंद कर दिया। हिन्दुत्व की दीपशिखा बुझ गई।

मनोज सर्वाधिकारी
मंत्री, अखिल भारत हिन्दू महासभा (पूर्वाञ्चल)
बहू बाजार, कलकत्ता

पूज्यपाद श्री महन्त दिग्विजयनाथजी महाराज के निधन से हिन्दू जगत् की अवर्णनीय क्षति हुई है। वे हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दूस्तान के मूर्तिमान स्वरूप थे। अखण्ड भारत एवं हिन्दू राष्ट्रवाद के वे मंत्रद्रष्टा थे। उनका व्यक्तित्व सर्वतोमुखी था। उन जैसा निर्भिक निस्पृह एवं वीतराग त्यागी महात्मा, इतिहास में दुर्लभ हैं। उनका नाम इस संससार में यावत् चन्द्रदिवाकरौ अमर रहेगा।

रमेशचन्द्र तिवारी
संचालक, बाबा परमेश्वर दास प्रतिष्ठान
रूपपुर खदरा, लखनऊ

卐

परम पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के आकस्मिक निधन पर केमिस्ट तथा ड्रगिस्ट संघ गोरखपुर के सदस्य हार्दिक दुःख प्रकट करते हैं। गरीबों तथा दुःखियों की स्वार्थ रहित सेवाओं, तथा शिक्षा और सामाजिक क्षेत्रों में किए गए महन्त जी के कार्यों को गोरखपुर तथा अन्य स्थानों की जनता भली–भांति जानती है। पूज्य महन्तजी के निधन से सबको गहरा धक्का लगा है। जगन्नियंता से प्रार्थना है कि उनकी पवित्र आत्मा को शाश्वतशांति प्रदान करे।

पी० के० लाहिड़ी
अध्यक्ष, केमिस्ट तथा ड्रगिस्ट संघ, गोरखपुर

卐

श्री महन्त जी की आकस्मिक मृत्यु के समाचार से गहरा दुःख हुआ। परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत महान् आत्मा को शांति प्रदान करें।

लाल
मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश

卐

श्री महन्त दिग्विजयनाथ के निधन से महान् दुःख हुआ। कृपया मेरी हार्दिक समवेदना स्वीकार करें।

भीम बहादुर पाण्डेय
राजदूत, नेपाल

卐

महन्त जी का निधन सुनकर मर्माहत रह गया। हिन्दुओं की अपूरणीय क्षति हुई है। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दें। समवेदना स्वीकार करें।

लक्ष्मण गणेश थव्वे
बम्बई

श्रद्धांजलियाँ

महान आघात ! विनम्र हार्दिक श्रद्धांजलि।

मेजर रणजीत सिंह, एम० पी०

卐

महन्त जी के स्वर्गवासी होने के समाचार से दुःख हुआ। वे हिन्दू धर्म के महान् संगठक थे।

स्वामी हरिनारायणानन्द
भारत साधुसमाज, दिल्ली

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी की मृत्यु से अपार दुःख हुआ।

स्वामी कृष्णानन्द
हरिद्वार

卐

संयुक्त निर्दलीय संसदीय दल महन्त दिग्विजयनाथ जी के निधन पर गहरा शोक प्रकट करता है।

मुख्य सचेतक
निर्दलीय संसदीय दल

卐

महन्त दिग्विजयनाथ के ब्रह्मलीन होने के अवसर पर मेरी समवेदना स्वीकार करें।

अघोरी बाबा

卐

हिन्दू जगत्–भूषण, संस्कृति–सभ्यता के रक्षक, राष्ट्रीय दिशा–निर्देशक, गोरक्षक, स्वर्गीय श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज को हम अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

श्रीपति शर्मा वैद्य
संचालक, श्री धान्वंन्तरीय प्रतिष्ठान, गोरखपुर

卐

महन्त जी हिन्दुओं के महान् नेता थे। उनके निधन के समाचार को सुनकर हम लोगों को अपार दुःख हुआ। हम लोग भगवान से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को शांति मिले।

नागरिक इलाहीबाग, गोरखपुर

卐

अपने नाथ सम्प्रदाय के कर्णधार महन्त श्री दिग्विजयनाथ के ब्रह्मलीन होने से यह सम्प्रदाय पंगु हो गया। हम हृदय से महन्त जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

दरियानाथ
भावनगर, गुजरात

पूज्य महन्त जी के आकस्मिक निधन पर हमारी हार्दिक समवेदना स्वीकार करें।

पूर्णचन्द एवं देवीचन्द

卐

पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी की मृत्यु का समाचार सुनकर हमें हार्दिक दुख हुआ। उनका महान व्यक्तित्व तथा समाज और देश के प्रति उनकी सेवायें अमूल्य थीं। भगवान उनकी आत्मा को शाश्वत शान्ति प्रदान करे।

सीताराम भवसिंहका
(कानपुर)

卐

अपूरणीय क्षति ! हम हार्दिक़ दुख का अनुभव करते हैं।

रवि नारंग, वेद नारंग

卐

इस दुःखपूर्ण समाचार को सुनकर गहरा धक्का लगा। भगवान शिव उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

कृष्ण गिरि, भीमनाथ

卐

पूज्य महन्त जी की आकस्मिक मृत्यु से घोर दुःख हुआ। उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।

अनन्त प्रसाद (कोईलबासा)

卐

महन्त जी की मृत्यु के समाचार से मुझे हार्दिक दुःख हुआ। मेरा हृदय व्यक्तिगत क्षति का अनुभव कर रहा है। उनके अभाव में जन–जीवन में शून्यता व्याप्त हो गई है। समाज एक महान् व्यक्तित्व से वंचित हो गया है। भगवान उनकी आत्मा को शाश्वतशांति प्रदान करें।

मथुराप्रसाद अग्रवाल

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी के आकस्मिक निधन से हार्दिक क्लेश हुआ। उनके भक्तजनों एवं श्रद्धालुओं के प्रति मेरी हार्दिक समवेदना।

मंत्री
आसाम प्रान्तीय बैमाटोगी सम्मेलन

卐

पूज्य महन्त जी के आकस्मिक निधन से हार्दिक दुःख हुआ। मेरी हृदयानुभूति समवेदना स्वीकार करें।

लाल साहब, शोहरतगढ़

श्रद्धांजलियाँ

महन्त दिग्विजयनाथ जी के दुःखद निधन से हमें बहुत दुःख हुआ। मैं उनकी आत्मा की शाश्वत शांति के लिए प्रार्थना करता हूँ।

देवनाथ

卐

महन्त दिग्विजयनाथजी के निधन से हार्दिक दुःख हुआ। गोरखपुर के लिए यह अपूरणीय राष्ट्रीय क्षति है।

शिब्बन लाल सक्सेना
संसद सदस्य
तथा डॉ० होरी लाल सक्सेना

卐

हिन्दूत्व के लिए अपने जीवन का क्षण–क्षण और शरीर का कण–कण अर्पित कर देने वाले महन्त दिग्विजयनाथ हिन्दू युवकों के प्रेरणा–स्रोत थे। उनके निधन से हम अनाथ हो गये।

कीमतीलाल कपूर
सम्पादक, राष्ट्रीय ज्वाला, नजीबाबाद

卐

परम पूज्य महन्त जी के दुःखद निधन के समाचार से हार्दिक दुःख हुआ। भगवान उन्हें चिर शांति प्रदान करें।

महावीर सुगर मिल्स

卐

महन्त जी की मृत्यु पर हार्दिक समवेदना।

साधुसरण जायसवाल

卐

पूज्य महन्त जी की महासमाधि के समाचार से अपार दुःख हुआ।

गुहा राय
सरस्वती प्रेस

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी के निधन पर हार्दिक शोक सम्वेदना।

पीर रामेश्वर नाथ

卐

महन्त जी की मृत्यु पर हार्दिक दुःख।

पीर प्रेमनाथ (दिल्ली)

महंत दिग्विजयनाथ के स्वर्गवास का समाचार जानकर दुःख हुआ। भगवान दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं शोक सन्तप्त जनों को धैर्य प्रदान करें।
मेरी हार्दिक समवेदना स्वीकार करें।

जगजीवन राम

卐

महान् दुःख ! योगीश्रेष्ठ चला गया।

महन्त बर्षानाथ (दिल्ली)

卐

मुझे हार्दिक क्लेश हुआ।

पीर उत्तम नाथ

卐

मृत्यु के समाचार से मर्माहत हुआ।

पीर श्रद्धानाथ

卐

महन्त जी के निधन के दुःखद समाचार को पढ़कर हार्दिक कष्ट हुआ।

शान्ताराम

卐

विद्यालय के अध्यापक और विद्यार्थी पूज्य महन्त जी के निधन से अत्यन्त दुःखी हुए।

प्रधानाचार्य
खेतान इण्टर कालेज, लक्ष्मीगंज, देवरिया

卐

हिन्दी हिन्दू एवं हिन्दुस्तान के अमर पुजारी, हिन्दू राष्ट्र एवं अखण्ड भारत के लिए अहर्निश संघर्ष करने वाले पूज्यपाद श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज का ब्रह्मलीन होना समस्त हिन्दू संसार के लिए अत्यन्त ही दुःखद है। उनका नाम संसार में अमर रहेगा

अयोध्या सिंह राय
प्रधान मंत्री
जिला हिन्दू महासभा, गोरखपुर

श्रद्धांजलियाँ

बाबा दिग्विजयनाथ जी के एकाएक ब्रह्मलीन होने का समाचार सुनकर महान् दुःख हुआ। शंकराचार्य के बाद इस युग में हिन्दू समाज का एकमात्र महान् संरक्षक, आचार्य व पथदर्शक आज उठ गया, जिसकी क्षति–पूर्ति नहीं हो सकती। सौभाग्य से वे अपना सारा भार अपने जैसे सुयोग्य मनीषी के कन्धों पर दे गये हैं। विश्वास है कि वे इस वज्रपात को धैर्यपूर्वक सहन कर उनके पथगामी बन हम लोगों का उद्धार करेंगे।

गुरुभक्त सिंह भक्त

आजमगढ

卐

आज पूज्य भाइ दिग्विजयनाथ जी हम लोगों के बीच नहीं रहे, यह जानकर अत्यधिक दुखित हूँ। प्रभु से यही प्रार्थना है कि वह उनकी महान् आत्मा को शान्ति प्रदान करें। वास्तव में वह सब के समान रूप से श्रद्धास्पद रहे हैं। मुझे दुःख है कि सदन में अब उनके मधुर प्रवचनों को सुनने से हम लोगों को वंचित रहना पड़ेगा।

महन्त जी के सभी शिष्यों, भक्तों, अनुयायियों, प्रशंसकों और शुभचिन्तको के प्रति मेरी हार्दिक समवेदना कह देने की कृपा करेंगे। समय मिलते ही उनकी समाधि पर आकर श्रद्धांजलि अर्पित करूँगा।

शिव चंडिका

संसद सदस्य, जमशेदपुर

卐

आदरणीय महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी के शोकपूर्ण निधन पर मेरी और मेरे परिवार की ओर से समवेदना और सहानुभूति स्वीकार करने की कृपा करें।
मुझे विश्वास है कि उनके योग्यतम उत्तराधिकारी के नेतृत्व में सभी चीजें व्यवस्थित चलेंगी और राजनीति में भी वे प्रगतिशील विचारधारा की ओर अपनी प्रवृति मोड़ सकेंगे।

झारखण्डे राय

संसद सदस्य

卐

पूज्य बड़े महाराज जी के निवार्ण की सूचना छितौनी में मिली। सभा में शोक प्रस्ताव पास किय गया। मैं उ० प्र० संसोपा की ओर से महराज जी के आकस्मिक निधन पर शोक व्यक्त करता हूँ

उग्रसे

नैता संसोपा (उ० प्र

यह जानकर कष्ट हुआ कि बड़े महाराज जी (एम० पी० महोदय) का स्वर्गवास हो गया। उनका निधन हर प्रकार से अहितकर है। कृपया मेरी हार्दिक समवेदना स्वीकार करें और ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

विश्वनाथ पाण्डेय
एम० पी०

卐

श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी के अवसान पर मेरी समवेदना स्वीकार करें। महन्त जी साधु पुरूष थे।

सुशीला नैयर
संसद सदस्य

卐

महन्त दिग्विजयनाथ जी के निधन का समाचार पाकर दुःख हुआ। भगवान उनकी स्वर्गीय आत्मा को शान्ति प्रदान करें, यही कामना है।

भागवत झा आजाद

卐

हिन्दू महासभा के वरिष्ठ उपाध्यक्ष एवं संसद सदस्य महन्त दिग्विजयनाथ जी के निधन–समाचार को सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। उनके निधन से देश की अपूरणीय क्षति हुई है। मैं उनको अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

नगर निगम ग्वालियर ने भी इस आशय का एक प्रस्ताव पारित किया है। उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि शोक–संतप्त परिवार को इस महान् दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

डॉ० मनमोहन बत्रा
सदस्य महासभा जीवाजी विश्वविद्यालय
उपमहापौर नगरपालिका, ग्वालियर

卐

पूज्य बड़े बाबा जी के निधन का समाचार जानकर अत्यन्त शोक हुआ। ईश्वर से प्रार्थना है कि उस महान् आत्मा को शान्ति दें तथा आप सभी को इस भयंकर दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

कु० आनन्द प्रताप सिंह
मनकापुर (गोंडा)

श्रद्धांजलियाँ

पूज्य श्रीमान् दिग्विजयनाथ.जी के समाधि लेने का दुःखद समाचार रेडियो द्वारा सुनकर हम लोगों को शोक है। सरकार महारानी साहिबा भी दुखी हुई और उन्होंने अपनी हार्दिक समवेदना आपके समक्ष प्रकट करने के लिए आदेश दिया है।

स्वर्गीय महन्त जी प्रतापी पुरूष थे। राज–परिवार तथा हमलोगों के ऊपर कृपा रखते थे। इस संसार में आकर एक दिन सबको जाना पड़ता है। यह दैवी गति जानकर श्रीनाथजी के चरणों का आश्रय लेते हुए धैर्य धारण करना पड़ता है।

यज्ञमणि आचार्य दीक्षित, बलरामपुर

卐

पूज्य महन्त जी के निधन का ह्रदय विदारक समाचार प्राप्त कर अत्यंत दुःख हुआ। हम लोगों के बीच से बड़ी विभूति उठ गई है। समाज की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कठिन है। परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति दे।

डॉ० हरि प्रसाद शाही

卐

आज चारों ओर से आक्रमण की स्थिति में महंत जी का निधन हिन्दू समाज पर भारी वज्रपात सा है। वे विकट और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हिन्दू महासभा के माध्यम से हिन्दू संस्कृति की रक्षा और हिन्दू संगठन के महत्वपूर्ण कार्य में संलग्न थे।

लाला रामगोपाल शालवाले
मंत्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

卐

महंत दिग्विजयनाथ के निधन से हिन्दू समाज का एक महान् नेता छिन गया। शरीर से स्वस्थ महंत जी का निधन इतना निकट है, इसकी कल्पना भी नहीं थी। उम्र ढल जाने के बावजूद सार्वजनिक जीवन में वे अत्यधिक सक्रिय थे।

सम्पादक 'आज' वाराणसी

卐

महंत जी हिन्दू राष्ट्रवाद के प्रबल प्रचारक होने के साथ–साथ एक महान् क्रांतिकारी भी थे। उनका जीवन प्रत्येक देशभक्त के लिए प्रेरणाप्रद रहेगा।

डॉ० किशोर, ग्वालियर

卐

कोटि–कोटि हिन्दुओं को प्रेरणा देने वाले, भारत माता के महान् सपूत, हिन्दूओं को एकता के सूत्र में बाँधने वाले पूज्य महंत दिग्विजयनाथ के निधन से हुई क्षति की पूर्ति कठिन है। आज देश को उन जैसे निर्भिक व्यक्ति की अत्यधिक आवश्यकता थी। राष्ट्रपुरूष महन्त जी की महान् आत्मा को ईश्वर शान्ति प्रदान करें।

वीरेन्द्र कुमार जैन
सम्पादक 'अन्तर्ज्वाला' नजीबाबाद (उ० प्र०)

पूज्यपाद महंत श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज के महानिर्वाण की सूचना मिलने पर हृदय में एक महाशून्यता का अनुभव कर स्तब्ध सा रह गया। वे महान् कर्मयोगी, हिन्दू धर्म के प्राणरक्षक और परम त्यागी थे। उन्होंने अन्त तक अपनी रूग्णावस्था की परवाह न कर, देश और धर्म की सेवा में अनुरक्त रहकर शूरवीरता, अद्‌भुत प्रतिभा और त्याग का परिचय दिया।

हजारीलाल श्रीवास्तव

बलरामपुर

卐

मैं परमपूज्य श्री महन्त दिग्विजयनाथ (गोरक्षपीठाधीश्वर तथा अध्यक्ष हिन्दू महासभा) के आकस्मिक निधन पर महाशोक व्यक्त करता हूँ तथा परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि दिवंगत आत्मा को सद्‌गति एवं उनसे सम्वन्धित व्यक्तियों को धैर्य एवं शान्ति प्रदान करें।

बेनी सिंह पुंडीर

卐

गन्ना विकास परिषद्, गौरीबाजार की यह बैठक ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ के देह त्याग का दुःखद समाचार पाकर अपार शोक का अनुभव करती है और अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए दिवंगत आत्मा की सद्‌गति तथा शान्ति के लिए गुरू गोरखनाथ से प्रार्थना करती है।

प्रयागध्वज सिंह

अध्यक्ष, गन्ना विकास परिषद्, गौरीबाजार

卐

हिन्दू संस्कृति के संरक्षक तथा हिन्दू धर्म के प्राण महन्त दिग्विजयनाथ जी के आकस्मिक निधन से हम सभी को महान् शोक है। महन्त जी की हम सब पर विशेष कृपा रहती थी। वह सदैव हम लोगों के साथ रहे।

हमारा समस्त व्यापारी परिवार उस महान् आत्मा को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

चैम्बर आफ जनरल मर्चेन्टस गोरखपुर

卐

हिन्दू संस्कृति के महान् उन्नायक, राजनीतिज्ञ एवं दृढ़प्रतिज्ञ बाबा दिग्विजयनाथ के आकस्मिक निधन से जन–मानस शोक–विह्वल हो गया है। हम सभी के दुःख का वारापार नहीं है। हमारा समस्त व्यापारिक परिवार उस महान् आत्मा को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है। बाबाजी की हमलोगों पर विशेष कृपा थी।

यू० पी० जनरल मरचेन्ट्स फेडरेशन

हिन्दू महासभा का मुख्य आधार–स्तम्भ समाप्त हो गया। उनके प्रेरणा–पुञ्ज व्यक्तित्व से हम लोग सदैव उत्साह एवं मार्ग–दर्शन प्राप्त करते थे। समाचार देर में प्राप्त होने के कारण अन्तिम दर्शनों हेतु बलवती इच्छा होते हुए भी न आ सका।

प्रो० विष्णु घन्श्याम देश पाण्डेय
भूतपूर्व संसद सदस्य

स्वर्गीय पूज्य दिग्विजयनाथ जी के आकस्मिक निधन का दुःखद समाचार पाकर मेरा ह्रदय शोकाकुल हो गया। पूज्य महन्त जी से मेरा सम्बन्ध ४० वर्षों से रहा है। उनकी छत्रछाया में मैंने अपना अध्यापक का जीवन आरम्भ किया था। उनके निधन से मैंने एक आत्मीय तथा संरक्षक खो दिया है।

कृपया पूज्य महन्त जी के निधन पर मेरी समवेदना स्वीकार करें। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि दिवंगत आत्मा को शान्ति दें तथा उनके शोकाकुल शिष्यों और मित्रों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें।

डॉ० माता बख्स श्रीवास्तव
डी० बी० एस० कालेज, देहरादून

ब्रह्मीभूत श्री महन्त दिग्विजयनाथ महाराज के आकस्मिक निधन से धार्मिक पक्ष को विशेष क्षति पहुँची है।

नन्दलाल शास्त्री
भूतपूर्व संसद सदस्य
अध्यक्ष, अखिल भारतीय रामराज्य परिषद्

श्री महन्त जी के निधन से हिन्दू राष्ट्र का महान् स्तम्भ धाराशायी हो गया।

देवदत्त बाली (देहरादून)

हिन्दू, हिन्दी एवं हिन्दूस्तान के लिए समर्पित महान् व्यक्तित्व हमारे बीच से उठ गया।

बाबूराम गुप्त (देहरादून)

पूज्य महन्त जी सदैव ही हमारी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। उन्होंने अंतिम श्वाँस तक हिन्दु ध्वजा को उठाये रखा।

रामकुमार मोदी (धामपुर)

पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ देश के युवकों एवं विद्यार्थियों के मार्गदर्शक रहे हैं। उनके आशीर्वाद से हिन्दू विद्यार्थी–सभा की स्थापना हुई थी। कलकत्ता में आयोजित सभा का उन्होंने १९५० ई० में उद्घाटन किया था। वे राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसारक थे। उनके निधन से विद्यार्थी समाज गहरे आघात का अनुभव करता है।

मंत्री, अ० भा० हिन्दू विद्यार्थी महासभा

卐

महन्त दिग्चिजयनाथ जी हिन्दुत्व के आधार थे। पुरानी पीढ़ी के वे कट्टर एवं सेवाभावी सक्रिय कार्यकर्ताओं में से एक थे। अतः उनके निधन से देश की एवं हिन्दू धर्म, समाज तथा संस्कृति की अपार क्षति हुई है।

अपने प्रारम्भिक जीवन को देश के नवयुवकों की शिक्षा पर अर्पित करते हुए महन्तजी ने गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना में योग–दान दिया। स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी से प्रेरणा पाकर उन्होंने राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया और आखिरी श्वाँस तक तन–मन–धन से भारतमाता एवं हिन्दू धर्म की सेवा की। भगवा वस्त्रों से परिवेष्टित महन्त जी जब हिन्दुत्व पर व्याख्यान देते थे तो ओज की एक प्रभावी गंगा उनके मुँह से बहने लगती थी। आज के तथाकथित सत्ताधारी नेताओं की धार्मिक एवं सांस्कृतिक दुर्बलता पर महन्तजी ने संसद में समय–समय पर अपने वागबाणों के जो प्रहार किए, उसे कौन नहीं जानता?

हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं समाज को बलवान बनाकर उसकी खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करा देने के लिए, कट्टर सनातनी होते हुए भी महंत दिग्विजयनाथजी ने शुद्धिकरण के आन्दोलन का प्रारम्भ से ही समर्थन किया। मसुराश्रम द्वारा किये जा रहे वैयक्तिक एवं सामूहिक शुद्धिकरण का वे प्रत्येक समय स्पष्ट शब्दों में समर्थन करते रहे। विश्व के ईसाई या मुसलमान जब धर्म के नाम पर संगठित हो सकते हैं, तो हिन्दू भी संगठित क्यों नहीं हो सकते। यह उनकी जिन्दगी की जिद थी। इसी जिद से प्रभावित हो कर सन् १९६५ में उन्होंने दिल्ली में विश्व हिन्दूधर्म–सम्मेलन का आयोजन किया था। भगवान कृष्ण की इस जन्मभूमि और कर्मभूमि में गायों की निरंतर हत्या हो, इसका शूल हमेशा उनके मन में था। सनातन वैदिक धर्म की जो उन्होंने आमरण सेवा की, उसके लिए पूरा भारत उनका सदैव ऋणी रहेगा।

ब्रह्मचारी विश्वनाथ जी

मसुराश्रम, गोरेगांव (पूर्व) मुबंई

卐

स्वर्गीय महन्तजी के निधन से गोरखनाथ मंदिर तथा गोरखसम्प्रदाय को जो अपूर्व शोक और वेदना हुई है, उसे भलीभाँति अनुभव करते हुए मैं आप सबों को इस दुःख की घड़ी में अपनी तथा अपने परिवार की सहानुभूति एवं समवेदना भेज रहा हूँ। भगवान से प्रार्थना है कि वे दिवंगत महाविभूति की आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करें।

प्रो० रामपाल सिंह गौड़, जयपुर

श्रद्धांजलियाँ

आदरणीय महन्त दिग्विजयनाथ जी के आकस्मिक परिनिर्वाण का समाचार पाकर स्तब्ध रह गया। उनका धर्म, राजनीति तथा शिक्षा से ऐसा समन्वित जीवन था, जो साधारणतया देखने को नहीं मिलता। उनके निधन से उत्पन्न क्षति को पूर्ण करना सम्भव नहीं। फिर आप सरीखे उनके सहयोगी के रहते हुए निराशा कम होती है। महन्त जी की आत्मा को शान्ति मिले तथा आप में वह शक्ति आवे कि आप उस कार्य को आगे बढ़ावे, यही कामना है।

हृदय नारायण सिंह
प्राचार्य, तिलकधारी डिग्री कालेज, जौनपुर

卐

परम आदरणीय योगेन्द्र दिग्विजयनाथ जी कैलाशवासी हो गये, यह समाचार पढ़कर अतीव दुःख हुआ। देवगति बलवान है। श्री नाथ जी से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति दें और उनके शिष्यों को धैर्य धारण करने की शक्ति दें।

राजा श्री गंगाप्रताप सिंह
मल्लापुर राज्य, सीतापुर

[illegible] त्रिपाठी

महंत दिग्विजयनाथ जी की मृत्यु से गोरखपुर की एक महाविभूति उठ गई। [illegible] बस्ती

डॉ० सर सुरेन्द्र सिंह मजीठि
सरदार नगर, गोरखपुर

卐

गुरूदेव बड़े बाबा पूज्य महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज के आकस्मिक निधन के समाचार को सुनकर एकाएक हृदय से यह भाव निकला कि "गोरखपुर जिले का पुरूष सिंह हमारे बीच से उठ गया"। दिवंगत आत्मा के लिए मेरी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि एवं समवेदना

गोरबरधन लाल कपूर
नजीबाबाद

卐

श्री १००८ ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ के अनुयायियों, भक्तों, श्रद्धालुओं एवं प्रशंसकों की प्रेरणा से उनका पावन स्मृति–ग्रन्थ निकालने का निश्चय प्रशंसनीय है। मेरा इस योजना के साथ पूर्ण सहयोग है। श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज एक महान् पुरूष थे। उनकी स्मृति को सँजोये रखना हमारा पावन कर्तव्य है। मैं उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

तेज नारायण एडवोकेट
अध्यक्ष, वीर सावरकर स्मारक समिति, उ० प्र० लखनऊ

भगवान की इच्छा सर्वोपरि होती है?, उसमें किसीका वश नहीं चलता। इस क्षणभंगुर संसार में आखिर रहने ही कौन आया है? स्नेह, श्रद्धा, ममता, एवं मोह वश जब हमारा कोई प्रिय उठ जाता है, तो हमें दुःख की अनुभूति होती है।

बाबा अभिराम दास, अयोध्या

卐

श्रद्धेय पूज्य बड़े बाबा महन्त दिग्विजयनाथ जी के निर्वाण से जो आघात पहुँचा है, उसको सहने की शक्ति आपको भगवान प्रदान करे, उससे यही प्रार्थना है। भगवान बड़े बाबा श्री दिग्विजयनाथ जी को शाश्वत शान्ति दें, यह मेरी उस प्रणव से कामना है जिसकी छत्रछाया में इस संसार में आते हैं और जाते हैं।

प्रेमनारायण उपाध्याय

सोरों (एटा)

卐

पूज्य बड़े बाबा के उठ जाने से भारतीय संस्कृति संरक्षण रहित अनाथ हो गई है। श्रद्धेय स्वामी जी ने भारतीयता के विमल ध्वज को जिस मिशन को लेकर उठाया था, उसकी पूर्ति अब निकट भविष्य में होती दिखाई नहीं देती।

मैं आशा करूंगा तथा भगवान से यही प्रार्थना भी करता हूँ कि बड़े बाबा ने जिस मिशन को ज्योति जगायी थी, उसे बुझने न दिया जायेगा।

गंगा प्रसाद वर्मा

भू० पू० उप–स्वास्थ्य मंत्री, उ० प्र०

卐

आज प्रातःकाल ही पूज्यपाद बड़े महाराज के आकस्मिक निधन का शोक समाचार सुनकर मैं शोकाकुल होकर स्तब्ध हो गया। ऐसा लगा कि हिन्दू समाज का सबसे जाज्वल्यमान एवं प्रखरतम मार्तंड अस्त हो गया। लेकिन नहीं, भारत माँ की गोद भले ही खाली हो जाय, परन्तु कोख नहीं रिक्त रहती है। यह माँ सदैव से ही वीर प्रसविनी रही है। मुझे पूर्ण विश्वास एवं आशा है कि दिवंगत महन्त जी के अभाव की पूर्ति सामाजिक, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में पूर्ण रूपेण करने में आप सफल होंगे।

मेरे तथा मेंहदावल के स्थानीय हिन्दू महासभाई तथा जनसंघी भाइयों के प्रयास से दिवंगत आत्मा के सम्मानार्थ बाजार पूर्ण रूप से बन्द रहा। सार्वजनिक सभा में पूज्यपाद ब्रह्मलीन महाराज के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

भगवान सिंह

मेंहदावल (बस्ती)

श्रद्धांजलियाँ

मेरे विचार से दिवंगत आत्मा के प्रति सबसे सच्ची सेवा और श्रद्धांजलि यही होगी कि हम लोग उसी ध्येय–यानी हिन्दूराष्ट्रवाद की अनवरत जलती मशाल–के परिपालन एवं संवर्द्धन में अपना सब कुछ सदैव आहुति करने के लिए तत्पर रहें, ताकि राणा–शिवा की वह परम्परा जिसकी दिवंगत महाराज एक कड़ी थे, टूटने न पावे बल्कि समय के साथ अधिक परिपुष्ट होकर वीर सावरकर के स्वप्न को साकार करे।

बाल सावरकर
सावरकर सदन, दादर बम्बई

पश्चिमी जिलों का दौरा करने के बाद कल लौट रहा था कि बड़े महन्त जी के अचानक स्वर्गवास का दुःखद समाचार सुनकर स्तब्ध रह गया। उनके निधन से हिन्दू धर्म, जाति एवं देश को बड़ा गहरा धक्का लगा है। उनके स्नेहपूर्ण, स्वतंत्र, अडिग तथा देशप्रेम से युक्त विचार चिरस्मरणीय रहेंगे। मुझे दुःख है कि अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने का अवसर न पा सका। परमात्मा से करबद्ध प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति दें और आप को उनके गुरुतर कार्य–भार को निभाने की शक्ति तथा इस कष्ट को सहन करने का साहस दें।

माधव प्रसाद त्रिपाठी
विधायक, बस्ती

श्री महन्त जी ने महिलाओं एंव हिन्दू ललनाओं को सदैव मैत्रेयी, गार्गी, कर्मवती, दुर्गावती, पद्मिनी, सीता, सावित्री और लक्ष्मीबाई बनने की प्रेरणा प्रदान की। उनके हृदय में नारी समाज के प्रति बड़ा आदर था। महिला समाज की ओर से उस महापुरूष के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित है।

कमला देवी तिवारी
अध्यक्षा
राष्ट्रीय महिला संघ, उत्तर प्रदेश
तथा समाज कल्याण समिति, लखनऊ

पुण्य श्लोक श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज, कोटि–कोटि हिन्दू युवकों के हृदय सम्राट थे। उनके निधन से जो दुःख हुआ है उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।

महेन्द्रकुमार शर्मा
प्रधानमंत्री
उ० प्र० हिन्दू महासभा, तीर्थराज प्रयाग

सोमवार १७ नवम्बर १९६९ ई० कार्तिक २६ शक सम्वत् १८९१
लोकसभा द्वारा ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज को
श्रद्धाञ्जलि

श्री गुरूदयाल सिंह ढिल्लन (अध्यक्ष)–

मैं सदन को बड़े दुःख के साथ अपने ५ सदस्यों के निधन की सूचना दे रहा हूँ। उनमें श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर–क्षेत्र से लोकसभा के सदस्य थे। १९६७ में सदन की सदस्यता के लिए निर्वाचित होने के उपरान्त वे सदन की कार्यवाही और सभी सम्बन्धित समितियों की बैठकों में बड़े उत्साह से भाग लेते थे। सदन में वे काफी लोकप्रिय थे। वे दृढ़ विचारों के व्यक्ति थे और अपने विचार बड़ी निर्भिकता के साथ प्रकट करते थे। वे अपने समय के एक बहुत बड़े क्रान्तिकारी थे। अचानक गोरखपुर में २८ सितम्बर १९६९ को ७४ वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया। उनके निधन पर मैं गहरा शोक प्रकट करता हूँ और सदन की भावनाओं के साथ उन्हें श्रद्धान्जलि अर्पित करते हुए उनके धर्म–परिवार के साथ समवेदना प्रगट करता हूँ।

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी–

श्रीमान् अध्यक्ष महोदय, दिवंगत आत्माओं को श्रद्धान्जलि अर्पित करने के लिए मैं सदन को भावनाओं के साथ अपने को सम्बद्ध करती हूँ। श्री महन्त जी का शिक्षा एवं धर्म के क्षेत्र में बहुत ही ऊंचा स्थान है। उनका नाम असहयोग आन्दोलन के साथ भी जुड़ा हुआ है। साइमन कमीशन और हैदराबाद के सत्याग्रह से भी वे सम्बन्धित रहे हैं। वे प्रसिद्ध गोरखनाथ मन्दिर के महन्त थे और उन्होंने गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना का भी महान् कार्य किया था। अध्यक्ष महोदय, मेरा निवेदन है कि आप मेरी हार्दिक समवेदना उनके धर्म–परिवार तक पहुँचा दें।

डा० रामसुभग सिंह जी–

अध्यक्ष महोदय, मेरे इन पांच अभिन्न मित्रों का, जिनहोनें इस लोकसभा के माध्यम से तथा अपने दलों के माध्यम से देश की अमूल्य सेवा की, देहावसान हो गया है। वे ऐसे देशभक्त थे, जिनकी शोहरत काफी दूर तक गई थी। श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी ने अपने दल के माध्यम से सम्पूर्ण भारत की सेवा की और शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने गोरखपुर यूनिवर्सिटी की स्थापना करा कर एक ऐसी सेवा की, जो चिरस्थायी रहेगी। उनका योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता। मैं दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धान्जलि अर्पित करता हूँ और भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। मैं अपने तथा अपने दल की ओर से उनके प्रति हार्दिक शोक प्रकट करता हूँ।

श्री एन० जी० रंगा–

श्रीमान् अध्यक्ष महोदय, सदन द्वारा दिवंगत बन्धुओं के प्रति प्रकट किये गये शोकोद्गारों से मैं भी अपने आप को सम्बन्धित करता हूँ। श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी एक बड़े देशभक्त थे। मैं उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और अपनी समवेदना सदन के माध्यम से धर्म–परिवार तक पहुँचाता हूँ।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी–

अध्यक्ष महोदय, जब हम सत्र के लिए एकत्र होते हैं, काल का क्रूर हाथ हमारे बीच से कुछ साथियों को उठा लेता है और तब जीवन की निस्सारता और उस जीवन में चलने वाला संघर्ष बड़ा बेमानी सा दिखाई देता है। कल की बात है, श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज हमारे साथी थे। इस संसद में कन्धें से कन्धा लगा कर हम काम करते थे और भारत के निर्माण में योगदान देते थे। आज केवल उनकी स्मृति बाकी है, जिसके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए हम एकत्र हुए हैं। महन्त जी हमारे स्वाधीनता–संग्राम के सेनानियों में से थे। १६२१ के असहयोग आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था। उस समय कांग्रेस एक पार्टी नहीं थी, बल्कि आजादी की लड़ाई का मोर्चा थी। उनका क्रान्तिकारियों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क था। ऐतिहासिक चौरीचौरा काण्ड में उन्हें गिरफ्तार किया गया था। साइमन कमीशन का बहिष्कार करने के लिए उन पर विदेशी सरकार की कोप–दृष्टि पड़ी थी। बाद में साम्प्रदायिकता एवं राष्ट्रीयता के प्रश्न पर उन्होंने कांग्रेस से नाता तोड़ा और हिन्दू महासभा में शामिल हुए और अध्यक्ष बने। इस सदन में यद्यपि उनकी आवाज अकेली थी, अपने दल के वे एकमेव प्रतिनिधि थे, लेकिन जो कुछ वे कहते, बड़ी दृढ़ता के साथ कहते थे। उनके विचारों से मतभेद हो सकता था, किन्तु उनकी देशभक्ति, प्रामाणिकता और अपने विचारों के साथ तथा अपनी रोशनी के अनुसार देश की सेवा करने की जो ऐकान्तिक भावना थी, उससे कोई मतभेद नहीं रख सकता था। मैं उनके प्रति उपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। आप से अनुग्रह करूँगा कि आप हमारी भावनाओं को दुःखी परिवार तक पहुँचाने की कृपा करें।

श्री मनोहरन–

संसद में अपने दल डी० एम० के० की ओर से, सदन में व्यक्त किये गये विचारों से मैं अपने दल को सम्बद्ध करता हूँ। जो शोकोद्गार यहाँ पर विभिन्न दलों के नेताओं की ओर से व्यक्त किये गये हैं, उनका समर्थन करते हुए मैं दिवंगत आत्माओं के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करता हूँ।

श्री एच० एन० मुकर्जी–

मैं अपने दल को सदन में व्यक्त किये गये विचारों से सम्बद्ध करते हुए दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। उनके निधन से मेरी व्यक्तिगत क्षति हुई है।

श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी का व्यक्तित्व कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। प्रारम्भिक स्थिति में स्वतंत्रता के आन्दोलन से सम्बन्धित रहते हुए भी उन्हें प्राचीन संस्कृति से, जिसकी हम सभी प्रशंसा करते हैं, विशेष प्रेम था। उनके निधन से हमें गहरा दुःख हुआ है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि उनके परिवार तक मेरी समवेदना पहुँचा दी जाय।

श्री रवि राय–

अध्यक्ष महोदय, हमारी लोकसभा के पाँच बुजुर्ग सदस्यों के देहान्त के ऊपर आपने तथा अन्य नेताओं ने जो भावनायें व्यक्त की हैं, अपनी संयुक्त सोसलिस्ट पार्टी को भी मैं उसके साथ सम्मिलित करता हूँ। मैं चाहूँगा कि आप हमारी शोक–भावना को उनके परिवारों तक पहुँचादें।

श्री ए० के० गोपालन–

संसद में अपने दल की ओर से मैं सदन में व्यक्त किये गये शोकोद्‌गारों से अपने को सम्बद्ध करते हुए दिवंगत आत्माओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और सदन से अनुरोध करता हूँ कि हमारी समवेदना को उनके परिवार तक पहुँचा दें।

श्री सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी–

दिवंगत साथियों के प्रति प्रकट किये गये शोकोद्‌गारों से अपने तथा अपने दल को सम्बद्ध करता हूँ। दिवंगत महापुरूषों के साथ मेरे व्यक्तिगत सम्बन्ध थे। यह बड़े दुःख की बात है कि जब भी सदन का सत्र प्रारम्भ होता है, कुछ साथी हमें छोड़ कर चले जाते हैं। इन लोगों ने सेवा का उज्ज्वल कीर्तिमान स्थापित किया है। इनकी राष्ट्रभक्ति और देशभक्ति उल्लेखनीय है। हम सभी लोग यहाँ प्रकट की गई भावनाओं से सहमत हैं और चाहते हैं कि हमारी समवेदना इनके परिवारों तक पहुँचा दी जाय।

श्री निर्मल चन्द्र चटर्जी–

अध्यक्ष महोदय, निर्दलीय संसदीय दल की ओर से प्रधान मंत्री एवं अन्य सम्माननीय सदस्यों द्वारा सदन में व्यक्त किये गये शोकोद्‌गारों में मैं अपने को भी सम्मिलित कर रहा हूँ। श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी का निधन न केवल उत्तर प्रदेश और गोरखपुर के लिए अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए एक महान् क्षति है। उनका जन्म उदपुर के राणा परिवार में हुआ था। उनके चाचा ने उन्हें ५ वर्ष की आयु में गोरखनाथ मन्दिर को दान कर दिया था, जहाँ पर उनकी शिक्षा–दीक्षा हुई और बाद में वे महान् महन्त बने। उन्होंने कांग्रेस के साथ मिलकर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और उसे सफल बनाया था। वे और भी कई संस्थाओं में रहे। अन्त में वे अखिल भारतीय हिन्दू महासभा में सम्मिलित हुए, जहाँ पर मेरा और उनका गहरा सम्पर्क रहा। उन्होंने जो भी कार्य किया, वह वास्तव में प्रशंसनीय था। वे वीर सावरकर जी के घनिष्ठ मित्र एवं निष्ठावान् सहयोगी थे। डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, डॉ० मुन्जे आदि नेताओं से भी इनके निकट सम्बन्ध थे। सभी लोग

उनसे प्रेम करते थे और उनका सम्मान करते थे। बंगाल का प्रतिनिधि होने के नाते मैं विशेष रूप से उनको श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूँ, क्योंकि जब बंगाल में भीषण अकाल पड़ा था, उस समय उन्होंने बंगाल जाकर भूख से पीड़ित बन्धुओं की सहायता की थी। इसके पश्चात् नोआखाली की दुःखद घटनायें जब घटी थीं, तो उस समय भी उन्होंने सहायता की थी। गोरखपुर में उन्होंने अखिलभारतीय हिन्दमहासभा का अधिवेशन आयोजित किया था। जो ऐतिहासिक था और विशेष रूप से सफल हुआ था। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

श्री प्रकाशवीर शास्त्री–

अध्यक्ष महोदय, इस संसद के सदस्य माननीय श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज, नाथ सम्प्रदाय के सबसे बड़े महन्त थे। गद्दी पर बैठते ही सक्रिय राजनीति में और शैक्षणिक गतिविधियों में उनका पूरा योगदान रहा। गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना में और गोरखपुर के महाराणा प्रताप कालेज की स्थापना में महन्त जी ने बहुत आगे बढ़कर अपना सहयोग दिया था। राजनीति से भी उनका सम्बन्ध बहुत पुराना था और संसद के अधिवेशनों में समय–समय पर वह अपने विचारों को अभिव्यक्त करते रहे, उससे भी यह लगता था कि उनके मन में कुछ इच्छा थी और उन इच्छाओं को वह अपनी सदस्यता के माध्यम से इस देश में व्यक्त करना चाहते थे। मैं महन्त जी को उनकी सेवाओं के लिए, उनकी धार्मिक भावनाओं के लिए और शैक्षणिक सेवाओं के लिए अपनी और अपने साथियों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

श्री यशवन्त सिंह कुशवाहा–

अध्यक्ष महोदय, महन्त दिग्विजयनाथ जी इस सदन के हमारे दल के सक्रिय सदस्य थे। उन्होंने देश भर में अपनी सेवाओं के द्वारा देशभक्ति के अनेक उदाहरण उपस्थित किये हैं। उनका सारा जीवन संघर्षपूर्ण रहा। वह मेवाड़ की देन थे, लेकिन ५ वर्ष की अवस्था में जब कि वह अपने चाचा द्वारा गुरू गोरखनाथ मंदिर के लिए सौंप दिये गये थे, उस समय से फिर वह मेवाड़ नहीं जा सके। इन दिनों जब कि उनकी मृत्यु हुई, उसके चन्द महीने पहले से महाराणा उदयपुर और मेवाड़ के जन प्रतिनिधि उनको उनकी जन्मभूमि में ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके स्वागत की तैयारियाँ हो रही थी, लेकिन वह अपने जीवन काल में उदयपुर नहीं पहुँच सके, उनकी यह इच्छा अपूर्ण रही। लेकिन मेवाड़ की एक बड़ी सेवा उन्होंने गोरखपुर क्षेत्र में महाराणा प्रताप कालेज और महाराणा प्रताप के नाम से अनेक शिक्षण संस्थायें कायम करके की। उनकी यह सेवा चिरस्मरणीय रहेंगी। महन्त जी का सारा जीवन देश के लिए उत्सर्ग था। वे प्रथम श्रेणी के देशभक्तों में माने जाते थे और उनकी सेवायें हमेशा याद की जायेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं सदन के अन्य माननीय् महानुभावों के विचारों का समर्थन करते हुए अपने दल की ओर से तथा स्वयं अपनी ओर से उस महान् दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि भेंट करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि उनके परिवार तक मेरी भावनायें पहुँचा देने की कृपा करें।

श्री शंकर से मिलन को,
गये दिग्विजयनाथ।
ध्वजा झुकी हिन्दुत्व की,
हिन्दी भई अनाथ।

गंगा गिरीश शुक्ल

समाचार पत्रों की अनुगूँज–

क्षति की पूर्ति अत्यन्त कठिन

महन्त श्री दिग्विजयनाथ के निधन से देश का ऐसा प्रमुख व्यक्ति उठ गया जिसे भारतीय संस्कृति और शिक्षा पर गर्व था। प्रसिद्ध गोरखनाथ मठ के महन्त होने के साथ ही आप देश के राजनीतिक, शैक्षणिक तथा धार्मिक एवं संस्कृति के भी प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। देश के क्रान्तिकारी आंदोलन से भी आप का निकट संपर्क था। वीर सावरकर के आप घनिष्ठ सहयोगी रहे इसी कारण आप को अनेक बार सरकारि कोप का सामना करना पड़ा और जेल–यात्रा करनी पड़ी। कांग्रेस के आप सक्रिय कार्यकर्ता थे पर उसकी तुष्टीकरण की नीति के विरोधी, उग्र राष्ट्रवाद के पोषक और पुजारी थे जिसमें हिन्दूत्व के लिए सहज गौरव था। हिन्दू महासभा से आप का सन १६३५ से ही सम्बन्ध रहा है। सन ६१ तथा ६२ में आप इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। भारतीय संस्कृति तथा शिक्षा के उन्नयन का कार्य आपको अत्यन्त प्रिय था। इसलिए आपने विश्व हिन्दू धर्म–सम्मेलन की स्थापना एवं संगठन में महत्वपूर्ण योग दिया था। सन १६६५ ई० में राजधानी नई दिल्ली में आयोजित प्रथम विश्व हिन्दू धर्म–सम्मलेन की सफलता का बहुत कुछ श्रेय आप को ही है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए आप ससैव सचेत रहे। यह आपके ही प्रयत्नों का सुपरिणाम रहा है कि जिस महाराणा प्रताप कालेज की स्थापना की, उसने अब गोरखपुर विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया। गोरखनाथ की तपस्थली पर भव्य मंदिर का निर्माण भी आपकी ही सूझ बूझ और सामर्थ्य का सुपरिणाम है। गोरखपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा में प्रतिनिधित्व करते हुए आपने गुरूतर कर्तव्यों एवं दायित्वों का सफल निर्वाह किया था। आपका व्यक्तित्व एवं कृतित्व स्मरणीय रहेगा। आप के निधन से हुई महान् क्षति की पूर्ति अत्यन्त कठिन है।

दैनिक 'आज' (वाराणसी)
३० सितम्बर १६६६

卐

हिन्दू समाज के लिए महान् क्षति

महन्त दिग्विजयनाथ अब नहीं रहे। काल के क्रूर पंजे उन्हें हमसे छीन ले गये। नियति

क्रम को, प्रकृति–चक्र को कौन रोक सकता है?

महन्त जी का निधन हिन्दू समाज के लिए एक माहन् क्षति हे। गोरखपुर के तो वे आधार स्तम्भ ही थे। महन्त जी के अभाव में गोरखपुर का सामाजिक, राजनैतिक शैक्षणिक और धार्मिक जीवन शून्य हो गया है। वे गोरखपुर के जन–जीवन के प्राण थे।

वे जीवन भर सक्रिय रहे हैं। वे सुलझे हुए विचारों के विद्वान पुरूष थे। समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के सभी महत्वपूर्ण कार्यों में उन्होंने योगदान दिया था। आजादी की लड़ाई के दौरान उन्होंने कांग्रेस के सिपाही के नाते आजादी की लड़ाई लड़ी थी, जेल गये थे। अंग्रेजी शासन को चुनौती दी थी, वह भी उस समय जब कि वे महन्त थे।

धार्मिक नेता प्रायः राजनीति से भागते हैं या फिर रूढ़िवादी राजनीति का अनुसरण करते है। महन्त जी ऐसे न थे। वे राजनीति में आये अवश्य, किन्तु राजनीति को उन्होंने पेशा नहीं बनाया और न रूढ़िवादिता का ही अनुसरण किया। वे अपने देश, जाति, धर्म और संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप थे। जब कांग्रेस ने मुसलिम तुष्टिकरण की नीति अपना कर देश–हित के विपरीत कार्य किया, तो उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी और उन्होंने कांग्रेस छोड़ दिया। काँग्रेस छोड़ने के बाद वे हिन्दू सभा में शामिल हुए और मृत्यु पर्यन्त हिन्दू सभा के अनुयायी रहे।

महन्त जी की सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके जीवन का अनुसरण कर देश, धर्म और संस्कृति की सेवा में जुटें।

'तरूण भारत' (लखनऊ)

२ अक्टूबर १९६९

卐

सम्पूर्ण देश की क्षति

महन्त दिग्विजयनाथ के देहान्त को मैं हिन्दू महासभा के लिए एक अपूरणीय क्षति समझता हूँ। न केवल हिन्दू महासभा अपितु भारतवर्ष भी उनकी मृत्यु से एक ईमानदार और सच्चे देशभक्त से वंचित हो गया है। महन्त जी का राजनैतिक जीवन किसी से छिपा न था। उनके दिल में इस देश के हिन्दूओं का हित था और जब चारों ओर से हिन्दू मान्यताओं पर वे प्रहार होता देखते तो बेचैन हो उठते थे। संसद में आप ने जब भी अपनी वाणी से कुछ कहा तो भारत के लिए ही कहा। आप जनता में कितने लोकप्रिय थे, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आप हिन्दूमहासभा के एक मात्र नेता थे। जो सफल हो कर लोकसभा में पहुँचे थे। बताने की

आवश्यकता नहीं कि आप की मृत्यु इस समय न केवल हिन्दूमहासभा के लिए अपितु सम्पूर्ण देश के लिए एक अपूरणीय क्षति सिद्ध होगी।

नरेन्द्र

दैनिक 'वीर अर्जुन' (नई दिल्ली)

३० सितम्बर १९६९

卐

महत्वपूर्ण व्यक्तित्व का अन्त

महन्त दिग्विजयनाथ, जिनके आकस्मिक निधन की सूचना गोरखपुर से प्राप्त हुई है, एक शक्तिशाली व्यक्तित्व थे, जिन्हें अपने अनुयायियों और प्रशंसको का प्रेम तथा आदर प्राप्त था। राजनीति को अलग कर दिया जाय तो वे वास्तव में एक अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति थे। उनका जीवन सेवा और त्यागमय था। प्रारम्भ में कांग्रेस में थे, किन्तु बाद में हिन्दू महासभा मे चले गये, जिसके दो बार अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वीर सावरकर के निकट सहयोगी थे तथा उन्होंने कई बार जेल–यात्रा की थी। शैक्षिक, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं में आपकी सेवायें उल्लेखनीय हैं। उनके रूप में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व का अन्त हो गया।

'नार्दन इण्डिया पत्रिका' अंग्रेजी दैनिक

३० सितम्बर १९६९

卐

सच्चे अर्थों में लोकप्रिय नेता

अखिल भारत हिन्दू महासभा के उपाध्यक्ष तथा संसद सदस्य महन्त दिग्विजयनाथ की मृत्यु से देश का एक चोटी का नेता हमारे बीच से उठ गया। यद्यपि आप हिन्दू महासभा से सम्बद्ध थे लेकिन जहाँ तक देश की जनता की भलाई का सवाल था आप दलगत राजनीति से सर्वथा ऊपर उठकर कार्य करते थे। आप सच्चे लोकप्रिय नेता थे। काँग्रेस का आपने सन् १९३५ में उस समय त्याग किया जबकि उसने तुष्टिकरण की नीति का सहारा लेना प्रारम्भ किया। इतिहास ने अब यह स्पष्ट कर दिया है कि काँग्रेस की इसी तुष्टिकरण की नीति का परिणाम न केवल देश के विभाजन के रूप में ही प्रतिफलित हुआ वरन भारत और पाकिस्तान दोनों ही के सम्मुख अनेक

ऐसी समस्यायें पैदा हो गई जिनका आज तक शान्तिपूर्ण हल सम्भव न हो सका। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता वीर सावरकर के आप निकट सहयोगियों में थे। सावरकर के विचारों तथा जीवन–दर्शन का भी आप पर असर पड़ा। शिक्षा के क्षेत्र में आप की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। आपने गोरखपुर में महाराण प्रताप डिग्री कालेज की स्थापना की थी जो बाद में गोरखपुर विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित होकर आज उत्तर भारत के विस्तृत भूभाग में उच्च शिक्षा के विकास में मुख्य योगदान दे रहा है। आपने अपने जीवन काल में कई संस्थाओं को जन्म दिया जो आज भी देश की सेवा कर रही है। हिन्दू धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता का संदेश न केवल देश में वरन् विदेश में भी प्रसारित करने की दिशा में आपने महत्व का कार्य किया है। विश्व हिन्दू धर्मसम्मेलन का आयोजन आपने इसी उद्देश्य से किया था। आपकी तर्कपूर्ण वक्तृत्व शैली अधिक प्रभावोत्पादक थी और श्रोतागण मन्त्र मुग्ध होकर आपके भाषणों को सुनते थे। सादा जीवन और उच्च विचार आपका मुख्य आदर्श था। पूर्वी उत्तर प्रदेश के आप जाने माने नेता थे और क्षेत्र की पीड़ित संत्रस्त तथा अज्ञानता के अन्धकार में पड़ी जनता की आपने जो अमूल्य सेवायें की है उसके लिए वह आपका सर्वदा स्मरण करती रहेगी।

दैनिक भारत 'प्रयाग'
३० सितम्बर १९६९

साम्प्रदायिक सौहार्द्र के प्रतीक

पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी का सम्पूर्ण जीवन अध्यात्म, शिक्षा और राजनीति के लिए किये गये महान् प्रयत्नों ओर उपलब्धियों का संगम था। अब जब उनका पार्थिव शरीर उस विश्वात्मा 'नाद ब्रह्म' में समाहित हो चुका है और उनकी प्रखर वाणी और महान् व्यक्तित्व उस शोकाकुल जन समुद्र की समवेदना में अपने सम्पूर्ण अनासक्त वैभव और शक्ति के साथ जीवन्त रहेगा। श्री दिग्विजयनाथ जी हिन्दू जाति के उत्थान एवं विकास को राष्ट्रीय प्रगति के लिए अनिवार्य शर्त मानते थे। उनका विश्वास था कि हिन्दू ही इस देश की मूल सन्तान है और एकमात्र भारत ही वह राष्ट्र है जहां हिन्दू इतनी विशाल जनसंख्या में रहते हैं। अतः भारत अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करने में तभी समर्थ होगा जब हिन्दूओं को उनको ही देश में उनके न्यायोचित अधिकारों से वंचित नहीं किया जायेगा। उन पर अक्सर ही साम्प्रदायिकता के आरोप लगाये जाते रहे पर वे इन छद्म आरोपों से न तो कभी घबराये और न कभी प्रभावित हुए। जो लोग पूज्य महन्त जी को निकट से जानते थे, वे इस सच्चाई के गवाह हैं कि विभिन्न सम्प्रदायों को किस तरह उन्होंने अपना स्निग्ध स्नेह दिया था। दर असल वे सम्प्रदायिक संक्रीर्णताओं के नहीं, साम्प्रदायिक सौहार्द्र

के पोषक थे। अन्य धर्मों तथा सम्प्रदायों को भी सम्मान देने की उनकी भावना का एक अच्छा असर यह हुआ कि गोरखपुर में साम्प्रदायिक दंगे नहीं हो सके और बार बार बाहर के क्षेत्रों से भड़काने वाली कारवाई होने के बावजूद यहाँ विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों के लोग आपसी स्नेह तथा सौहार्द्र से रहते रहे।

हिन्दी दैनिक (गोरखपुर)

३० सितम्बर, १९६९

卐

युग पुरूष आवश्यकता के अनुसार अवतार लेते है। भारत ही एकमात्र देश है जिसे ईश्वर से वचन प्राप्त है धर्म स्थापनार्थ अवतार लेने का। अवतार ईश्वर की कला के साथ युग के अनुरूप ही होता है। वैसे हर जीव ईश्वरांश होने के कारण अवतारी है, जो समाज के लिए धर्म के लिए निरंतर संघर्षशील हो दुखियों के लिए सहारा हो, उसमें ईश्वरी–कलायें अधिक होती हैं। पूज्य महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी ऐसे ही अवतारी युग–पुरूष थे, उनके निधन से भारत का एक पौरूष पूर्ण महान् नेता हमसे बिछुड़ा, किन्तु उनकी शिक्षाएं हमें प्रेरणा देती रहेंगी और हम प्रगति के पथ पर अग्रसर होते रहेंगे। उनका मौन आशीर्वाद स्वर्ग से निरन्तर प्राप्त होता रहेगा।

'सही समाचार' दैनिक गोरखपुर

भूलेंगे हमको नहीं पूज्य दिग्विजयनाथ

संत पथ में भी रहे, बड़ी शान के साथ
भूलेंगे हमको नहीं, पूज्य दिग्विजयनाथ।
पूज्य दिग्विजयनाथ सूर्य आभा के अंशी
गोरख पीठाधीश, जन्म के राणा वंशी
हिन्दू हित रक्षार्थ समर्पण सब महन्त का।
अमर कर गया वीरोचित व्यक्तित्व सन्त का।
ब्रह्मलीन वह हो गये, आशापूर्ण भविष्य
अपनी जैसी शक्ति का, हमें दे गये शिष्य।
हमें दे गये शिष्य, सवाँरा जिसे हाथ से
आशान्वित हिन्दुत्व महन्त अवेद्यनाथ से
आदर सहित प्रणाम सन्त नेता नवीन को
श्रद्धा की अंजलि अर्पित है ब्रह्मलीन को।।

—मयंक

प्रथम पुण्य तिथि पर

हे गुरू गोरख के मठाधीश
हे तपःपूत, हे धर्म–प्राण।
तेरी इस पुण्य जयन्ती पर
है कोटि–कोटि तुमको प्रणाम।
तुमने रक्षा की संस्कृति की, बन वीर शिवाजी औ' राना।
योगियों सदृश गंभीर धीर, पर धारे बीरों का बाना।।
तुममानवता की दिव्यमूर्ति, तुम थे प्रतीक जो कुछ ललाम।
तुम दयावीर, तुम धर्मवीर, हे कर्मवीर ! तुमको प्रणाम।।
हे गुरू गोरख के मठाधीश
हे तपःपूत, हे धर्म–प्राण।
तेरी इस पुण्य जयन्ती पर
है कोटि–कोटि तुमको प्रणाम।
गेरूआ वस्त्र धारण करके भी, तुमने समाज का कार्य किया।
साधन–पथ का पंथी बनकर, तुमने बहुजन–हित सिद्ध किया।।
तुम नायक थे जन–मानस के, तुम पर न्योक्षावर सभी लोक
तेरी गंभीर वाणी सुनकर, हो उठता था अग जग अशोक।।

हे जन मानस के राजहंस
हे दिग्विजयी ! हे आप्तकाम।
तेरी इस पुण्य जयन्ती पर
है कोटि–कोटि तुमको प्रणाम।।

तुमने ही उन्हें जगाया था, जो सोते थे कायर बनकर।
तुमने ही उन्हें उठाया था, जो जीते थे निर्बल बनकर।।
तुम देश–प्रेम की दिव्य मूर्ति, तुम धर्म शिरोमणि औ' अकाम।
आराधक अवढर शंकर के, हे धर्मवीर तुमको प्रणाम।।

हे गुरू गोरख के मठाधीश
हे तपःपूत, हे धर्म–प्राण।
तेरी इस पुण्य जयन्ती पर
है कोटि–कोटि तुमको प्रणाम।

–राजेन्द्रनाथ पाण्डेय

युग पुरूष

युग–पुरूष तुम्हारी कृतियों के
जन–मन में चिर स्थान बन गये।
शुचि चरण तुम्हारे गये जहाँ,
जन–गण के तीर्थस्थान बन गये।
भारत जननी के गौरव तुम,
'दिग्विजय' तुम्हारा वैभव था।
हिन्दू, हिन्दी, हिन्दी भाषी में, व्याप्त तुम्हारा सौरभ था।
तुमने जो बिरवे लगा दिये, बढ़ करके वे उद्यान बन गये।। युग पुरूष......
तुमने प्रताप की गरिमा को, अपने प्रांगण में पनपाया।
श्रद्धा से उनकी प्रतिमा की, शुचि प्राण–प्रतिष्ठा करवाया।
राणा प्रताप, तब महिमा से शिक्षा के नव संस्थान बन गये।। युग पुरूष...
तुमने हमको सक्रियता का,
आजीवन पाठ पढ़ाया है।
हम पथ पर जो रूक गये कहीं, तो
सत्वर हमें बढ़ाया है।।
तुमसे प्रतिभासित हो कितने
अज्ञानी थे, विद्वान बन गये।। युग पुरूष.....
खण्डहर खड़े थे जो उदास
निस्तब्ध, निविड़ नीरव प्रवास।

शूकर श्रृंगाल का जहाँ नित्य
रहता था निशि में कल्पवास।।
पर तेरी छाया में पल कर
कण–कण भी देवस्थान बन गये।। युग पुरूष....
तृण–तृण की महिमा थी तुमसे,
निज कर से उन्हें सँवारा था।
मानो छवि को इन्द्रासन से
धरती पर स्वयं उतारा था।।
बन–बाग–तड़ाग–सरोवर भी
तव सम्बल ले सुरधाम बन गये।। युग पुरूष ....
हम सुमन तुम्हारे उपवन के,
श्रद्धा से नत तव चरणों में।
आशीष मांगते प्रतिपल हैं,
हम परिणत हों आभूषण में।।
स्पर्श तुम्हारा पाकर ही
सब पत्थर भी भगवान बन गये।।
युग पुरूष तम्हारी कृतियों के जन–मन में चिर स्थान बन गये।

–रमाशंकर शाही।

खोई गइल रतन

काउ रहल भई, काउ भइल रे।।
कर्मबीर, धर्मपाल।
भारत माई कै लाल।।
बाबा के चोर–काल मूसि गइल रे।।काउ०।।
रोवत बा देस कोस।
सब के रहल भरोस।।
खोय गइल जवन रतन रहल धइल रे।।काउ०।।
ले के गइल चमक–दमक।
गइल शेर–गरज–बमक।।
जेकरे बिनु सुरूज–चाँद भइल रे।।काउ०।।
दिग्विजय नाथ तोर।
मउति–सोर ओर–छोर।।
बीछी कै जहर अइस गइल फइल रे।।काउ०।।
अमर लोक भागि गइल।
इहाँ लागि आगि गइल।।
अमर भइल भाई, अमर भइल रे।।
काउ रहल भाई, काउ भइल रे।।

–मनोहर द्विवेदी

हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्रतीक–

महन्त दिग्विजयनाथ

भगवत सिंह
महाराणा मेवाड़

आदिनाथौ गुरूर्यस्य चयो गुरूः।
मत्स्येन्द्रं तमहं बन्दे महासिद्धं जगद्गुरूम्।।

भारत में बौद्ध धर्म के अवसान के पश्चात् सातवी सताब्दी से वैदिक धर्म के पुनरूत्थान के साथ ही साथ सिद्धों और नाथों के सम्प्रदाय का अभ्युदय हुआ। मत्स्येन्द्रनाथ तथा उनके प्रमुख शिष्य गोरक्षनाथ इस सम्प्रदाय के सर्वाधिक प्रभावशाली सन्त हुए। सम्प्रदाय का मुख्य ध्येय योग–साधना द्वारा कैवल्य की प्राप्ति था। मंत्र एवं तन्त्र की प्रणाली के साथ ही साथ हठ योग साधना नाथों की एक प्रमुख देन है। इस सम्प्रदाय ने प्रत्येक मनुष्य को बिना भेद–भाव के कैवल्य की ओर प्रेरित किया और जन्म से श्रेष्ठता की स्वीकृति नहीं दी। सत्य एवं संयम के साथ–साथ गुरू की महत्ता को उच्च स्थान दिया गया।

गुरूर्ब्रह्मा गुर्रूविष्णुर्गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

यही भावना सिद्धाचार्य जसनाथ जी के शब्दों में भी परिलक्षित होती है।

जत सत रैणा कूड़ न कैणा
जोग तणी सहनाणी।
मन कर लेखण तण कर पोथी
हर गुण लिखौ पिराणी।
अमी चवै मुख इमरत बोलो
हालो रूय फरमाणी।।

सत्य एवं संयम के साथ रहते हुए मिथ्या भाषण न करना ही योग का लक्षण कहा गया है। मन रूपी लेखनी से तन रूपी पुस्तिका पर भगवान के गुणों को अंकित कर गुरूजनों के आदेश का अनुसरण करता हुआ अमृतमय वाणी बोले। इन सिद्धों ने भारत के सभी सम्प्रदायों की एकता पर बल दिया और उनमें मौलिक एकता स्थापित की। इन्हीं आदर्शों को साकार एवं व्यावहारिक रूप देने के लिए ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी ने महात्मा ब्रह्मनाथ से दीक्षा ली और १६३४ में गोरखपुर के पवित्र गोरक्षनाथ सिद्धपीठ के महन्त प्रतिष्ठित हुए।

महन्त दिग्विजयनाथ जी का जन्म मेवाड़ की वीर प्रसविनी भूमि पर एक राणा परिवार में हुआ था। इनके माता–पिता के परलोक वासी होनेपर वाल्यावस्था में ही इनके चाचा ने इन्हें फूलनाथ जी के चरणों में समर्पित कर दिया। आत्मोत्त्थान एवं समाज–कल्याण की वाचना से प्रेरित

होकर इन्होंने तपश्चर्या के साथ–साथ हिन्दू धर्म के उत्थान के लिए सक्रिय रूप से कार्य प्रारम्भ किया। 'यतेमहि स्वराज्ये' के पवित्र ध्येय तथा 'स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' के नारे से प्रेरित होकर आप स्वतन्त्रता आन्दोलन में अग्रणी हुए और आपने उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल की जनता का सफल नेतृत्व किया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनता में व्याप्त गरीबी एवं अशिक्षा को दूर करने के लिए आप प्रयत्नशील हुए। **महाराणाप्रताप–शिक्षा–परिषद की स्थापना** कर उसके अन्तर्गत हमारे पूर्वज महाराणा प्रताप की स्मृति में **बाल–शिक्षा विहार, इण्टरमीडिएट** कालेज, डिग्री कालेज, महिला डिग्री कालेज तथा **पालीटेकनीक की स्थापना की।**

उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के शिक्षा के क्षेत्र में महन्त जी एक शाश्वत प्रकाश पुंज के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे। गोरखपुर में उच्चशिक्षा के लिए विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए स्वर्गीय महन्त जी ने अपना सक्रिय सहयोग प्रदान किया। जिसके फलस्वरूप गोरखपुर में विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

धर्म एवं भारतीय संस्कृति के प्रति शासन की उदासीन नीति को देखकर आपने देश के हिन्दूओं को संगठित करने का पूर्ण प्रयत्न किया। सन् १९६१–६२ में आप अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के हिन्दू राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। महन्त जी ने १९६७ में लोक–सभा में गोरखपुर की जनता का प्रतिनिधित्व किया और संसद में समय–समय पर औद्योगिक एवं आर्थिक नीतियों पर अपने गंभीर विचार व्यक्त किये।

हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों को एक मंच पर एकत्रित करने की दृष्टि से १९६५ में आपने 'विश्व–हिन्दू धर्म सम्मेलन' की स्थापना में सक्रिय योगदान दिया जिसमें भारत के तीन पीठों के शंकराचार्य उपस्थित थे। सम्मेलन का उद्घाटन भूतपूर्व राष्ट्रपति एवं दार्शनिक डा० राधा कृष्णन् ने किया।

महन्त दिग्विजयनाथ जी आजीवन हिन्दू संस्कृति एवं धर्म के उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहे। ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि'' के आदर्शानुसार लोक कल्याणार्थ सदैव कार्यरत रहे। ''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'' ही बाबा का लक्ष्य था। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावः' का उपदेश देते हुए २८ सितम्बर १९६९ को बाबा ने कैवल्य की प्राप्ति की। ऐसे महापुरूषों का कभी अन्त नहीं होता। ''अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते''। बाबा ने उस अमृत तत्व को अपनी तपश्चर्या से प्राप्त किया था। उनका जीवन और आदर्श सम्पूर्ण मानवता को निरन्तर प्रकाशित करता रहेगा। उन्होंने धर्म की रक्षा की और वह सदैव ही धर्म से रक्षित रहेंगे।

धर्म एवं हतो हन्ति धर्मो रक्षति–रक्षितः। तस्मात् धर्मो न हन्तव्यो मान धर्मोहतो वधीत्।।

महन्त दिग्विजयनाथ जी की स्मृति को सजीव रखने के लिए हम सभी को उन आदर्शों के प्रति सदैव सजग और प्रयत्नशील रहना है जिनके प्रति बाबा आजीवन समर्पित थे।

स्वस्ति पंथामनुचरेम।

हम कल्याण मार्ग के पथिक बनें। ऋ० १/२२/१५

ओऽम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हिन्दुओं के अनुपम नेता :

महन्त दिग्विजयनाथ महाराज

महात्मा रामचन्द्र वीर

हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए भगवान ने बार–बार अवतार लिया है किन्तु भगवान की प्रेरणा से समय–समय पर धर्म के अभ्युत्थान के लिए धर्माचार्यो, महात्माओं ने भी निरन्तर प्रबल प्रयत्न किया है। जगतगुरू शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, महात्मा रामानन्द और योगीराज महात्मा सद्‌गुरू गोरक्षनाथ महाराज ने इस धराधाम पर प्रकट होकर सनातन धर्म और आर्यावर्त देश को गर्व और गौरव प्रदान किया।

योगिराज महात्मा गोरक्षनाथ के अनुयायी योगी महात्माओं के जो भारतवर्ष में अनेक मठ और मंदिर हैं, उनमें गोरखपुर का गोरक्षनाथ मन्दिर सर्वोत्तम अथवा सर्वश्रेष्ठ है। नेपाल के सम्राट और राजाओं ने गोरक्षनाथ मन्दिर, गोरखपुर के महन्तों का सदैव सम्मान किया है। नेपाल के गोरखा, गोरखपुर के गोरक्षनाथ मन्दिर को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने आया करते हैं। उत्तर प्रदेश का गोरखपुर नगर गोरक्षनाथ मन्दिर के कारण ही प्रसिद्ध हुआ है।

इस मन्दिर के महन्तों का सम्मान राजा महाराजाओं और देश के सन्तो–महन्तों द्वारा कितना अधिक होता रहा है, यह लिखने की आवश्यकता नहीं है। गोरक्षनाथ मन्दिर के स्वर्गीय महन्त श्री दिग्विजयनाथ महाराज को अत्यन्त निकट से देखने का और सप्ताहों तक उनके समीप रहने का मुझे जो अवसर मिला वह मेरे जीवन की मधुर स्मृति है। मैने (मेरे द्वारा लिखे ग्रन्थों में) पावन स्मृतियां नामक जो ग्रन्थ लिखा है उसमें एक अध्याय महन्त दिग्विजयनाथ महाराज के लिए पृथक् है। मैं महन्त महाराज के लिए एक पुस्तक लिख सकता हूँ किन्तु अपने विचारों को यहाँ इस लेख में संक्षिप्त रूप में ही प्रकट करूँगा।

जिस मंदिर के अधिकार में कई ग्राम थे, हाथी, घोड़े झूमते रहते थे और जिय मन्दिर का वैभव राजाओं के समान था, उसके सिंहासनाधीस महन्त श्री दिग्विजयनाथ महाराज संसार के समस्त व्यसनों से मुक्त रहे। अन्न, दुग्ध और फलों के अतिरिक्त उन्होंने किसी अमूल्य आहार या पेय का कभी सेवन नहीं किया। महन्तों के वैभव और व्यसन मैंने देखे हैं किन्तु स्वर्गीय महन्त दिग्विजयनाथ महाराज व्यसनों और दुर्गुणों के साक्षात शत्रु थे। भारत के अनेक देव मन्दिरों में पशुबलि प्रथा प्रचलित है किन्तु हमारे स्वर्गीय महन्त महाराज ने गोरखनाथ मन्दिर की गद्दी पर विराजते ही गोरखपुर के देव स्थानों से पशुबलि प्रथा का उन्मूलन करवा दिया।

वे मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह और महाराणा प्रताप सिंह जी महाराज के पवित्र सीसौदिया वंश में उत्पन्न हुए थे। उनका नाम क्षत्रिय कुल के अनुसार नान्हू सिंह था। किन्तु वे अपने पूर्वजों द्वारा गोरक्षनाथ मंदिर को समर्पित कर दिये गये। उन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके अंग्रजी संस्कृत और हिन्दी के प्रखाण्ड पण्डित होकर स्वाधीनता संग्राम में जब भाग लिया

तब गोरखपुर के सहस्रों देशभक्त युवक उनके नेतृत्व में ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध हलचल मचा रहे थे। अनेक क्रान्तिकारी देशभक्त युवकों को वे अपने मन्दिर में बुलाकर सम्मानित किया करते थे और आर्थिक सहायता भी देते थे।

सन् १६३६ में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया था। महायुद्ध के दिनों में भारतवर्ष में नेशनल कांग्रेस और मुस्लिम लीग हिन्दुओं को विनाश के पथ पर अग्रसर कर रही थी। तीसरी अखिल भारतीय संस्था हिन्दू महासभा थी। महन्त दिग्वीजयनाथ जी महाराज ने उत्तर प्रदेश में हिन्दूमात्र को अपना नेतृत्व प्रदान किया। गोरखपुर जिले के हिन्दू उनको अपना नेता और पथ–प्रदर्शक मानते थे। गोरक्षनाथ मंदिर के समीप मुसमान बुनकरों का जो मोहल्ला है, उसका नाम मुसलमानों ने जाहिदाबाद रखकर इस्लाम की हरी झंडियाँ फहराते हुए ईद–बकरीद के अवसरों पर गो–हत्या करने का जब प्रयत्न किया, तब महन्त दिग्विजयनाथ महाराज ने गोमाता की रक्षा के लिए गोरखपुर के हिन्दुओं का आवाहन किया और पचीस सहस्र हिन्दू एकत्र होकर महन्त महाराज के नेतृत्व मे मरने–मारने को उद्यत हो गये। ऐसी स्थिति में उत्तर प्रदेश के अंग्रेज गर्वनर को मुसलमानों पर नियत्रंण करने के लिए विवश होना पड़ा और जाहिदाबाद नामक मुस्लिम मोहल्ले में गोहत्या नहीं हो सकी। गो माता के महान् रक्षक महन्त दिग्विजयनाथ महाराज अखिल भारतीय साधु सम्मेलन में जब सम्मिलित हुये तब हिन्दुओं के पुण्यधाम भगवान विश्वनाथ की वाराणसी नगरी में जगन्नाथपुरी के जगद्गुरू शंकराचार्य स्वामी भारतीय कृष्ण तीर्थ महाराज की अध्यक्षता में पाँच सौ से अधिक भारत के सन्तों महन्तों का सम्मेलन हुआ था।

सन् १६४१ के उस भारत विख्यात साधु सम्मेलन में जगद्गुरू शंकराचार्य के प्रधान परामर्शदाता पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ महाराज थे।

महामना मदनमोहन मालवीय, स्वमी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय हिन्दू महासभा के जन्मदाता थे और देवता स्वरूप भाई परमानन्द के स्वर्गवास और स्वातन्त्रय वीर सावरकर के रोग–ग्रस्त हो जाने पर हिन्दू महासभा के कर्मठ नेता ओर हिन्दुत्व के लिए अपने प्राणों तक का मोह छोड़ कर योद्धा के समान दिन रात संघर्ष–रत रहने वाले महन्त दिग्विजयनाथ ही थे।

उन्होंने डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी को गोरखपुर बुलाकर उनको हिनदु महासभा के महाधिवेशन का जब अध्यक्ष घोषित किया था, तब महन्त महाराज मुझे लखनऊ से गोरखपुर ले जाना चाहते थे। मैं डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी से मतभेद रखता था। इस कारण मैंने महन्त महाराज के आग्रह करने पर भी गोरखपुर के हिन्दु महासभा के अधिवेशन में जाना स्वीकार नहीं किया। आगे चलकर डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी हिन्दू महासभा को छोड़कर चले गये और भारतीय जनसंघ की स्थापना करके हिन्दू महासभा को नितांत निर्बल बना दिया। ऐसी स्थिति में महन्त महाराज को डॉ० मुखर्जी के प्रति क्षोभ होना स्वाभाविक था।

गोरखपुर में महाराणा प्रताप कालेज की स्थापना करके और वहाँ महाराणा प्रताप की भव्य मूर्ति सुशोभित करके महन्त दिग्विजयनाथ जी गोरखपुर के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। मैंने उनकी युवावस्था देखी थी और उनकी वृद्धावस्था को भी देखा। युवावस्था में वे कितने प्रचण्ड थे, कितने प्रबल थे और कितने दयालु, उदार और गम्भीर थे, यह मैंने निकट रहकर देखा। वे मेरा

सम्मान करते थे, प्रशंसा करते थे और गोरखपुर में मेरे भाषणों का आयोजन कराके अध्यक्ष पद को सुशोभित करते थे।

जयपुर राज्य के प्रधानमंत्री सर मिर्जा इस्माइल ने जब मुझे मेरी जन्म भूमि जयपुर राज्य से निर्वासित कर दिया और दिल्ली में ५४ दिनों तक भीषण अनशन करके मैं मृतप्राय हो गया था, मेरी मृत्यु में एक दो दिनों की ही देरी थी, ऐसे समय में महन्त महाराज की प्रेरणा से अखिल भारत हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी का अधिवेशन दिल्ली में किया गया। स्वातंत्र्य वीर सावरकर और डाक्टर मुंजे को मेरे प्राण बचाने के लिए वे मेरे पास लाते रहे। और उन्होंने सम्मान पूर्वक मेरा अनशन समाप्त कराने के लिए दिन–रात प्रयत्न किए। वीर सावरकर और डाक्टर मुंजे तथा हिन्दू महासभा के समस्त नेताओं से उन्होंने यह घोषणा करवायी कि स्वामी रामचन्द्र वीर के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जयपुर में हिन्दू महासभा प्रबल आन्दोलन करेगी। इसी आधार पर स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने दिल्ली के दीवान हाल में प्रचंड वर्षा ऋृतु में सहस्त्रों नर–नारियों के बीच मेरा ५४ दिन का अनशन समाप्त करवाया था।

दिल्ली के प्रसिद्ध फोटोग्राफर रामनाथ सेठ से महन्त महाराज ने अपनी उपस्थिति में मेरे फोटो उतरवाये थे। दिल्ली के निगम बोध घाट से मुझे उठाकर मोटर में सुलाकर दीवान हाल में लाना और मार्ग में ही रामनाथ फोटोग्राफर से मेरे चित्र खिंचवाना महन्त महाराज की अगाध ममता का सूचक है। मेरा वह अनशन जब तक समाप्त नहीं हुआ, महन्त महाराज दिल्ली में रह कर मुझे जीवित रखने के लिए निरंतर प्रयत्न करते रहे और अनशन समाप्त होते ही वे गोरखपुर चले गये।

भारत का विभाजन हो गया था। पंजाब और सिंध के लाखों हिनदू शरणार्थी बन कर भारत के कोने कोने में भटक रहे थे। ऐसे समय में महन्त दिग्विजयनाथ महाराज गोरक्षनाथ मंदिर के महान् मठ के अधिपति अपने वैभव और सुख सुविधाओं को ठुकराकर गोरखपुर से दूर–दूर की यात्रा करते हुए कभी जवाहर लाल नेहरू को काले झण्डे दिखाते थे और कभी पं० गोविन्द वल्लभ पन्त के विरूद्ध, हिन्दू महासभाई युवकों के साथ विरोध प्रदर्शन करते थे।

खिचड़ी के मेले पर लाखों हिन्दू भक्तिभाव पूर्वक महन्त महाराज के चरणों में गोरक्षनाथ मंदिर में आकर प्रणाम किया करते हैं किन्तु अपने महान् सिंहासन का ध्यान छोड़कर वे स्वयं खड़े होकर भीड़ का नियंत्रण किया करते थे। अभिमान ने तो उन्हें स्पर्श भी नहीं किया था। वे ममता की मूर्ति, उदारता के श्रृंगार, और प्रचण्डता के प्रतीक थे।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि :–

के वे साक्षात् आदर्श थे।

मैंने गोहत्या विरोधी आन्दोलन प्रारंभ किया। इंदिरा गांधी की सरकार ने मेरे अनशन के ३२ वें दिन मुझे पुलिस द्वारा उठवाकर दिल्ली के हिन्दू महासभा भवन से तिहाड़ के कारागार में पहुँचा दिया। मेरे १६६ दिन के अनशन के बीच में ही प्राचार्य धर्मेन्द्र शर्मा को अनशन के जब ५२ दिन हो गये, और धर्मेन्द्र जी के प्राण संकट में पड़ गये, उनकी धर्म पत्नी सौ० प्रतिमा देवी और छोटे–छोटे शिशु व्याकुल और व्यथित थे, ऐसे समय में धर्मेन्द्र जी के प्राण बचाने के लिए

गोरक्षनाथ पीठाधिपति महन्त् दिग्विजयनाथ महाराज रात्रि के ८ बजे जगदीशपुरी के जगद्गुरू शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ महाराज को लेकर तिहाड़ के कारागार में पधारे और उन्होंने जगद्गुरू महाराज के पवित्र करकमलों से धर्मेन्द्र जी का अनशन समाप्त करवाकर उनके प्राण बचा लिये। धर्मेन्द्र जी को महन्त महाराज कितनी आत्मीयता से गले लगाते थे इसमें उनकी ममतामयी भावना का स्मरण होता है।

महन्त दिग्विजयनाथ लोकसभा के सदस्य थे, और भारत सरकार की नीति के घोर विरोधी, गांधीवाद के प्रबल आलोचक तथा हिन्दू राष्ट्र के अनुपम नेता थे। उनको खोकर हिन्दू महासभा का तो मेरूदण्ड ही टूट गया है। कुछ वर्ष पूर्व महन्त महाराज जब हृदय रोग से पीड़ित थे और उनके प्राण संकट में थे, तब उन्होंने अपने परम प्रिय शिष्य अवेद्यनाथ जी महाराज (छोटे बाबा) को पास बैठाकर कहा– मैं जा रहा हूँ तुमसे विदा होते समय मैं तुमसे यही याचना करता हूँ कि हिन्दू महासभा का कभी त्याग मत करना, और जनसंघ का सदस्य मत बनना।

जब अवेद्यनाथ महाराज ने अपने गुरूदेव की आज्ञा स्वीकार कर ली तब सहसा चमत्कार हो गया। बुझते दीपक में तेल गिरते ही जिस प्रकार ज्योति बढ़ती है उसी प्रकार महन्त दिग्विजयनाथ महाराज के शरीर में नवजीवन का संचार हो गया और वे मरते मरते स्वस्थ और सबल हो गये। ऐसे अनुपम हिन्दू राष्ट्रवाद के अराधक थे महन्त दिग्विजयनाथ महाराज। उनके स्वर्गवास से भारतवर्ष में मेरा सबसे अधिक सबल हित चिन्तक और अनुपम मित्र उठ गया। मैं स्वर्गीय महन्त महाराज के यशस्वी उत्तराधिकारी वर्तमान महन्त अवेद्यनाथ महाराज की गुरु–भक्ति, राष्ट्रभक्ति, देशभक्ति तथा गोरखनाथ सम्प्रदाय की रक्षा की भावना से परिचित हूँ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि वर्तमान महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज अपने गुरूदेव के सुयश को सुरक्षित रखते हुए गोरखनाथ मंदिर और हिन्दू समाज के अभ्युथान के लिए अग्रसर रहेंगे।

卐

महन्त श्री दिग्विजयनाथ

महन्त श्रेयोनाथ योगी

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारत के प्रख्यात सूर्यवंश के बाप्पारावल के कुल में एक बालक ने जन्म लिया। उस समय कौन जानता था कि इस बालक के भाग्य में हिन्दू राष्ट्र का महान् प्रहरी होने का सौभाग्य प्राप्त करना लिखा है? परन्तु आदिनाथ शंकर की जब करूणा होती है तब कई ऐसी घटनाएँ हो जाया करती हैं, जिनका पूर्वानुमान करना सामान्य जन के लिए सम्भव नहीं हुआ करता। ऐसा ही प्रसंग हमारे चरित्रनायक के सन्दर्भ में भी उपस्थित हुआ। यह अभी बालक ही थे कि भाग्यवश नाथ–सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और कालान्तर में सम्प्रदाय के प्रवर्तक तथा आचार्य महामहिमा–मण्डित गुरू श्री गोरक्षनाथ जी की गद्दी के उत्तराधिकारी महन्त पद पर प्रतिष्ठित हुए।

देश स्वाधीन हुआ। संविधान निर्माताओं ने इसका स्वरूप 'धर्म–निरपेक्ष रखा'। इस 'धर्मनिरपेक्षता' ने जब 'धर्म–विहीनता' का स्वरूप ग्रहण करना प्रारम्भ किया तब राष्ट्र का प्रबुद्ध वर्ग चौंका। स्वर्गीय श्री स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर, स्वर्गीय श्री श्यामा प्रसाद मुखर्जी तथा हमारे चरित्र–नायक स्वर्गीय महन्त श्री दिग्विजयनाथ इस वर्ग के प्रख्यात दिग्गजों में गिने जाते हैं। प्रथम दोनों महानुभावों का असमय में ही निधन हो जाने से उनके कार्य का उत्तरदायित्व भी हमारे चरित्र नायक पर आ पड़ा और इतिहास साक्षी है कि स्वर्गीय महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी ने इस उत्तरदायित्व को अपनी आखिरी साँस तक बड़ी निष्ठा और तन्मयता से निभाया।

हिन्दू राष्ट्र के ध्येय की पूर्ति के निमित्त वह अपने जीवन के अन्तिम दिन तक कार्य करते रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त आपको अखिल भारतवर्षीय हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष पद का गम्भीर उत्तरदायित्व सौंपा गया, वे इसके अध्यक्ष बने और उसका कार्य सुचारूरूप से निभाया। यह ऐसा समय था जब देश एक बहुत बड़े व्यामोह से ग्रस्त था। हिन्दू का नाम लेना, अपने आप को हिन्दू कहना, 'अराष्ट्रीय' समझा जाता था। उन दिनों आर्य–परम्परा तथा भारत की संस्कृति से शून्य अनेक आंग्ल भाषा पढ़े लिखे लोगों ने नाक सिकोड़ कर कहना प्रारम्भ किया था कि 'हम तो घटनावश हिन्दू हैं अन्यथा यह सब ढकोसला है, गुरूडम है।' बप्पारावल के कुल में जन्में तथा नाथ–सम्प्रदाय के आचार्य की गद्दी पर विराजमान श्री दिग्विजयनाथ के लिए हिन्दू जाति में ऐसी स्थिति का उत्पन्न होना असह्य था। यह स्थिति हिन्दू जाति के अस्तित्व के लिए एक चुनौती थी। उन्होंने सच्चे क्षत्रिय तथा साधु की भाँति इस चुनौती को स्वीकार किया। वे इसके विरूद्ध डट कर खड़े हो गये। उन्होंने लोकसभा चुनाव के समय स्वयं प्रत्याशी होकर 'हिन्दूराष्ट्र' की स्थापना के निमित्त देश का आह्वान किया। चुनाव के समय में एक एक वोट का महत्त्व होता है। वोट प्राप्त करने के लिए लोग भाँति भाँति की बोलियां बोलते हैं। अनेक व्यक्ति मिथ्या आश्वासन तक देने

में नहीं हिचकिचाते। ऐसे विकट समय में ही साहस की परीक्षा हुआ करती है। महन्त श्री दिग्विजयनाथ इस कठिन परीक्षा में काँच न सिद्ध हुए। उन्होंने चुनाव सभा में डंके की चोट से कहा :–

'मैं प्रत्येक स्वाभिमानी हिन्दू से यह अपेक्षा करता हूँ कि वह मेरे पक्ष में मतदान कर मुझे लोक सभा के चुनाव में सफल बनाने के लिए प्रयत्न करे, परन्तु साथ ही मैं यह साफ कह देना चाहता हूँ कि कोई भी ऐसा व्यक्ति मेरी मतदान–पेटी में अपना मत–पत्र न डाले जो अपने आप को हिनदू न मानता हो। यदि किसी ऐसे व्यक्ति ने मेरी मत–पेटी में मत–पत्र डाल दिया तो मुझे अपने समूचे मत–पत्र गंगाजल से धुलवाकर शुद्ध करने होंगे।

महन्त श्री दिग्विजयनाथ के इन शब्दों में महाराणा प्रताप का ओजस्वी रक्त तथा शिवाजी का पराक्रम बोल रहा था और वह धर्म–निरपेक्षता अर्थात् धर्म–विहीनता को अपने जीवन का लक्ष्य मानने वालों को अपना स्वरूप पहचाननें को ललकार रहा था। महन्त श्री दिग्विजयनाथ चुनाव में अपने विरोधी को, चारों खाने चित्त गिरा कर, प्रबल बहुमत से जीते और अन्तिम स्वाँस तक लोकसभा के पटल पर हिन्दू जाति की रक्षा तथा हिन्दू राष्ट्र निर्माण के लिए सिंह–गर्जना करते रहे। उनकी वाणी से जहाँ भीरू काँपते थे वहाँ शूरवीरों में साहस का संचार होता था। ऐसे प्रतापी व्यक्तित्व के धनी थे हमारे महन्त श्री दिग्विजयनाथ।

अखिल भारतवर्षीय योगी महासभा के वह आजीवन अध्यक्ष रहे। उनके साथ मुझे उपाध्यक्ष के रूप में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने यह कार्य भी बड़ी तन्मयता से किया।

महन्त श्री दिग्विजयनाथ आज हम सबके मध्य मात्र यशः कायावशेष हैं। उनके कैलाशवास से जो रिक्तता आई है उसका पूर्ण होना कठिन है।

हमारा यह कर्तव्य है कि हम् उनके अधूरे को पूर्ण करें। दिवंगत आत्मा के प्रति हमारे सद्भाव तथा श्रद्धा को प्रकट करने का एकमात्र यही मार्ग है और उनके वार्षिक श्राद्ध के दिन ऐसा संकल्प करना ही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि है।

卐

हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दुस्तान के महान् रक्षक—

ब्रह्मलीन श्री महन्त दिग्वीजयनाथ जी महाराज

भक्त रामशरण दास, पिलखुआ

भारत के प्रसिद्ध महान् धर्माचार्य तथा महासभा के तेजस्वी नेता व संसद सदस्य पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय स्वनाम धन्य गोंरक्ष पीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित १००८ श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज गोरक्षनाथमठ गोरखपुर जिनका अभी कुछ वर्ष पूर्व २८ सितम्बर १९६९ ई० को ब्रह्मलोक प्रयाण हुआ है, हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म, एवं हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति के महान रक्षक थे। आप एक बालब्रह्मचारी सुसंस्कृत, तथा हिन्दी आदि अनेकों भाषाओं के विद्वान थे। अंग्रेजी भाषा पर भी आप का पूर्ण अधिकार था। श्री गोरक्षनाथ सम्प्रदाय के वे सबसे बड़े महन्त थे। आप उदयपुर महाराणा के बंश के थे। आपने अपना समस्त जीवन जहाँ भजन, पूजन, योगसाधना, देव मंदिरों के निर्माण तथा विद्यालयों के खोलने में लगाया, वहाँ आपने भारत माता को स्वतंत्र कराने में खुलकर भाग लिया और क्रूर अंग्रेजों से डटकर टक्कर लिया। इस हेतु उन्हें कारावास की यातनायें भी सहनी पड़ी। आपने जिस समय देखा गोरे अंग्रेज के चले जाने के बाद अब यह काले अंग्रेज, कांग्रेसी हिन्दू जाति का सर्वनाश करने पर उतारू हो गये हैं तो आपने, हिन्दू जाति, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए उनसे भी खूब डट कर टक्कर लिया ओर जेल की घोर यातनायें सहन करने के पश्चात् भी अपना पग पीछे नहीं हटाया। आप यद्यपि एक सन्त थे, भारत विख्यात महन्त थे और हिंसा से कोसो दूर थे पर गाँधी की मुस्लिम भक्ति और हिन्दुओं को कायर बना देने वाली शास्त्र विरोधी अहिंसा के घोर विरोधी थे। आप श्रीमद् भगवत् गीता के 'मामनुस्मर युद्धंच' के पुजारी थे। आप का विश्वास शक्ति और शास्त्र के समन्वय में था। आप केवल माला घुमाने वाले और गद्दी पर पड़े रहने वाले महन्त नहीं थे। आप उन श्रेष्ठ महापुरूषों की कोटी में गिने जानेवाले महापुरूष थे जिसमें जगद्गुरू शंकराचार्य, वीर बन्दा बैरागी समर्थगुरू रामदास, गुरू तेगबहादुर आदि की गणना की जाती है। जहाँ कहीं और जब कभी वे हिन्दू जाति पर प्रहार देखते थे तिलमिला उठते थे और तुरन्त उसकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ते थे। संसद में पहुँच कर आपने हिन्दुत्व विरोधी शक्तियों को मुह तोड़ उत्तर दिया और निर्भिकता तथा दृढ़ता के साथ अपने विचारों को सदन में प्रस्तुत किया। संसद के माध्यम से अल्पकाल में ही आपने देश और हिन्दू जाति की जो सेवा की वह स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेगी।

आप पद और मान के कभी भूखे नहीं रहे। आप समस्त भारत के पचास करोड़ हिन्दुओं के भगवान श्री गोरक्षनाथ के सम्प्रदाय के सबसे बड़े महन्त होने के साथ ही महाराजाधिराज श्री नेपाल नरेश के भी धर्म गुरू थे। बड़े बड़े राजा और महाराजा आपके चरणों में नत मस्तक होते थे। श्री महन्त जी महाराजा के विचारों पर चलकर ही देश एवं धर्म की रक्षा सम्भव है। 卐

महन्त दिग्विजयनाथ की अहैतुकी राष्ट्र–भक्ति

स्वामी सत्यानन्द

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तमहं देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षवे शरणमहं प्रपद्ये।।

भारत की यह भूमि सदैव महापुरूष प्रसविनी रही है। हमारे परम पूज्य १०८ श्री महन्त दिग्विजयनाथजी महाराज का प्रादुर्भाव भी ऐसे ही देव–कोटि महापुरूषों में है। ईसाई धर्म की मदान्धता से मदांध अंग्रेज भारत के शोषणार्थ सभी प्रकार के कुत्सित एवं जघन्य आधारों पर शासन चला रहे थे। उस निरंकुश अत्याचारी ब्रिटिश शासन को देखकर महंत जी का ह्रदय विद्रोही बन गया। बाल्यकाल से ही बीतराग, संसार के समस्त वैभव और सुखोपभोगों से विमुख, गम्भीर तत्वों के अनुसंधान में अनवरत सचेष्ट, बाल ब्रह्मचारी महंत दिग्विजयनाथ जी ने वैराग्य का सबसे कठिन मार्ग अपनाया तथा स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय सहयोग दिया। किन्तु मुसलमानों के विश्वासघात के कारण उनकी पवित्र आत्मा को बड़ी ठेस लगी। सन् १९२४ से १९३७ तक मुसलमानों द्वारा मंदिरों और हिन्दू ललनाओं का जो अपमान हुआ, उसे सहन न कर सकने के कारण वे हिन्दू संगठन में निरंतर सचेष्ट रहे। आजादी मिली। देश का बँटवारा हुआ। पाकिस्तान के हिन्दुओं का संहार ओर सम्पत्ति–हरण से उनका मन विक्षुब्ध हो उठा। वे कांग्रेस से सदैव मुस्लिमपरस्ती के विरोध में लड़ते रहे। ऐसे महान् व्यक्ति के दर्शनों की अभिलाषा लेकर मैं २७ अप्रैल १९६९ ई को अखिल भारतवर्षीय हिन्दूमहासभा का सम्मेलन देखने नागपुर गया। नागपुर स्टेशन के प्लेटफार्म पर गौर वर्ण, कर्ण कुण्डल सुशोभित रेशमी गेरूआ परिधानवेष्ठित लम्बे किन्तु स्वस्थ व्यक्तित्व वाले वृद्ध को देखकर अनायास ही जनता आकर्षित हो उठी थी। दूर से दर्शन कर आशीर्वाद लेने के लिए चरण वन्दना हेतु झुका। बीच ही में दोनों हाथों से उठा लिया और कहा कि तुम स्वामी हो, गेरूआ वस्त्र में हो। पुनः परिचय में कर्नलगंज गोंडा का नाम सुनते ही कहा कि पूरन नहीं आया है? मैं उससे मिलना चाहता था। अच्छा आओ, चलें।

डा० श्री खरे जी के बंगले पर पहुँचा। वहाँ उनका भव्य स्वागत देखकर अनायास मन कह उठा, 'अहा ! कितने निस्पृह निरभिमानी हैं पूज्य महन्त जी'। हिन्दू–गौरव–मार्तंड हमारे सरीखे अपरिचित सन्यासी के प्रति भी कितना सौजन्य, कितना सह्रदयता व्यक्त करते है। महंत जी ने गोरखपुर से आये हुए एक कार्यकर्ता को बुला कर मेरे साथ न्यू इंगलिश स्कूल भेजा, जहाँ प्रतिनिधियों का निवास था। श्री महंत जी ने कार्यकर्ता को आदेश दिया कि मुझे एक अलग कमरे में ठहराये, जिससे मेरे भजन–पूजन में कोई बाधा न पड़े। अधिवेशन में सिंह की दहाड़ के समान उनका ओजस्वी भाषण सुनकर हिन्दुत्व की जाग्रत मूर्ति के दर्शन हुए। उतने बड़े अधिवेशन में केवल महंत जी का ही व्यक्तित्व दमक रहा था। मैंने समीप पहुँच कर मिलने के लिए समय की इच्छा व्यक्त की। वे बँगले पर शाम को आने के लिए कह कर विषय–समिति की बैठक में भाग लेने चले गये। मैं भी शाम को मिलने श्री खरे के बँगले पर गया। मिले, मगर बहुत बड़े–बड़े आदमियों से, जो प्रायः सभी प्रान्तों से आये थे बात करते देख ठिठका। मगर वाह रे दिव्य दृष्टि ! 'आओ

स्वामी जी !' सम्बोधित कर पास में बैठा बातें करने लगे। पूरनमल जैन की परेशानियों को पूछने लगे। बताया, और मैने कहा महात्मन् ! मैं आपसे एकान्त में बातें करना चाहता हूँ और एकांत मिलता नहीं। महाराज ने कहा अच्छा, आज तो ये सब प्रान्तों के लोग बैठे हैं, कल आपको एक घंटे का समय दूँगा।'' मैं यह बात सुनकर कृत–कृतय हो गया। हर्ष–गद्गद् कण्ठ से प्रणाम करके चलने लगा। वे खड़े हो गये। उनके खड़े होते ही सब लोग खड़े हो गये। एक आदमी को बुला कर मोटर से प्रतिनिधि–निवास भेजने का आदेश दिया। दूसरे दिन पुनः शाम को मिलने गया, किन्तु वे बाहर गये थे। मिले नही। तिवारी जी को भेजा। मगर वे वहीं बैठकर प्रतिक्षा करने लगे और मैं प्रतिनिधि–निवास वापस आया। देखा महन्त जी बरामदे में चार छः आदमियों के साथ टहलते हुए बाते कर रहे हैं। क्या कोई कह सकता था कि यह वृद्ध है। पहुँच कर प्रणाम किया। बोले– देखो, मैं तो तुम्हारा यहाँ इन्तजार कर रहा हूँ।' मेरे आनन्दाश्रु झलक आये। मैंने कहा, मैं तो श्री खरेजी के बँगले से आ रहा हूँ। वहाँ मुझे ऐसा लगा कि यहाँ से चलें और आप यहाँ मिल गये। महाराज जी हमें साथ लेकर श्री खरे के बँगले पर आये। हाल में बैठे लोग आने लगे। फिर बहुत लोग हो गये और हम चाहते थे एकान्त। हमारी तरफ देखकर नौकर को आदेश दिया, सोनेवाले कमरे में दो सोफा डाल दो। हमें लेकर वह कमरे आये और एक आदमी पहरे पर नियुक्त कर दिया कि कोई भी एक घण्टे तक न आ सके। मैने विनयपूर्वक पूछा, महाराज ! हिन्दू धर्म भारत में क्या इसी तरह उपेक्षित पड़ा रहेगा? महन्त जी ने कहा, 'हम लोग हिन्दू धर्म के लिए लड़ रहे हैं और लड़ते रहेंगे। किन्तु किया क्या जाय ? कांग्रेस में तो सभी हिन्दू हैं। नई आजादी है, लोग स्वतंत्रता के आवेश में हिन्दुत्व को ही भुला देना चाहते हैं। मुसलमान फिर यहाँ सर उठाना चाहते हैं। इसके लिए एक प्रबल और संगठित आन्दोलन की आवश्यकता है।' मैंने पुनः प्रश्न किया, महाराज ! हिन्दुत्व के नाम पर क्या शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, आदि सम्प्रदायों का संगठन नहीं किया जा सकता है ? महंतजी ने कहा, 'निश्चय !और उसके लिए हमने प्रयास भी किये हैं; परन्तु जब व्यक्ति, चाहे वह गद्दीधारी हो या सामान्य नागरिक, स्वयं हिन्दू राष्ट्रीयता को अपने लिए नहीं चुनता, हिन्दू धर्म की भावना ही नष्ट हो जाती है। हमारे धर्म का सारा इष्ट चुनने की स्वतंत्रता में है। इस वैज्ञानिक हिन्दू धर्म में इष्ट की स्वतंत्रता बहुत बड़ा सिद्धांत है। इसके द्वारा समस्त संसार को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। इसलिए हिन्दू धर्म जो अपने–अपने सम्प्रदायों में इष्ट–चयन द्वारा समाजों की श्रृंखलायें निश्चित की गई हैं, उसी के कारण आज भी हम विश्व का मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं। स्वामी जी, आप समझें कि आधुनिक हिन्दू धर्म अधिकतर पौराणिक है। इसका प्रादुर्भाव बुद्ध के बाद ही तो हुआ है। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि ने हिन्दू संगठन की जिस शैली का प्रवर्त्तन किया था, वह पूर्णतः आधुनिक शैली है और जब तक हमारे आचार्यवर अपने विचारों को आधुनिकता में नहीं रँगते, तब तक क्या हिन्दू नवयुवक इधर आकृष्ट हो सकेगा ? क्या आप नहीं देखते कि हिन्दू युवक क्या चाहता है ? हिन्दू नवयुवक चाहता है परिवर्तन और क्रांति।' क्रांति कहते ही उनकी मुखाकृति रक्त वर्ण की हो गई। इस अवस्था में भी इतना जोश देखकर मैं स्तब्ध रह गया। पुनः मैंने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज, मंदिरों का सर्वेक्षण अब तक नहीं किया गया और प्रत्येक मंदिर में क्या राम–सेना द्वारा हिन्दू संगठन में क्रांति नहीं उत्पन्न की जा सकती है ?'' उन्होंने तत्काल प्रसन्न मुद्रा में कहा,

'स्वामी जी, हमने गोरखपुर में एक बार डा० मुञ्जे का स्वागत करने के लिए दस हजार श्री राम की सेना बनाई थी और वे सब एक जाति अहिर थे, जो हमारे चेले थे। यदि इस प्रकार मंदिरो के आधार पर राम सैनिक बनाये जायँ, तो निश्चित हिन्दू धर्म का महान् संगठन किया जा सकता है, जिससे विश्व–कल्याण सम्भव है और मैं आपको चार जिले देता हूँ, जहाँ मेरे लाखों शिष्य हैं। आप गोरखपुर आकर मिलें। मैं आपका सभी प्रकार का प्रबन्ध कर दूँगा। पूरन से कह देना कि फोन पर बात कर ले।' मैं प्रणाम करके वापस आया। रात के ६ बजे मीटिंग में बाहर टहलते हुए फुटपाथ पर अनायास भेंट हो गई। बोले, 'आओ, भीतर चलें।' स्कूल के भीतर एक कुर्सी पर बैठ कर इस अधिवेशन पर और वर्किंग कमेटी पर विचार करने लगे। महन्त जी ने हमें आदेश दिया कि जाओ और सभी प्रान्तीय प्रतिनिधि शिविरों में बाल सावरकर को मंत्री पदारूढ़ करने का प्रचार करो। मुझे विश्वास है कि तुम यह कर सकोगे। पूरन नहीं है, नहीं तो यह काम वह अच्छा कर लेता। मैने कहा, 'महाराज ! पूरन नहीं है तो उसका प्रतिनिधि ही सही।' उन्होंने हँसकर कहा, 'स्वामी जी हमें इस राजनीति से हट जाना पड़ेगा।' मैंने कहा, महाराज ! यदि आप किसी के द्वारा राजनीति में लाये गये होते तो ऐसा कहा जा सकता था, श्रीमान् तो स्वेच्छा से हिन्दू संगठन में हैं। आपके द्वारा ही हिन्दू महासभा की प्रतिष्ठा है। यदि आज आप अलग हो जायेंगे तो हिन्दू महासभा राजनीतिक दल नहीं रह सकता।' महाराज ने कहा, 'इस प्रकार के गन्दे वातावरण से जी ऊब चुका है। अच्छा, जाओ और बाल के लिए प्रचार करो।' मैं प्रणाम करके तिवारी जी के साथ प्रतिनिधियों से मिला, रिपोर्ट दी। महाराज ने कहा, 'बाल सावरकर मंत्री पद के योग्य हैं। अच्छा, प्रातः मैं गोदिया जाऊँगा तुम भी करनैलगंज पहुँचकर पूरन से मालूम कर लेना। अवश्य इस काम में जुट जाओ।' इतना कहकर वह बाहर आ गए। मैंने नहीं समझा था कि हमें महाराज के पुनः दर्शन नहीं होंगे। इस अन्तिम दर्शन की छबि आज भी नेत्रों के सामने नाच उठती है। वह उनकी अन्तिम गम्भिर वाणी 'हमें राजनीति से हट जाना पड़ेगा' प्रतिध्वनित हो उठती है। हृदय में एक वेदना का अनुभव होता है। हिन्दू धर्म को दिग्विजयी बनाने वाले दिग्विजयनाथ जी महाराज, हिन्दू धर्म के मार्तण्ड, बाल ब्रह्मचारी महंत जी के दुबारा दर्शन मैं न कर सका।

ऐसी थी उनकी अहैतुकी हिन्दू राष्ट्र–भक्ति, समस्त स्पृहाओं से रहित दिव्य, तथा परम मोक्ष प्रदान करने वाली। भविष्य के साथ सामञ्जस्य रखने वाले, प्रत्येक समस्या का अपना समाधान प्रस्तुत करने वाले, अपने व्यक्तित्व से हिन्दू जाति को गौरव–गरिमा से युक्त करने वाले साक्षात् देव आपके श्री चरणों में कोटिशः प्रणाम है।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्ति इत्थं–भूत–गुणो हरिः।।

卐

एक असाधारण व्यक्तित्व

महन्त लहरीदास उदासीन

ब्रह्मलीन महन्त श्री दिगिवजयनाथ जी महाराज को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हमारे समक्ष उनका देदीप्यमान व्यक्तित्व, अदम्य साहस, धार्मिक दृढ़ता, नीति–निपुणता, कार्य–कुशलता, और प्रत्युत्पन्नमतित्व मूर्ति हो जाता है साथ ही साथ उनकी जाज्वल्मान कृतियाँ चलचित्र की भाँति मस्तिष्क में घूम जाती हैं।

हमारी सच्ची श्रद्धांजलि तो इस बात में निहित हे कि हम उनकी नीतियों एवं कृतियों की रक्षा कर, उन्हें जन–जन तक पहुँचाएँ, ताकि उनसे अधिक से अधिक लोगों का कल्याण हो सके।

महन्त जी महाराज का जन्म उदयपुर के प्रसिद्ध राणा परिवार में हुआ था। विधि का विधान बड़ा ही प्रबल होता है। अखिल मानव वर्ग का नाथ होने के लिए ही मानो वे बाल्य–काल में ही अनाथ हो गये। आपके पितृत्व्य राणा फतेहबहादुर सिंह ने आपको अपने मार्ग का कण्टक समझा। सम्भवतः आपही सिंहासन के लिए चुने जाने वाले थे। ऐसी स्थित में आपको गोरक्षनाथ पीठ की सेवा में बाबा फूलनाथ को दे दिया था। उस समय गोरक्षनाथ पीठ के महन्त बाबा फूलनाथ के गुरूभाई श्री सुन्दरनाथ जी थे। श्री सुन्दरनाथ जी के दूसरे गुरूभाई श्री ब्रह्मनाथ जी ने आप को अपना शिष्य बना लिया। किन्तु यहाँ भी आपको प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। आपके गुरू तथा तत्कालीन महन्त के बीच गद्दी के लिए मुकदमा चल रहा था, जिसमें दुर्भाग्यवश आपके गुरू के विरूद्ध निर्णय हुआ। फलतः स्थान छोड़ देना पड़ा। हाई कोर्ट में अपील हुई, जिसकी पैरवी के लिए आपके गुरू गुजरात चले गये और आप स्वयं छात्रावास में रहने लगे। बलवती आत्माएँ प्रतिकूल परिस्थितियों में ही उन्नति करती हैं। इसी बीच श्री सुन्दरनाथ ब्रह्मलीन हो गये। आपने बड़ी कुशलता एवं दूरदर्शिता से मंदिर एवं सम्पत्ति की रक्षा–व्यवरथा पुलिस की सहायता से की। एक तार देकर आपने अपने पूज्य गुरू जी को बुला लिया। सामान्य संघर्ष के बाद आप के गुरू भी सन् १९३२ में महंन्त पद पर अभिषित्क हुए, किन्तु वे अधिक दिनों तक जीवित न रह सके।

संघर्षों से आप तनिक भी नहीं घबड़ाते थे। इतनी कठिनाइयों के बावजूद हिन्दू धर्म के लिए नये–नये संघर्षो में कूद पड़ना आप का स्वभाव था। जब आप आठवी कक्षा के विद्यार्थी थे, तभी स्थानीय शिव मंदिर को रेल विभाग ने गिरवाना प्रारम्भ किया था। आप तत्काल विंद्यार्थियों की सेना लेकर टूट पड़े और उसकी रक्षा की। तत्कालीन रेलवे इन्जीनियर ममीसाहब से समझौता हुआ। इस कांड में आप पकड़े गये थे। किन्तु बाद में छूट गये। इस घटना के दूसरे ही वर्ष ईसाइयों के बड़े कैम्प पर भी, जो गोरखनाथ मंदिर के हाते में ईसाई धर्म के प्रचारार्थ चल रहा था, आपने धावा बोल दिया और ईसाइयों को सदा के लिए वहाँ से मार भगाया। इस प्रकार अंग्रेजी हुकूमत में ईसाइयों को निकाल बाहर करना साधारण कार्य नहीं था।

सन् १९३५ में जब आपके पूज्य गुरु ब्रह्मलीन हुए, महन्त का गौरवपूर्ण दायित्व आपके कन्धों पर आगया। आप जो अनाथ थे, "नाथों" के भी नाथ हो गये। आपका सम्पूर्ण जीवन देश

एवं धर्म की प्रतिष्ठा में ही व्यतीत हुआ। धर्म की प्रतिष्ठा के लिए ही जहाँ आपने गोरक्षपीठ के पूज्य एवं गौरवपूर्ण आसन को स्वीकार किया, वहीं देश की प्रतिष्ठा के लिए राजनीति को भी अलंकृत किया। विचारों की मौलिकता आपके जीवन की प्रधान विशेषता रही है। आपका कहना था कि धर्म ही देश का प्राण है। जिस प्रकार प्राण के अभाव में शरीर की कोई शोभा नहीं, वैसे ही धर्म के अभाव में देश की कोई शोभा नहीं है। धर्म के प्रति आपका दृष्टिकोण बड़ा ही व्यापक रहा है। जिन भावनाओं, विचारों एवं कृत्यों से सम्पूर्ण मानव समाज के साथ ही साथ जीव-जन्तु तक को स्थायी रक्षा एवं कल्याण हो सके, वही धर्म है। इस व्यापक दृष्टिकोण पर सबसे खरा उतरने वाला यदि कोई धर्म है तो वह है 'सनातन हिन्दू धर्म'। यही शाश्वत मानव धर्म है। इसी की प्रतिष्ठा एवं सम्वर्द्धन में देश का स्थायी कल्याण है। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः, पर धर्मो भयावहः।' गीता का यह वाक्य आपके जीवन का दृढ़ आधार रहा है।

धर्म के प्रति मनुष्य का जो दायित्व है, वही देश के प्रति भी है। अतः आप एक धर्माचार्य होते हुए भी राजनीति से दूर नहीं रहे। आपका कहना था कि देश और धर्म का अटूट सम्बन्ध होता है। अतः देश की नीति धर्म से पृथक् नहीं हो सकती। इसलिए आपने जिस राजनीति मंच की सदस्यता स्वीकार की, उसका स्वरूप शाश्वत हिन्दू धर्म से भिन्न न हुआ। आज भी हम इसे हिन्दु महासभा के नाम से जानते हैं।

हिन्दू महासभा के मंच से सम्पूर्ण भारत के हिन्दुओं को संगठित कर आपने हिन्दुत्व की रक्षा की। हिन्दुत्व के प्रश्न पर बहुमत के अभाव में भी आप संसद में दृढ़ता पूर्वक बोलता रहे। एक बार अध्यक्ष ने पूछा की महन्त जी ! आप किस पार्टी से बोल रहे हैं ? आपने तत्काल उत्तर दिया "हिन्दू पार्टी से" जो हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी पार्टी है। यहाँ बैठे हुए बहुसंख्यक लोग हिन्दू ही हैं।

देश के प्रश्न पर आपका स्पष्ट विचार था कि हिन्दुस्तान हिन्दूओं का है। हिन्दू, हिन्दी एवं हिन्दूस्तान के विरूद्ध बोलने वाले देशद्रोही हैं। उन्हें देश में रहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। जब कभी कोई भी वर्ग आपके विरूद्ध बोलने की चेष्टा करता था, आप प्राण-पण से उसका विरोध करते थे। इसलिए कुछ विरोधी आपको मुसलमानों का कट्टर शत्रु कहा करते थे, किन्तु आप उन सभी के प्रबल विरोधी थे, जो हिन्दी, हिन्दू, एवं हिन्दूस्तान के विरोधी थे, चाहे वे किसी भी वर्ग के हों।

महन्त जी की कृतियाँ उनके सांस्कृतिक मनोभावों एवं राष्ट्र प्रेम की परिचायक है। महन्त पद पर आसीन होते ही आपने मंदिर के सर्वांगीण विकास का पूर्ण ध्यान दिया। जलाशय, उद्यान, मंदिर-मार्ग, सन्त-निवास, अतिथि भवन, पुस्तकालय एवं गोशाला के साथ ही साथ मंदिर का भव्य एवं अपूर्व भवन बनवाने में कुछ उठा नहीं रखा। संस्कृत भाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की। नाथ साहित्य के प्रकाशन एवं धर्म के प्रचार के लिए "दिग्विजयनाथ ट्रस्ट" की स्थापना की। तकनीकी एवं व्यवहारिक शिक्षा के लिए आपने शिक्षण संस्थाओं को जन्म दिया, यथा महाराणा प्रताप पालीटेकनीक कालेज, दिग्विजयनाथ स्नातक महाविद्यालय, महाराणा प्रताप इण्टर कालेज एवं शिशु बिहार आदि।

हिन्दू, हिन्दी एवं हिन्दुत्व की प्रतिष्ठा एवं रक्षा में अपना सर्वस्व अर्पित करने वाले तथा

अपने मौलिक विचारों एवं असाधारण व्यक्तित्व से देश और धर्म को गौरवान्वित करने वाले महापुरूषों में आपका नाम सदैव श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाएगा।

योग्य गुरू की गौरव–परंपरा को निष्ठापूर्वक आगे बढ़ाने वाले आपके उत्तराधिकारी महन्त श्री अवेद्यनाथ भी आपके समान दूरदर्शी, कर्तव्यपरायण तथा देश एवं धर्म के प्रतिपूर्ण निष्ठा रखने वाले हैं। गुरू के प्रति आप के अगाध प्रेम के फलस्वरूप ही गत वर्ष 'श्री दिग्विजयनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय' की स्थापना हुई। आशा ही नहीं विश्वास है कि आपकी छत्रछाया में आश्रम की उन्नति के साथ ही साथ ब्रह्मलीन महन्त जी की नीतियों का पूर्ण प्रचार एवं प्रसार होगा। यही होगी महन्त जी के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि।

卐

अनुकरणीय महन्त जी

कृष्ण कुमार मिश्र

जब भी हम ब्रह्मलीन महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज की याद करते हैं, अन्तरात्मा को ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमारे बीच अब भी विद्यमान हैं। जब हम महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, गोलघर की सौन्दर्य बढ़ाने वाली दूकानों की लम्बी श्रृंखला और गोरक्षनाथ जी के विशाल नवनिर्मित होने वाले मंदिर के सामने पहुँचते हैं, तो पूज्य महन्त जी एक बार ओजभरे शब्दों में यह कहते स्वयं साकार हो जाते हैं कि मैं यह सब तुम्हारे लिए ही तो कर रहा हूँ। महन्त जी का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष का जीवन रहा है। वे अपनी सत्य निष्ठा और कर्तव्य परायणता के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। वे कर्मयोगी थे। जिये तो समाज के लिए और मरे तो समाज के लिए। आज उनकी पुनीत पुण्य तिथि पर उनकी अनेक स्मृतियाँ सजीव हो उठी हैं। कंठ अवरूद्ध है, लेखनी स्तब्ध है और बुद्धि किंकर्तव्य–विमूढ़ हो चली है। एक अचेतन अवस्था में मैं सूखे हाथ, गीले नेत्र, श्रद्धा के सुमन उस महापुरूष के चरणों में समर्पित करता हूँ और उनकी समस्त सामाजिक सेवाओं का अनुकरण कर उस पर चलने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

एक मधुर स्मृति

बाबा नौमीनाथ

मेरे गुरूभाई, पूर्ण आत्मीय तथा सर्वजन–पूज्य महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज की स्मृति आते ही नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं। आँखें बन्द करते ही ऐसा आभास होता है कि वह सामने ही तो आम्र वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं और भक्त–मण्डली उन्हें चारो ओर से घेरे हुए है। हास–परिहास चल रहा है। बीच में कभी–कभी टेलीफोन भी आ जाता है। श्री महाराज चाय भी पीते जाते हैं और पहले से उपस्थित महानुभावों की मनोभावनाओं की पूर्ति भी करते जा रहे हैं। कभी गोरखनाथ जी के मन्दिर के भव्य निमार्ण की बाते होती हैं, तो कभी शिक्षा क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। कभी डिग्री कालेज और महाविद्यालय की समस्यायों पर वे विचार करते हैं, तो कभी शिशु–विहार के नन्हे–मुन्ने बालको की शिक्षा की ओर उनका ध्यान चला जाता है। इतने व्यक्तित्वों से एक साथ व्यवहार कर पाना उन जैसे महापुरूष का ही काम था। आज, जब वे हमारे बीच में नहीं है और हम उनके द्वारा किए गये कार्यों पर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो हमें विश्वास ही नहीं होता कि इतने अलौकिक एंव महान कामों को अकेले एक व्यक्ति ने किया है ? किन्तु उन्होंने सब काम साथ ही किया। निश्चय ही वे मानव न होकर देवता थे, तभी तो उन्होंने एक बार पुनः समस्त संसार में श्री भगवान् गोरक्षनाथ जी के गोरखपुर स्थित मन्दिर को चमका दिया। वे अपने आप में एक संस्था थे, विचारों के पुंज थे। उनमें एक साथ महात्मा और नेता दोनों के गुण विद्यमान थे।

प्रातःकाल उठते ही भगवान् गोरक्षनाथजी के दर्शन करके वे पूरे मन्दिर और मठ के विस्तृत क्षेत्र का चक्कर लगाते थे और सारी आन्तरिक व्यवस्था का निरीक्षण करके सम्बन्धित कर्मचारियों को उचित आदेश एवं परामर्श देते थे। इतने व्यस्त होने पर भी गाँव–गाँव में लाखों लोगों को वे व्यक्तिगत रूप से जानते थे। भोजपुरी भाषा से उन्हें बहुत प्रेम था और जिस किसी से उनका विशेष स्नेह होता था उससे भोजपुरी भाषा में ही बात करते थे। अंग्रेजी के उच्चकोटी के ज्ञाता होने पर भी उन्हें संस्कृत भाषा से विशेष प्रेम था। इसलिए उन्होंने श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना मंदिर के ही पार्श्व भाग में की, जिससे उचित देख–रेख हो सके। गोहत्या बन्द कराने के लिए उन्होंने प्राणों की भी बाजी लगा दी थी। ७ नवम्बर १९६७ को दिल्ली में आयोजित विराट् गोरक्षा–प्रदर्शन में वे स्थान के श्री मौनीबाबा, बाबा हीरानाथ, बाबा शम्भूनाथ, शिवप्रसाद विश्वकर्मा, गिरिजा बल्लभ त्रिपाठी एवं श्री बलदाऊ जी आदि भक्तों के साथ एक बहुत बड़ा जत्था लेकर दिल्ली गये और अश्रु गैस के शिकार भी हुए उनके साथ मैं बराबर छाया की भांति विद्यमान था। वहाँ बड़ी कठिनाई से उनके प्राण बचे थे।

उनकी गाथा लम्बी है। उनकी याद जब आती है तो स्मृति–श्रृंखला टूटती ही नहीं। उनकी लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि जब उन्हें समाधि दी जा रही थी, तो कम से कम १५ लाख जनता उनको अन्तिम विदाई देने के लिए उपस्थित थी। जब भी उनकी मधुर स्मृत आती

है, कलेजे में हूक उठती है और माया मोह से परे हम साधु सन्यासियों की पलकें भी गीली हो जाती हैं। कभी सोचा ही न था कि वे हमसे अलग भी होंगे, किन्तु क्रूर काल उन्हें हमसे छीन ले गया। नहीं, वे अब भी हमारे बीच में हैं। हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दूस्तान की रक्षा के लिए सतत् संघर्ष करते रहने की, वे आज भी प्रेरणा दे रहे हैं। उनकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखलाना है।

उनकी स्मृति हिन्दू मात्र के मानस–पटल पर दीर्घ काल तक छाई रहेगी। श्री भगवान् गोरक्षनाथ जी ने उन्हें निश्चित ही कैवल्य (मोक्ष) प्रदान किया है। ऐसा दुलर्भ जीवन वस्तुतः न भूतो न भविष्यति। ओऽम् शान्तिः !! शान्तिः !! शान्ति !!

卐

देवता स्वरूप महन्त जी

प्रजापालन शर्मा

जिन व्यक्तियों को श्री महन्त जी के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे यही अनुभव करते हैं कि श्री महन्त जी साक्षात् देवता थे। क्या मैं उस दिन को कभी जीवन में भूल सकूंगा कि रानी खेत में जब मैं टहल कर देर से आया था, तब मैंने देखा कि मेरे कारण महाराज जी ने भोजन नहीं किया है और मुझे अपने साथ बैठा कर भोजन कराया। मैं उनको जीवन पर्यन्त देवता मानता रहा और आज भी देवता मानता हूँ।

एक पुण्य स्मरण

ब्रजनारायण 'बजेश'

हिन्दुस्तान के दीर्घकालीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह विश्वास पुष्ट हो जाता है कि इस देश की सुरक्षा अदृश्य शक्ति के द्वारा समय–समय पर होती रही है। धर्मप्रधान देश होने के कारण आस्तिकता की भावना ने जो जड़ यहाँ जमायी है, उसको हिलाने, नष्ट–भ्रष्ट करने हेतु वाह्य तथा आन्तरिक आसुरी शक्तियों ने कोई कसर नहीं उठा रखी। संसार के अन्य अनेक देश अपना स्वरूप तथा आस्तित्व तक खो बैठे। उनका अतीत पुस्तकाकार रूप में इतिहास की सामग्री बनकर रह गया। किन्तु सबसे प्राचीन और सबसे अधिक आपत्तियों से जूझते हुए धर्म–प्राण हिन्दुस्तान ने अपने स्वरूप की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष किया है और आज भी संघर्षरत है।

प्रागैतिहासिक काल की चर्चा तो दूर, परकीयों द्वारा प्रस्तुत तथ्यों से जो प्रकाश इतिहास के धूमिल पृष्टों पर पड़ता है, उससे अदृश्य शक्ति की सहायता स्पष्ट परिलक्षित होती है। राष्ट्र दिग्भ्रान्त हा`कर कर्तव्य–विमूढता की स्थिति में जब भी पहुँचा, उसी समय महापुरूषों ने अवतरित होकर एक नवीन चेतना, नव्यस्फूर्ति, अदम्य साहस एवं अपूर्व धर्म–निष्ठा के द्वारा राष्ट्र को पुनर्जीवित किया। जगद्गुरू शंकराचार्य ने अल्प आयु में ही आकाश मार्ग से इस विशाल देश की सम्पूर्ण यात्रा करके जो उद्धार कार्य किया, ठीक वैसे ही आचार्य गोरक्षनाथ जी ने अपने योग–बल से न केवल भारतवर्ष अपितु भारत के निकटवर्ती प्रदेशों रूस, चीन, जापान, मंगोलिया, जावा, सुमात्रा, बाली, इन्डोनेशिया, मलेशिया, बर्मा, तिब्बत, नेपाल आदि में अपने सिद्धान्तों के प्रसार से धर्म का जो झण्डा फहराया, ऐतिहासिकों के लिए वह आज भी खोज की वस्तु बनी हुई है। योग तथा ज्ञान के दुरूह मार्ग को जन साधारण की पहुँच से बाहर देखकर ही श्री ज्ञाननाथ जी ने गीता पर ज्ञानेश्वरी टीका लिखकर कर्म के क्षेत्र में ज्ञान–योग एवं भक्ति–योगका जो संगम किया, उसमें आज भी लक्ष–लक्ष जन–समुदाय अवगाहन कर अपने को धन्य अनुभव करता है। गुरू गोरक्षनाथ जी ने अपनी तपस्या के बल पर अनेक दिव्य पीठों को जन्म दिया। उन्हीं पीठों में से गोरखपुर भी एक दिव्य पीठ है, जिसकी गद्दी को अनेक नाथ सिद्धों ने लोकेषणा से परे साधना में रत रह कर निष्काम, आप्तकाम, निर्विकल्प होकर, जीवित समाधियाँ लेकर, गुरू गरिमा के अनुकूल बनाने का प्रयास किया। उसी परम्परा में ब्रह्मलीन स्वनाम धन्य महन्त दिग्विजयनाथ जी का भी नाम आता है, जिनकी तृतीय पृण्य वार्षिकी के अवसर पर उनकी स्मृति में उनके द्वारा किये गये पुरूषार्थों का स्मरण करना और कराना हमारा कर्तव्य है। कैलाशवासी महन्त दिग्विजयनाथ जी ने उस समय जन्म लिया था, जब देश पराधीनता के पाश में आबद्ध था। देश को स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, वैभव–शाली तथा सुरक्षा–सम्पन्न बनाने में वे जीवन की अन्तिम श्वाँस तक संघर्षरत रहे।

स्वतंत्रता–संग्राम में वे किसी भी महारथी से पीछे नहीं रहे। चौरी–चौरा काण्ड में वे मृत्यु दण्ड से बाल–बाल बच निकले। देश के कर्णधारों की राष्ट्रघातक, मुस्लिम पोषक नीयत के

विरोध स्वरूप उन्होंने कांग्रेस का परित्याग किया और हिन्दु संगठन को जीवनोद्देश्य बनाकर राष्ट्रीय संस्था हिन्दू महासभा में प्रवृष्ट हुए। हिन्दुस्तान में शंकराचार्य के पश्चात् वे दूसरे मठाधीश थे, जिन्होंने हिन्दू महासभा के अध्यक्षीय आसन को सुशोभित किया। हिमालय से कन्याकुमारी तक देश का भ्रमण कर अपनी ओजस्वी तथा धर्मसम्मत वाणी के माध्यम से हिन्दू मात्र को उद्‌बोधित किया एवं भयानक झंझावत में हिन्दु राष्ट्र को जीवित रक्खा। सनातन धर्म के स्तम्भ होते हुए भी आप सुलझे हुए सुधारवादी थे। बलात् धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को शुद्ध करके पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित कराने के प्रयास में आप सदैव जीवन के अन्तिम क्षण तक तल्लीन रहे। तीर्थस्थानों और धर्मसथानों को संगठित एवं सुव्यवस्थित कर एक इकाई के रूप में खड़ा करके उसका विनियोग राष्ट्र–हित में करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। विद्या तथा शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने सक्रिय पग उठाये। गोरखपुर विश्वविद्यालय, महाराणा प्रताप महाविद्यालय तथा मठ में चल रहा संस्कृत विद्यालय एवं अनेक शिक्षण संस्थायें उनकी कीर्ति के स्थायी स्तम्भ रूप में खड़ी हुई हैं। उनकी तृतीय पुण्य–तिथि पर मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी गद्दी पर विराजमान महन्त जी उनके अवशेष कार्यों को पूर्ण करने में सफल सिद्ध हों।

卐

हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्थान के प्रतीक

भगवान शरण अवस्थी, एडवोकेट

ब्रह्मलीन श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज का नाम गोरखपुर जनपद से इस प्रकार जुड़ा हुआ है जैसे स्वर्णभूषणों में रत्न। जब भी पूर्वांचल की चर्चा होती थी, श्री महाराज का नाम सर्व प्रथम आता था। जिस समय देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, उस समय उन्होंने क्रांति की मशाल जलाकर स्वातंत्र्य आंदोलन को बल प्रदान किया। स्वाधीनता के पश्चात् देश के पुनर्जागरण, शिक्षा के प्रचार एवं धर्म तथा संस्कृति की रक्षा हेतु सतत् जागरूक रहने की प्रेरणा उनसे ही प्राप्त हुई। गोरखपुर विश्वविद्यालय की नींव के वे ही पत्थर हैं।

यों तो उनका नाम देश के अनेक महत्वपूर्ण कार्यों के साथ जुड़ा हुआ है, किन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दुस्थान के प्रतीक थे। महामना मालवीय और वीर सावरकर के पश्चात् इस युग के वे सबसे बड़े और महान् हिन्दू नेता थे। उनकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखलाना है।

प्रातः स्मरणीय महंत दिग्विजयनाथ जी

प्रो० राम सिंह

ॐ गायन्ति त्वागायत्रिणोऽर्चन्त्यकर्मर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतो उद्वंशमिवयेमिरे।।

विष्णु भगवान के परमपद को प्राप्त करना साधारण कार्य नहीं है। जिन महान् आत्माओं ने इस क्षेत्र में पग रखने का प्रयास किया है, उन्होंने भगवान की सृष्टि के रहस्य और तत्व को जान कर तदनुकूल आस्था, श्रद्धा और विश्वास के साथ अपना जीवन प्रशस्त किया है।

प्रातः स्मरणीय महन्त दिग्विजयनाथ जी हमारे राष्ट्र की ऐसी ही विभूति थे। उस दिन की बात है कि लोक सदन (पार्लियामेंट हाउस) में मुस्लिम लीग के लीडर ने चिल्लाकर कहा–"बन्द कीजिए यह गलत है, सरासर गलत" सन्नाटा छा गया। उसी क्षण एक तड़ित कड़कड़ाती आवाज ने उत्तर दिया, 'जरा गौर से सुनिये' जो कुछ मैं ने कहा है, वह सौ फीसदी ठीक है। मैं हजार बार इसको दोहराऊँगा, इतिहास इसका गवाह है। इतिहास भुलाया जा सकता है, मिटाया नहीं जा सकता। मैं फिर कहता हूँ कि हिन्दुस्तान के अधिकतर मुसलमान वह कायर और बुजदिल हिन्दू थे, जो मुस्लिम बादशाहों के अत्याचारों को सहन न कर सके और मुसलमान होने पर मजबूर हो गये। कौन इस सच्चाई को भुला सकता है ? लोकसभा में इस गम्भीर वाणी ने एक आतंक और दूसरी ओर उत्साह उत्पन्न कर दिया था। सदन की समाप्ति पर सभी सदस्यों ने महामना श्री महन्त जी के ओजपूर्ण और तथ्य पर आधारित भाषण की भूरि–भूरि प्रशंसा की। प्रधान मंत्री ने तो निजी वार्तालाप में सराहना करते हुए यह भी कहा कि हम कांग्रेसी लोग महसूस करते हुए भी इस निर्भीकता से ये बातें नहीं कह सकते।

श्री महन्त जी का सुडौल, सुदृढ़ शरीर औसत से ऊँचा कद, सुन्दर सौम्य सुवर्ण, कुण्डलविभूषित कर्ण–युगल, तेजस्वी आँखे स्वयं एक आकर्षण का विषय थीं। इस पर उनका सन्यास का अरूणांकवेश उन्हें बरबस पूजार्ह बना देता था। जो भी उनके सम्पर्क में आया और उनके आन्तिरिक गुण–गरिमा से मुग्ध हो गया। विधि–विधान की विचित्र कहानी है। श्री महाराज राज–सिंहासन पर तो न बैठ सके, नियति ने उन्हें उससे अधिक गौरवशाली योगिराज गुरूवर्य गोरक्षनाथ के पीठ का अधीश्वर बना दिया। युवावस्था से उनके ह्रदय में स्वदेश, स्वधर्म और स्वराज की सेवा में जीवन अपर्ण करने की उत्कट अभिलाषा और उमंग थी। यही कारण था कि आपका प्रारम्भिक जीवन कांग्रेस की सक्रिय गतिविधियों से ओत–प्रोत रहा। उसके लिए अनेक कष्ट सहे, जेल यातनायें भोगनी पड़ी, परन्तु स्वधर्म और हिन्दू संस्कृति के अभिमान और गौरव पर आँच आते देख, हिन्दू महासभा की सेवा में ही अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया। राजनीतिक दूरदर्शिता के कारण हिन्दू समाज व्यवस्था के सम्बन्ध में आपके विचार अत्यन्त तर्कपूर्ण और सुलझे हुए थे। आपकी दृढ़ धारणा थी कि राजनीति पर धर्मनीति का अंकुश अनिवार्य रूप से होना ही श्रेयस्कर है। राजनीति की उच्छृंखलता से होने वाले राष्ट्रघातक परिणामों से आप पूर्णतया अवगत थे। हिन्दू महासभा के प्रधान पद से दिये गये आपके भाषण अत्यन्त मार्मिक युक्तिपूर्ण और प्रभावशाली हैं।

मेरा सम्पर्क आपसे लगभग चालीस वर्षों से रहा है। आपकी दिव्य मूर्ति आज भी आँखों के सामने फिरती सी रहती है। हिन्दू राष्ट्र के लिए सतत सोचने वाले निष्काम सेवक, धीर–गम्भीर निश्चियी बहुत कम लोग दृष्टिगोचर होते हैं। रह–रह कर आपकी स्मृति जाग उठती है। गाँधी जी की हत्या के समय आप दिल्ली जेल में ही भेज दिये गये थे। हम वहाँ १६ के लगभग इसी जुर्म में कैद थे। सभी को छोड़ दिया गया। केवल हम चार (श्री महन्त जी, श्री वी० जी० देशपाण्डेय, श्री ओऽम बाबा और मैं) व्यक्तियों पर अभियोग चलाया गया। हमें शिमला (पंजाब हाई कोर्ट) भेजा गया और सेसिल होटल में ठहराने का प्रबन्ध किया गया। एक महीना वहाँ रहने के पश्चात् फिर दिल्ली जेल भेज दिया गया। उल्लेखनीय बातें यह हैं कि श्री महन्त जी महाराज के ओजस्वी व्यक्तित्व को देखकर हमारे विरोधी सरकारी वकील सरदार हरनाम सिंह (पीछे हाईकोर्ट पंजाब के जज बने) जी ने अत्यन्त नम्रता और विनय पूर्वक श्री महाराज का अभिवादन किया, चरण स्पर्श किया और उनके दर्शनों से अपने को धन्य माना। उन्हीं दिनो शिमले में श्री मुकुन्दलाल मुरारी, प्रसिद्ध एडवोकेट व प्रधान पंजाब हिन्दू महासभा की ओर से श्री महन्त जी के सम्मान में एक भव्य भोज का आयोजन किया गया। जिसमें गणमान्य व्यक्तियों की ओर से श्री महन्त जी तथा साथियों के त्याग, कष्ट सहन और अविचल ध्येय और अडिग निष्ठा की प्रशंसा करते हुए अभिनन्दन किया गया।

दिल्ली जेल में जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट थे श्री महू महोदय, तत्पश्चात एक सरदार साहब थे। आपके सौजन्य, सुमधुर वार्तालाप और बुद्धि प्रागल्भ्य का उन पर ऐसा प्रभाव था कि प्रायः जेल की कठिन समस्यायों को हल करने में आपसे परामर्श और सहयोग लेते रहे। सभी जेल कर्मचारी आप के कृतज्ञ थे।

दिल्ली जेल की एक विचित्र घटना भुलाई नहीं जा सकती। वहाँ दिल्ली का एक हलवाई और उसका नवयुवक पुत्र हत्याकाण्ड में फाँसी की सजा पा चुके थे। उनकी अपील हाईकोर्ट में थी। दोनों पिता–पुत्र रामायणी थे। बड़े सुन्दर गायक। राम की भक्ति और धर्म में विश्वास मानो उनमें कूट–कूट का भरा था। उन्होंने जेलर द्वारा श्री महन्त जी से रामायण के अखण्ड पाठ का आयोजन करने और उसमें भाग लेने की प्रार्थना की। जेलर की अनुमति से श्री महन्त जी ने भी स्वीकृति दे दी। अखण्ड पाठ–सप्ताह चलता रहा। पूर्णाहुति के दिन श्री महाराज ने पिता–पुत्र को उनकी निश्छल भक्ति और धर्मप्रेम के लिए मुक्तकण्ठ से आशीर्वाद दिया। पहला वाक्य श्री मुख से यह निकला था "आप दोनों ही पिता–पुत्र सभी आरोपों से मुक्त होकर जेल से भी शीघ्र छुटकारा पायेंगे। और हुआ भी ऐसा ही। दोनों महानुभावों की अपील मंजूर हो गयी। वे रामायणी श्री महाराज के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए अपने घर को लौट गये।

श्री महन्त जी का विद्यानुराग उनके द्वारा स्थापित महाराणा प्रताप कालेज, गोरखपुर यूनिवर्सिटी, संस्कृत विद्यापीठ, दिग्विजयनाथ महाविद्यालय और अन्य अनेक प्रसिद्ध शिक्षण संस्थायें मुक्त कण्ठ से घोषित कर रही हैं।

महाराज जी का जहाँ परमात्मा में पूर्ण विश्वास था–आध्यात्मिक उन्नति की चरम सीमा को जीव के लिए अन्तिम लक्ष्य समझते थे–वहाँ प्रकृति के सौंदर्य की अनुभूति में भी उनकी कम अभिरूचि नहीं थी। गुरूधाम गोरक्षपीठ को जो भव्य और आकर्षक रूप आपने दिया है, वह इसका

ज्वलन्त प्रमाण है। वनस्पति–विज्ञान के तो आप विशेषज्ञ थे। विश्व भर के पुष्प–जगत से आपका भरपूर परिचय था। बागवानी के शौक में आपको शायद ही कोई मात कर सका हो।

श्रद्धेय महन्त जी मृत्यु पर्यन्त अखिल भारत हिन्दू महासभा के वरिष्ठ अधिकारी रहे। आप ने समय–समय पर महामंत्री पद तथा प्रधान पद को सुशोभित किया। आप के कार्य–काल में महासभा की सर्वांगीण उन्नति हुई। गोरखपुर में हिन्दू महासभा का वार्षिक सम्मेलन आपके ही अथक परिश्रम और सूझ–बूझ का परिणाम था। ऐसा सफल, शानदार और उत्साहवर्द्धक सम्मेलन शयद ही किसी राजनीतिक दल का हुआ हो।

जन–सेवा में महाराज जी का स्थान बहुत ऊँचा रहा है। प्रातः से सायं काल तक अनेक कार्यार्थियों के काम करने कराने में आप व्यस्त रहते थे। उसी में आप अपार आनन्द का अनुभव करते थे। उत्तर प्रदेश के सरकारी अधिकारियों से आपका विशेष परिचय था। क्या गर्वनर और क्या मंत्रिमण्डल, जिलाधीश, विभागाध्यक्ष सभी से आपका घनिष्ट आत्मीय सम्बन्ध रहा। सभी महानुभाव आपका विशेष आदर–मान करते थे। आपने आपने कार्य–कौशल नीति–चातुर्य और व्यवहार–दक्षता से शुभ्र ख्याति अर्जित की थी, जिसका उदाहरण अन्यत्र मिलना दुष्कर है।

लोकसभा में यद्यपि आपका का कार्यकाल थोड़ा ही रहा, फिर भी आपकी सर्वप्रियता सर्वमान्य रही। सदन के सभी कार्यों में आप बुद्धिमत्ता और गम्भीरता से रूचि लेते थे। स्पष्टवादिता और हिन्दू–हितों की रक्षा की दृष्टि से आपका नाम लोकसभा में बड़े सम्मान से लिया जाता था। विरोधी आपके तर्क और औचित्य का लोहा मानते थे तथा मुक्तकण्ठ से सराहना करते थे।

ऐसे दैवी सम्पद के सर्वश्रेष्ठ स्वामी, हिन्दू धर्म–रक्षक, नीति–निपुण नायक के पावन चरणों में मेरा शतशः सहस्रशः नमस्कार।

卐

मेरे वरेण्य गुरू पूज्यपाद श्री महाराज जी
एक पुण्य संस्मरण

महन्त अवेद्यनाथ

श्री गुरू गोरक्षनाथ पीठ की पावन परम्पराओं में सन्तों, महन्तों अवधूतों, योगियों और महात्माओं का नाम पर्याय की भाँति जुड़ा हुआ है। इस योगपीठ की यह शाश्वत देन रही है कि इसके अनुयायी राजा होकर रंक बने और रंक होते हुए भी शाहनशाहों के शाहनशाह रहे हैं। महाराजा मत्स्येन्द्रनाथ से लेकर चर्पटनाथ और चौरंगीनाथ तक का इतिहास श्रुत है और उसी कड़ी में राजा भर्तृहरि, राजा गोपीचन्द और भक्त पूरन का भी नाम लिया जाता है।

भगवान श्री गोरक्षनाथ जी एवं नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित अन्य बहुत से योगियों के यौगिक चमत्कारों का इतिहास अब तक लोगों के लिए कुतूहल एवं आश्चर्य की वस्तु रहा है। किन्तु इस आलौकिक सिद्धि के साथ ही इनकी योग–साधना देश–काल तथा समाज की यथार्थता से सम्पृक्त रही है। मेरे वरेण्य गुरू स्वर्गीय श्री दिग्विजयनाथ जी का कर्म–कौशल इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है। पूज्य श्री महाराज जी को ब्रह्मलीन हुए यद्यपि तीन वर्ष पूर्ण हो चुके हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मानों अभी कल की ही बात है, जब वे हमारे बीच रह कर मार्गदर्शन करते थे। उनकी संकल्प–शक्ति, दूरदर्शिता एवं धर्म के लिए अविचल निष्ठा आसेतु हिमाचल संपूर्ण हिन्दू समाज के लिए आज भी प्रेरणास्रोत बनी हुई है।

धार्मिक उदारता

पूज्य गुरूदेव जी की यह विशेषता रही है कि वे देश–निष्ठा से ओतप्रोत एकनिष्ठ हिन्दू धर्म के आचार्य होते हुए भी परधर्म विरोधी नहीं थे। प्रत्येक धर्म का समादार करते हुए भी उन्हें हिन्दू धर्म पर अभिमान था।

"स्वधर्मेनिधनम् श्रेयः पर धर्मोभयावहः" गीता का यह आदर्श उन्हें पूर्णतः मान्य था। हिन्दू समाज में व्याप्त ऊँच–नीच, छूआछूत, जाति–पाँति एवं धनी–निर्धन का भेद–भाव उन्हें किंचित भी स्वीकार नहीं था। उनकी दीक्षा यद्यपि नाथ सम्प्रदाय में हुई थी, तथापि वे उसे हिन्दू समाज के अन्तर्गत प्रचलित उपासना–पद्धतियों में से एक पद्धति मानते थे। हिन्दू धर्म के अंतर्गत प्रचलित विभिन्न उपासना पद्धतियों के लिए उनके हृदय में समान आदर था। उन्हें संकीर्ण साम्प्रदायिकता किंचित भी प्रभावित नहीं कर सकी थी। यही कारण है कि सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध सभी पन्थों के लोग उन्हें अपार श्रद्धा की दृष्धि से देखते थे। उनका यह विश्वास था कि वे उनके ही पन्थ के अनुयायी हैं। वास्तव में उनका दृष्टिकोण व्यापक, उदार, सहिष्णु एवं लोकप्रिय था। सचमुच वे प्रियदर्शी थे।

धर्म और राजनीति का समन्वय

श्री गुरु गोरक्षनाथपीठ जैसे मान्य स्थान के महन्त और सन्यासी होते हुए भी वे

संघर्षात्मक राजनीति में सहर्ष भाग लेते थे। इसमें होने वाले निन्दा–द्वेष से वे कभी प्रभावित नहीं हुए। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि धर्म और राजनीति परस्पर विरोधी नहीं, अपितु एक दूसरे के पूरक और पोषक हैं। धर्म के बिना राजनीति को अन्धा तथा राजनीति के बिना धर्म को वे पंगु समझते थे। इस हेतु पूरे धर्मशास्त्र को वे साक्षी रूप में रखते थे। श्रीमद्भगवद्गीता के वाक्यों का पग–पग पर उल्लेख करते हुए वे कहा करते थे कि जब सन्यासी भी अपने जीवन में कर्म बिना नहीं रह सकता और कर्म के लिए लाचार होता है, तो उसे व्यापक कर्म में विवेकपूर्ण निष्ठा और दृढ़ता के साथ अग्रसर होना चाहिए। सच तो यह है कि जिस अनासक्त निष्काम कर्मयोग का सन्देश गीता में दिया गया है, वह एक सन्यासी के लिए ही सम्भव है।

'नतुसन्यस्त संकल्पो योगीभवति कश्चनः'। योगी संकल्पों के अभ्यास के बिना नहीं हो सकता। यही आदर्श वाक्य गीता के सम्पूर्ण उपदेश की आधार–शिला है। यही कारण है कि पूज्य महाराज ने वाल्यकाल से ही सक्रिय राजनीति में भाग लेना अपना कर्तव्य एवं धर्म समझा।

उनके महिमामण्डित व्यक्तित्व के प्रति देश के सभी प्रमुख नेता आकर्षित रहते थे और उन्हें आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। स्वर्गीय देश–रत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० सम्पूर्णानन्द जैसी विभूतियों ने उनसे कहा कि महाराज जी ! आप एक सर्वमान्य नेता हैं और पूज्य स्थान के अधिकारी हैं। आप के लिए हम सभी का समान आदर–भाव है। अतः आपको ईर्ष्या, द्वेष एवं कलह की राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए। इस पर महाराज ने हँस कर नम्र भाव से कहा था "उद्धरे आत्मनात्मानं" अपने आप अपना उद्वार करना चाहिए। गीता के इस वाक्य पर ध्यान देने की आवशयकता है। धर्म का उद्धार और उसकी रक्षा धर्म को स्वयं करनी चाहिए। धर्मनिरपेक्ष और धर्मविरोधी राजनीति यह कार्य नहीं कर सकती। यह तभी हो सकता है जब हम सक्रिय राजनीति में प्रवेश करें। हम धर्म के उद्धारार्थ धर्म प्रतिनिधि बन कर इस क्षेत्र में आये हैं।

सामाजिक कार्य

पूज्य श्री महाराज ने इस पीठ से गत अनेक वर्षों तक हिन्दू समाज में आशा का संचार किया। उन्होंने त्रस्त को त्राण, आतंकित को अभय, निराशा को आशा तथा हतोत्साह को प्रोत्साहन प्रदान करते हुए एक अक्षय प्रेरणा एवं प्रकाश पुंज का कार्य किया है। जब भी उनकी स्मृति आती है, हम लोग मर्माहत हो जाते हैं। विगत ३० वर्षों तक मुझे उनके सानिध्य में बैठने, कार्य करने और उन्हें समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। इन वर्षों में मैंने उनकी नित्य नवीन प्रतिभा को देखा। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी, महिमामय, दृढ़, गतिमान एवं अद्भुत संकल्प–शक्ति से मण्डित था। उनके अन्तः करण में उत्साह का अजस्र स्रोत विद्यमान था।

आज भी यहाँ पर जो कार्य हो रहे हैं जैसे गोरक्षनाथ मन्दिर का नवनिर्माण, श्री दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज का विस्तार, श्री दिग्विजयनाथ उच्चतर माध्यमिक विद्यालय (चौक महराजगंज) को इण्टर कालेज के रूप में विकसित करना, श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ के नवीन भवन का निमार्ण और उसे 'क' वर्गीय (प्रथम श्रेणी का) आर्दश संस्कृत महाविद्यालय बनाना, महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् का विकास एवं विस्तार, श्री दिग्विजयनाथ महिला महाविद्यालय की स्थापना, महाराणा प्रताप शिशु शिक्षा विहार का विकस, महाराणा प्रताप इण्टर कालेज की स्थित

को सुदृढ़ करना तथा श्री दिग्विजयनाथ धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना आदि सभी कार्य श्री महाराज जी की भावना के अनुरूप ही हो रहा है। उनकी अन्तरात्मा के आदेश के अनुसार ही श्री गोरक्षनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय की भी स्थापना की गई है।

त्योहारों एवं पर्वों की महत्ता

जब कोई भी पर्व या त्योहारा आता था, वे उसे उत्साहपूर्वक मनाया करते थे। अपनी व्यक्तिगत आशा और निराशा का प्रभाव वे हिनदू समाज पर नहीं पड़ने देना चाहते थे। एक बार विजयादशमी के महान पर्व पर, जब वे हृदय रोग से अत्यधिक रूग्ण थे और जीवन तथा मृत्यु के झूले में झूल रहे थे, हम लोग उत्सव मनाने का आयोजन नहीं करना चाहते थे। जब उन्हें इस बात का पता लगा तो उन्होंने हम लोगों को बुलाकर समझाया कि विजयादशमी आदि पर्व सोत्साह मनाये जाने चाहिए। त्योहारों एवं पर्वों की अविच्छिन्न परम्परा हमारी पवित्र सांस्कृतिक धरोहर है और उसकी हर मूल्य पर रक्षा होनी चाहिए।

सच्चे कर्मयोगी

वे सच्चे कर्मयोगी थे। वे अन्तिम क्षण तक कार्यरत रहे। ब्रह्मलीन होने के ५ वर्ष पूर्व, जब उन्हें प्रथम बार हृदयाघात हुआ था, डाक्टरों ने उनकी समुचित चिकित्सा करके यह परामर्श दिया था कि वे अधिक परिश्रम किया करें। उनका कहना था कि मैं उस धर्म में विश्वास करता हूँ, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति प्रारब्ध लेकर आता है और उससे वह न तो एक दिन पहले जाता है और न एक दिन बाद तक रहता है। वे यह भी कहा करते थे कि हो सकता है कि मैं निष्क्रिय रहने से दो चार वर्ष और जीवित रह जाऊँ, किन्तु मुझे निष्क्रिय शरीर रखना पसन्द नहीं है। अपनी इस भावना के अनुसार वे कर्म करते हुए ही ब्रह्मलीन हुए। वह एक रस थे तथा कर्मयोगी की भाँति कर्म की ही पूजा करते थे। एक सन्यासी होते हुए भी वे कर्म को बहुत अधिक महत्व देते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि ज्ञान और ध्यान से केवल व्यक्ति को आत्मिक शान्ति मिल सकती है, इससे हम भगवान को प्रसन्न कर सकते हैं, किन्तु असंख्य मानवों की, जो भगवान के रूप में हैं, सेवा करना अधिक व्यापक अर्थों में सन्यासी का कर्म है। अपने इस आदर्श पर वे जीवन के अन्तिम क्षणों तक चलते रहे।

बहुमुखी प्रतिभा

अपने सन्यस्त जीवन में उन्होंने धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक सभी क्षेत्रों में व्यापक कार्य किया, जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं है, जिस पर उन्होंने अपनी अमिट छाप न डाली हो। धार्मिक जगत में उनके स्वप्नों को साकार करता हुआ भव्य एवं विशाल श्री गोरक्षनाथ मन्दिर आप के सामने खड़ा है। अखिल भारतवर्षीय योगी महासभा के मंच से उन्होंने देश के योगी समाज में नयी चेतना उत्पन्न की। षट्दर्शन साधु सम्मेलन और विश्वहिन्दूधर्म सम्मेलन के मंच से भी उन्होंने हिन्दू समाज की जो सेवाये की हैं, वे चिररमरणिय रहेंगी।

शिक्षा के पावन मंदिर में

श्री महाराज ने शिक्षा के क्षेत्र में उस समय कार्य प्रारम्भ किया जब कि न केवल गोरखपुर अपितु सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल में शिक्षा–संस्थाओं का सर्वथा अभाव था। स्नातकीय कक्षाओं में उस समय छात्रों को बड़ी कठिनाई से प्रवेश मिल पाता था। महाराणा प्रताप स्नातकीय महाविद्यालय के माश्यम से पूर्वी उत्तर प्रदेश में जो चेतना तथा जागृति उत्पन्न हुई, उससे सभी प्रबुद्ध जन भलीभाँति अवगत हैं। आगे चलकर यही विद्यालय गोरखपुर विश्वविद्यालय की आध ाार–शिला बना। श्री महाराज द्वारा एक दर्जन से भी अधिक संख्या में सथापित शिक्षा संस्थायें चिर काल तक समाज को प्रेरणा प्रदान करती रहेंगी। श्री महाराज जैसे कर्मयोगी का इससे अधिक भव्य स्मारक और क्या हो सकता है ?

हिन्दू हितरक्षक

बहुसंख्यक लोगों ने उन्हें केवल राजनीतिज्ञ के ही रूप में देखा है। उनके राजनीतिक विरोधी बहुधा यह कहा करते थे कि सन्यासी को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। उनके विचार इस विषय में बिल्कुल स्पष्ट थे। वे कहा करते थे कि हिन्दू धर्म का राजनीति से कभी कोई विरोध ा नहीं रहा हैं। वस्तुतः वे हिन्दू धर्म एवं हिन्दू समाज की रक्षा के लिए ही राजनीति के क्षेत्र में कार्य करते थे। उनका राजनीति में प्रवेश समाज के कल्याण के लिए ही था। वे कहा करते थे कि यदि हिन्दू ही नहीं रहेगा तो न धर्म बचेगा और न साधु ही रह सकेंगे। इसलिए हिन्दू जीवन पद्यति को व्यवस्थित करने और उसकी मान्यताओं की रक्षा के लिए वे हिन्दू संगठन पर विशेष जोर दिया करते थे। संसद में हिन्दुओं के एक मात्र प्रतिनिधि होने पर भी वे एकाकीपन से कभी विचलित नहीं हुए। जब भी आवश्यकता हुई, उन्होंने भारत के कोटि–कोटि हिन्दुओं की भावनाओं को निर्भीकता से स्वर प्रदान किया। जब वे बोलते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि मानों करोड़ों हिन्दू बोल रहें हैं।

हिन्दूमहासभा के मंच से

अखिल भारत हिन्दू महासभा को वे एक राष्ट्रीय मंच समझते थे। हिन्दू महासभा की स्थापना, मुस्लिम लीग की स्थापना के बाद देश को स्वतंत्र कराने और हिन्दू हितों की रक्षा के लिए हुई थी।

हिन्दू महासभा ने जहाँ एक ओर क्रांतिकारी आन्दोलन द्वारा देश को स्वतंत्र कराने के लिए ब्रिटिश साम्राजवाद से मोर्चा लिया, वहीं दूसरे मोर्चे पर मुस्लिम आक्रान्ताओं से हिन्दू सामज की रक्षा के लिए अनवरत संघर्ष करती रही। हिन्दू महासभा के ही सदस्य उग्रवादी और क्रान्तिकारी देश भक्त थे, और उन्होंने पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी बात को कभी स्वीकार ही नहीं किया। मोपला और कोहाट में जब हिन्दुओं का कत्लेआम हुआ, सिंध में हिन्दुओं पर भारी अत्याचार हुए, कश्मीर में जब शेख अब्दुल्ला ने काफी अत्याचार कराये, निजाम ने हैदराबाद में जब हिन्दुओं का जीना दूभर कर दिया, दिल्ली पर जब पाकिस्तानियों ने अधिकार कर लेने का षण्यंत्र किया, नोआखाली में जब हिन्दुओं पर ह्रदय विदारक अत्याचार हुए, ढांका, रावलपिण्डी और लाहौर तथा

कराची में पाकिस्तान बनते समय हिन्दुओं के रक्त से होलियाँ खेली गईं और जब कांग्रेस मुस्लिम लीग और अंग्रेज तीनों ने मिलकर पाकिस्तान के निर्माण को स्वीकार किया, उस समय हिन्दू महासभा ही एक मात्र ऐसा राजनीतिक दल था, जिसने हिन्दू हितों की रक्षा की भरपूर चेष्टा की और उस गाढ़े समय में हिन्दू माताओं एवं बहनों के जीवन एवं सम्मान की रक्षा की। हिन्दू महासभा ने ही साम्प्रदायिक निर्वाचनों का विरोध किया और कांग्रेस द्वारा हरिजन बन्धुओं को हिन्दु समाज से पृथक किये जाने तथा मुसलमानों और ईसाईयों को अनुचित रूप से राष्ट्र के हितों का बलिदान करके प्रसन्न करने की नीति का विरोध किया। इसी हिन्दू महासभा के मंच से महामना पं० मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धांनन्द, देवता स्वरूप भाई परमानन्द, रामानन्द चटर्जी, उत्तम भिक्षु, वरद्राजलू नायडू, डा० बी० एस० मुन्जे, बैरिस्टर भोपटकर, स्वातंत्र वीर विनायक दामोदर सावरकर, सेनापति बापट और डा० नारायण भास्कर खरे इत्यादि महापुरूषों ने हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दुस्तान की रक्षा का स्वर उठाया और ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा देशद्रोही पाकिस्तानियों और उनके तत्वों को ललकारा। कौन कह सकता है कि इन लोगों के रक्त से भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास नहीं लिखा गया है ? यदि हम इतिहास में इनके समकक्ष व्यक्तियों को ढूढ़ने की कोशिश करें तो समकक्ष तो दूर रहा, उनके दशमांस के बराबर भी अन्य नेता नहीं ठहर सकेंगे। ऐसे राष्ट्रवादी एवं जनवादी मंच से श्री महाराज ने देश एवं समाज की संवा करने का क्रम जीवन पर्यन्त चालू रक्खा। डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, कैप्टन केशवचन्द्र, प्रो० विष्णु घनश्याम देशपाण्डेय एवं वैरिस्टर निर्मल चन्द्र चटर्जी जैसे शीर्षस्थ नेताओं के हिन्दू महासभा छोड़कर पृथक हो जाने के पश्चात् भी वे सभा का कार्य अविचल रूप से करते रहे। वे प्रायः कहा करते थे कि सिद्धान्त बेंचे नहीं जाते। आज कल के नेता जो दिन में तीन तीन चार चार बार दल परिवर्तन करते रहते हैं, वे न तो देश भक्त हैं और न जनता के सेवक और न कोई सिद्धांत है, न उनकी कोई नीति ही है। स्वार्थों पर आधारित कुर्सी–भक्ति ही उनकी राजनीति है। हिन्दू महासभा को छोड़कर अन्य सभी दलों में दलबदलुओं का ही बाहुल्य दिखलाई पड़ रहा है। उनके समकक्ष हिन्दूकुल–कमल–दिवाकर स्वनामधन्य महाराणा प्रताप का आर्दश था। वे कहा करते थे कि बादशाह अकबर के शासन काल में भी स्वार्थी, पदलोलुप, चरित्रहीन लोग स्वार्थसिद्धि के लिए उससे मिल गये थे, किन्तु केवल मेवाड़–केशरी महाराणा प्रताप ने ही उस समय हिन्दुओं की लाज रक्खी और हिन्दू पताका को फहराते हुए केवल वे ही आजीवन संघर्षरत रहे। यदि अन्य नरेशों और राजाओं की भाँति वे भी अकबर के समक्ष घुटने टेक देते, तो क्या आज वे इतिहास में हिन्दू गौरव के प्रतीक बन सकते थे ? वे अकेले अवश्य थे, उनके परिवार को घास की रोटियाँ खानी पड़ी, जंगलों में निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा, नंगी शिलाओं पर शीत काल की रात्रियाँ व्यतित करनी पड़ी, किन्तु वे कभी अपने सिद्धांतो से विचलित नहीं हुए। इसीलिए इतिहासकारों ने भी उनके साथ न्याय किया तथा उन्हें अमर कर दिया, मुझे यह कहने में गर्व का अनुभव होता है कि मेरे पूज्य गुरूदेव भी उसी पथ के पथिक थे। उन्हीं के आदर्शों पर दृढ़ रह कर उन्होंने सेवा का कार्य किया। महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् की स्थापना करके उन्होंने इसी बात का प्रयास किया कि बालकों के हृदय में अपने धर्म और संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न हो। आज उन्हें हमसे बिछुड़े हुए लगभग तीन वर्ष व्यतित हो रहे हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मानो अभी कल की

ही तो बात है जब वे हिन्दू ध्वज–स्तम्भ की भाँति खड़े होकर समस्त भारत के हिन्दुओं को 'उठो जागो, और अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करो' का आह्वान कर रहें हों। आध्यात्मिक तत्वज्ञान–चिन्तन की अपेक्षा व्यवहारिक तत्वज्ञान पर उन्होंनें अधिक जोर दिया। उनका विश्वास था कि हिन्दू जगत में व्यवहारिक्ता एकता के अभाव के कारण ही देश तें दुःख एवं दैन्य व्याप्त हो रहा है और इसे दूर करने का एकमात्र उपाय संगठन ही है।

पूज्यपाद महंत श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज का नाम आज केवल इतिहास शेष है, किन्तु उनके आदर्श, उनकी सेवायें, अक्षय कीर्ति, उनकी प्रभावोत्पादक महिमामण्डित दृढ़राष्ट्र–निष्ठा, सेवावृत्ति के भाव से पूर्ण व्यक्तित्व हमारे सामने प्रत्यक्ष है। वे सच्चे कर्मयोगी थे और कालजयी थे। भौतिक तत्वों से रचित शरीर के न रहने पर भी उनकी यशोकाया सदा अमर रहेगी। वे एक अमर योगी थे, जिन्होंने श्रीगुरू गोरक्षनाथ की पावन परम्परा को अपने कर्म–कौशल से उज्जवल बनाया। उन्हींके आदर्शों पर चलकर इस देश और हिन्दू जाति का कल्याण सम्भव है।

दृढ़ निश्चियी महन्त जी

डॉ० हरि प्रसाद शाही

विश्वविद्यालय से निकला था। नौकरी की तलाश में था। ६ जुलाई १६३६ को प्रातःकाल ७.३० बजे श्री गोरखनाथ मंदिर पर महनत जी से मिलने के लिए निकल पड़ा। पहले की कोई जान पहचान नहीं थी। एक युवक के स्वाभाविक साहस के साथ मंदिर के पास पश्चिम के बगीचे में पहुँचा, तो देखा कि एक आम के पेड़ के नीचे एक पत्थर की शिला पर महन्त जी बैठे हैं। एक आदमी से बात कर रहे हैं। निकट पहुँचते ही महन्त जी ने पूछा, 'आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं?'' मैंने उत्तर में कहा–''मेरा नाम हरिप्रसाद शाही है। मैं आप के विद्यालय 'महाराणा प्रताप' में नौकरी करना चाहता हूँ। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का स्नातक हूँ। महन्त जी ने कहा, 'क्या आप प्रशिक्षित हैं?' मेरा उत्तर नाकारात्मक रहा। उन्होंने कहा–'तब कैसे अध्यापक नियुक्त किये जा सकते हैं?' मैं लौट पड़ा। महन्त जी ने पास के बैठे व्यक्ति से कहा–''अच्छा युवक है।'' थोड़ी दूर लौटा था कि महन्त जी ने कहा ! ओरिया, उस युवक को बुलाओ। ज्यों ही में करीब पहुँचा, उन्होंने कहा–'तुम्हारी नियुक्ति कर दूंगा।' तब से देहावसान के दिन तक बराबर का सम्पर्क रहा। उनमें आदमी पहचानने और तुरन्त निर्णय लेने की गजब की क्षमता थी। सन् १६४८ के बाद शायद ही कोई घटना घटी हो जिसमें उन्होंने पहले ही से विचार–विमर्श न किया हो। उत्तरोत्तर उनके निकट आता गया। उनके निकटतम व्यक्तियों में से मैं भी एक था।

वह आम का पेड़ आज भी अपना शानी नहीं रखता। तम्बू जैसा फैलाव, डालें दूर तक फैली हैं। शिला पर बैठें, तो डालें सर को चूमती हुई नीचे की तरफ बढ़ती जाती हैं। मजाल क्या है कि साधारण वर्षा में उसके नीचे कोई भीग जाय। है वह आम का पेड़ भाग्यशाली। उसी पेड़ के नीचे गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना का निर्णय लिया गया था। डॉ० सम्पूर्णानन्द जी उन दिनों उत्तर प्रदेश के शिक्षा मंत्री थे। उसी पेड़ के नीचे प्रातःकाल जलपान कर रहे थे। महन्त जी ने गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना की चर्चा की और डॉ० सम्पूर्णानन्द ने आश्वासन दिया। जब विश्वविद्यालय के साधनों के अभाव की चर्चा हुई, तब महन्त जी ने महाराणा प्राताप कालेज को, जिसके पास उन दिनों करीब सोलह लाख रूपये की सम्पत्ति थी और जो प्रदेश के बड़े महाविद्यालयों में से एक था, देने की बात कही। डॉ० वी० वी० गिरि तथा लाल बहादुर शास्त्री आदि देश की महान् विभूतियों ने उस पेड़ के नीचे बैठ कर महन्त जी से गोरखपुर उर्वरक कारखाने और रेलवे हेड क्वाटर की स्थापना का निश्चय सम्बन्धी विचार विमर्श किया था।

महन्त जी निर्भीक थे और असफलताओं से जरा भी घबड़ाते नहीं थे। मैंने उन्हें देश के बड़े से बड़े विद्वान से बातें करते सुना। जिस विषय पर कोई बात करे, उसके मूलभूत प्रश्नों का अच्छा समाधान महन्त जी किसी भी भाषा में कर लेते थे। डा० राधाकृष्णन् से उन्हें अंग्रेजी में धडल्ले से दशर्न पर पात करते मैंने देखा है। १६५० में महन्त जी के साथ नेपाल जाने का अवसर मिला। नेपाल में महन्त जी का बड़ा आदर था। मुझे याद है कि श्री मोहन शमशेर जिस मोटर पर

चढ़ते थे, वही महन्त जी की सवारी के लिए मिली थी। राणाओं की नेपाल में खूब चलती थी। उनके खिलाफ कोई चूं नहीं करता था। महाराज जी ३ और ५ सरकार से मिले और जोरदार शब्दों में उन्होंने नेपाल के विकास के लिए अपने तर्क प्रस्तुत किए। उन्होंने भारत और नेपाल की स्थायी मित्रता एवं बन्धुत्व–भावना पर भी जोर दिया। १६४८ ई० में महाराज जी के साथ अलवर जाने का अवसर मिला। महाराणा प्रताप कालेज को डिग्री स्तर की मान्यता का प्रश्न था। प्रतिभूति के रूप में भारी धनराशी की आवश्यकता थी। चन्दा मांगते समय ऐया लगता था कि हम उचित कार्य के लिए समर्थ व्यक्तियों में दायित्व–बोध जगा रहे हैं। हमने अनुभव ही नहीं किया कि हम किसी की दया के पात्र हैं। धनी मानी लोगों का शैक्षणिक संस्थाओं को दान देना कर्तव्य है। महन्त जी जिस बात को दिल में ठान लेते थे, उसको करके ही छोड़ते थे। महाराणा प्रताप कालेज का हाल, जिसे बलरामपुर हाल कहते हैं, बनवाने का प्रश्न था। निश्चय हुआ कि एक ही दिन में ६४ फीट लम्बे और ३४ फीट चौड़े हाल का एक स्लेप पड़ेगा। दूसरे महायुद्ध का अन्तिम चरण था। सीमेन्ट और लोहे की कमी थी। यातायात के भी साधन नहीं थे। महन्त जी ने काली शिवलेट नयी गाड़ी उन्हीं दिनों खरीदी थी। मोटर की टिक्की में सिमेन्ट के बोरे भर–भर कर लाते उन्हें देखा था। दिन भर खड़े रह कर एक दिन में एक हजार मजदूरों के साथ उस स्लेप को डलवाते देखा। कितनी ममता इस विद्यालय के प्रति उनमें थी और सार्वजनिक कार्य के लिए कितना अदम्य उत्साह था, उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

सन् १६४८ में महाराणा प्रताप कालेज को स्नातकीय महाविद्यालय की मान्यता दिलाने का प्रश्न उनके सामने मैंने रक्खा। उनके पास साधन नहीं थे। प्रतिभूति के लिए कुछ प्रबन्ध करके अलवर से लौटे थे। पच्चीस हजार रूपये का वचन मिला था। यह धन–राशि काफी नहीं थी। दुकानें कुछ बन जातीं, तो उनके किराये को प्रतिभूति के रूप में दिखाया जाता। कचहरी के चौराहे पर महाराणा प्रताप स्कूल की भूमि पर दो मामूली दूकानें १६४५ में बनवाई गईं। हीरा को १५० रूपये महवार किराये पर दी गई। उन दिनों गोलघर के चौराहे के दक्षिण कोई दूकान नहीं थी। हीरा भी इस धन–राशि को भार ही समझाता था। किन्तु महन्त जी का सपना था कि इस खण्ड का विकास होगा। सरकारी अड़चनों के होते हुए भी उन्होंने महाराण प्रताप विद्यालय के हाते में सीमेंट रोड पर दूकाने बनवाना प्रारम्भ कर दिया। गोलघर के विकास का सपना उन्होंने देखा था और आज का गोलघर उनके सपनों का साकार रूप है। अच्छा होता यदि महाराणा प्रताप कालेज के पास वाले कचहरी के चौराहे पर महन्त जी की एक विशाल मूर्ति स्थापित होती।

महाप्रयाण का दिन था। मैं बाहर चला गया था। प्रातःकाल जब घर पहुंचा, तो बच्चों ने बतलाया कि महन्त जी की तबीयत खराब है। १० बजे प्रातः फोन किया तो पता चला कि स्थिति कुछ ठीक हो रही है। सोचा कि कुछ खा पीकर चलूं। १ बजे मंदिर पर पहुँचा। छोटे बाबा से बातें हुई। विचार विमर्श होता रहा। क्या किया जाय? ३ बजे महाराज जी जहाँ थे, वहाँ गया तो देखा कि आँखों में कुछ आँसू आ रहे हैं। महाराज जी ने हाथ उठाया। उसका मतलब था कि अब तक कहाँ रहे हो? महाराज जी बोल नहीं पा रहे थे। छोटे बाबा जी से फिर विचार–विमर्श शुरू हुआ। लखनऊ और पटना दोनों स्थानों पर फोन बुक हुआ। डा० लहरी, सिविल सर्जन अग्रवाल और डा० मल्ल सभी स्थानीय डाक्टरों को तुरन्त बुलाया गया। ४ बजे पुनः महाराज जी के कमरे में

हम लोग गये। हालत तेजी से बिगड़ रही थी। महाराज बोल नहीं पा रहे थे और थोड़ा सा ओठ टेढ़ा दिख पड़ता था। मन ने कहा– क्या हृदय रोग के साथ कुछ लकवा की भी तो शिकायत नहीं है? अभी डाक्टर इस पर विचार ही कर रहे थे कि डा० लाहरी ने नाड़ी पर हाथ रखा। काफी गंभीर हो गये। शीघ्र ही डा० लहरी गीता के कुछ श्लोकों का उच्चारण करने लगे। और सब कुछ समाप्त हो गया। ५ बजे सांय वह महामानव चिरकाल के लिए सो गया। महन्त दिग्विजयनाथ जी नहीं रहे। ज्योति शिखा का निर्वाण हो गया। इस असार संसार में अपने महान् कार्यों से आदर्श–पथ का निमार्ण करने के बाद महन्त जी ब्रह्मलीन हो गये। विश्वास नहीं होता कि वे हमारे बीच नहीं हैं। वह आम्र वृक्ष अब भी अपने स्थान पर स्थित है। उतना ही घना, उतना ही छायादार किन्तु किसी के ध्यान में मग्न किसी की याद में डुबा हुआ।

卐

महन्त दिग्विजयनाथ–एक पावन स्मृति

विशन चन्द्र सेठ

ब्रह्मलीन परमादरणीय महन्त दिग्विजयनाथ जी से मेरा प्रथम परिचय तब हुआ जब १६३० में महान् श्रद्धास्पद वीर सावरकर जी अण्डमान निकोबार एवं सावरमती जेल से युगोपरान्त छूटकर देश व्यापी हिन्दू संगठन हेतु दौड़ करने उत्तर प्रदेश में आये थे।

पूज्य महन्त जी का केवल नाम सुना था। अपने क्षेत्र में वे कांग्रेस के महान् सेनानी के रूप में उस समय विख्यात हो चुके थे। इधर मैं भी कांग्रेस ही के कार्य में अपने नगर–क्षेत्र में लगा था। १६३८ में कांग्रेस की प्रथम मिनिस्ट्री बनने और उसके हिन्दू विरोधी कार्यों एवं मुसलमानों के समक्ष घुटने टेकने की नीति से मैं बड़ा ही मानसिक असंतोष अनुभव करने लगा था। उस समय एक प्रकार से मैं मार्ग विहीन राजनीतिक जीवन व्यतीत कर रहा था।

श्री सावरकर जी के कानपुर के प्रथम दर्शन एवं उनके प्रतिभाशाली तर्कपूर्ण भाषण ने मुझ जैसे अनेकों को मार्ग दर्शन दिया कि स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। यदि मुसलमान साथ आते हैं तो ठीक। यदि तटस्थ हैं तो भी ठीक। यदि विरोध करते हैं तो अंग्रेजी सरकार के साथ इस भारत में रहने वाले राष्ट्र विरोधी तत्वों का भी विशाल हिन्दू समूह दमन कर निश्चय ही मानव सम्मान रक्षार्थ स्वराज्य प्राप्त करना चाहेगा। यही भावना मेरे हृदय को छू गई। साथ ही मैं पूज्य महन्त जी तथा उसके बाद पूज्य सावरकर जी का बड़ा ही अंतरंग साथी बन गया। यह पवित्र सम्बन्ध जीवन पर्यन्त (कानपुर मिलन उपरान्त) अटूट रहा। तदुपरान्त पूज्य महन्त जी की आत्म–शक्ति एवं दृढ़ता ने शक्तिशाली उत्तर प्रदेश की हिन्दू महासभा को जन्म दिया, जिसमें प्रान्त के अनेक सम्भ्रान्त सज्जन हमारे साथ आये। उनमें स्वर्गीय राजा महेश्वर दयाल सेठ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बाद में वे अखिल भारत हिन्दू महासभा के प्रधान मंत्री पद पर बड़ी योग्यता एवं सफलता से रहे।

पूज्य महन्त जी उत्तर प्रदेश हिन्दू महासभा तथा अखिल भारत हिन्दू महासभा के

अध्यक्ष तथा अन्यान्य पदों पर रहकर जीवन पर्यन्त महासभा के दृढ़ स्तम्भ रहे। उनके हिन्दू महासभाई एवं धार्मिक कृत्यों का लेखा–जोखा इतना विशाल है कि उस पर स्वतंत्र रूप से एक विशाल ग्रन्थ निर्मित हो सकता है। साथ ही गोरखपुर क्षेत्र में महाराज जी ने अपनी वंश परम्परा का भी विशेष नाम उज्जवल किया। महाराज जी राजस्थान के माननीय महाराणा उदयपुर के परिवार के थे। किन्तु परिस्थिति वश राजवंश छोड़ गोरक्षनाथ महाराज के चरणों में आये, यह एक अलग स्वतंत्र कहानी है। परन्तु उत्तर प्रदेश में प्रथम बार महाराज जी के ही अमूल्य प्रयास एवं साहस से महाराणा के उज्जवल यश की स्वीकृति कराने हेतु महाराणा प्रताप डिग्री कालेज की स्थापना गोरखपुर में हुई। गोरखपुर में यही कालेज गोरखपुर विश्वविद्यालय की मौलिक नींव बना और आज करोड़ों की सम्पदा से हजारों छात्रों को विद्या दान कर रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक शिक्षा संस्थान एवं जन संस्थाओं को जन्म देना, बिखरी हुई व्यवस्था को ठीक करना आदि उनकी सेवायें सर्वदा सराहनीय रहीं।

पूज्य महन्त जी ने गोरखपुर के अपने निवास–स्थान पर अखिल भारत हिन्दू महासभा का अधिवेशन आमंत्रित किया। भारत में महासभा के जितने अधिवेशन तथा कार्यक्रम हुए उनमें उसका स्थान सर्वोपरि रहा। यह था पूज्य महन्त जी की कार्य–कुशलता एवं देश–भक्ति भावना का प्रत्यक्ष परिचय। जब मैं प्रथम बार गोरखपुर गया तो गोरखनाथ मंदिर पर जो आज करोड़ों की सम्पदा एवं प्रान्त के दर्शनीय स्थानों में एक है, एक साधारण मंदिर, कच्चा तालाब एवं महन्त जी के निवास की साधारण सी व्यवस्था थी। उसी में मैं उनके साथ ठहरा था। मेरे देखते ही देखते काया–पलट हो गया। आज वहाँ विशाल एवं दर्शनीय मंदिर, पक्का सरोवर, अति सुन्दर उद्यान, उत्तम निवास तथा अतिथिगृह, पक्की सड़कें, संस्कृत पाठशाला तथा अनेक स्थान बन गये। जिस स्थान पर पहले मुख्यद्वार एवं चहारदीवारी तक नहीं थी, वहाँ के भव्य महल एक विशाल राष्ट्रीय सम्पदा के रूप में पूज्य महन्त जी की कीर्ति का यशोगान कर रहे हैं।

पूज्य महन्त जी के जीवन में कुछ ऐसी बातें प्रत्यक्ष देखीं जो सत्यता से अनुकरणीय थीं, जैसे समाज के छोटे लोगों से लेकर प्रान्त के राज्यपाल, मुख्यमंत्री आदि तक से वे एक प्रकार की सद्भावना, निर्भीकता एवं आत्मीयता से मिलते थे। मुझे भली प्रकार ध्यान है कि महात्मा गाँधी हत्या–काँड में पूज्य महन्त जी पकड़े गये थे, मैं भी पकड़ा गया था, पर थोड़े समय बाद मैं छूट गया। जब मैं उनसे मिलने जेल गया तो देखा कि उन पर इस लम्बी जेल–यात्रा अथवा दुरभि–संधि पूर्ण केस के भयानक परिणामों की किंचित चिन्ता नहीं थी। हाँ, उनके मन में यह विषाद स्पष्ट था कि इस प्रकार के कार्य में उन जैसे साधु प्रकृति के लोगों को बन्द करना एवं मुकदमा चलाना कांग्रेस सरकार की दूषित मनोवृति का परिचायक है। अन्त में लम्बी अवधि के उपरान्त वे निर्दोष छोड़ दिये गये।

पूज्य महन्त जी सत्यता से मुझ पर अनुज की भाँति स्नेह करते थे। उनकी इच्छा श्री बद्रीनाथ दर्शन–हेतु जाने की थी, पर शर्त थी मैं भी साथ चलूँ। दैवगति से लगातार २–३ बार प्रोग्राम बन जाने पर भी मैं स्थित–वश जा नहीं सका। पूज्य महन्त जी ने अपना बना प्रोग्राम छोड़ दिया। अन्त मं १६६६ में वे मेरे ही साथ श्री बद्रीनाथ धाम दर्शन करने गये, जो वास्तव में मेरे जीवन की विशेष घटना है।

आज महाराज हमारे बीच नहीं हैं। पर उनका अलौकिक कृत्य एवं तेज पूर्ण जीवन हम सभी के लिए अनुकरणीय है। मुझे इस बात की आन्तरिक प्रसन्नता है कि अपने स्थान पर उन्होंने पूरी छान–बीन के उपरान्त सौभाग्य से श्री महन्त अवेद्यनाथ को बैठाया। यह उनकी सभी भावनाओं की पूर्ति, जो उनके जीवन काल में न हो सकी, पूर्ण निष्ठा के साथ कर सकेंगे तथा महंत जी के सच्चे शिष्य के रूप में आचरण करेंगे।

स्वर्गीय श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी की स्मृति में

वासुदेव बलवन्त गोपटे

स्वर्गीय श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी से मेरा प्रथम परिचय अखिल भारत हिन्दू महासभा के अधिवेशन में सन् १९४५ में हुआ। व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था। उनकी ऊँची शरीरयष्टि, उनका भगवा वेष, अपूर्व उत्साह और हिन्दू समाज के प्रति उनका अगाध प्रेम, इन गुणों का परिचय प्रत्यक्ष उन्हें देखते ही हो जाता था। वे पुण्य पुरूष योगीराज गोरखनाथ जी की परम्परा में बैठने वाले थे, जिन्होंने अपना जीवन हिन्दू समाज के उद्धार के लिए समर्पित कर दिया।

श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी स्वातन्त्रय–वीर सावरकर जी के हिन्दू राष्ट्र तत्वज्ञान के पूजक थे। श्री सावरकर जी का उन पर अतीव प्रेम था। हिन्दु महासभा के कार्य में प्रविष्ट होने के पश्चात् उन्होंने हिन्दू राष्ट्र की सेवा त न मन और धन से जीवन पर्यन्त की।

उनका निवास स्थान उत्तर प्रदेश में गोरखपुर था, किन्तु उनका कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण भारत था। नेपाल तथा विश्व के अन्य देशों में निवास करने वाले प्रवासी हिन्दू बन्धुओं के लिए भी वे सतत् चिन्तित रहते थे। १९४७ ई० में उन्होंने अखिल भारत हिन्दू महासभा का अधिवेशन गोरखपुर में बुलाया था। उस वर्ष पूना के नेता स्वर्गीय लक्ष्मण बलवन्त भोपटकर जी एडवोकेट हिन्दू महासभा के अध्यक्ष थे। स्वर्गीय डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, स्वर्गीय श्रीमान् बैरिस्टर एन० सी० चटर्जी आदि शीर्षस्थ नेता इस अधिवेशन में उपस्थित थे। श्री महन्त जी के नेतृत्व में इन नेताओं का असाधारण एवं अभूतपूर्व स्वागत हुआ। उस समय निकाली गई शोभा–यात्रा में विशाल जनसमुदाय और ३६ हाथी सम्मिलित थे। इन शोभा–यात्रा का दृश्य भी अपूर्व था, जो हमारे मानस–पटल पर आज भी अंकित है। इस अधिवेशन में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गये थे। उस समय हिन्दू महासभा का स्थान भारत में दूसरे नम्बर पर था। पाकिस्तान के निर्माण की योजनाओं का सक्रिय विरोध प्रभावशाली ढंग से केवल हिन्दू महासभा के मंच से ही किया गया था, किन्तु नियति के कदम बिल्कुल उल्टे पड़े और अन्ततः भारत के दो टुकड़े हो गये। जिसका कुफल आज भी देश भोग रहा है। अफसोस तो इस बात का है कि देश के टुकड़े करने वाले लोग सम्मानित हैं और उन्हें बड़ा देशभक्त समझा जा रहा है। कुछ वर्षों के पश्चात् श्री महन्त जी अखिल भारत हिन्दू महासभा के अध्यक्ष बने और उन्होंने अपने कृतित्व से इस पद की गरिमा को बढ़ाया और स्वयं यशस्वी बने। १९५० में जब अखिल भारत हिन्दू महासभा का अधिवेशन पूना में हुआ,

उस समय वृह इस ऐतिहासिक नगरी में पधारे और मेरा यह सौभाग्य हुआ कि वह पुण्य पुरूष मेरे मकान में भोजन के लिए उपस्थित हुए और मुझे गौरवान्वित किया। भारी बहुमत से विजयी होकर उन्होंने भारत की लोकसभा में हिन्दू हितों के लिए सदैव स्वर ऊँचा किया। जिस समय संसद में उनकी ओजस्वी वक्तृता होती थी, सदन में पूर्ण निस्तब्धता छा जाती थी। उनके आकर्षक व्यक्तित्व एवं तर्क पूर्ण शैली के समक्ष सभी नतमस्तक हो जाते थे। स्वनामधन्य महाराणा प्रताप की भाँति एकनिष्ठ सेवक बन कर उन्होंने हिन्दू राष्ट्र की अविचल सेवा की। उनके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं अपने को धन्य समझ रहा हूँ। हिन्दू समाज उनके चरित्र से सतत् स्फुर्ति लेगा और हिन्दू राष्ट्र का स्वप्न आज नहीं तो भविष्य में अवश्य साकार होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

卐

हिन्दू राष्ट्र के प्रतीक महन्त जी

पं० इन्द्रसेन शर्मा

लम्बा कद, गौर वर्ण और उस पर भगवा वस्त्र, कानों में बड़ी बड़ी स्वर्ण मुद्राएँ, हिन्दुत्व एवं राजनीति के एकमात्र प्रतीक, हिन्दू महासभा की ही निरंतर चिन्ता करने वाले पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज का स्मरण कर मन गद्गद हो उठता है। वे अप्रैल १६६१ में ग्वालियर में हुए अखिल भारत हिन्दू महासभा के ४६ वें अधिवेशन के अध्यक्ष बन कर हिन्दू राष्ट्रपति भी कहलाये थे, किन्तु महासभा के अध्यक्ष पद से हटने के उपरान्त हिन्दू महासभा के अन्य अध्यक्षों की तरह महन्त जी का हिन्दू महासभा के लिए उत्साह क्षीण नहीं हुआ। वह देश के स्वतंत्रता–संग्राम के उत्कृष्ट सेनानी थे, किन्तु कांग्रेस का हिन्दू–द्रोह देखकर हिन्दू महासभा में सम्मिलित हो गये। देश–विभाजन के पूर्व १६४६ में गोरखपुर में पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी के प्रयास से सम्पन्न होने वाला अखिल भारत हिनदू महासभा का अधिवेशन उनकी कार्य कुशलता का सफल परिणाम था।

मुझे पूज्य महन्त जी का अधिक सत्संग करने का अवसर उस समय प्राप्त हुआ, जब वह १६६७ में लोकसभा के सदस्य निर्वाचित होकर दिल्ली में आये। महन्त जी लोकसभा में हिन्दूमहासभा के एकमात्र सदस्य थे, किन्तु अकेले होते हुए भी उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। जब भी लोकसभा में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उत्तर देने का अवसर आया, तो महन्त जी हिन्दुत्व और हिन्दू राष्ट्र के सफल अधिवक्ता सिद्ध हुए। लोकसभा में उस दिन बड़ा शोर उठा जब मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विरोध करते हुए पूज्य महन्त जी ने डट कर इस सत्य को प्रकट किया की भारतीय मुसलमानों की मांग (पाकिस्तान) उन्हें मिल चुकी है, अतः जो मुसलमान पाकिस्तान नहीं गये उन्हें द्वितीय श्रेणी का नागरिक घोषित किया जाय। पूज्य महन्त जी कि सिंह–गर्जना पर हिन्दूओं से लाभ उठाने वाले जनसंघी भीगी बिल्ली की तरह दब कर चुप बैठे

थे। दिल्ली के मुस्लिम–पोषक बड़े बड़े अंग्रेजी समाचार–पत्रों ने इस घटना के कारण पूज्य महन्त जी का विशेष उल्लेख किया था। उस समय के शिक्षा मंत्री श्री मुहम्द अली करीम छागला के शिक्षा–आयोग प्रतिवेदन पर पूज्य महन्त जी ने ऐतिहासिक विरोध–टिप्पणी लिखी थी, जिसके कारण सरकार को उसे लागू करने का साहस नहीं हुआ।

जनसंघ के सम्बन्ध में पूज्य महन्त जी के विचार बड़े स्पष्ट थे। ग्वालियर में अखिलभारत हिन्दू महासंघ के ४६ वें अधिवेशन के अवसर पर दिये गये अपने अध्यक्षीय भाषण में आपने कहा था :–

हिन्दू महासभा राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दू राष्ट्र की पुनीत और विज्ञानसम्मत विचारधारा को लेकर कार्य करती आई है। किन्तु उस दिन एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई, जिस दिन हिन्दू राष्ट्र की हित–चिन्ता करने वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने हिन्दू राष्ट्रवाद से विमुख होकर राजनीतिक क्षेत्र में अहिन्दू दृष्टिकोण और धर्मनिरपेक्षबाद को अपना लिया और भारतीय जनसंघ की स्थापना कर दी। इसका परिणाम यह है कि जहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आज भी हिन्दू महासभा के सदृश्य हिन्दूराष्ट्रवाद की विचारधारा पर अडिग है वहाँ उसका राजनीतिक शिशु अर्थात जनसंघ धर्मनिरपेक्षतावाद में कांग्रेस को भी मात देने लगा है। आज भारतीय जनसंघ में कई राज्यों में पुराने मुस्लिमलीगी भी सम्मिलित हो गये हैं। इतना ही नहीं, उनमें से कई एक को तो महत्वपूर्ण पदों पर भी अधिष्ठित कर दिया गया है। अब तो भारतीय जनसंघ के वरिष्ट नेता बड़े गर्व सहित यह घोषणा करने लगे हैं कि भारतीय जनसंघ में मुसलमान, ईसाई और पारसी बहुत बड़ी संख्या में सम्मिलित हो रहे हैं। अब आप विचारिये कि भारतीय जनसंघ और इन्डियन कांग्रेस में क्या अन्तर है?

हिन्दू राष्ट्र की विचारधारा का प्रचार और इसके एक मात्र प्रतीक हिन्दूमहासभा के संगठन को सबल और प्रभावी बनाना पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धान्जलि है। क्या पूज्य महन्त जी के प्रशंसक इस तथ्य को समझेंगे और इसे कार्यान्वित करने का भरसक प्रयत्न करेंगे?

हिन्दू उनका ॠणी है

श्रीरामतीर्थ भाटिया

महापुरूषों की परस्पर तुलना करना अवांक्षनीय है। प्रत्येक का अपना महत्व और कार्यक्षेत्र है। ब्रह्मलीन श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के साथ हिन्दू आन्दोलन के सन्दर्भ में जिन अनेक छोटे–बड़े व्यक्तियों का सीधा सम्बन्ध रहा है, उनमें से एक यह तुच्छ सेवक भी है।

राजनीति एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में दल और गुट एक संगठन और विचारधारा के अन्तर्गत भी बनते बिगड़ते रहते हैं। कोई भी व्यक्ति उसमें भाग लेने वाला इससे अछूता नहीं रह सकता।

किन्तु यह अतिशयोक्ति नहीं, एक यथार्थ है कि पूज्य महन्त जी से मेरा सम्बन्ध निरन्तर एक जैसा बना रहा, यद्यपि वे एक नेता थे और मैं एक साधारण कार्यकर्ता। दलबन्दी का प्रकोप हिन्दू महासभा में भी कई बार अखिल भारतीय स्तर पर पहुँचा। १६४२ से हिन्दू महासभा की अखिल भारतीय महासमिति का सदस्य रहकर पहले पंजाब और बाद में दिल्ली प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हुए मुझे श्री महन्त जी के निकट सम्पर्क में रहने का बराबर सुअवसर प्राप्त रहा। हिन्दू महासभा की राजनीति में कई बार विवादस्पद प्रश्न आये, किन्तु मैं सदैव श्री महन्त जी का ही समर्थक रहा, कारण यह कि उनसे दो तीन बार भेंट करने पर मन पर यह प्रभाव पड़ा कि वास्तव में वे एक असाध ाारण और दिव्य व्यक्ति हैं, जिनके ह्वदय में हिन्दुत्व के प्रति अगाध प्रेम एवं उसके लिए कुछ करने का संकल्प है। उनमें आत्मबल भी बड़ा ऊँचा दिखलाई पड़ा। हिन्दुत्व से प्रेम एवं जगत्गुरू गोरक्षनाथ की पावन प्रेरणा की एक उज्जवल परम्परा भी उनके पीछे दिखलाई पड़ी। वे सिसोदिया वंश से सम्बन्धित थे, साथ ही सन्यास–धर्म में दीक्षित। वे ब्रह्म और क्षात्र बल से समन्वित सन्त और सिपाही दोनों ही थे।

सर्व प्रथम १६४० में उनका दर्शन दक्षिण भारत के मदुरा (मदुराई) में अखिल भारत हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिशन में हुआ। अण्डमान की घोर यातनाओं को सहन करने के पश्चात् मुक्त हो स्वातंत्र्य–वीर विनायक दामोदर सावरकर इस अधिवेशन की अध्यक्षता कर रहे थे। इससे पूर्व श्री सावरकर अहमदाबाद, नागपुर एवं कलकत्ता–अधिवेशनों की अध्यक्षता कर चुके थे। संसार के प्रसिद्ध क्रांतिकारी, महान देश–भक्त, हिन्दू मंत्र–द्रष्टा, महान विचारक वीर सावरकर जिस व्यक्तित्व एवं विचारधारा को लेकर राजनीतिक क्षेत्र में उतरे थे, उनमें स्मृतिकारों की भाँति उसकी तर्कसम्मत व्याख्या की थी। इन्हीं बातों के फलस्वरूप हिन्दू महासभा के अधिवेशन में देश के कोने–कोने से सहस्रों की संख्या में प्रतिनिधि पहुँचे थे। उस समय द्रविड़ और हिन्दू शब्द पर बड़ा ही रोचक विवाद हुआ था। वीर सावरकर जी ने अपने भाषण में कहा था कि जो भी इस भू–खण्ड से उत्पन्न हुआ है वह मौलिक है, पावन है, पूजनीय है। वस्तुतः आर्य और द्रविड़ का भेद–भाव अंग्रेजों और मुसलमानों द्वारा भारत में फूट डालने के लिए खड़ा किया गया है। दोनों ही हिन्दू हैं और दोनों का मूल स्रोत एक है। श्री महन्त जी के हिन्दूमहासभा में प्रवेश का, देवता स्वरूप भाई परमानन्द और वीर सावरकर दोनों ही महान् पुरूषों ने सवागत किया। उन्होंने कहा कि यह बड़े सौभाग्य की बात है कि एक गेरूवा वस्त्रधारी मठाधीश सन्यासी को हिन्दुओं की चिन्ता तो हुई। आज कितने ही महात्मा, जिनका हिन्दू समाज पोषण करता है, और जो धर्म के प्रतीक बने घुमते हैं, समाज और धर्म के अपमान पर आँखें बन्द किये हुए बैठे हैं। भारतवर्ष में साधुओं की इतनी बड़ी संख्या है कि यदि वे हिन्दू समाज के संगठन, सुधार और सेवा का व्रत ले लें, तो हिन्दू समाज में तुरन्त क्रान्तिकारी चेतना उत्पन्न हो सकती है। श्री महन्त जी एक क्रान्तिकारी वीर सन्यासी थे, जिन्होंने चौरीचौरा के स्वातंत्रय–काण्ड का नेतृत्व किया था। उस समय उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दू महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से कुछ नियमों की कठिनाई के कारण मान्यता नहीं प्रदान की गई थी। उत्तर प्रदेश हिन्दू महासभा पर उस समय कुछ राजाओं और जमीदारों का गुट हावी था। वे लोग नहीं चाहते थे कि कोई गैर राजा हिन्दू महासभा के मंच पर आये। उस समय श्री महंत जी को साधारण दर्शक के रूप में सम्मेलन की कार्यवाही सुननी

पड़ी। सम्मेलन के आयोजक एक दर्शक के रूप में उनका भाषण करवाना चाहते थे, किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। उस समय उन्होंने कहा था कि यह जमींदार और राजा–महाराजा अवसरवादी, स्वार्थी और सत्ता के साथ रहने वाले हैं। उनकी यह बात नितान्त सत्य सिद्ध हुई। सम्पूर्ण भारत के राजा–महाराजा, तालुकेदार, जमींदार, जागीरदार और पूँजीपति आज भी खुले आम सत्तारूढ़ दल के साथ देखे जा सकते हैं। हिन्दुत्व के पक्ष पर चलना नंगी तलवार की धार पर चलने के सदृश्य है। आगे चलकर जिस समय उन राजाओं और जमीदारों ने उत्तर प्रदेश हिन्दू महासभा से त्याग–पत्र दिया, उस समय बड़ी ही विषम परिस्थितियाँ थीं। मुस्लिमलीग की साम्प्रदायिक गतिविधियाँ तेजी पर थीं। कांग्रेस मुस्लिम–पूजा और अल्पसंख्यक तुष्टिकरण के नाम पर भारत–विभाजन और हिन्दूओं के हितों की घोर उपेक्षा करने पर उतारू थी। ऐसे गाढ़े समय में श्री महन्त जी ने हिन्दू महासभा का कार्य–भार सँभाला और प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर लीगी गुण्डों द्वारा फैलाये जाने वाले विषैले प्रचार का सामना किया। वे आजीवन अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहे। उनके समक्ष अनेकों बार बड़े–बड़े प्रलोभन आये, किन्तु उन्होंने सिद्धान्त और दल नहीं बदला। अपने भाषण में वे बहुधा सुकरात की चर्चा किया करते थे, जिसने अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए सहर्ष विष–पान कर लिया था। सत्ता और स्वार्थ की राजनीति से वे सर्वदा पृथक रहे। समाज और राष्ट्र का ढ़ाचा, तिनकों की तरह उड़नेवाले और रात–दिन दलीय एवं सैद्धांन्तिक निष्ठा बदलने वाले व्यक्तियों पर आधारित नहीं होता है। उसका निर्माण तो ऐसे दृढ़ एवं स्थिर महापुरूषों के संकल्प से होता है, जो जीवन भर अविचल अपने पथ पर खड़े रहते हैं। साधारण विकृत एवं स्वार्थी नेत्रों से ऐसे महापुरूषों को पहचाना नहीं जा सकता। उनका मूल्यांकन करने के लिए भी कुछ चारित्रिक योग्यता होनी चाहिए। कोटि–कोटि पीढ़ियां खप गईं, अनवरत झंझावतों का सामना करने के पश्चात् भी यह विराट् हिन्दू–समाज बट वृक्ष की भाँति श्री महंत जी सदृश महापुरूषों के बल पर ही स्थित है। यही नीव के पत्थर हैं, जिन पर हमारी परम्परायें टिकी हुई हैं।

श्री महंत जी हिन्दुत्व के लिए संघर्ष करने वाले एक अविचल सेनानी थे, जिन्होंने निरन्तर सक्रिय एवं संघर्षरत रहकर हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रचार किया। अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षों में वे उत्तर प्रदेश और अखिल भारत हिन्दू महासभा पर पूरी तरह छा गये थे। उनके परामर्श के बिना कोई भी कार्य हो पाना कठिन था। हिन्दूमहासभा ने उन्हें ग्वालियर अधिवेशन का राष्ट्रपति एवं गोरखपुर जनपद की जनता ने संसद सदस्य चुनकर उन्हें सम्मानित किया था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उनकी स्मृति जन–मानस पर युगों तक छाई रहेगी। सम्पूर्ण हिन्दू समाज उनका ऋृणी हैं।

卐

पंथ–प्रदर्शक महन्त दिग्विजयनाथ

श्री निरंजन वर्मा, एडवोकेट, संसद सदस्य

यों तो साहित्यिक लोकोक्ति अथवा सर्वप्रचलित व्यवहार की भाषा में कंचन और कामिनी का अधिकाधिक गुणगान करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि इन दोनों का सामना बड़े–बड़े धीर वीर पुरूष भी नहीं कर सकते।

हमारे साहित्य में पुराण–काल से आधुनिक गवेषणा–काल तक इन दोनों का विशद वर्णन मिलता है। सुन्द उपसुन्द का युद्ध, विष्णु का मोहिनी रूप और समुद्र–मंथन तक में इसका वर्चस्व गाया गया है। ये वर्णन हमारे साहित्य और इतिहास के सशक्त पन्ने बन गये हैं। अन्य देशों के साहित्य में इनका मूल्यांकन कम नहीं किया गया, वरन् कहीं–कहीं तो इनमें एकाध छटा और बिखेर दी गई है। फारसी साहित्य में कंचन, कामनी और भूमि को कुछ अधिक महत्व मिला है।

इस विवेचनात्मक निरूपण में फारसी के साहित्यकारों ने प्रायः संसार के सब व्यक्तियों को इनके सामने झुकते हुए बतलाया है। यही नहीं, उनका ख्याल है कि इन दोनों तथा इनकी सहोदरा एक और सम्पत्ति–पिपासा को जिसे जमीन के नाम से सम्बोधित किया गया है, प्रायः संसार के सारे झगड़ों का मूल कहा गया है। अर्थात् फारसी में दो के स्थान पर तीन वस्तुओं के समावेश से साहित्य को सौन्दर्य प्रदान किया गया है। अंग्रेजी साहित्य इससे एक कदम और आगे बढ़ गया है। उसने यह दबी जबान से स्वीकार किया है कि संसार में कलह अशान्ति तथा युद्धों का मूल कारण ये तिनों चस्तुएं ही हैं, परन्तु मनुष्य की एक अत्यन्त बलवती अतृप्त आकांक्षा यशोलिप्सा भी है, जिसका स्थान सर्वोपरि है और जो प्रायः संसार के प्रत्येक महान् व्यक्ति के चरित्र में लक्षित होती है। किसी महत्वाकांक्षी व्यक्ति का उससे बचना सम्भव नहीं है। चाहे सिकन्दर और जूलियस सीजर हों अथवा नेपोलियन और हिटलर हों। इन सबके अंतस्तल में वही अतृप्त आकांक्षा थी। इस अतृप्त आकांक्षा को अंग्रेजी कवि टेनीसन ने सज्जन मस्तिष्क की अन्तिम कमजोरी बतलाया है। निःसन्देह यह बात सर्वथा सत्य है कि यदि कोई व्यक्ति कामिनी कंचन और भूमि से निकल कर भाग भी जाय जो भी यश–कामना से तो वंचित रह नहीं सकता।

चतुश्पदार्थ की कामना करने वाले व्यक्ति इस काल कोठरी से बच निकलने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाते हैं। परन्तु भारतीय वाङ.मय के पृष्ठ उन महान् व्यक्तियों के चरित्रों से खाली नहीं हैं, जिन लोगों ने इन पर विजय प्राप्त कर ली है।

चतुष्कृत्यायें युगों से मनुष्यों पंर आक्रमण करती आई हैं और अन्त में मनुष्य को मिल्टन के स्वर्गनाश (पैराडाइज लास्ट) की चौखट पर लाकर छोड़ जाती हैं। तो क्या यह संसार वीर–विहीन और सर्वथा निस्तेज हो गया है? हिन्दू संस्कृति की प्रखर और वेगवती अजस्र धारा ने इसका उत्तर दिया है। सर्व सिद्धियों के प्रधान विष्णु के हृदय तक को पादाक्रान्त करके यश–कलुष को भी शतशत धिक्कार करने वाले भृगुओं की इस देश में कमी नहीं रही है। अंगिरस और कपिल की त्यागमयी कीर्ति और पराङ.मुखी वृत्ति ने इस भूमि का पथ सदैव ही प्रशस्त और आलोकित किया है।

महन्त दिग्विजयनाथ जी ऐसे ही पथप्रदर्शकों में अग्रणी रहे हैं। जीवन भर इन कृत्यों और कौटुम्बिक प्रवेगों से दूर रहकर भी उन्होंने सारे हिन्दू समाज को कुटुम्बवत् स्वीकार कर लिया था। सम्पत्ति के मोह से मुक्त होकर उनकी सारी सम्पत्ति काषाय वस्तुओं में ही सीमित हो गयी थी। ईश्वर–चिन्तन ने उन्हें इतना लोक कल्याणकारी स्वरूप प्रदान कर दिया था कि वे हिन्दू मात्र के कल्याण में अनवरत रत रहते थे। समाज–चिन्तन ने उन्हें अभिभूत कर लिया था। ऋृग्वेद ने ऐसे ही व्यक्तियों के लिए चिन्तन किया है।

श्योनोनयोनि सदन धियाकृतम्।
हिरण्यय मासदम् देव ऐषति।।

'बुद्धि से प्रबुद्धि विद्वानों से निर्मित, प्रजाहितकारी सम्भावना और बैठने योग्य आसन देवगतिमान पुरूषों को प्राप्त करावें।' पूज्य महंत दिग्विजयनाथ निश्चित रूप से उन्हीं भारतीय मनीषियों की परम्परा की कड़ी थे, जिन्होंने निस्वार्थ भाव से समाज के कल्याण के लिए ही अपना तन–मन–धन अर्पित कर दिया।

卐

युगपुरूष महन्त दिग्विजयनाथ

श्री आनन्द देव गिरि, एडवोकेट हाईकोर्ट

पूज्य स्वर्गीय महन्त दिग्विजयनाथ जी से मेरा सम्बन्ध जब से मैने होश संभाला तभी से था। इस कारण सहज ही आदरणीय महन्त जी को अपने परिवार का एक वयोवृद्ध सदस्य समझ बैठा। मेरे बचपन के वर्ष गोरखपुर में गोरखनाथ मंदिर पर पूज्य महन्त जी की छाया में बीते हैं। मेरे मामा स्वर्गीय पशुपति प्रताप पुरी (जो युवावस्था में ही दिवंगत हो गये) और महंत जी छात्रावस्था से ही अभिन्न मित्र थे, एक प्राण दो शरीर। मेरे होश संभालने के पहले ही मेरे मामा का देहान्त हो चुका था, लेकिन उनके स्थान पर मामा का पूरा स्नेह मुझे श्री महन्त जी से ही मिलता रहा।

आज हमारे बीच श्री महन्त जी नहीं हैं। जब मैं अपने पिछले जीवन पर दृष्टि डालता हूँ, तो पाता हूँ कि मेरे जीवन को रूप देने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा हैं। यों तो श्री महन्त जी के सम्पर्क में जो भी आया, उस पर उनकी छाप न पड़ी हो, ऐसा हो नहीं सकता। लेकिन जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि मेरे ऊपर उनकी छाप अमिट रही है।

श्री महंत जी के सम्पर्क में यों तो मैंने बहुत कुछ सीखा, लेकिन दो बातें, जो मेरे आज के जीवन में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है मैंने उन्ही से सीखीं। ये दो बातें थीं वाणी का उपयोग और निर्भयता। आज वाणी मेरा मूलधन है, मेरी आजीविका का साधन है, जो यत्किंचित यश मुझे प्राप्त हुआ है, इसका कारण यही है। पूज्य महन्त जी के सम्पर्क में यदि बचपन से न

आता तो यह धन शायद मेरे पास न होता। कोई आपत्ति, कोई भी मनुष्य, कैसी भी बाधा, कैसा भी परिणाम हो, मुझे उससे भय नहीं लगता। टकराने की इच्छा होती है। यह निर्भयता जाने अनजाने पूज्य महन्त जी के सम्पर्क से ही आई है।

यों तो अपने ३६ वर्ष के अब तक के जीवन में अनेक छोटे बड़े सन्त, राजनीतिज्ञ, धनी, बाग्मी आदि अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में मैं आया, लेकिन एक ही व्यक्ति में रजोगुण, सतोगुण, नवीन, प्राचीन, आभिजात्य, अकिंचन, क्षात्र–तेज, साधुता, गार्हस्थ एवं त्याग का अद्‌भुत समन्वय स्वर्गीय महन्त जी में ही पाया।

मैंने देखा कि बड़े–बड़े महिमान्वित लोग उनके सम्मुख आये हैं और आते उनके चरणों पर नत हो गये। जाने कैसा आकर्षण और वैराट्य उनके व्यक्तित्व में था। जिसने उनके हाथों का किंचित स्पर्श पा लिया, उसे एक भव्य आकार प्राप्त हो गया। चाहे वह गोरखनाथ मंदिर हो, चाहे महाराणा प्रताप शिक्षण संस्थान; चाहे योगाश्रम हो, चाहे शिशु विद्या मंदिर। एक व्यक्ति ने अकेले यह सब कैसे किया, अगर अपनी आँखों से न देखा होता तो विश्वास न करता। यहाँ तक कि वर्तमान महन्त अवेद्यनाथ जी, जिनसे ३० वर्षों का मेरा सम्पर्क है, वह भी पूज्य महन्त जी के हाथों ऐसे बन गये हैं कि उनकी चलाई हुई परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं।

अत्यन्त घनिष्ठ व्यक्ति के बारे में लिख पाना असम्भव हो जाता है। क्योंकि पुरानी यादों का मेला लग जाता है। समझ में नहीं आता क्या लिखा जाय, क्या छोड़ा जाय, वही स्थिति मेरी है। पूज्य महन्त जी से सम्बन्धित इतनी घटनायें हैं कि सब लिखूँ तो एक विशाल पुस्तक बन जाय। इसलिए अच्छा यही है कि चुप रहा जाय। लोगों को बतलाने के लिए लिख दिया जाता हैं, स्मृति में सुरक्षित रखने के लिए भी लिखा जाता है। लेकिन जब तक गोरखपुर है, यहाँ का एक एक कण पूज्य महन्त जी की स्मृतिग्रन्थ है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि जिस व्यक्ति को पूज्य महन्त जी के सम्पर्क में आने का अवसर नहीं मिला, वह इस शताब्दी के एक अद्‌भुत एवं महान व्यक्ति को जानने से वंचित रह गया।

कैलाशवास से ५ दिन पूर्व पूज्य महन्त जी का फोन मिला कि २ अक्टूबर को मैं प्रयाग में ही रहूँ, क्योंकि वे उस दिन आने वाले थे। फिर दो दिन बाद पूज्य महन्त जी की आवाज फिर उसी पुराने अंदाज में फोन पर सुनाई पड़ी, "अरे, डाक्टर रोक रहे हैं। कुछ तबीयत खराब है। नहीं आऊगां"। उन्होंने घर का हाल–चाल पूछा, मेरा कुशल–क्षेम पूछने के बाद बोले, " देखो अब कब मुलाकात होती है"। पूज्य महन्त जी के ये अन्तिम शब्द थे, उस दिन फोन पर सुना। फिर दो दिनों के बाद अर्धनिशा को पूजन गृह के द्वार से पत्नी ने बताया कि पूज्य महन्त जी नहीं रहे। स्तब्ध हो गया। दूसरे दिन गोरखपुर पूज्य महन्त जी को समाधि देने के कुछ क्षण पूर्व ही पहुँच पाया, लेकिन संतोष हुआ कि उनके पार्थिव शरीर का दर्शन पा गया। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि मैने जीवन में जो कुछ पाया, उसमें सबसे सार्थक पूज्य महन्त जी का सम्पर्क ही था। वे मेरे महत्वपूर्ण क्षण हैं, जो बिरलों को ही प्राप्त हुए होंगे। मैं भाग्यशाली हूँ कि उनको अत्यन्त निकट से देख सका।

मैं पूज्य महन्त जी की पावन स्मृति में अपनी प्रणामान्जलि अर्पित करता हूँ।

卐

बचपन के साथी श्री महन्त दिग्विजयनाथ

लक्ष्मीशंकर वर्मा ऐडवोकेट

महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी से मेरा परिचय बाल–काल से ही था। कुछ दिनों तक वह भी उसी विद्यालय के विद्यार्थी थे, जिसमें मैं पढ़ता था। उसके बाद वह एक दूसरे विद्यालय में चले गये। बाल–काल से उनमें नेतृत्व की आभा थी और वह उसी समय से एक दृढ़–संकल्प के और हिन्दू–निष्ठा के प्रतीक होते थे। बाल–काल में अपने विद्यालय के समय वे एक कुशल हाकी खिलाड़ी थे। साथ ही साथ अन्य खेल–कूदों में भी उनकी रूचि थी। श्री गोरखनाथ मंदिर में रहते हुए परम पूजनीय श्री बाबा गम्भीरनाथ जी जैसे योगेश्वर की देख–रेख में उनका पालन–पोषण हुआ। ऐसी दशा में उनका उच्च विचार होना यथार्थ ही था। अपने विद्यालय के समय ही से वे एक कट्टर हिन्दू–भावना रखते थे और शुरू से ही इस धर्म और मंदिर को उत्तरोत्तर बढ़ाने की उनकी आकाँक्षा थी। बाल–काल में ही उन्हें मंदिर को प्राप्त करने में काफी परिश्रम करना पड़ा और इस मंदिर की लड़ाई वे सफलतापूर्वक हाईकोर्ट तक लड़े। अपने बाल–काल में भी वह सफल संगठनकर्ता थे और इसका पूर्ण परिचय उस समय मिला जब उन्होंने श्री महात्मा गाँधी के गोरखपुर में प्रथम आगमन के समय जलूस और व्याख्यान–स्थल तक आने–जाने की व्यवस्था मुख्य संचालक स्वयं सेवक दल के नाते की। उनके सुदृढ़ प्रबन्ध की सराहना स्वयं महातमा गाँधी ने की। विद्याध्ययन के काल ही में महात्मा जी के असहयोग की छाप उन पर पड़ी और उन्होंने अपना कालेज देश की पुकार पर छोड़ दिया और वह एक सक्रिय स्वातंत्र्य सेनानी समझे जाने लगे। चौरीचौरा के भीषण काण्ड में भी उनके उपर आरोप था, परन्तु पहिचान की कार्यवाही में न पहचाने जाने से उन पर मुकदमा नहीं चला। महंतजी अपने कार्य में बराबर लगे रहे और उसके कारण उनके विरोधियों ने उनको फँसाने में कोई कोर कसर उठा नहीं रक्खी। यहाँ तक कि उनके ऊपर यह भी अरोप लगाया गया कि वे जर्मनी और जापान के जासूस थे और उनकी गिरफ्तारी का वारण्ट भी निकल चुका था, किन्तु उस समय के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट वाडल ने इसका विरोध किया और उनके खिलाफ की कार्यवाही समाप्त हो गई। अण्डमान से श्री वीर सावरकर के लौटने के बाद उनके व्याख्यान की छाप श्री महंत जी पर बहुत गहरी पड़ी जिसके फलस्वरूप वह कांग्रेस छोड़ कर हिन्दू महासभा में सम्मिलित हो गये। उसके बाद वह अपनी अन्तिम सांस तक एक सक्रिय हिन्दू महासभा के नेता रहे। उन्होंने अखिल भारतवर्षीय हिन्दूमहासभा के मंत्री, कोषाध्यक्ष, उपसभापति, तथा सभापति के पदों को सुशोभित किया। महंत जी के अथक परिश्रम से गोरखपुर में अखिल भारत हिन्दू महासभा का एक बड़ा सफल अधिवेशन हुआ। इसी के बाद सन् १९४८ में महात्मा गाँधी की हत्या के बाद उन पर यह भी आरोप लगाया गया कि उनका इस हत्या के षड़यंत्र में हाथ रहा। परन्तु यह बात नितान्त असत्य सिद्ध हुई। महंत जी हिन्दू महासभा के आन्दोलन में १९४७ में बन्दी बनाये गये। लखनऊ में कांग्रेसी सरकार से हिन्दुओं की १० मांगों को पूरा कराने के लिए भाषण करते समय वे गिरफ्तार किये गये और कई महीने तक जेल में रहे। १९४८ ई० में जब सरकार उनको गाँधी हत्या काण्ड में फंसाने में असमर्थ रही, तो उनके उपर यह

मुकदमा दिल्ली में चलाया गया कि उन्होंने कनाटप्लेस में एक सभा की अध्यक्षता की, जिसकी आज्ञा सरकार से नहीं ली गई थी। इस अपराध में वे गोरखपुर से बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाये गये। किन्तु मुकदमा चलने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने उन्हें मुक्त कर दिया। महंत जी का जीवन राजनीति से अलग नहीं था और उनका दृढ़ विचार था कि हिन्दू धर्म और राजनीति दोनो अलग–अलग नहीं हैं। वे १९६७ में गोरखपुर संसदीय क्षेत्र से लोकसभा के लिए बहुत भारी बहुमत से विजयी हुए। अपनी दो वर्ष की संसद–सदस्यता–काल में उन्होंने गोरखपुर, पूर्वाञ्चल प्रदेश एवं हिन्दुस्तान के लिए संसद में जो विचार व्यक्त किये, उससे उनकी सच्ची भावनाओं का परिचय मिलता है। संसद सदस्य रहते हुए १९६९ में ब्रह्मलीन हुए।

राजनीति के साथ–साथ महंत जी के विचार और कार्य किसी एक क्षेत्र में सीमित नहीं थे। यद्यपि महंत जी ने कालेज में ही अपना विद्या–काल समाप्त कर दिया, फिर भी उनकी सूझा–बूझ और दूरदर्शिता विभिन्न क्षेत्रों में फैलती रही। महंत जी का विद्या से बहुत घनिष्ट लगाव था। अपने बाल–काल में ही उन्होंने गुरूभक्ति और विद्या–प्रेम का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके स्कूल के (जिसमें वे पढ़ते थे) प्रधानाचार्य श्री यदुनाथ चक्रवर्ती को समय से पूर्व हटा दिये जाने का उन्हें अत्यन्त ही दुःख हुआ। उन्होंने उसी वक्त एक स्कूल खोलकर उन्हें प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्त किया। उस समय यह विद्यालय केवल एक प्राईमरी स्कूल के रूप में था। कालान्तर में उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए यही विद्यालय महाराणा प्रताप इण्टर कालेज और डिग्री कालेज के रूप में विकसित हुआ। यही नहीं, बल्कि महाराणा प्रताप डिग्री कालेज गोरखपुर विश्वविद्यालय का आधार–शिला बना। महंत जी ने अपने स्नेह एवं दूरदर्शिता का परिचय विद्या के क्षेत्र में और भी उन्नति करने में दिया। उन्होंने महाराणा प्रताप–शिक्षा परिषद जैसे संगठन का सृजन किया, जिसके अन्तर्गत गोरखपुर शहर में कई भवन निर्माण किये गये हैं, जिनकी आय से विभिन्न विद्यालय चल रहे हैं। महन्त जी ने अपने जीवन–काल में महाराणा प्रताप पालीटेकनीक की स्थापना की, जो बाद में सरकार के अनुरोध पर उसी को सुपुर्द कर दिया गया। शिक्षा–परिषद ने महिला डिग्री कालेज की स्थापना की थी, जो बाद में विश्वविद्यालय में विलीन हो गया। उन्होंने एक ऐसे स्रोत का निर्माण किया, जिससे ज्ञान, विज्ञान, विद्याा और शिक्षा के क्षेत्र में अनेकानेक प्रकार से कार्य हो सकते हैं। उनका विचार एक संस्कृत विश्वविद्यालय स्थापित करने का था, जिसके लिए भूमि लेने हेतु उन्होंने रूपया भी जमा कर दिया था। किन्तु उत्तर प्रदेश सरकार ने इस योजना को रद्द कर दिया, जिससे उनका यह संकल्प उनके जीवन काल में पूर्ण नहीं हो सका। परन्तु फिर भी उन्होंने श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ के नाम से एक संस्कृत महाविद्यालय स्थापित किया, जो आज 'क' वर्ग में सुचारू रूप से चल रहा है। आशा है कि यही विद्यापीठ भविष्य में संस्कृत विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण करेगा।

महन्त जी को फूलों और वृक्षों से बड़ा प्रेम था और इस विषय मं उनकी जानकारी को देख कर अच्छे अच्छे माली और वनस्पतिविज्ञानवेत्ता चकित रह जाते। इस देश में जहाँ कहीं महन्त जी जाते थे, वे अपने साथ चुन–चुन कर अच्छे फूल व वृक्ष लाते थे और मंदिर में लगवाते थे। भवन निर्माण में तो उनका ज्ञान एक कुशल इंजीनियर से भी बढ़ चढ़ कर था। उनकी अनोखी सूझ–बूझ का ही ज्वलन्त प्रतीक श्री गोरक्षनाथ जी मंदिर का भव्य निर्माण और उसके सन्निकट का मठ (निवास स्थान) है।

इन सब बातों के होते हुए महन्त जी ने जिस तरह मंदिर को बढ़ाया और स्वयं अपने प्रबन्ध से इसकी आय को बढ़ाया, वह इस बात का द्योतक है कि वे कितने सक्रिय प्रबन्धक थे। इन सब चीजों को देखते हुए भी महन्त जी की धर्मनिष्ठा दिन–दिन बढ़ती गई। उन्होंने साधु सम्प्रदाय के स्तर को ऊँचा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनका यह दृढ़ विचार था कि साधु–सम्प्रदाय सदा से इस देश में जन–सेवा करता आया है और उसका मुख्य कार्य भी यही है कि वह जन–सेवा से न केवल जनता को बल्कि स्वयं अपने स्तर को ऊँचा करे। वे सदा इसी प्रयत्न में संलग्न रहे कि मठ–मंदिर का सुधार होता रहे और साधु–वर्ग अपने दुर्गुणों को, जो दुर्भाग्यवश आज कल आ रहे हैं, त्याग कर हिन्दू संस्कृति, हिन्दू सभ्यता और हिन्दू आचार–विचार को अपनाकर देश की तथा अपनी सेवा करे। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने सर्वप्रथम अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारहपंथ योगी महासभा का संगठन किया और देश भर में भ्रमण कर के प्रत्येक मठ मंदिर एवं धर्म स्थान को देखकर हर मंदिर के उद्धार एवं उत्थान का आयोजन किया। योगी महासभा का एक सुन्दर भवन एवं केन्द्रीय स्थान हरिद्वार जैसे पुण्य स्थान पर स्थापित किया। कुरूक्षेत्र में भी उन्होंने एक सुन्दर मंदिर निर्माण की योजना बनाई थी।

उनका स्नेह मेरे ऊपर निरन्तर बढ़ता ही गया। १६३५ से लेकर जीवन पर्यन्त प्रत्येक कार्य में मैं उनका सहयोगी रहा। उनके साथ सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ। उस समय मैंने देखा कि वह किस लगन व निष्ठा से हर काम को देखते व अपने सुझाव से उसे सुन्दर व सुदृढ़ बनाते थे। उनके साथ ही दक्षिणं भारत में और पंजाब में (जो अब पाकिस्तान में है) मुझे कई मंदिरों में जाने का सुअवस्र मिला और वहाँ भी उन्होंने अपने स्नेह मय सुझाव से मंदिरों में सुधार किया। यह गौरव की बात है कि हर मंदिर के मठाधीश और महन्त उनसे न केवल सलाह लेते रहे, बल्कि उनकी बातों को बराबर कार्यान्वित करते रहे और महन्त जी के प्रति उनकी श्रद्धाा, भक्ति एवं विश्वास अटूट रहा। ऐसे सत्पुरूष संसार में कभी–कभी पैदा होते हैं। जिस किसी मंदिर पर संयोगवश महंत जी का चरण गया, उन्होंने उसकी त्रुटियों को दूर करने में विलम्ब नहीं कियां गोरखपुर में श्री गोरक्षनाथ जी का मंदिर, देवी पाटन में माई पाटेश्वरी देवी का मंदिर इसकी जीती–जागती मिशाल हैं। अन्त में, उनके सन्निकट रहने से और उनके विचारों को अच्छी तरह से जानने से मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि महन्त जी के प्रति जो कुछ लोगों का विचार था कि वे मुसलमान भाइयों के खिलाफ थे, बिल्कुल गलत है। व्यक्तिगत विचार और वसूलों के विचार उनके समझ दो वस्तुएँ थीं। वे सिद्धान्ततः भले ही अपने सिद्धान्तों के समक्ष, दूसरों के सिद्धान्तों को न मानें, किन्तु जहाँ तक व्यक्तियों का सवाल है, उन्होंने कभी भी किसी व्यक्ति की सहायता इस आधार पर कि वह हिन्दू नहीं है, करने से इन्कार नहीं किया।

इस देश के बड़े–बड़े हिन्दू नेताओं और हिन्दू धर्म के प्रचारकों के समान महन्त जी का भी यह उद्देश्य रहा कि मुस्लिम शासन के जमाने में जो हिन्दू मठ–मंदिर ध्वस्त किये गये हैं या जिन पर मुसलमानों ने कब्जा कर लिया है, उन्हें स्वराज प्राप्त करने के पश्चात् हिन्दुओं को वापस मिल जाना चाहिए। क्योंकि यह उनकी ही वस्तु है और इस पर उनका ही अधिकार होना चाहिए। श्री अयोध्यापुरी में श्री रामजन्मभूमि का प्रश्न जब उत्पन्न हुआ, तो महन्त जी ने उसमें सक्रिय हाथ बँटाया और उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि यह श्रीरामजन्मभूमि मुसलमानों की मसजिद नहीं है

और न हो सकती है। यह हिन्दुओं का ही परम पवित्र मंदिर है, जो उनको ही मिलना चाहिए। इस हेतु वे कई बार अयोध्या जी गये और इसके संगठन का संचालन भी किया।

वे एक निर्भीक और स्पष्टवादी व्यक्ति थे। मन में कभी कोई मनमुटाव नहीं रखते थे। जो भी कहना होता था, स्पष्ट शब्दों में बिना भय और संकोच के कहते थे। हिन्दू जगत् में उनका एक अपना स्थान था और वे इसे बराबर निभाते रहे। उनके बारे में जो कुछ भी कहा जाय, कम है। उनकी प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। जो भी व्यक्ति उनके निकट सम्पर्क में आता था, वह उनका सबसे आत्मीय व्यक्ति बन जाता था। उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं किया। वे एक अमर योगी थे। श्री गुरू गोरक्षनाथ जी की पावन परम्परा को अपनी कीर्ति से उन्होंने और भी अधिक उज्जवल कर दिया। उनका नाम युग–युग तक अमर रहेगा।

निर्गुणम् वाम भागे च सव्य भागे अद्‌भुतानिजाः।
मध्यभागे तु स्वयंपूर्णाः तस्मै नाथाय तेनमः।।

卐

महन्त जी तो हमारे अपने ही थे

श्री पुरूषोत्तमदास

परम योगेश्वर गुरू गोरखनाथ की तपस्या से पवित्र गोरखनाथ मन्दिर के महन्त पद पर प्रतिष्ठित होकर महन्त दिग्विजयनाथ जी ने भारतीय संस्कृति, हिन्दुत्व और अध्यात्म जगत् की कल्याणकारी प्रवृतियों के प्रचार–प्रसार में जो महान् योगदान दिया, वह भारतीय इतिहास में चिरकाल तक अंकित रहेगा। जो भी उनके सम्पर्क में एक बार आया, वह सदा के लिए उनका अपना हो गया, ऐसा था उनका असाधारण और पावन व्यक्तित्व। मेरा सम्पर्क तो एक घरेलू पारिवारिक व्यक्ति के समान उनसे लम्बे अरसे तक बना रहा। उनकी शिक्षा–दिक्षा के समय से जीवन पर्यन्त हम दोनों एक दूसरे से परम तथा अभिन्न आत्मीय की तरह थे और महत्व की बात तो यह है कि इस तरह के आत्मीय सम्बन्धों में कभी शिथिलता नहीं आने पायी।

मुझे एक घटना याद आती है। कई साल पहले की बात है। स्थानीय कोआपरेटिव बैंक में ऊपरी मंजिल पर एक आवश्यक बैठक थी। बैठक समाप्त होने के बाद मैं नीचे उतरने लगा और सीढ़ी पर फिसल जाने से एक पैर के घुटने की हड्डी टूट गई। महन्त जी भी उस मीटिंग में उपस्थित थे। उन्होंने जो अपनत्व दिखाया, वह भुलाया नहीं जा सकता। तत्काल ही अस्पताल में मेरे पैर का एक्स–रे लिया गया। इस काम में लगभग दो घण्टे लगे थे। जब तक एक्स–रे नहीं हो गया और उसकी रिपोर्ट नहीं मिल गयी, महन्त जी की उत्सुकता बनी रही और मुझे कोठी पर पहुँचा कर ही गोरखनाथ मन्दिर गये। दूसरे दिन बड़े सबेरे उन्होंने फोन किया। उन्हें बताया गया कि हालत ठीक है। फिर भी बिना मुझे देखे उन्हें शान्ति न मिली। वे तत्काल आ गये। इस तरह

आठ–दस दिनों तक वे नित्य सबेरे–शाम आने लगे। आपरेशन और दवा के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव देकर मेरे परिवार के लोगों को वे निरन्तर सान्त्वना देते रहे। जिस दिन पैर का आपरेशन हुआ, उस दिन तो वे पांच छः घंटे बैठे रह गये। बड़ों की बात बड़ी होती है। यद्यपि हम दोनों में मित्र–भाव था, तथापि उनकी महानता और उनकी कृपा और आत्मीयता हमारे परिवार पर सदा बनी रही और आज भी पहले की तरह हमारा परिवार वर्तमान महन्त श्री अवेद्यनाथ जी की स्नेह–आशीर्वाद से कृतार्थ है।

सन् १६४६ में महन्तश्री दिग्विजयनाथ जी ने गोरखपुर में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का अखण्ड भारत के समर्थन में अधिवेशन आहूत किया। उसके मनोनीत सभापति श्री भोपटकर जी को उन्होंने मेरे स्थान पर ठहराया। मेरे प्रति उन्होंने भोपटकर जी से जिस आत्मीयता का वर्णन किया, वह आज तक मेरे स्मृति–पटल पर अंकित है। उन्होंने भोपटकर जी से मेरे सामने ही कहा था कि पुरूषोत्तम दास जी के (मेरे) परिवार का प्रत्येक व्यक्ति मेरा स्वजन है और आप ऐसा समझिये कि पुरूषोत्तम निवास में आपको वही शान्ति और सुविधा मिलेगी, जो गोरखनाथ मन्दिर में ठहरने में मिलती। इस तरह महन्त जी की हमें और हमारे परिवार को सदा कृपा–दृष्टि मिलती रही। वे हमारे बड़े भाई ही थे।

महाप्रस्थान के समय तो उनकी आत्मीयता ने हमारे ह्रदय को जो विकलता दी, उसकी याद कर मन अपने में नहीं रहता। आँखों में सहसा जल की बूँदे भर आती हैं। २८ सितम्बर १६६६ ई० की बात है। शाम को मैं अपने कमरे में विश्राम कर रहा था कि अचानक गोरखनाथ मन्दिर से फोन आया कि महन्त जी की हालत अत्यन्त चिन्ताजनक है। मैंने तत्काल मंदिर के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में एक–एक क्षण में वियोग की आशंका से चित्त अस्थिर हो उठता था। ऐसा लगता था कि मेरे ह्रदय में समाकर वे यही कह रहे हैं कि शरीर ने आत्मा का कभी साथ नहीं दिया। शरीर को जाना ही है और शाम छः बजते–बजते शरीर का बन्धन तोड़कर उनकी आत्मा कैलाश–लोक में भगवान् शिव के स्वरूप में लीन हो गयी।

महन्त दिग्विजयनाथ जी केवल भारत ही नहीं, भगवद्विश्वासी समस्त विश्व की पवित्रम विभूतियों में एक थे और उनके जीवन से हमे सदा इस बात की प्रेरणा मिलती रहेगी कि मनुष्य का सबसे बड़ा बल आत्मबल है। आत्मशक्ति ही परमात्मा की प्राप्ति का साधन है।

卐

स्वर्गीय महन्त दिग्विजय नाथजी

श्री सिंहासन सिंह, भूतपूर्व संसद सदस्य

स्वर्गीय पूज्यपाद महंत दिग्विजयनाथ जी से मेरा प्रथम सम्पर्क सन् १६३०–३१ में घनिष्टतम रूप से हुआ। महंत जी एक बहुत ही दूरदर्शी, कर्मठ, गीता के शब्दों में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के महा सिद्धान्त पर चलने वाले महापुरूष थे। उन्हीं के

सद्प्रयत्नों का यह जाग्रत और चिरस्मणीय फल है कि महाराणा प्रताप प्रथमतः स्कूल, बाद को इण्टर कालेज और अन्त में डिग्री कालेज के रूप में खड़ा हुआ। गोरखपुर विश्वविद्यालय की जब स्थापना हुई, उस समय नगर में दो डिग्री कालेज, एक महाराणा प्रताप कालेज और दूसरा सेन्टएण्ड्रयूज कालेज विद्यमान थे। विश्वविद्यालय के जन्मदाताओं के सामने, जिसमें महंत जी का पूरा सहयोग था, यह प्रश्न रहा कि सम्भावित गोरखपुर विश्वविद्यालय का बीज–रूप कौन कालेज बने। इस प्रश्न का सद्यः समाधान महंत जी ने किया। महाराणा प्रताप डिग्री कालेज को वे विश्वविद्यालय हेतु विलय कर देने के लिए तैयार हो गये और वही कालेज विश्वविद्यालय का बीज–स्वरूप बना, जिसमें इस समय विश्वविद्यालय के शिक्षा तथा वाणिज्य का अध्ययन–अध्यापन हो रहा है। गोरखपुर के शिक्षा प्रचार में महंत जी सतत जागरूक रहे और आज उनकी जागरूकता का प्रमाण है कि गोरखपुर में अनेक विद्या–मन्दिरों के साथ–साथ विश्वविद्यालय भी कायम है।

स्वर्गीय महंत जी जहाँ विद्या प्रचार में सतत संलग्न रहे, वहीं समाज सेवा तथा राजनीति से भी विमुख नहीं रहे। वह अपनी अन्तिम घड़ी तक हिन्दू महासभा के प्राण बने रहे और हिन्दू–हितों की रक्षा के लिए सदा जागरूक रहे। १९५२ में जब भारतीय संविधान के अनुसार प्रथम निर्वाचन हुआ, तो वे प्रस्तावित हिन्दू कोड बिल के विरोध हेतु राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रूप से कूद पड़े और संसद के चुनाव में खड़े हो गये। यद्यपि सफलता नहीं मिली, किन्तु वे जरा भी विचलित नहीं हुए। उक्त चुनाव में मुझे उनके विरूद्ध कांग्रेस की तरफ से खड़ा होना पड़ा। मुझे इस बात का गर्व है कि न तो हमने उनके विरूद्ध प्रचार किया और न उन्होंने हमारे विरूद्ध प्रचार किया तथा हमारा और उनका सम्बन्ध सदा प्रिय से प्रियतर होता गया। १९६२ के चुनाव में भी उनका संघर्ष पुनः मुझसे ही हुआ। राजनीति कं चुनाव को हम दोनो एक मैच का खेल समझते थे। मैच हो जाने के बाद दोनों एक दूसरे के प्रति वही प्रेम भाव रखते थे, जैसा खिलाड़ियों में होता है। मेरा वे सदा आदर करते थे और मैं उनकी पूजा करता रहा। यहाँ यह भी लिख देना शायद अनुचित न होगा कि १९५२ के प्रथम चुनाव में जाने के पूर्व मैंने मठ में जाकर पूज्य महंत जी से अपनी विजय की कामना के लिए आशीर्वाद माँगा और मुझे लिखते हुए गर्व होता हे कि उन्होंने हिन्दू परम्परा के अनुसार, जैसा कि भीष्म–पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य ने युधिष्ठिर को विजय का आशीर्वाद, उनकी याचना पर दिया था, वैसा ही पूज्य महंत जी ने भी मुझे दिया और मैं उनके विरूद्ध विजयी रहा।

सन् १९३८ में गोरखपुर में गोरखनाथ के पूर्व स्थित जाहिदाबाद में मुसलमानों की गौकशी की अनुचित माँग को लेकर एक भयंकर हिन्दू मुस्लिम संघर्ष होने का संकट उपस्थित हो गया था। राज्य सरकार की तरफ से गौकशी रोकने के लिए दफा १४४ जाप्ता फौजदारी लगाया गया और काफी शांति–रक्षा की व्यवस्था की गई। मुसलमानों ने गौकशी कराने को सत्याग्रह का रूप दिया और काफी पकड़े गये। एक रात किसी मुसलमान ने चोरी छिपे कहीं एक बछिया मारी। सुबह जिला मजिस्ट्रेट के यहाँ यह कह कर हाजिर हुआ कि उसने गाय की कुर्बानी कर दी। जिला मजिस्ट्रेट ने मुझे बुलाया और कहा कि यह घटना अनजाने में कैसे हो गई। लेकिन इससे कोई हिन्दू मुसलिम झगड़ा हो जाना बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण होगा। उस समय हिन्दुओं में काफी उत्तेजना थी।

मैं महंत जी के पास गया। वह काफी उत्तेजित थे। मैंने उनसे बातें की। मैं आज सगर्व लिख रहा हूँ कि उन्हीं के धैर्य एवं कौशल ने सारी उत्तेजना को शांत कर दिया और एक अशोभनीय घटना होने से रूक गयी। आज महंत जी नहीं है। लेकिन गोरखपुर क्या भारत की सम्पूर्ण हिन्दू जनता उनकी सदा ऋृणी रहेगी। यह लिखना अनुचित न होगा कि महंत जी ने महंतों और मठों में प्रचलित कुप्रथाओं को भी बदलने में बड़ा सक्रिय भाग लिया और उनके प्रयत्नों से ही बहुत से मठाधीशों ने अपने मठों की आय शिक्षा के प्रचार–प्रसार में लगाना आरम्भ किया। हरिद्वार में वह कुम्भ के मेले के समय वहाँ पहुँचे हुए अपने सम्प्रदाय के मठों के महन्तों की एक सभा कर रहे थे, जिसमें मुझे भी जाने का सौभाग्य उनकी कृपा से मिला। वहीं मैने देखा कि साधु–समाज को सही रास्ते पर लाने के लिए वे कितने उत्सुक थे ताकि साधु–समाज सही मानों में समाज की सेवा कर सके। गोरखपुर का वर्तमान मठ जो उनकी कीर्ति स्वरूप खड़ा है, उसे बाहर से आने वाले यात्री देखने जाते हैं और जाते रहेंगे। मैं अन्त में यही कह सकता हूँ कि काश! महन्तो और मठाधीशों में समाज–सेवा की प्रेरणा, जिसको वह सदा दिया करते थे, आ जाती, तो आज हमारे देश का बहुत बड़ा कल्याण हो जाता। आज भी मठों के अन्दर इतनी सम्पत्ति है कि उनके सदुपयोग से समाज का शैक्षणिक कल्याण हो सकता है।

卐

श्री महन्त दिग्विजयनाथ : एक स्मृति !

पं० सुरतिनारायण मणि त्रिपाठी

समय की अनिवार्य नियति एवं काल के क्रूर हाथें ने हमारे बीच से एक महान् देशभक्त, एक लोक प्रिय जन–नायक तथा गोरखपुर के एक सर्वश्रेष्ठ नागरिक को ही नहीं, अपितु उत्तर प्रदेश और भारत के एक महान् सार्वजनिक नेता महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी को हमारे बीच से उठा लिया। महन्त जी हिन्दुओं के लिए एक निर्भय और अविचल युद्ध करने वाले, पददलित तथा पीड़ित मानवता के हितों के महान् संरक्षक, अपने मित्रों के लिए उदार, अपने श्रद्धालु अनुयायियों और सहकर्मियों के लिए आशा, प्रेरणा और शक्ति के एक स्तम्भ, अपने शत्रुओं के लिए भयंकर तथा अस्थिर बुद्धि वाले लोगों के लिए पथ–प्रदीप के समान थे। क्रूर काल ने उन्हें ऐसे समय उठा लिया, जिस समय वे ही लहरें, जो इस प्रबल अश्वत्थ को उखाड़ फेंकने के लिए टक्करें मारा करती थीं, अब उसके चरण चूमने और उसका अभिनन्दन करने लगी थीं। विभिन्न क्षेत्रों में उनके प्रबल राजनीतिक विरोधी और कार्यकर्त्ता लोगों ने भी अब उनकी गरिमा को मान्यता देना प्रारम्भ कर दिया था तथा उनको प्रसन्न करने एवं उनका मन जीतने की चेष्टा करने लगे थे। सामान्य जनता यह विश्वास करने लगी थी कि जीवन–संग्रामों में अजेय, बीमारियों की छोटी लड़ाइयाँ लड़ने के अतिरिक्त अपने पिछले दिल के दौरे की लड़ाई में भी विजय पा लेंगे और वे सचमुच मृत्युंजय भी हैं। किन्तु यह आशा फलीभूत नहीं हो सकी।

महन्त जी मुझसे आयु में कई वर्ष ज्येष्ठ थे। महन्त दिग्विजयनाथ को मैंने सर्व प्रथम १६१४ में जब उन्हें नान्हू सिंह के नाम से लोग जानते थे, देखा था। मैं तत्कालीन हाई स्कूल में छठवीं कक्षा में भर्ती हुआ था। वे नवीं कक्षा में अध्ययन कर रहे थे। उस समय यह देखकर मैं आश्चर्य चकित रह गया था कि स्कूल के सबसे बड़े शिक्षक श्री मिश्र के साथ उनका व्यवहार कैसा सहज और समानता का था। मिश्र जी की भयाक्रान्त करने वाली दृष्टि दूर से भी स्कूल के उच्च शिक्षार्थियों को भी कक्षा के कमरे के कोने में छिपने को वाध्य कर देती थी। हम दोनों १६१६ में सहपाठी बन गये तथा कालानतर में हम प्रगाढ़ मित्र बन गए।

वह लोकप्रिय शूरमा, महारथी योद्धा तथा अनन्य धर्मप्रवर्त्तक थे। वे उस समय हिन्दुत्व के हितार्थ युद्धतत्पर थे, जिस समय चतुर्दिक धर्मनिरपेक्षता का नक्कारा बज रहा था। वह एक महान् राष्ट्रनिर्माता, कलाओं के एक महान सूक्ष्मद्रष्टा, निर्मलता, नियमपरायणता, कार्यदक्षता के प्रतीक थे। मनोरञ्जनों तथा जीवन के ऐश्वर्यों के राजसी भोक्ता थे। वह कुशाग्रही, गम्भीर, पराक्रमी, निर्भय और एक महान् रण–व्यूह–दक्ष सेनानी थे। वह यद्यपि अपने अस्त्रों और शस्त्रों को बदलते रहते थे, किन्तु अपने युद्ध के लक्ष्य् से कभी भी विमुख नहीं होते थें। महन्त दिग्विजयनाथ अपने उच्चतम तथा सर्वाभिभूत करने वाले व्यक्तित्व सहित हमारे बीच से उठ गये। मित्रों और प्रशंसको को प्रेरणा, प्रेम, सम्मान और प्रतिष्ठा देने वाला तथा शत्रुओं को भयभीत करने वाला एक व्यक्तित्व उठ गया। उस महासागर का गम्भीर नाद तथा गगनभेदी गर्जन मौन हो गया। वह किसी समय कठोर, भयंकर, गोहार सा लगाने वाले और किसी समय कोमल तथा लुभाने वाले देख पड़ते थे। उचित शब्दों अथवा वाक्यों के लिए कभी भी ठिठकते नहीं देखे गये। कालिदास ने रघुबंशियों के जो गुण कहे हैं, महन्त जी में वे ही गुण थे।

आकार सद्दशः प्रज्ञः, प्रज्ञया सद्दशागमः।
आगमैः सद्दशारम्भ, आरम्भसद्दशोदयः।

शरीर के आकार जैसा ही उनका मानस विशाल था, प्रज्ञा के समान उनकी मेधा थी, उनकी चेष्टाएं उनकी मेधा एवं प्रज्ञा के अनुकुल थीं और उनकी चेष्टाओं के परिणाम भी सदैव उनकी चेष्टाओं के अनुरूप महान् होते थे।

उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर जब मैं भागता हुआ उनके निवास पर पहुँचा, तो मैंने उन्हें मन्दिर के सामने रखी कुर्सी पर केसरिया वस्त्र पहने, मस्तक पवित्र भस्मी से विभूषित, उच्च ग्रीवायुक्त इस प्रकार बैठे हुए पाया, मानों वे अपने चारों ओर अपनी गम्भीर एवं राजसी दृष्टि से निरीक्षण कर रहे हों, और मन्दिर के सामने अपना अन्तिम अभिवादन करने के लिए एकत्र श्रोताओं के सामने भाषण देने को उद्यत हों। केवल उनका अधोस्खलित चिबुक ही उनकी निष्प्राणता को प्रकट कर रहा था।

यदि कोई उनके जीवन में छिद्रान्वेषण करने का इच्छुक हो, तो मैं पुनः कालिदास का उद्धरण दे सकता हूँ।

'एको हि दोषो गुणसन्निपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्वांकः।।

इस महापुरूष के निधन से मैं व्यक्तिगत रूप से एक बड़ी अन्तःपीड़ा और क्षति का

अनुभव कर रहा हूँ। ह्रदय विच्छिन्न हो रहा है। जब मैं अपने पिछले ५५ वर्षों के जीवन में उनके साथ निकटतम, मधुरतम एवं यदाकदा विवादपूर्ण जीवन–सम्पर्क का स्मरण करता हूँ, उन्नति, संघर्ष और बहुधा अनुभूति निराशाओं का पूर्वावलोकन करता हूँ, तो ऐसा जान पड़ता है, मानों एक बज्र प्रहार द्वारा उनसे विछिन्न करके मुझे एकांगी कर दिया गया है।

यद्यपि महंत दिग्विजयनाथ के शरीर को अन्तिम समाधि दे दी गयी है, तथापि उनके सिद्धांत उनके अभियान, उनकी सफलतायें, उनके आदर्श, उनका शौर्य उौर उनका लक्ष्य, जिसके हेतु उन्होंने अपना जीवन निछावर कर दिया, दूर–दूर तक प्रसरित सागर की लहरों की तरह फैल जायेंगे, और लोंगों को प्रेरणा देकर अपने पदचिन्हों पर चलने के लिए अनुप्राणित करेंगे। वह संगमरमर का मंदिर, जिसका वे निमार्ण करा रहे थे, जब तक खड़ा रहेगा, तब तक गोरखपुर के शाहजहाँ तथा नाथ–सम्प्रदाय के शिरोमणि के रूप में उनका स्मरण किया जायगा। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे। ओ३म् शातिः ! शांतिः ! शांति !

卐

गोरक्षपुर सिद्धपीठ के ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ

डॉ० रामचन्द्र तिवारी

भारतीय साधना के इतिहास में गोरक्षनाथ आदिनाथ शिव के स्वरूप माने जाते हैं। इन्हीं गोरक्षनाथ ने गोरखपुर को अपनी साधना का केन्द्र बनाया था। गोरखपुर में नाथ–योगियों के सिद्धपीठ की प्रतिष्ठा स्वयं भगवान् गोरक्षनाथ ने की थी, यह विश्वास परम्परा से चला आ रहा है। गोरक्षनाथ की परम्परा में अनेक सिद्ध योगी इस सिद्धपीठ की मर्यादा की रक्षा करते हुए आध्यात्मिक जागृति के प्रकाश–बिन्दु बने रहे। महन्त दिग्विजयनाथ इसी परम्परा की आधुनिक कड़ी के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे। महन्त दिग्विजयनाथ को सन् १६३५ में गोरखपुर के सिद्धपीठ का महन्त बनाया गया। २८ सितम्बर सन् १६६६ तक आप महन्त के रूप में प्रतिष्ठित रहे।

महन्त दिग्विजयनाथ का व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे एक धार्मिक, आध्यात्मिक साधना–केन्द्र के महन्त थे। नाथ–योगी सम्प्रदाय की सभी शाखायें उन्हें अपना नेता और मार्ग–दर्शक मानती थीं। इस रूप में महन्त जी ने विशेष रूप से योगी सम्प्रदाय और सामान्य रूप से समस्त हिन्दू जनता का संगठन किया। महन्त जी जब विद्यार्थी रूप में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, गाँधी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता आन्दोलन आरम्भ हो चुका था। एक सच्चे राष्ट्र प्रेमी के रूप में आप ने इस आन्दोलन में भाग लिया। गाँधी की अहिंसा–नीति का पूर्ण समर्थन आप नहीं कर सके। आप की शिराओं में उदयपुर के राज वंश का पवित्र रक्त प्रवाहमान था। आप को दीन–वृति खलती थी। जब देश को स्वतन्त्र होना है, तो उसके लिए बलिदान देना होगा। इसलिए संघर्ष का सीध ा रास्ता आपको पसन्द था। इसलिए आगे चलकर आपने अपने को गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलन से अलग कर लिया। इससे अच्छा तो क्रान्तिकारियों का मार्ग था, जिसमें मरने–मारने

की वीरतापूर्ण नीति पर बल दिया जाता था। इसलिए महन्त जी ने क्रान्तिकारियों को बराबर समर्थन दिया।

महन्त जी का दृढ़ विश्वास था कि धर्म–प्रतिष्ठा के लिए राजनीतिक शक्ति का होना आवश्यक है। धर्म राजनीति को पथ–भ्रष्ट होने से बचाता है और राजनीति धर्मको संरक्षण प्रदान करके उसके महत्व की रक्षा करती हैं। इसलिए धर्म और राजनीति एक दूसरे की विरोधी नहीं हैं। यही कारण है कि महन्त जी आजीवन धर्म और राजनीति को एक साथ लेकर चले। सन् १६२१ से १६६६ तक भारतीय राजनीति के क्षेत्र में ऐसी कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटित हुई, जिसमें महन्त जी ने अपनी भूमिका न अदा की हो। आपने स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया। चौरीचौरा काण्ड का नेतृत्व किया। १६३१ की जनगणना के अवसर पर हिन्दुओं के व्यापक हितों की रक्षा के लिए संघर्ष किया। साइमन कमीशन और क्रिप्स मिशन का विरोध किया। १६४२ की क्रांति में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रबल विरोध किया। निरंकुश निजाम की हिन्दू उत्पीड़क नीति का विरोध किया। देश के विभाजन का विरोध किया। नेहरू–लियाकत–पैक्ट का विरोध किया। पाकिस्तान में हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों के प्रति सरकार तथा विश्व का ध्यान आकृष्ट किया। लोकसभा के सदस्य के रूप में निरन्तर हिन्दू–हितों की रक्षा की चेष्टा की। धार्मिक क्षेत्र में आपने विश्व भर के हिन्दुओं को संगठित करने का प्रयत्न किया और गोरक्षा के प्रश्न को लेकर सम्पूर्ण भारत के सनातन धर्म प्रेमियों को जगा दिया।

महन्त जी ने यह भली–भाँति समझ लिया था कि शिक्षा ही मानसिक संस्कार की आधार–भूमि है और बिना मानसिक संस्कार के किसी आदर्श की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने भारतीय नवयुवकों को सांस्कृतिक दृष्टि से प्रबुद्ध करने के लिए आदर्श शिक्षा व्यवस्था की कल्पना की। इसे मूर्तरूप देने के लिए उन्होंने 'महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद' की स्थापना की। इस परिषद के तत्वाधान में महाराणा प्रताप शिशु विहार, महाराणा प्रताप इण्टर कालेज, महाराणा प्रताप डिग्री कालेज (जो बाद को गोरखपुर विश्वविद्यालय में विलीन हो गया) महाराणा प्रताप पालीटेकनीक आदि संस्थायें संगठित हुई, जो आज भी इस नगर की सेवा कर रहीं हैं। संस्कृत भाषा की शिक्षा के लिए आप ने गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की, जिसमें छात्रों के भोजन और निवास की भी व्यवस्था की गई है। इस प्रकार आपने धर्म और राजनीति के समानान्तर शिक्षा के क्षेत्र में भी अपने को निरन्तर सक्रिय रखा।

गोरक्षनाथ का प्राचीन मन्दिर उनके अखिल भारतीय ख्याति के अनुरूप नहीं था। महन्त जी ने नवीन मन्दिर के निर्माण की योजना बनाई। यह कार्य व्यय–साध्य था। किन्तु वे अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। उनके जीवन–काल में ही विशाल मन्दिर का निर्माण बहुत कुछ हो गया था और अब निकट भविष्य में संगमरमर के श्वेत प्रस्तर–खण्डों से मंडित यह विशाल मन्दिर गोरखपुर के गौरव का प्रतीक बनने जा रहा है। गोरक्षनाथ का मठ आज जिस रूप में हमारे सामने है, वह उन्हीं की सक्रियता और तत्परता का परिणाम है।

श्री महन्त दिग्विजयनाथ में नेतृत्व की अद्भुत क्षमता थी। उनका व्यक्तित्व सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आकृष्ट कर लेता था। प्रसिद्ध क्रांतिकारी वीर सावरकर, धर्मवीर भोपटकर, श्री कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी, सन्त फतेह सिंह, मास्टर तारा सिंह, डा० शम्भूनाथ

बैनर्जी, देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, महामहिम बाराह व्यकंटगिरि, डॉ० सम्पूर्णानन्द, श्री लालबहादुर शास्त्री, डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी आदि देश के गण्मान्य नेता महन्त जी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे। महन्त जी निर्भीक और साहसी व्यक्ति थे। वे अपनी बात सीधी और स्पष्ट भाषा में कहते थे। उनकी बातें नपी–तुली होती थीं और सीधे हृदय को स्पर्श करती थी। वे सम्मान देना और सम्मान लेना दोनों जानते थे। हिन्दू महासभा के अनेक नेता समय–समय पर विचलित होते रहे, किन्तु महन्त दिग्विजयनाथ विश्वास़ और निष्ठा के साथ इस संस्था की आजीवन सेवा करते रहे।

महन्त जी ने गोरक्षनाथ सिद्धपीठ, गोरखपुर, को उसकी ख्याति के अनुरूप सभी दृष्टियों से विकसित किया। इधर उनका ध्यान गोरक्षनाथ जी से सम्बन्धित समस्त साहित्य् प्रकासित करने की ओर उन्मुख हुआ था। फिलासफी आफ गोरक्षनाथ, एन इन्ट्रोडक्शन टू नाथ योग, डिस्कोर्सेज आन हिन्दू स्पिरिचुअल कल्चर आदि बहुमूल्य कृतियाँ उन्हीं की प्रेरणा से लिखी गई हैं और प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने मठ के पुस्तकालय को भी बहुत समृद्ध कर दिया है।

महन्त दिग्विजयनाथ ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, किन्तु उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य है गोरक्षनाथ सिद्धिपीठ के लिए योग्यतम उत्तराधिकारी का चयन। गोरखनाथ सिद्धपीठ के वर्तमान श्री अवेद्यनाथ जी योग्य गुरू के योग्य शिष्य हैं। इनमें ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ के व्यक्तित्व के अनेक गुण तो हैं ही, साथ ही अध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति कहीं अधिक निष्ठा है। ब्रह्मलीन महन्तजी के व्यक्तित्व में मध्याह्न के सूर्य का ताप था। अस्ताचल की ओर बढ़ते हुए भी सूर्य के ताप की प्रखरता मे कमी नहीं आयी थी। महन्त श्री अवेद्यनाथ जी के व्यक्तित्व में उदयाचल पर स्थित बाल अरूण की उभा है। गोरखपुर की जनता का विश्वास आप को प्राप्त है और ब्रह्मलीन महन्त जी द्वारा आरम्भ किये गये समस्त कार्यों को योग्यता पूर्वक सम्पादित करने की क्षमता का परिचय आप दे चुके हैं। किसी ने ठीक ही कहा है :–

विजय आस दिग्विजय के,
करूणाशील निधान।
धर्म तत्व मर्मज्ञ जो,
शुचि अवेद्य प्रतिमान।।

卐

हिन्दुत्व, भारतीय संस्कृति, देशभक्ति एवं कर्तव्यनिष्ठा के प्रकाशस्तम्भ पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी

डॉ० रवीन्द्र प्रताप राव

पूजनीय महन्त दिग्विजयनाथ जी मानव मात्र के सहायक तथा धर्म और संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप थे। वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि धर्म, अध्यात्म और हिन्दुत्व ही भारत के मेरूदंड हैं। लगभग अर्द्ध शताब्दी के भारतीय इतिहास पर हम नजर डालें और उसकी धार्मिक,

शैक्षणिक और सांस्कृतिक क्षेत्र की उपलब्धियों का विवेचन करें, तो उसमें सतत प्रवाहमान एक अखण्डधारा विद्यमान दिखाई देगी, जिसके मूल–स्रोत और उद्गम में आदरणीय महन्त जी का महत्वपूर्ण स्थान है। मेरा महन्त जी से लगभग २० वर्षों का सम्बन्ध रहा है। इस दीर्घ कालीन सम्बन्ध के संदर्भ में जब मैं उनके बहुमुखी व्यक्तित्व एवं सेवाओं को देखता हूँ और उसपर विचार करता हूँ तो लगता है कि इस एक व्यक्ति के विगत ५० वर्ष के कर्मठ जीवन ने देश के धार्मिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक क्षेत्र को इतना कुछ दे दिया है कि उस पर न केवल हम, अपितु हमारी अगली कई पीढ़ियाँ गर्व और गौरव का अनुभव कर सकती हैं।

वस्तुतः यदि विचार किया जाय तो भौतिक दृष्टि से क्षण प्रतिक्षण नष्ट होने वाले इस नश्वर संसार में मनुष्य का मूल्य ही क्या है? पानी के बुल बुले और सूखे रज–कण के तुल्य कितने लोग रोज ही प्रतिपल जन्म लेते हैं और नष्ट होते हैं। हां, मूल्य तो होता है उनके विचार और कर्तव्य का। प्रश्न उठता है कि मनुष्य अपने किस विचार के प्रति अर्पित है और उसका कर्तव्य अपने उस विचार का अनुवर्ती है या नहीं। महन्त जी का जीवन इस विचार–परक जीवन का न केवल अनुवर्ती रहा, वरन् इसका प्रतीक भी था।

महन्त जी के समान विभूतियाँ यदा–कदा ही अवतरित होती हैं। पिछली शती के अन्त और इस शती के आरम्भ में इस देश के अनेक क्षेत्रों में अनेक महापुरूष हुए। महन्त जी उनमें से एक और शायद अपने ढंग के एक मात्र महापुरूष थे। यह हमारा सौभाग्य था कि हमें उनके समकालीन होने का गौरव प्राप्त हुआ। वे अपनी अक्षय कीर्ति और अपना महान् एवं महत्वपूर्ण कार्य छोड़ गये हैं। वे उनमें अमर रहेंगे। उनके द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य को आगे बढ़ाना उनके अनुयायियों का गुरूतर उत्तरदायित्व है। महन्त जी की प्रेरणा और उदाहरण उन्हें अपने कर्तव्य–पालन की शक्ति देते रहेंगे। उनकी आकांक्षा थी कि भारत शुद्ध एवं प्रबुद्ध बने। इसी लिए वे निरन्तर प्रयत्नशील रहे। हमारे धर्मनिरपेक्ष राज्य में धर्म और संस्कृति अपनी पुरातन गरिमा खो चुके हैं इतना ही नहीं, नई पीढ़ी विदेशी संस्कृति की अनुगामी बनकर भोग और भौतिकता के पीछे दौड़ रही है। वह धर्म और संस्कृति को प्रतिक्रियावादी मानती है। महन्त जी इन सबके प्रति बहुत चिन्तित थे और उन्होंने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। अन्तिम दिनों तक भी वे निष्क्रिय नहीं बने, जो हो सका, वह करते ही रहे। यह प्रसन्नता की बात है कि उनके सुयोग्य शिष्य महन्त अवेद्यनाथ जी वर्तमान गोरक्षपीठाधीश हैं और वे अपने पूज्य गुरू के जीवन–दर्शन के दिव्य प्रकाश से सतत अनुप्राणित हैं और हम सभी लोगों को उनसे भविष्य में बहुत बड़ी आशायें है।

आज महंत जी को खोकर लगता है कि परिवार का एक ऐसा आत्मीय जन चला गया, जिसकी प्रज्ञा हिमालय की तरह उच्च एवं अचल थी तथा जिसका अन्तर गंगा की भाँति निर्मल था। एक ऐसा स्थान खाली हो गया है, जिसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकेगी। देश में जहाँ कहीं भी विपत्ति के बादल मडराते थे, वे मुक्त–हस्त सहायता करने के लिए दौड़ पड़ते थे। हिन्दुत्वनिष्ठ होने के कारण उनसे मेरा अत्यन्त ही मधुर एवं स्नेहपूर्ण सम्बन्ध था। महंत जी का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनका धर्म, समाज, देश–सेवा, संस्कृति तथा समाजोत्थान आदि सभी क्षेत्रों पर समान अधिकार था। जिस विषय को वे उठाते थे, उसमें मौलिक चिन्तन और अद्भुत ज्ञान की गहराइयों का आभास मिलता था। हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दूस्तान के वे अनन्य पुजारी थे। पाकिस्तान बनते

समय उन्होंने भारत विभाजन का घोर विरोध किया था। लोक सभा के सदस्य के रूप में उन्होंने जो भाषण दिए, उनसे उनकी बहुमुखी प्रतिभा एवं प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व का पता चलता है।

गोहत्या को महन्त जी महान् पाप समझते थे। उन्होंने समय समय पर अपनी लेखनी द्वारा गोरक्षा की आवाज उठायी थी। दिल्ली में संसद–भवन पर गोरक्षार्थ ७ नवम्बर १९६७ को आयोजित प्रदर्शन के अवसर पर उन्होंने कर्तव्य–परायणता एवं संस्कृति–प्रेम का पूर्ण परिचय दिया था। उन्हें दुःख था कि स्वराज के बाद भी गोरक्षा के लिए आंदोलन करना पड़ता है। दिल्ली में गोभक्तों पर हुई गोली–वर्षा की उन्होंने कड़े शब्दों में भर्त्सना की थी। अल्पसंख्यक मुस्लिम तुष्टिकरण नीति को वे बहुत बड़ा अभिशाप समझते थे। उनका कथन था कि स्वतंत्रता के पश्चात देश की उन्नति न हो पाने का कारण इसी गलत नीति का अनुसरण है। गाय भारतीय संस्कृति की प्राण है, ऐसे समाज में गोवध कदापि उचित नहीं हैं, ऐसा उनका मत थ।

महन्त जी का व्यक्तित्व महान् था। वे सनातन धर्म के आधार–स्तम्भ थे। उनकी स्मृति चिरकाल तक बनी रहेगी। ऐसे महापुरूष संसार में यदा–कदा ही आते हैं। जिस स्थान, कुल, जाति और धर्म में उन्होंने जन्म लिया, वह उनके प्रताप से धन्य हो गया। वे दीन–दुखियों के सच्चे सहायक थे। उनका नाम हिन्दू धर्म के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।

वास्तव में उनके स्वर्गवास से भारतीय संस्कृति, हिन्दू समाज एवं सनातन धर्म का एक सुदृढ़ स्तम्भ ढह गया। हजारों दीन दुखियों का एक सहारा टूट गया– अकाल पीड़ित, बाढ़–ग्रस्त, अनाथ विधवाओं एवं सताये गये लोगों के कष्ट निवारण की अपने आप में वे एक संस्था थे, जो अब न रही। गोमाता का सेवक एवं सच्चा भक्त चला गया। अनेक संस्थाओं का संचालन करने वाला एक निःस्वार्थ कर्मवीर था, जिसके अभाव में वे सब शिथिल हो उठीं। वस्तुतः उनके सम्बन्ध ा में जो कुछ भी कहा जाय वह कम ही है। किसी विशिष्ट कर्म हेतु ही उनका इस धरा पर अवतरण हुआ था, जिसकी पूर्ति कर वे अपने निर्दिष्ट स्थान को चले गये। उनका पंचतत्व निर्मित शरीर यद्यपि उन्हीं पंच तत्वों में विलीन हो गया, किन्तु उन्होंने धर्म संस्कृति, समाज एवं मानव सेवा का जो अजस्र स्रोत प्रवाहित किया था, उसका निर्मल जल, मानस–मंदिर की मलीनता को दूर कर पवित्रता का सृजन करता रहेगा। संसार में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है जो दूसरों को उपदेश देने में कुशल हैं, किन्तु बिरले ही ऐसे होते हैं जो उन उपदेशों को अपने जीवन में उतारते हैं। उन दुर्लभ महापुरूषों में श्रद्धेय महन्त जी का नाम उल्लेखनीय है, जिनकी कथनी और क़रनी में भेद नहीं था। वे मनसा, वाचा, कर्मणा एक थे। वे जो कुछ कहते थे, उसे अपने जीवन में उतारते थे। उनका यही गुण सम्पर्क में आने वालों के मानस–पटल पर अपने व्यक्तित्व का स्थायी प्रभाव अंकित कर देता था। उनके निकट जो भी आया, उन्हीं का हो गया। प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक जब नयी दिल्ली जाता था, तो नाथ एवेन्यू स्थित पूज्य महन्त जी के निवास–स्थान पर ही रूकता था। अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी महन्त जी अपने अतिथियों की छोटी बड़ी आवश्यकताओं के प्रति अत्यन्त जागरूक रहते थे। कई बार भोज़न का समय हो जाने पर भी मेरे न पहुँच पाने के कारण उन्होंने घन्टों बाद रूक कर मेरे साथ ही भोजन किया।

परोपकार उनके जीवन का परम लक्ष्य था। कोई भी अतिथि आप के द्वार से निराश

नहीं लौटता था। राष्ट्रप्रेम, देश प्रेम और संस्कृति–प्रेम आप के जीवनादर्श थे। जीवन के आरम्भ काल से लेकर अन्तिम क्षण तक आप सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय कार्यों में बराबर भाग लेते रहे। उन्होंने गोरक्षा आंदोलनों को केवल गति ही नहीं प्रदान की, वरन उनका नेतृत्व भी किया। उनकी सरसता एवं सौजन्यपूर्ण व्यवहार ने सबके साथ अत्यन्त आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। वे मानव मात्र का कल्याण करने वाले थे।

उन्होंने अपनी देह लीला समाप्त कर ली, इस अप्रत्याशित दुःखद समाचार से मैं व्यक्तिगत रूप से अधिक दुःखित हुआ। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें एवं उनके अनुयायियों तथा शिष्यों को कर्तव्य–पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान करने की कृपा करे। जै हरि।

卐

ब्रह्मलीन श्री १००८ महन्त दिग्विजयनाथ जी

श्री वीरेन्द्र बहादुर चन्द

विश्व नश्वर है। इसमें मनुष्य पैदा होता है, जीवित रहता है, अन्त में मर जाता है। लेकिन कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो संसार में निश्चित उद्देश्य से जन्म लेते हैं, उसे पूर्ण करते हैं, और अपनी अमर कीर्ति छोड़कर चले जाते हैं। उनके कार्य भविष्य में मानव समाज के लिए प्रकाश–स्तम्भ का काम करते हैं। इन्हीं महान विभूतियों में महन्त दिग्विजयनाथ जी भी थे।

मेरा ब्रह्मलीन पूज्यमहन्त जी से प्रथम साक्षात्कार उस समय हुआ, जब सन् १९२६ ई० में प्रान्तीय क्षत्रिय महासभा का वार्षिक अधिवेशन देवरिया में हो रहा था। उस समय देवरिया गोरखपुर जनपद का एक अंग तहसील के रूप में था– पर क्रमशः विकासोन्मुख हो स्वतंत्र जनपद बनने की चेष्टा कर रहा था। प्रान्त के उस समय के उत्साही प्रसिद्ध जन–सेवी नेतागण सर राजा रामपाल सिंह जी कुर्री सुदौली, तिरवा नरेश दुर्गा नारायण सिंह, राजा साहब शिवगढ़, बस्ती, रूद्रपुर, ठाकुर हनुमान सिंह जी (कुर्री सुदौली), कांग्रेस–वाद में सर्वोदय समाज– के नेता स्व० बाबा राघवदास जी तथा समाज के अन्य प्रसिद्ध कर्मठ नेता उस सभा में भाग ले रहे थे। उस समय हमारे महंत जी श्री नान्हू सिंह के नाम से प्रसिद्ध थे। गौरवर्ण, सुगठित दोहरा बदन, यौवन के चिनह अब स्पष्ट परिलक्षित हो चले थे। निर्भीकता, चपलता, और संयमित रूप से दृढ़ता का भी उनमें समावेश था। उन दिनों असहयोग आंदोलन अपने उग्रतम शिखर पर पहुँच चुका था। महात्मा गांधी के आह्वान पर आप कालेज की शिक्षा से बिदाई ले चुके थे और जिले के कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में समाज के सामने आ गये थे। उसी प्रान्तीय क्षत्रिय महासभा की विषय निर्धारिणी समिति में मेरा उनका परिचय प्रारम्भ हुआ। उनके तेजस्वी, व्यंगपूर्ण विनोदी स्वभाव ने मुझे उनकी ओर आकर्षित किया और वह परिचय मैत्री के रूप में परिणत हो गया। श्री गोरक्षनाथ के महंत पद की गद्दी पर आसीन होने के बाद से तो उनकी सारी अप्रकट शक्तियाँ जाग्रत हो उठीं। फिर तो जिले का राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक कोई भी ऐसा क्षेत्र न बचा,

जो उनके नियंत्रण, सहयोग और प्रभाव से वंचित रहा हो। प्रत्येक क्षेत्र इनसे प्रभावित हो अग्रोन्मुखी ही होता रहा।

कांग्रेस द्वारा मुस्लिम सम्प्रदाय की अनुचित स्वार्थ पोषक मांगो को समर्थन देनेवाली चाटुकारिता की नीति अपनाने तथा हिन्दू हितों पर आये दिन आघात करने और उसे कुचक्रों में पिसते देख इस बीर पुंगव का हृदय जल उठा। अतः वे हिन्दू महासभा में सम्मिलित होकर हिन्दुओं के ऊपर होने वाले कुचक्रों का डट कर विरोध करने को उद्यत हो गये। हिन्दुओं को कायरता से विमुख बनाकर बलिष्ठ, निर्भीक बनाने और उन्हें उठाने में वे जीवन-पर्यन्त प्रयत्न करते रहे। सारी विरोधी परिस्थितियों का जम कर सामना करने के बावजूद जीवनस्वांस तक वे अपने लक्ष्य बिन्दु तक पहुँचने के लिए भगीरथ प्रयत्न करते रहे। हिन्दू जाति को संगठित और बलवान बनाने में अहर्निश इनका प्रयत्न जारी रहता था, जो अन्य लोगों की भाँति केवल दिखावटी न हो कर उनकी आत्मा का स्वतंत्र उद्गार था।

विरोधी पक्ष के लोगों ने गाँधी हत्या काण्ड के षड्यंत्र में निर्मूल अभियोग लगाकर इन्हें जेल भेजने का उपक्रम किया, पर यह उनमें निर्दोष प्रमाणित हो जेल से मुक्त हुए। ऐसे ही अनेक प्रकार की विरोधी, भ्रान्त धारणाओं का प्रसार कर जनता में बदनाम करने की चेष्टा विरोधी जन करते रहे, पर हिमालय की तरह अडिग होकर सभी प्रहारों को सहन करते हुए वे आगे बढ़ते ही गये। वे कांग्रेसी हिन्दू मंच पर इनकी नीति की आलोचना करते थे और अनुशासन के बन्धन से पंगु बनकर मुख खोलने में असमर्थ और 'भयभीत रहते थे, हिन्दुओं के आपत्ति-काल में इनका मुख जोहते और आशा लगाये रहते थे तथा परोक्ष रूप में इनके भावों और वीरतापूर्ण कार्यो की सराहना भी करते थे। इनके निधन से हिन्दुओं की जो निधि खो गई है, उसकी निकट भविष्य में पूर्ति होना यदि असम्भव नहीं तो कठिन तो है ही। हिन्दू समाज इनके वीरता पूर्ण सेवा कार्य, निष्ठा, एवं अदम्य उत्साह से सदैव ही प्रेरणा लेता रहेगा और आभारी हो चरणों में नत मस्तक होता रहेगा।

इनकी चिरस्मरणीय स्थायी कीर्तियों से गोरखपुर नगर आगामी शताब्दियों में भी जगमगाता हुआ प्रकाश देता रहेगा। श्री गुरू गोरखनाथ जी का मन्दिर, ३०-४० वर्ष पूर्व जो जंगल और घास फूस के मैदान में एक सुनसान वीरान क्षेत्र में अवस्थित था, आज एक विशाल क्षेत्र के घेरे में स्थित है। चतुर वास्तुकलाविदों के सहयोग और महंत जी की प्रेरणा से एक मनोहारी वाटिका के मध्य में यह दर्शनीय भव्य मंदिर, संस्कृत विद्यालय, दिवंगत महात्माओं की समाधिओं तथा रंग विरंगे मत्स्य-समूह के झुण्ड से परिपूर्ण चतुर्दिक पक्के घाटों की सुन्दर सीढ़ियों से सजे हुए स्वच्छ मनोरम सरोवर के द्वारा बरबस दर्शनार्थियों को कुछ समय तक स्तब्ध करके रूकने को बाध्य करता है और कुछ समय विश्राम कर दर्शनार्थी आनन्द-विभोर हो उठते हैं। सुदूर देशों के भी दर्शक यात्री इस स्थान को विशेष रूप से देखे बिना अपनी गोरखपुर-यात्रा को अधूरा समझते हैं।

गोरखपुर नगर में ३०-४० वर्ष पूर्व

जिले के तत्कालीन उत्साही क्षत्रियों के प्रयत्न से एक क्षत्रिय स्कूल की स्थापना हुई,

जो बहुत दिनों तक पुराने जमाने की एक छोटी सी इमारत में येन–केन–प्रकारेण चल रहा था। इसकी प्रबन्धक समिति में महंत जी भी थे। कुछ पारस्परिक मतभेद होने पर संस्थापकों का एक गुट प्रबन्ध–समिति से बिलग हो गया। उस समय यह प्रतीत होने लगा था कि विद्यालय अब नहीं चल पायेगा। पर महंत जी की लगन, परिश्रम और अध्यावसाय से इसमें नूतन जीवन आ गया। फलस्वरूप महाराणा प्रताप कालेज के नाम से, विस्तृत तैदान में, एक भव्य इमारत खड़ी हुई। यही विद्यालय विकसित होकर डिग्री कालेज बन गया। बाद में डिग्री कालेज का विलीनीकरण गोरखपुर विश्वविद्यालय में हो गया। इससे महंत जी को पूर्ण संतोष न हो सका। उनकी प्रबल आन्तरिक इच्छा हुई कि महाराणा प्रताप इण्टर कालेज से सम्बन्धित एक और डिग्री कालेज का होना आवश्यक है। डिग्री कालेज की स्थापना की भावना होते ही वे उसकी स्थापना के लिए कृतसंकल्प हो उठे। नश्वर शरीर से आत्मा का विलगाव होने से पूर्व ही, उनकी इस अभिलाषा की भी पूर्ति हो गई। "दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज" के नाम से यह संस्था भी चालित होकर इस समय लगभग ७५० छात्रों को प्रतिवर्ष शिक्षा दान कर रही है। यों तो इस संसार में सभी कार्य चलते ही रहते हैं, पर इस छोटी सी संस्था को इतने उच्च शिखर पर पहुँचाने का श्रेय एक मात्र महंत जी को ही है। इसमें उनका पूर्ण हाथ न होता, तो यह संस्था इस विशाल रूप में पनप पाती कि नहीं, यह बहुत संदेहास्पद है। महंत जी में ऐसे अनेक गुण थे, जिससे वे लोक–प्रिय बन गये थे। उनके सानिध्य में रहकर बहुत लोग बढ़े। अपने निकट के साथी सहयोगियों के दुखसुख में वे विशेष अभिरूचि लेते थे, तथा उन्हें सहारा देकर ऊँचे उठाने में सन्नद्ध रहते थे। वे दूसरे लोगों से, जो द्वेष वश उनसे लोहा लेना चाहते थे, डट कर मोर्चा लेते थे और "संघर्ष ही जीवन हैं" इस कहावत के रंग से अपने को उन्होंने पूर्ण रूप से रंग लिया था। इसी कारण कुछ लोग उन्हें हठी भी कहते रहे। पर एँक बार जो निर्णय वे लेते थे, उससे मुड़ना उन्होंने नहीं सीखा था। इसी कारण उनके सहयोगी उनपर पूर्ण आस्था और स्नेह रखते थे। उन्हें विश्वास था कि मझधार में डूबते हुए सहयोगी को सहारा देने के लिए उनका वरद हस्त पहुँच जायेगा।

और जो कुछ हो, उनके शौर्य, लक्ष्य प्राप्ति के प्रति निरन्तर प्रयत्न और विपरीत परिस्थितियों में भी अविचल भाव से कठिनाइयों से संघर्ष करते रहना आदि ऐसे गुण हैं, जो हमारी युवा पीढ़ी के लिए अनुकरणीय आदर्श, प्रेरणादायक और उन्हें आगे बढ़ाने और उन्हें ऊँचा उठाने में अवश्य ही सहायक है।

पूज्य महन्तजी : एक पुण्य स्मृति

डॉ० भगवानदास अरोड़ा

२५ सितम्बर को गोरक्षपीठाधीश्वर हिन्दू–हृदय–सम्राट् स्व० महन्त दिग्विजयनाथ की तीसरी पुण्यतिथि मनायी जा रही है। इस अवसर पर हम पूज्य महन्त जी के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हमें यह देख व जानकर परम सन्तोष तथा प्रसन्नता हो रही है कि गत

तीन वर्षों में महन्त जी के उत्तराधिकारी महन्त अवेद्यनाथ जी ने अपने प्रातः स्मरणीय गुरूदेव के अनेक अधूरे कार्यों को पूर्ण करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की है, जो निर्बाध गति से जारी है। इसके साथ ही हिन्दुत्व की राष्ट्रीय विचारधारा के प्रचार एवं प्रसार में कोई कसर नहीं उठा रखी। इसमें उन्हें गौरवपूर्ण सफ़लता भी प्राप्त हुई। कभी कभी पराजय का मुख भी देखना पड़ा, परन्तु हर स्थिति का सामना उन्होंने अपने दृढ़–प्रतिज्ञ गुरू की ही भांति किया। शिक्षा–प्रसार एवं दीन–दुखियों की सेवा के निमित्त स्व० महन्त जी की इच्छाओं की पूर्ति हेतु, उनकी द्वितीय पुण्य तिथि के अवसर पर श्री दिग्विजयनाथ धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना हुई, जिसका उद्घाटन प्रदेश के प्रख्यात आयुर्वेद प्रेमी डा० मुकुन्दी लाल द्विवेदी, निदेशक आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश प्रशासन के कर–कमलों द्वारा हुआ। यह चिकित्सालय साधारण आयुर्वेद औषद्यालय न होकर विधि ावत् साज–सज्जायुक्त १२ बड़े कमरों, एक हाल तथा दो विस्तृत कार्यालयों एवं एक बरामदे में स्थित है, जिसमें रोगियों की बाह्यांग ही नहीं, अन्तरंग में भी चिकित्सा की व्यवस्था है। चिकित्सा निःशुल्क होने के साथ–साथ आयुर्वेद चिकित्सा–पद्धति के सर्वांगीण विकास एवं अनुसन्धान की व्यवस्था करने की भी योजना है। इस वर्ष आयुर्वेद मेडिकल कालेज की भी स्थापना की जा रही है, जिससे पूर्वी उत्तर प्रदेश की एक बहुत बड़ी कमी भी पूरी हो जायेगी।

अपने योग्य शिष्य द्वारा यह सब कार्य होते देख पूजनीय महन्त जी की आत्मा निश्चय ही स्वर्गलोक में आज फूली न समाती होगीं वास्तव में स्वतन्त्र भारत में जहाँ अपनी राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के विकास और उत्थान की भारी आशा थी, स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रथम २५ वर्षों में तो इसका ह्रास ही हुआ है। उत्तर प्रदेश में कई आयुर्वेद महाविद्यालय थे, जो या तो बन्द हो चुके हैं या बन्द होने की स्थिति में हैं। जब तक राज्य का प्रशासन इस पर विशेष ध्यान न देगा, तब तक आयुर्वेद की उन्नति और विकारु सम्भव नहीं। इस स्थिति में भी महन्त अवेद्यनाथ इस राष्ट्रीय चिकित्सा–पद्धति के संरक्षणार्थ कार्य–क्षेत्र में उतर रहें हैं। अपने पूज्य गुरू के आशीर्वाद और अपनी कर्मठता से निश्चय ही उन्हें इस क्षेत्र में भी उल्लेखनीय सफलता मिलेगी। राज्य सरकार को भी चाहिए कि वह आयुर्वेद के विकास हेतु इस नए प्रयास हर में सम्भव सहायता प्रदान कर अपनी आयुर्वेद–प्रियता का परिचय दे।

स्वर्गीय महन्त जी के अनुसार आधुनिक वैज्ञानिक प्रगतियों को अपने में समाविष्ट कर आज भी आयुर्वेद देश की राष्ट्रीय चिकित्सा–पद्धति बन सकता है। ऐसा होने पर करोड़ों रूपये की वह विदेशी मुद्रा बच सकती है, जो अतीव महंगी दवाइयाँ विदेश से मंगाने पर व्यय करनी पड़ती है। ईसा से चार शताब्दी पूर्व सिकन्दर अपनी सेना में भारतीय चिकित्सकों को ही ससम्मान नियुक्त किया करता था। ईरान के खलीफा अपनी चिकित्सा के लिए भारतीय चिकित्सक रखते थे। अरस्तू और अफलातून ने भारतीय चिकित्सकों से ही शिक्षा ग्रहण की थी। इस मत की पुष्टि प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान राइली साहब ने भी की है। उनका कथन है कि आयुर्वेद अरब और यूनान वालों से भी पहले का है। अरबी ग्रन्थ 'उयुलउल' में लिखा है कि आठवीं शताब्दी में बगदाद में भारतीय चिकित्सक आयुर्वेद की शिक्षा देते थे। गत वर्ष ही भारतीय वैज्ञानिक डा० खुराना ने अमरीका जाकर 'जीवन' पर शोध कार्य कर विश्व का उच्चतम सम्मान प्राप्त किया।

अतः आयुर्वेद के विकास हेतु वास्तव में महन्त जी ऐसे अनुरागियों एवं डा० खुराना जैसे वैज्ञानिकों का सहयोग मिले और उस पर से यदि राज्य का संरक्षण प्राप्त हो जाये, तो विश्व को चकित कर देने वाली सूक्ष्म औषधियों का पुनः आविष्कार हो सकता है, जो एक बार तो निर्जीव में भी प्राणवायु का संचार कर दें।

स्व० महन्त दिग्विजयनाथ जी की तृतीय पुण्य तिथि पर उस महामानव के प्रति मैं अपनी मार्मिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, जिसने आजीवन देश, समाज एवं धर्म की सेवायें की हैं और जो आज भी कोटि कोटि हिन्दूओं की प्रेरणा का अजस्र स्रोत है।

卐

प्रेरणा के अक्षय स्रोत

श्री हरिनारायण शर्मा

दिवंगत पूज्यपाद महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज का मैंने हिन्दू महासभा के अधिवेशनों तथा अन्य समारोहों में अनेक बार दर्शन किया है, किन्तु एक बार मुझको उनकी उपासना करने का अवसर प्राप्त हुआ। विक्रमी आषाढ़ शुक्ल १३ सम्वत् २०२६ रविवार के दिन सारे ग्वालियर में एक सनसनी थी। भूपाल के इशारे पर स्थानीय प्रशासन ने, जो मनमानी कर रहा था, स्थानीय हिन्दू महासभा के अनेक नेता कार्यकर्ताओं को सूर्योदय से पूर्व ही बन्दीगृह में डाल दिया था और धर–पकड़ जारी थी। हिन्दू महासभाई जहां दिखाई पड़ते पकड़ लिये जाते थे। हिन्दू महासभा मास्टर चन्दगीराम पहलवान का अभिनन्दन करना चाहती थी। इस आयोजन को सफल बनाने के लिए नगर का प्रत्येक हिन्दू सभाई सन्नद्ध था।

इस भयंकर परिस्थिति को देखकर और प्रशासन के बहकावे में आकर पहलवान चन्दगी राम का दिल टूट गया तथा वे स्टेशन से पुलिस के पहरे में प्रातः देहली लौट गये। हिन्दू महासभा का आतिथ्य वहन करने के लिए भी सवा हाथ का कलेजा चाहिए। किन्तु मध्याह्न मेल से महाराजा श्री महन्त जी ग्वालियर पधारे। बचे हुए हिन्दूसभाइयों एवं जनता ने पधारे हुए अतिथियों का रेलवे स्टेशन पर भव्य स्वागत किया। इन्हें स्थिति की भयंकरता का बोध हो गया था, तथापि वे विचलित न हुए।

मेरे जिम्मे पूज्य महन्त जी और श्री बनारसी सिंह की पत्रकार–वार्ता का आयोजन था। पुलिस मेरी खोज में थी। फिर भी मैंने नवागन्तुकों की गूजरी महल होटल, लस्कर में पत्रकारों से वार्ता कराई।

वार्ता में महाराज जी ने प्रशासन के इस कदम की घोर निन्दा की और कहा कि इस प्रकार के स्वागत–समारोह को भंग करना सर्वथा असंवैधानिक है। मैं यथा समय सभा में बोलूँगा। पत्रकारों ने कहा, "महाराज, धारा १४४ लगी है। सभा–समारोह पर प्रतिबंध है। आपको बन्दी बना लिया जायेगा।" तब महाराज जी ने बड़ी दिलेरी से कहा था कि हम हिन्दूसभाइयों को जेल से

भय नहीं। सच तो यह है कि आज हर हिन्दू बन्दी है। सारा हिन्दुस्तान बन्दीगृह है।

आपने होटल में स्वल्पाहार लिया, स्थानीय अधिकारियों से भेंट की, तत्पश्चात ग्वालियर कारावास में कार्यकर्ताओं से मिले, उन्हें धैर्य बँधाया। जिलाधीश, दण्डाधिकारी आदि के मना करने पर भी महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज ने रात्रि में वाड़ेर की सभा में भाषण किया। प्रशासन आप को बन्दी न बना सका। जवान पहलवान शासन से हार मान कर भाग गया, किन्तु हमारे बूढ़े मल्ल ने हार न मानी। इस दिन मुझे महाराज के श्री चरणों के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने वृद्ध नेता के अप्रतिम साहस को देखकर मुझे कर्तव्य–मार्ग पर आरूढ़ रहने की प्रेरणा मिली।

卐

युग प्रवर्त्तक महन्त जी

श्री राम सहाय तिवारी

क्या मालूम था कि वात्सल्य एवं अनुग्रह की सतत् वर्षा करने वाला महामानव अकस्मात् इस प्रकार कूच कर जायेगा। इसे हम भाग्य की विडम्बना किम्वा नियति का नाटक नहीं तो और क्या कहें।

दिल्ली प्रवास के समय एक दि न बाबा (महन्त) जी के दर्शन करने गया। किसी विशिष्ठ कारण से मैंने उन दिनों दाढ़ी रखी थी। पहले तो जब मैंने अपना परिचय दिया, उन्हें आश्चर्य हुआ। परन्तु बाद में मेरा परिचय विश्व–हिन्दू–परिषद के एक सदस्य से कराते हुए विनोद से बोले, 'यह गोरखपुर के मुल्ला जी हैं'। इन शब्दों में उनका सहज वात्सल्य एवं विनोद का भाव छिपा था। अतः सभी उपस्थित जन गदगद हो उठे। मुझसे पूछा कि दाढ़ी क्यों रखवाई है। मैंने बताया कि दिल्ली में कांग्रेस की पराजय से दुःखी होकर ही मैनें दाढ़ी रख ली है। मेरा उत्तर सुनकर उनका मनीषी समाज–सेवकरूप जाग उठा और बरस पड़े, 'तुम मुझे क्या बताओगे ! मैंने तो कांग्रेस में उस समय कार्य किया था जब तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ होगा''। फिर तो मेरे सामने स्वतन्त्रता–सेनानियों का समस्त इतिहास घूम गया। मुझे ज्ञात था कि बाबा जी ने चौरीचौरा काण्ड में प्रमुख भूमिका निभाई थीं तथापि स्वयं बाबा जी के मुंह से वह सब सुनने के लोभ से मैंने कुछ छेड़ दिया। फिर क्या था, उन्होंने अपने क्रांतिकारी जीवन की रोमांचक घटनाओं का लोमहर्षक वृतांत तीन घण्टे तक सुनाया और हम श्रोतागण दत्तचित होकर उत्कण्ठापूर्वक उनके जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंग सुनते रहे। बाबा जी का जीवन त्याग, साहस और सेवा का साकार रूप था। अनुसांगिक रूप से हमें तत्कालीन इतिहास का भी विशद ज्ञान प्राप्त हुआ। मातृभाषा के सम्बन्ध ा में पूज्य बाबा जी ने पहली ही भेंट में एक विचित्र आदेश मुझे दिया। वास्तव में मैं उनके साथ खड़ी बोली का प्रयोग कर रहा था और बाबा जी भोजपुरी तथा अवधी मिश्रित देशज भाषा का प्रयोग कर रहे थे। जब मैं निरन्तर खड़ी बोली का प्रयोग करता रहा, तो बाबा जी ने बीच में टोकते

हुए पूछा, 'क्या तुम्हें अपनी मातृभाषा का ज्ञान नहीं है? क्या तुम पंजाब के रहने वाले हो ?'' मैं बहुत लज्जित हुआ और उसके बाद मुझे अपनी भूल ज्ञात हुई। तदुपरान्त जब भी मैं बाबा जी का दर्शन करने गया, भूल कर भी मैने मातृभाषा के अलावा किसी अन्य भाषा में बात नहीं की।

बाबा जी से जब भी मैं मिलता था, मुझे एक विचित्र सी अनुभूति होती थी। मुझे लगता था कि मैं किसी महान् योगी के चरणों में बैठकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की दीक्षा ले रहा हूँ। वे सन्यासी होते हुए भी जीवन के उत्कृष्टतम सामाजिक पहलू को परखने में निरन्तर क्रियाशील रहते थे। ऐसे लोक-रंजक, समाज-सुधारक साधु आज विरले ही मिलते हैं।

बाबा जी अपने मत पर आग्रह पूर्वक अडिक रहते हुए भी लोकापवाद के पात्र नहीं बनते थे। यह थी उनके व्यवहार-कुशल जीवन की विशेषता। इसका उदाहरण गो-हत्या-निरोध आन्दोलन के समय मिला। बाबा जी से बढ़कर गो-भक्त कौन होगा इस देश में। इस आन्दोलन में बाबा जी ने प्राण-पण से अग्रगण्य भूमिका अदा की। परन्तु अनेक मठाधीशों एवं गद्दीधारियों के समान उनका व्यक्तित्व विवादस्पद नहीं बना और स्वयं सरकार ने उन्हें गौसंबर्द्धन-समिति का सदस्य मनोनीत किया। दिल्ली की तिहाड़ जेल में गोहत्या-निरोध के सम्बन्ध में एक काण्ड हो गया। महन्त जी ने लोकसभा में इस काण्ड की कड़े शब्दों में भत्सर्ना की। गृहमंत्री श्री वाई० बी० चव्हाण को उनकी आलोचना को स्वीकार करना पड़ा और परिणाम-स्वरूप उन्होंने उस सारे काण्ड की जांच कराई तथा सम्बन्धित दोषी अधिकारियों को दंडित किया।

अपने छोटे से संसदीय जीवन में बाबा जी ने अपने क्षेत्र के लिए जो कुछ कार्य किया, उसकी जितनी सराहना की जाय, कम है। वास्तव में वे सम्पूर्ण पूर्वी उत्तर प्रदेश की चिन्ता किया करते थे। उस क्षेत्र के सम्बन्ध में वे कभी ध्यानाकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत करते, कभी प्रश्नों द्वारा शासन को झकझोरते और कभी सीधे मंत्री महोदय को पत्र लिखकर विषय की गम्भीरता की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते थे। वैसे वे हर मुद्दे पर बहस में भाग लेने के लिए पूरी तैयारी करते थे। रेलवे सेवा में सुधार, नई लाइन बिछवाने, नये स्टेशन कायम करवाने, ओवरब्रिज बनवाने आदि में बाबा जी की विशेष रूचि थी। इन कामों में उन्हें यथेष्ठ सफलता भी मिली।

शिक्षा बाबा जी का परम प्रिय क्षेत्र था। शिक्षा के प्रसार तथा प्रचार में उनकी सेवाएं अतुलनीय है। जब तक समाज में शिक्षा का महत्व रहेगा और विद्या तथा विनय मनुष्य के आभूषण समझे जाते रहेंगे, तब तक बाबा जी की कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी। महाराणा प्रताप विद्यालय तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय, उनकी गौरव-गाथा युग-युग तक गाते रहेंगे और उनके मूक स्मारक के रूप में विद्यादान करते रहेंगे।

पूज्य महन्त जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व इतना महान् एवं उत्कृष्ट था कि जो भी उनसे मिलता, उनसे प्रभावित हुए बिना न रहता। लोग उनसे मिलकर सोचा करते थे कि इस युग में भी सच्चे अर्थों में सन्यासी मौजूद हैं, जिन्हें देश-विदेश, लोक-परलोक सभी का गहरा ज्ञान है। वे केवल गेरूवा कपड़ा पहनने वाले साधु न थे, अपितु, समाज की अनन्त धारा में प्रवाहित विभिन्न विषयों में रूचि लेकर उन्हें सही दिशा प्रदान करने वाले युग-द्रष्टा थे।

मेरी दृष्टि में बाबा जी आधुनिक दत्तात्रेय ही थे। वे सभी सम्प्रदायों मतों एवं विचारों के संगम थे। शिक्षा एवं समाज-सेवा के क्षेत्र में जो कीर्तिमान उन्होंने स्थापित किये हैं, हम उन्हें

कभी न ढहने देंगे और उनके द्वारा जलाई गई मशाल को सदैव प्रज्वलित रखेंगे। यह हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। मैं उस युग–पुरूष के चरणों में अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

卐

कुछ संस्मरण

श्री नरेन्द्र अवस्थी

हिन्दू धर्म के मूर्तिमान स्वरूप

हिन्दू धर्म के महाप्राण, राजनीति में युग के चाणक्य, संसद में धर्मनिरपेक्षता का पर्दाफाश करने वाले, तन–मन से हिन्दू श्री महन्त जी से मेरा परिचय उस समय हुआ, जब हिन्दू राष्ट्र की पताका हाथ में लेकर सिंह गर्जना करने वाले महापुरूष कदाचित् ही दिखाई पड़ते थे। उनका नाम अधरों पर आते ही मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। वे महाराणा प्रताप के वंश के थे और उन्होंने उस परम्परा को आजीवन निभाया। सांसारिक प्रलोभन, मनमोहक पद–लिप्सा के आमंत्रण और सरकारी आतंक के झंझावत भी उस युग–पुरूष को कभी आदर्श से विचलित नहीं कर पाये। सावरकर–वाद की मशाल को उन्होंने अन्तिम घड़ियों तक प्रज्वलित रक्खा।

तब तक भारत अशान्ति की भट्ठी में जलता रहेगा

बात उन दिनों की है जब महन्त जी लोकसभा के सदस्य थे। मैं संसद की कार्यवाही देखने हेतु गया था। उस दिन वे गोहत्या विरोधी विचार सदन के समक्ष प्रस्तुत करने जा रहे थे। निर्भीकता की प्रतिमूर्ति श्री महन्त जी ने ओजपूर्ण वाणी में बनराज केशरी की तरह गरजते हुए कहा, 'जब तक धर्म–प्राण भारत की पवित्र भूमि पर गोमाता के रक्त की एक बूँद भी गिरती रहेगी, तब तक देश अशान्ति की भट्ठी में जलता रहेगा। मैं तो हिन्दू धर्म का वकील हूँ, सन्यासी होते हुए राजनीति में केवल इसलिए उतरा हूँ, क्यों कि हिन्दू संस्कृति और सभ्यता पर आज चारों ओर से प्रहार हो रहे हैं।' उनके धारा प्रवाह तथा गहन चिन्तन से ओत–प्रोत भाषण को सुनकर मस्तक आनायास ही श्रद्धा से झुक गया। उस दिन विश्वास हो गया कि बन केशरी और आकाश पर चन्द्रमा अकेले होते हुए भी अपनी छाप छोड़ते हैं। महन्त जी संसद में अकेले ही हिन्दुओं की वकालत बड़े अच्छे ढ़ग से कर रहे थे।

उनका निवास धर्मशाला सदृश था,

एक बार राजधानी के एक यशस्वी पत्रकार उनके निवास स्थान पर बैठे ज्वलन्त समस्याओं पर वार्तालाप कर रहे थे। इतने में द्वार पर कुछ साधुओं ने अलख जगाया। महन्त जी तत्काल उठे और आत्मीयता से उन्हें आदर सहित बैठाया। कुशल–क्षेम पूछा तथा उनके भोजन के प्रबन्ध में जुट गये। कुछ समय उपरान्त सेवा के कार्य से मुक्त होकर वापस लौटे तो मैंने पूछा, "महन्त जी! आप के यहाँ साधु बहुत आते हैं।" उन्होंने सहज मुस्कान चेहरे पर लाते हुए उत्तर

दिया, भई साधु के पास साधु ही तो आयेंगे। आप क्या चाहते हैं कि यहाँ असाधु गण आयें। सभी ठहाका मार कर हँस पड़े। उनके द्वारा युवकों एवं साधुओं को हिन्दु स्वाभिमान जाग्रत करने की प्रेरणा मिलती थी। लगता है, हिन्दू राष्ट्र की एक अमर मशाल बुझ गई। उनका स्थान तो धर्मशाला सद्दश था, जहां दिल्ली आये हुए यात्री व साधु प्रायः ठहरे हुए मिलते थे।

हिन्दू धर्म का भविष्य बताओ

जुलाई ६८ की एक दोपहर, कहर ढाने वाली गर्मी, अंगारे उगलती धरती! हिन्दू महासभा–भवन में एक आवश्यक बैठक थी। दिल्ली केशरी प्रो० राम सिंह जी की रोगग्रस्तता सुन कर वे बेचैन हो उठे। मुझे लेकर प्रोफेसर साहब के यहां पहुँचे। कुशल–क्षेम के बाद दो महान् विभूतियां राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओं पर वार्तालाप में खो गई। न गर्मी की परेशानी और न बीमारी का ख्याल। हिन्दुओं की दयनीय स्थित के लिए गहरी चिन्ता। प्रोफेसर साहब ने सुनाया, "मै गत मास रेल द्वारा दिल्ली लौट रहा था। एक ज्योतिषी महोदय यात्रियों के हाथ देख रहे थे।' श्रद्धेय महन्त जी ने बात काटते हुए कहा, प्रोफेसर साहब! आप उनसे हिन्दू धर्म का भविष्य ही पूछ लेते। दोनों मन्द–मन्द मुस्काने लगे।

卐

स्वर्गीय पूज्य महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी

श्री पार्श्वनाथ सिंह

विधि के विधान के अनुसार यह सारी सृष्टि त्रिगुणात्मक होने के कारण गुण–दोष मिश्रित है। इस विश्व में कोई ऐसी बात नहीं, कोई ऐसा व्यष्टि नहीं, कोई ऐसी समस्टि नहीं, कोई ऐसा देव–मानव नहीं, जिनमें गुण–दोष का मिश्रण न हो। इस संसार में युग–युग में समय–समय पर एक से एक महान् प्रतापी एवं प्रभावशाली पुरूष हुए हैं, जो अनेकानेक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों से विभूषित होने के कारण आज भी दिग्दिगन्त में व्याप्त हैं, परन्तु उनमें भी कुछ त्रुटियाँ, दुर्बलतायें एवं दोष थे। कविकुल–गुरू, प्रातः स्मरणीय, पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में सारे विश्व का प्रपंच गुण दोष मय है, परन्तु संत रूपी हंस गुण रूपी दूध को ग्रहण कर वारि रूपी विकार को त्याग देते हैं।

जड़ चेतन गुन दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहि पय, परिहरि वारि विकार।।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य है कि सज्जन पुरूष महान् पुरूषों के कतिपय दोषों की ओर ध्यान न देकर उनके विभिन्न गुणों की प्रशंसा करके और उनसे सत्प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन को आलोकित करते हैं और उनके सद्गुणों का अनुसरण करते हैं। उपर्युक्त विधि के विधान का अपवाद कोई भी व्यक्ति या समाज नहीं हो सकता।

पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय १००८ श्री महंत दिग्विजयनाथ जी के सम्पर्क में लगभग १८

वर्ष रहकर उनके गुणों से अवगत हूँ और उनके पथ–प्रदर्शन में मुझे भी कार्य–सम्पादन करने का गौरव एवं सौभाग्य सुलभ हुआ था। अतः उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए इस छोटे लेख में उनके कतिपय गुणों की चर्चा संस्मरण रूप में करने का प्रयास कर रहा हूँ।

परमपूज्य दिवंगत महंत दिग्विजयनाथ जी श्री गोरक्षनाथ पीठ के पीठाधीश्वर होने के अतिरिक्त महाराणा प्रताप स्नातकीय कालेज, महाराणा प्रताप इण्टर कालेज, महाराणा प्रताप शिशु विहार, महाराणा प्रताप पालीटेकनीक विद्यालय एवं श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ के संस्थापक, संचालक एवं उन्नायक रहे हैं। संस्कृति विद्यापीठ के विद्यार्थीयों के भरण–पोषण का भी भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था। इन संस्थाओं की देख–भाल की चिन्ता उनको निरन्तर रहती एवं उनके सुचारू रूप से संचालित करने में उनका क्रियात्मक सहयोग एवं हार्दिक सहानुभूति रही है। शिक्षा के क्षेत्र में उनका उल्लेखनीय योग–दान रहा है। उन्होंने विश्वविद्यालय को अपना डिग्री कालेज देकर अपनी उदारता का परिचय दिया। महाराणा प्रताप पालीटेकनीक विद्यालय को भी सरकार को सौंप कर उन्होंने उपनी दूरदर्शिता दिखलायी।

उनके द्वारा स्थापित एवं संचालित शिक्षण–संस्थायें उनके अक्षय यश की उज्जवल पताका हैं। ये संस्थायें उनकी कर्मठता, अध्यवसाय, परिश्राम, लगन और त्याग की द्योतक हैं। मैं उनके सम्पर्क में सन् १९४२ ई० में आया, जब उन्होंने मुझे महाराणा प्रताप हाई स्कूल का प्रधानाध्यापक बना कर बुलाया। उस समय उक्त विद्यालय साधारण अवस्था में था। उसमें दो सौ से कुछ अधिक विद्यार्थी विद्याध्यन कर रहे थे, परन्तु उनके क्रियात्मक सहयोग, सहानुभूति और सहायता से विद्यालय दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति एवं प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होता गया और उसने जनपद के प्रथम कोटि के विद्यालयों में स्थान बना लिया। उनकी कृपा और सहानुभूति के फलस्वरूप विद्यालय के अध्यापकों एवं शिक्षार्थियों में पारस्परिक सहयोग, सौहार्द्र ओर सहानुभूति का वातावरण बन गया था। विद्यालय में अध्ययन एववं अध्यापन का सुन्दर एवं स्वस्थ नैतिक वायुमण्डल बन जाने के कारण शिक्षार्थी लगन से विद्यार्जन करते थे और उनका परीक्षाफल भी उत्तम और अत्यन्त सन्तोषजनक होने लगा था।

विद्यालय को वाणिज्य विषय में इण्टर की मान्यता सन् १९४६ ई० और स्नातक कक्षा की मान्यता सन् १९४९ में मिल गई। इस प्रकार विद्यालय दो भागों में विभक्त हो गया। महाराणा प्रताप उच्चतर माध्यमिक विद्यालय एवं महाराणा प्रताप स्नातक महाविद्यालय। दोनों विद्यालयों में अल्पकाल में ही विद्यार्थियों की संख्या अत्यधिक हो गई। अल्पकाल में विद्यालयों की उन्नति इतनी कैसे हुई, यह सब श्री महनत जी के अथक परिश्रम एवं सतत् प्रयत्न का फल था। उस समय विद्यालय के लिए स्थान का अभाव था, परन्तु विद्यालय की समीपवर्ती भूमि की प्राप्ति गोरखपुर प्रखण्ड के तत्कालीन कमिश्नर श्री वजाहत हुसेन साहब की कृपा से, जो हमारे आरा नगर के निवासी थे और जिनसे हमारा परिचय था, सुलभ हो गई। इस भू–खण्ड की प्राप्ति भी श्री महंत जी के सतत् प्रयत्न के कारण सुलभ हुई। उन्होंने मुझे बराबर प्रोत्साहित किया कि मैं उस भूमि–खण्ड को प्राप्त करने के लिए कमिश्नर साहब से बात करूँ। श्री महंत जी के आग्रह पर मैंने उनसे चर्चा की और उनको विद्यालय में लाकर मैने श्री महंत जी से मिला दिया। फिर तो श्री महंत जी ने अपनी युक्ति और बुद्धि मानी से कमिश्नर महोदय से उक्त भूमि–खण्ड विद्यालय के लिए

दिलाने का वादा करा लिया। उक्त भूमि–खण्ड का मूल्य २०,००० रू० निश्चित हुआ। विद्यालय–कोष में द्रव्याभाव था, परन्तु श्री महंत जी ने अपने पास से रूपया जमा कर उक्त खण्ड को विद्यालय के लिए प्राप्त करा लिया। आज उसी भूमि–खण्ड के पश्चिम एक छोर से दूसरे छोर तक श्री महंत जी के प्रयास और सहायता से आलीशान इमारत बनकर तैयार हो गई हैं, जिनकी आमदनी से उनके द्वारा स्थापित विद्यालय सुचारू रूप में संचालित होते रहेंगे। यह सब कैसे सम्भव हुआ? स्वर्गीय महंत जी की कल्पना, संकल्प और दूरदर्शिता का यह फल है कि आज ये शिक्षण–संस्थायें अपने पैरों पर खड़ी होने की अवस्था में हैं। मुझे खूब अच्छी तरह स्मरण है कि वे प्रबन्धकारिणी–समिति के धनी–मानी सदस्यों से बराबर अपील करते थे कि आप लोग भवन–निर्माण के कार्य में अपना धन लगावें और आप के रूपयों का व्याज दिया जायेगा। परन्तु उस समय किसी सदस्य ने उस पर ध्यान नहीं दिया। श्री महंत जी धुन के पक्के थे। वे इस कार्य में तन–मन–धन एवं अन्य उपायों से लग गये। आज उनकी दूरदर्शिता एवं दृढ़ संकल्प का फल है कि उनके द्वारा स्थपित विद्यालयों के लिए स्थायी कोष इन भवनों के रूप में विद्वमान हैं। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में उनका योग–दान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनके द्वारा शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, संचालन और देख–रेख से स्पष्ट है कि श्री महन्त जी महाराज शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में कितने उत्साही समर्थक, उन्नायक एवं सहायक रहे हैं। वे वस्तुतः सच्चे अर्थ में कर्मयोगी रहे हैं। जिस कार्य को हाथ में लेते थे, उसका सफलता पूर्वक सम्पादन करने में वे द्विगुणित उत्साह, भरपूर शक्ति, अथक परिश्रम अडिग अध्यवसाय और दृढ़ता के साथ संलग्न हो जाते थे।

मुझे स्मरण है कि जब कभी विद्यालय में किसी मंत्री या राज्यपाल या अन्य किसी सामाजिक या राजनीतिक नेता के शुभागमन में उत्सव का आयोजन होता, तो वे स्वयं विद्यालय में उपस्थितहोकर अपनी देख–रेख में सारा प्रबन्ध सम्यक् रीति और शानदार ढंग से कराते थे। वे प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य को सुन्दर ढंग से और नियमित रूप से करने के प्रबल समर्थक एवं पक्षपाती थें वे स्वच्छता और पवित्रता पर विशेष ध्यान देते थे। विद्यालय में कहीं लेशमात्र भी गन्दगी दृष्टिगोचर हो जाने पर वे रूष्ट हो जाते थे और स्वच्छता पर ध्यान देने के लिए प्रोत्साहित करते थे। उनका योगदान केवल शिक्षा–क्षेत्र में ही सीमित नहीं था। उनका सक्रिय योगदान विभिन्न सार्वजनिक कार्य–क्षेत्रों में प्रसरित था। हिन्दू समाज की सुरक्षा, सुधार, उन्नयन एवं उत्थान के विविध क्रियाकलापों में भी केवल उनकी अभिरूची ही नहीं थी, बल्कि क्रियात्मक रूप से वे हाथ भी बँटाते थे। हिन्दू समाज के उत्थान के लिए उनका दृष्टिकोण स्वर्गीय महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी, वीर सावरकर, डाक्टर मुन्जे, भाई परमानन्द और डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी के समान ही था। श्री मालवीय महाराज जी के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी। उन्हीं के आर्दश के अनुशर वे हिन्दू समाज के हित–साधनं कार्य में लगे रहते थे। अपनी कार्य–पटुता और हिन्दू समाज के उत्थान के कार्य में लगे रहने के कारण उनको प्रान्तीय हिन्दू महासभा एवं अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष पद को सुशोभित करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपने प्रबल प्रयास, दृढ़ संकल्प, अथक परिश्रम और उत्साह के फलस्वरूप गोरखपुर में शानदार ढंग से महाराणा प्रताप विद्यालय के प्रांगण में विस्तृत पैमाने पर अखिल भारतवर्षीय हिन्दू महासभा एवं प्रान्तीय हिन्दू महासभा का सफल वार्षिक अधिवेशन कराने का गौरव प्राप्त किया। ये दोनों

आयोजन अभूतपूर्व थे। ऐसा उत्सव इतने बड़े पैमाने पर गोरखपुर में कभी नहीं हुआ था। हिन्दू समाज के हित–साधन में लगे रहने के फलस्वरूप उन्होंने अखिल भारतीय हिन्दू नेताओं में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया था। हिन्दू धर्म का संरक्षण, हिन्दू समाज का उत्थान और हिन्दू समाज के हित की रक्षा कैसे हो, यह उनकी चिन्ता के विषय थे। जब कोई उनसे मिलने जाता, उपर्युक्त विषय पर वे अपने विचार प्रकट करते थे। उनकी मान्यता थी कि "हिन्दू" शब्द सम्प्रदाय का बोधक नहीं है, वह तो राष्ट्रीयता का द्योतक है।

वे हिन्दू समाज के उत्थान के लिए जब कभी हिन्दूसभा के मंच से बोलते, तो ध ारा–प्रवाह भाषण करते थे। वे बड़े जोरदार वक्ता थे, उनके भाषण का प्रभाव श्रोताओं पर बहुत प्ड़ता था। उनकी अभिरूचि सुन्दर, भव्य एवं शानदार भवन बनाने की रही है। उसी सुरूची से प्रेरित होने के फलस्वरूप उन्होंने गोरक्षनाथ मन्दिर की काया–पलट कर दी। श्री गोरक्षनाथ मन्दिर का भव्य, शानदार और अत्यन्त सुन्दर निर्माण करने के कार्य का शुभारम्भ करा कर और अपने जीते जी उसका अधिकांश भाग पूर्ण होते देखकर उन्होंने असीम आनन्द की अनुभूति की और हार्दिक संतोष की सांस ली। श्री गोरक्षनाथ मंदिर के हाते में स्थित पोखरे का भी जीर्णोद्वार कराकर सुन्दर एवं दर्शनीय बनाने का श्रेय प्राप्त कर लिया। राजनीतिक क्षेत्र में भी उनका महत्वपूर्ण स्थान था। कारण, इस क्षेत्र में भी वे अपने ढंग से देश की राजनीतिक उन्नति एवं प्रगति के लिए प्रयत्नशील थे। वे कई बार प्रान्तीय विधान सभा एवं केन्द्रीय संसद के सदस्य होने के लिए प्रयास करते रहे। परन्तु जीवन के सन्ध्या काल में उनकी यह चिरवांछित अभिलाषा भी योगीराज श्री गोरक्षनाथ जी के प्रसाद से एवं भगवान की अनुकम्पा से पुरी हो गई। जब वे जनता द्वारा निर्वाचित होकर भारतीय संसद के मा ननीय सदस्य हो गये थे, लोकसभा के प्रतिष्ठित सदस्य के रूप में अल्प काल में ही उन्होंने अपना प्रभाव जमा लिया और अनेक लाभप्रद सार्वजनिक कार्यों को कराने में भी वे सफल हुए। इस महती अभिलाषा की पूर्ति से, उन्हे व्यापक क्षेत्र में राजनीतिक कार्य करने का सुअवसर प्राप्त होने से हार्दिक संतोष एवं प्रसन्नता थी।

श्री महन्त जी के वाह्य रूप से उग्र होने पर भी उनका अन्तःकरण कोमल, दयार्द्र एवं सहानुभूतिपूर्ण था। कोई भी उनसे विनम्र एवं विनीत होकर अपना काम सुगमता से करा लेता था और अपना अपराध क्षमा करा लेता था। मुझे उनके साथ दो बार यात्रा करने का अवसर प्राप्त हुआ था। एक बार कलकत्ता और दूसरीबार मोतीहारी। इन दोनों यात्राओं में उनका व्यवहार इतना सौहार्द्रपूर्ण एवं प्रेमपूर्ण था कि उनकी स्मृति–मात्र से मन मुग्ध हो जाता है और ह्रदय उनके प्रति कृतज्ञता से पूर्ण हो जाता है। उनकी कृपा से कलकत्ता नगर की यात्रा करने और वहां के शानदार दृश्य देखने का अवसर मिला।

उनके साथ कार्य सम्पादन करते समय कई अवसर ऐसे आये, जब उनकी सहायता एवं उदारता का परिचय मिला। मुझे भली–भांति स्मरण है कि प्रधानाध्यापक–पद पर हमारी नियुक्ति ऐसे समय में हुई, जब कार्य–कारिणी समिति दो भागों में विभक्त हो गई थी। एक समिति ने भूतपूर्व प्रधानाध्यापक के पक्ष का समर्थन करते हुए उनका मामला शिक्षा–विभाग में विचारार्थ प्रेषित किया था। दूसरी नयी समिति श्री महन्त जी की प्रेरणा से बनी थी। तत्कालीन

शिक्षाधिकारी पुरानी समिति की ओर झुके हुए थे, परन्तु ऐसी विषम परिस्थिति में भी महन्त जी ने मुझे अपने पद पर डटे रहने के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया। अन्त में उनकी विजय हुई। वे स्वभावतः बड़े निर्भीक और स्पष्टवादी थे। सन् १९४२ ई० में गाँधी जी के "भारत छोड़ो" आन्दोलन के कारण विद्यार्थियों द्वारा तोड़ फोड़ का कार्य यत्र–तत्र–सर्वत्र हो रहा था। अतः सरकारी आदेश था कि प्रत्येक विद्यालय के प्रधानाचार्य अपने यहाँ के ऐसे विद्यार्थियों की सूची सरकार को एवं शिक्षा–विभाग को दें, जो विद्यालय से अनुपस्थित होकर सरकार को उलटने के लिए तोड़–फोड़ का कार्य कर रहे थे। मैंने ऐसी सूची शिक्षा–विभाग को नहीं दी। परिणाम यह हुआ कि हमारे विद्यालय का सरकारी आर्थिक अनुदान अल्प काल के लिए बन्द हो गया। फिर भी श्री महन्त जी मन्त्री होने के नाते हम पर नाराज नहीं हुए, बल्कि शिक्षाधिकारियों से मिलकर उनको समझा–बुझा कर अपने विद्यालय का अनुदान पुनः जारी करा लिया।

पूज्य महन्त जी महाराज जैसे हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तान के प्रबल समर्थक एवं हितचिन्तक के इस संसार से उठ जाने से देश की एवं हिन्दू जगत की विशेष क्षति हुई है। उनके दुःखद निधन से हिन्दू राष्ट्र ने अपना एकनिष्ठ हितैषी एवं अपने ढंग का निराला समर्थक खो दिया है। निधन के दिन जनता की अपार भीड़ अन्तिम दर्शन करने एवं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उमड़ पड़ थी। यह उनकी लोक–प्रियता का परिचायक है। जो स्थान उनके निधन से रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति निकट भविष्य में होना कठिन है। अन्त में ब्रह्मलीन महन्त जी को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, करबद्ध एवं नत–मस्तक होकर परम कारूणिक, दयालु भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी दिवंगत आत्मा को स्वर्ग में शान्ति सुलभ हो और उनके सुयोग्य शिष्य एवं उत्तराधिकारी पूज्य महन्त अवेद्यनाथ जी को अपने पूज्य गुरूदेव के वियोगजनित दुःख को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो। साथ ही सार्वजनिक कार्य करने में उनको अपने गुरू के पद–चिन्हों पर चलने के लिए प्रेरणा एवं हार्दिक उत्साह मिले। स्वर्गीय महन्त जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही है कि उनके द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाओं में कार्य में रत गुरूजन एवं विद्यार्थी लगन से अपने कर्तव्य का समुचित रीति से पालन करें। यही हमारी मंगल कामना है।

विद्यार्थी जीवन की एक झलक

श्री रमाशंकर सिंह

सन् १९१६–१७ ई० की बात है। उस समय गोरखपुर में एक क्षत्रिय स्कूल था, जिसके प्रारम्भिक काल में केवल ८ वीं कक्षा तक अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी। इस स्कूल से सम्बन्धित एक क्षत्रिय छात्रावास भी था, जो शहर से गोरखनाथ मंदिर पर जाने वाली सड़क से सटे पश्चिम गोरखनाथ मंदिर के समीप स्थित था। मैंने उसी वर्ष प्राइमरी स्कूल की शिक्षा समाप्त कर उक्त क्षत्रिय स्कूल में कक्षा ५ में प्रवेश लिया था और उसके साथ ही उसके छात्रावास में भी प्रवेश प्राप्त किया था। अपने प्रवेश के दूसरे ही दिन मैंने एक सुडौल, प्रतिभा–सम्पन्न, तेजपुञ्ज

व्यक्ति को अपने छात्रावास के सीनियर लड़कों से घुल–मिलकर बातें करते हुए देखा। मैं भी उत्सुकता वश वहाँ खड़ा हुआ और उनकी बातें सुनने लगा। ज्यों ही उनकी निगाह मेरी ओर पड़ी, उन्होंने मेरा परिचय पूछा। वह छोटे बड़े सभी लड़कों से समान भाव से मिलते और बातें करते थे। लोगों ने बताया कि मैं शिवशंकर सिंह का छोटा भाई हूँ। मेरे ज्येष्ठ भ्राता शिवशंकर सिंह तथा मेरे गांव के अन्य पाँच लड़के उस स्कूल और छात्रावास में पहले से प्रवेश ले चुके थे। परिचय होते ही जोर से हँसे और मेरे गांव के सभी लड़कों का नाम "वी आर सेविन" रख दिया, क्योंकि हमलोग सात थे। इसी नाम से एक अंग्रेजी की कविता पाठ्य पुस्तक में उस समय पढ़ाई जाती थी। तभी से हम लोगों का नाम "वी आर सेविन" पड़ गया। उस दिन उनके चले जाने पर उनके बारे में अपने भाई से जानकारी प्राप्त की और मालूम हुआ कि उक्त व्यक्ति का नाम नान्हू सिंह जी है, जिन्हें लोग प्रायः राणा नान्हू सिंह भी कहते थे। उक्त क्षत्रिय स्कूल में प्रवेश प्राप्त करने के पूर्व मैं बाबा गोरखनाथ जी तथा गोरखनाथ मंदिर के विषय में सुना करता था। परन्तु मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि उक्त मन्दिर में कोई राजकुमार भी रहता होगा। ज्यों–ज्यों दिन व्यतीत होते गये श्री नान्हू सिंह जी की प्रतिभा, वीरता, वाचालता, निर्भीकता, स्पष्टवादिता, हिन्दू मान–मर्यादा की भावना हिन्दू संस्कृति और हिन्दू जीवन दर्शन आदि, जो उनके विद्यार्थी काल में ही उनमें प्रस्फुटित होता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा था, आभास मुझे होने लगा।

जिन दिनों की बात मैं कह रहा हूँ उस समय श्री नान्हू सिंह जी हाई स्कूल गोरखपुर में, जो अब महात्मा गाँधी स्कूल गोरखपुर के नाम से जाना जाता है, ६ वीं कक्षा के विद्यार्थी थे। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ वह बड़ी ऊँची कद के परन्तु सुडौल शरीर वाले व्यक्ति थे। वे एक मेधावी छात्र होने के अतिरिक्त उच्च कोटि के खिलाड़ी भी थे। वे अपने स्कूल की हाकी के फर्स्ट एलेविन के कैप्टन थे और स्कूल छोड़ने तक यानी १० वीं कक्षा तक वह कैप्टेन रहे। खेल के मैदान में उनके उतरते ही दर्शकों की दृष्टि उनके खेल की ओर ही लगी रहती थी। जितना ही शरीर से ह्रष्ट–पुष्ट थे, वे उतना ही तेज दौड़ते भी थे और उसी तेजी और शक्ति के साथ उनका गेंद विरोधी दल की गोल में अन्दर घुस जाता था। उस समय गोरखनाथ मन्दिर में दो महात्मा रहते थे। एक पूज्य श्री महंत सुन्दरनाथ जी तथा दूसरे बाबा गम्भीरनाथ जी। यों तो दोनों महात्माओं का स्नेह नान्हू सिंह जी को प्राप्त था, परन्तु बाबा गम्भीरनाथ जी का पितृवत् अपार स्नेह श्री नान्हू सिंह जी पर रहता था। गोरखनाथ मंदिर में श्री नान्हू सिंह जी का लालन–पालन एक राजकुमार की भाँति होता था। क्या मंदिर के महंत, क्या छोटे बड़े साधु–सन्त या मंदिर के कर्मचारी, बल्कि सम्पूर्ण जनता, दर्शक, राजकर्मचारी, रियासतों के राजा, महाराजा, शहर के धनी मानी रईस या साधारण लोग सभी की श्रद्धा श्री नान्हू सिंह जी के प्रति उनके विद्यार्थी–काल से ही थी। उसके दो मुख्य कारण हो सकते थे। एक तो यह वंश–परम्परा के सभी गुण उनमें विद्यमान थे, और दूसरा यह कि उसी समय सबको आभास हो रहा था कि कालान्तर में वे गोरखनाथ मंदिर की पवित्र गद्दी के उत्तराधिकारी होंगे। उनकी वाणी ओजपूर्ण पर मधुर थी, जिससे उनके सम्पर्क में आये हुए लोग अनायास ही उनकी ओर आकृष्ट हो जाते थे।

श्री नान्हू सिंह जी बहुत ही हँसमुख और मिलनसार व्यक्ति थे और अपने जनों के प्रति

अपार स्नेह रखते थे। अपनी विशेष परिस्थिति का किंचित मात्र भी उनमें अभिमान नहीं था। छोटे बड़े सभी से समान भाव से मिलते थे। हमारे छात्रावास पर उनकी विशेष कृपा रहती थी। वे प्रतिदिन स्कूल जाते समय और विशेष कर वापसी में हमारे छात्रावास में अवश्य रूकते थे और प्रायः सप्ताह में कम से कम दो दिन छात्रावास के लड़कों के साथ छात्रावास के खेल के मैंदान में ही खेलते थे। ऐसा करने में छात्रावास के लड़कों में संगठन की भावना अंकुरित करना तथा उनका मनोबल ऊँचा करना ही मुख्य ध्येय था। वे प्रायः खेलने की ट्रेनिंग भी देते थे। श्री नान्हू सिंह जी के चेहरे पर यद्यपि चेचक के दाग थे, परन्तु उसके कारण उनके चेहरे की कन्ति में कोई कमी नहीं थी।

स्कूल जाने के लिए उनके पास एक साइकिल थी, जो उस समय की सबसे अच्छी साइकिलों में थी। वह दोनों समय साफ की जाती थी। फेल्ट कैप, सिल्कन ओपेनचेस्ट कोट, सफेद कमीज, धोती, प्रायः सफेद जूता व मोजा उनकी ग्रीष्म तथा वर्षाऋतु की वेश–सज्जा थी। वह सदा धोती के दोनों लाँग बाँधते थे। जाड़े में गर्म कोट तथा मफलर उनकी पोशाक में रहते थे, परन्तु जाड़े में वे धोती ही पहनते थे।

श्री नान्हू सिंह जी बड़े ही साहसी, धैर्यवान और निर्भीक व्यक्ति थे। जो संकल्प करते, उसे पूर्ण करने में वह सक्षम थे। उक्त छात्रावास के लड़के प्रायः जब गोरखनाथ मंदिर में दर्शन निमित्त जाते, तो उनके कमरे में अवश्य जाते। वे लड़कों से बड़े ही स्नेह से बातें करते और प्रायः बहादुरी की बातें किया करते थे। जब कभी उनकी तबीयत खराब होती, तो हमारे छात्रावास के लड़के उनकी सेवा में रात–दिन बराबर रहते। उस समय पुराने गोरखपुर के, जो गोरखनाथ मंदिर के निकट ही स्थित है, अल्पसंख्यक वर्ग के कुछ उपद्रवी लोग गोरखनाथ मंदिर के लोगों के साथ झगड़ा किया करते थे। ऐसे अवसरों पर सूचना पाते ही हमारे छात्रावास के लड़के, जो शरीर से हृष्ट पुष्ट थे, हाकी लेकर उपदव्रियों का मुकाबला करने के लिए मंदिर पर पहुँच जाते और बात की बात में उपद्रवी लोगों को उनके घर तक खदेड़ कर भगा देते। एसी घटनायें श्री नान्हू सिंह जी के विद्यार्थी जीवन में अनेक बार हुई। श्री नान्हू सिंह जी अपने विरोधियों पर सीधा पर तीक्षण प्रहार करते थे। उनकी नीति नहले पर दहले की थी।

श्री नान्हू सिंह जी ने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् सेण्ट एण्ड्रयूज कालेज गोरखपुर में प्रवेश लिया। कुछ समय पश्चात् महात्मा गाँधी जी अपने स्वतंत्रता–आंदोलन के सिलसिले में गोरखपुर आये। चूँकि श्री नान्हू सिंह जी में उपर्युक्त अनेक गुणों के अतिरिक्त प्रखर स्वदेशाभिमान भी था, अतः वे इस आन्दोलन से अपने को अलग न रख सके और यहीं पर उनकी पढ़ाई समाप्त हो गई। महात्मा गाँधी जी के गोरखपुर आगमन पर मैं भी उनके दर्शन के लिए देवरिया से गोरखपुर आया था। गोरखपुर स्टेशन का प्लेटफार्म तथा स्टेशन का बाहरी भाग अपार जन–समूह से खचाखच भरा हुआ था। किसी को विश्वास नहीं होता था कि महात्मा जी गाड़ी से उतर कर बाहर आ सकेंगे। उस समय श्री नान्हू सिंह जी के साहस, व्यूह–रचना तथा कार्यकुशलता का नमूना जन–समूह को देखने को मिला। श्री नान्हू जी वालण्टियर–कोर के कप्तान थे, जो उस विशेष अवसर के निमित्त बनाया गया था। वालण्टियरों का दोहरा घेरा बनाकर और महात्मा गाँधी जी तथा अली ब्रदर्स को बीच में करके उन लोगों को बिना किसी बाधा के

बाहर लाने में वे सफलीभूत हुए।

उपर्युक्त असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर श्री नान्हू सिंह जी ने अपने अन्य साथियों के साथ कालेज का बहिष्कार कर दिया और यहाँ पर उनका विद्यार्थी–जीवन समाप्त हो गया। जब कालेज व स्कूल के कुछ लड़कों ने पढ़ाई छोड़ दी, तो उस समय एक राष्ट्रीय स्कूल की स्थापना गोरखपुर में हुई, जिसमें श्री नान्हू सिंह जी ने कुछ साथियों के साथ थोड़े समय तक अवैतनिक अध्यापन का कार्य किया।

उपर्युक्त घटनाओं से यह स्पष्ट है कि श्री नान्हू सिंह जी के विद्यार्थी जीवन में ही उनमें पौरूष, पराक्रम, त्याग, हिन्दू संस्कृति व परम्परा में अटूट श्रद्धा व विश्वास, स्वदेशाभिमान, संगठन की भावना और वाणी में ओजस्विता प्रचुर मात्रा में प्रस्फुटित हो चुकी थी। कालान्तर में वही श्री नान्हू सिंह जी गोरखनाथ मन्दिर की पवित्र गद्दी के उत्तराधिकारी हुए, जिन्हें हम महन्त दिग्विजयनाथ के नाम से जानते हैं। विद्यार्थी जीवन में जो संकल्प उन्होंने हिन्दू जाति के उत्थान और संगठन का लिया, उसे वे इस संसार से सदा–सदा के लिए बिदा लेते समय तक पूरा करते रहे। उनकी इन भावनाओं ने आगे चलकर उन्हें अपने जनपद या प्रान्त में ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष में पूज्य और अनुकरणीय बना दिया। वे अब हमारे बीच इस संसार में नहीं रहे, परन्तु उनके विचार और सिद्धान्त हम सभी के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

महंत जी की सेवा भावना का प्रतीक
श्री दिग्विजयनाथ धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय

डॉ० सूर्यदेव प्राणाचार्य

गोरक्षपीठाधीश्वर युग–पुरूष ब्रह्मलीन श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की स्मृति में द्वितीय निर्वाण तिथि पर ७ सितम्बर १६७१ ई० की स्थापित श्री दिग्विजयनाथ धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय, राष्ट्रीय चिकित्सा आयुर्वेद के उत्थान का एक अभिनव प्रयास है। आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम प्रभावशाली चिकित्सा–पद्धति है। यह संसार की समस्त चिकित्सा–प्रणालियों की जननी है। आज भी यह आधुनिक औषधियों, उपचारों और यंत्रों को अपने अन्दर समाविष्ट कर, भारत की चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायों का समाधान करने की सामर्थ्य रखती है। रोग के समूल नाश की प्रक्रिया आयुर्वेद में ही विद्यमान है। इस पद्धति की औषधियों से भयंकर प्रतिक्रियायें नहीं होतीं। अर्थात् एक रोग के लक्षण को दबाकर अनेक नये रोगों का उदय नहीं होता। शल्य–शास्त्र के आदि प्रणेता आचार्य सुश्रुत का जन्म भारत की ही पवित्र भूमि पर हुआ था। ईसा से चार शताब्दी पूर्व सिकन्दर ने अपनी सेना में भारतीय चिकित्सकों को ही ससम्मान नियुक्त किया था। ईरान के खलीफा अपनी चिकित्सा के लिए भारतीय चिकित्सक रखते थे। अरस्तू और अफलातून ने भारतीय चिकित्सकों से ही शिक्षा ग्रहण की थी, इस मत की पुष्टि प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान राइली साहब भी करते हैं। उनका कहना है कि आयुर्वेद अरब और यूनान वालों

से भी पहले का है। अरबी ग्रन्थ 'उयुलउल' में लिखा है कि ८ वीं शताब्दी में बगदाद में भारतीय चिकित्सक आयुर्वेद की शिक्षा देते थे। वेद संसार के सर्वमान्य एवं प्रथम ग्रन्थ हैं। उनमें पदे-पदे दीर्घ जीवन के उपायों के साथ, रोग-मोचन एवं औषधि का भी वर्णन मिलता है। आयुर्वेद का प्रदुर्भाव अथर्व-वेद से हुआ है। अथर्ववेद का उपांग आयुर्वेद को मानते हैं। यह आचार्य सुश्रुत का मत है। 'आयुर्वेदमष्टांगमुपाय आयुर्वेस्य'। अर्थात आयुर्वेद अर्थवेद का उपांग है। शवच्छेद, शवसन्ध ान, मसूरिका-प्रतिरोध के जनक भारतीय थे। आज भारतीय और पाश्चात्य विद्वान इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

आयुर्वेद में काल-क्रम से प्राप्त प्रगतियों का सदा समावेश होता रहा है। चरक, सुश्रुत, बागभट्ट, मैत्य, पराशर, हारित, कश्यप, माधवाचार्य, भावमिश्र, सारंगधर आदि ने अपनी तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगतियों को अपनी संहिताओं में समाविष्ट किया है।

पारद, गन्धक और मल्ल का प्रयोग भाव मिश्र और सारंगधर ने आज से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व किया था। चरकाचार्य ने इसका द्वार उद्घाटित किया था। वे लिखते हैं :-

तदेव युक्तं भैषज्यं, यदारोग्याम् कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठ यः रोगेभ्यः प्रमोचयेत्।।

अर्थात वह उपर्युक्त औषधि है, जो रोग से मुक्त करके आरोग्य प्रदान करे। प्रगति-पोषक आचार्य चरक दो चरण और बढ़कर कहते हैं :-

याभिः क्रियाभिः जायन्ते, शरीरे घातवः समा।
सा चिकित्सा विकाराणां, कर्म तद्भिषजां मतम्।।

अर्थात जिन क्रिया-कलापों से शरीर के धातुओं को साम्यावस्था प्राप्त हो, वह रोग की चिकित्सा है। साम्यावस्था प्रदान करना चिकित्सक का प्रधान कार्य है।

आज भी आधुनिक वैज्ञानिक प्रगतियों को अपने में समाविष्ट करके आयुर्वेद भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति बन सकती है। आयुर्वेद चिकित्सकों की एक गोष्ठी में श्री गोरक्षनाथ मठ के महन्त श्री अवेद्यनाथ जी महाराज को उद्घाटनार्थ आमन्त्रित किया गया। वहाँ उन्होंने सर्वसाधन-सम्पन्न एक आयुर्वेद महाविद्यालय गोरखनाथ की पार्श्व-भूमि में स्थापित करने का विचार व्यक्त किया। उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद-निदेशक डा० मुकुन्दीलाल द्विवेदी के गोरखपुर पध ारने पर उन्हें श्री महन्त जी से मिलाया गया। उन्होंने चिकित्सालय की स्थापना में अपनी बहुमूल्य सम्मति प्रदान की।

ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की हार्दिक अभिलाषा थी कि एक पूर्ण साजसज्जा-युक्त आधुनिक आयुर्वेद चिकित्सालय एवं महाविद्यालय की स्थापना की जाय। श्री महाराज जी आयुर्वेद को इस देश की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति मानते थे। उनका विश्वास था कि जो व्यक्ति जिस देश में एवे जिस जलवायु में जन्म लेता है, उसी के अनुकुल उसकी चिकित्सा होनी चाहिए। भारत जैसे निर्धन देश को आज अरबों रूपयों की दवाईयाँ विदेशों से मगानी पड़ती है। ये दवाइयाँ इतनी मँहगी हैं कि सर्व साधारण उनका सेवन करने से वञ्चित रह जाता है। इसके विपरीत आयुर्वेद हमारी परम्परागत थाती है। पूज्य श्री महाराज जी अपने

जीवन में अधिक व्यस्त रहे। उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं धार्मिक जगत में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद, महाराणा प्रताप डिग्री कालेज, महाराणा प्रताप महिला डिग्री कालेज, महाराणा प्रताप पालीटेकनीक, श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, महाराणा प्रताप इण्टर कालेज, महाराणा प्रताप शिशु शिक्षा विहार आदि संस्थाओं की स्थापना करके श्री महाराज ने समाज की सेवाएँ की हैं, उन्हें कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। श्री गोरक्षनाथ मंदिर का भव्य निमार्ण भी उनकी कीर्ति की अक्षय निधि है। श्री महाराज की स्मृति में श्री दिग्विजयनाथ स्नातकीय महाविद्यालय गोरखपुर तथा दिग्विजयनाथ उच्चतर माध्यमिक विद्यालय चौक पहले से ही विद्यमान हैं। प्रसन्नता की बात है कि श्री महाराज के योग्य शिष्य एवं उत्तराधिकारी श्री महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज उन्हीं के समान उत्साही एवं तेजस्वी हैं। अपने पूज्य गुरूदेव की इच्छा के अनुकुल उन्होंने एक पूर्ण साज–सज्जा युक्त आयुर्वेद चिकित्सालयं की स्थापना का संकल्प लेकर उसे कार्यान्वित किया है। इस चिकित्सालय का नामकरण पूज्य श्री महाराज की पावन स्मृति में "श्री दिग्विजयनाथ धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय" रक्खा गया है। यह चिकित्सालय श्री महाराज की स्मृति में एक और योगदान होगा। महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज बधाई के पात्र हें कि वे अपने पूज्य गुरूदेव की हार्दिक अभिलाषा को इस चिकित्सालय की स्थापना द्वारा पूर्ण कर रहे हैं। चिकित्सालय की स्थापना श्री गोरक्षनाथ मंदिर के उत्तर में श्र‌‌भ गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ के पार्श्व में की गई है। चिकित्सालय के लिए १२ बड़े कमरे, एक हाल, कार्यालय, विस्तृत एवं भारी बरामदा आदि का निर्माण पूरा हो चुका है।

इस चिकित्सालय में जहाँ एक ओर रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की जाती है, वहाँ यह आयुर्वेद–पद्धति के सर्वागीण विकास में भी सहायक सिद्ध हो रहा है। अब आयुर्वेदिक महाविद्यालय की स्थापना के एक नये अध्याय का शुभारम्भ कर दिया है। यह चिकित्सालय गोरखपुर जनपद और पूर्वी अंचल की जनता के लिए एक बरदान सिद्ध होगा। प्रदेश के पूर्वी जिलों में मेडिकल कालेज और आयुर्वेद कालेज दोनों की कमी अनुभव की जा रही थी। प्रसन्नता की बात यह है कि प्रथम की पूर्ति भूतपूर्व संसद सदस्य स्वर्गीय परम पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी के प्रयास से सरकार द्वारा होने जा रही है, और दूसरी कमी को स्वयं महन्त जी महाराज ने पूरी कर दी है।

ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज की द्वितीय निर्वाण तिथि पर आश्विन कृष्ण तृतीया सम्वत् २०२८ विक्रमी तदनुसार दिनांक ७ सितम्बर १६७१ ई० को मध्याह्न २ बजे शुभ मूहूर्त में चिकित्सालय का उद्घाटन प्रसिद्ध आयुर्वेद प्रेमी डा० मुकुन्दी लाल द्विवेदी, निदेशक, आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश प्रशासन द्वारा सम्पन्न हो चुका है।

आशा है कि आयुर्वेद के प्रेमी समस्त सज्जन इस चिकित्सालय एवं आयुर्वेद महाविषलय की स्थापना का हार्दिक स्वागत करेंगे और उनकी सहायता के लिए अपनी शुभ कामनाएं अर्पित करेंगे और सेवाओं से लाभ उठायेंगे।

卐

गत चिर शान्ति पावे, आगत चिरायु हो

श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह कौशिक

ब्रह्मलीन परम पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी का उदय गोरखपुर जनपद के भाग्यप्रकाश में शताब्दियों पश्चात् एक ऐसे प्रकाश–पुञ्ज नक्षत्र के समान हुआ, जिसने अशिक्षा, दारिद्रय, शोषण, और प्रपीड़न के अन्धकार में पथभ्रान्त मानव समुदाय को अपनी शीतल किरणों से अभिसिक्त कर नव जीवन का संदेश दिया। गौतम की निर्वाण मूमि–जहाँ प्रत्येक कण से 'धम्मं शरणं गच्छामि' की ध्वनि प्रस्फुटित होती थी, गोरक्षनाथ की तपस्या भूमि–जहाँ सिद्धों के बाम मार्गी आचारों के स्थान पर यौगिक क्रियायों की भूमिका में उपस्थिति किए गए शिव के विराट् लोक मंगलदायी दर्शनों ने समूचे लोक–मानस को प्रभावित किया था, एक बार पुनः प्राणशक्ति से सम्पन्न हो उठी। अभाव, निष्क्रियता, निराशा, कुंठा और अवसाद के स्थान पर सम्पन्नता, सक्रियता, आशावादिता, दृढ़ निश्चय और हर्षोत्फुल्लता का संदेश देकर स्वर्गीय महन्त जी ने उत्तर प्रदेश के उत्तर–पूर्वी अंचल की जनता को जागरूक करने का जो प्रयास किया, उससे इस भूभाग मात्र के ही नहीं, दिग्दिगंत के मनुष्य प्रभावित हुए। वस्तुतः उनका दिग्विजय नाथ अभिधान सार्थक हो उठा।

पूज्य महन्त जी ऐकान्तिक साधु थे, किन्तु लोक–कल्याण उनका लक्ष्य था। वे अपूर्व संग्रही थे, किन्तु निरासक्त भाव से जन–कल्याण में द्रव्य का व्यय करते थे। उनकी सारी साधनाएँ लोक–कल्याण की भावना के कारण सामाजिक हो गई थी। उन्होंने अपने व्यक्तित्व से अपने समय की समाज–नीति, धर्म–नीति और राजनीति को पूर्णतया प्रभावित किया था। उनकी व्यक्तिगत साधना ने लोक–मंगल का रूप धारण कर लिया था। उनकी धर्ममयी वाणी ने पथभ्रष्ट राजनीति का नियमन किया था। वस्तुतः उनका विरोधाभासी व्यक्तित्व ऐसा था कि वे एक साथ ही योगी और लोक सग्रही, निःसंग और समाज सेवी, धर्मवेत्ता और राजनीतिज्ञ सब रूपों में दिखाई देते थे।

बचपन में गेरूआ वस्त्र धारण करने के साथ ही दिवंगत महन्त जी ने भारत के पीठ पर लदे विदेशी शासन के कूबड़ को दूर करने के लिए उल्लापन क्रिया जैसी साधना प्रारम्भ कर दी थी। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर उन्होंने कारावास की यातनाओं को सहर्ष स्वीकार किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकसभा में पहुँचकर उन्होंने समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधियों को अपने सिद्धान्तों से परिचित कराया। उनका हिन्दू राष्ट्र का सिद्धान्त अपनी व्यापकता में वर्गों एवं सम्प्रदायों की तुच्छ परिधि को पार कर गया था। पूज्य महन्त जी के अन्तिम दर्शनों की उत्कंठा से एकत्र अपार जन–समूह को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि वे हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सबके प्रिय थे।

पूज्य महन्त जी के पंचभौतिक व्यक्तित्व अभिव्यक्ति की कलात्मक ने संस्कृति एवं कला के विविध सृजनात्मक आयामों में ही अपनी पूर्णता की प्राप्ति की थी। उनका विशाल शरीर, उच्च ललाट, आजानुबाहु, स्वर्ण कुण्डलों से युक्त कान और नित्य गम्भीर मुखमण्डल प्रथम दर्शन में ही दर्शनार्थी में आस्था–बुद्धि का सृजन कर देता था, किन्तु यही सब कुछ नहीं था। उनके शरीर से भी विशाल था उनका हृदय, जो उनकी समस्त सांस्कृतिक एवं कलात्मक चेतना का केन्द्र–बिन्दु था। प्राचीन गोरक्षनाथ मन्दिर के विस्तार और नवनिर्माण में पूज्य महन्त जी की स्थापत्य–कला सम्बन्धी सूक्ष्म अभिरूचि का पता लगता है। इस निर्माण के आधार पर पूज्य महन्त जी को

गोरखपुर का शाहजहाँ कहने वाले विद्वानों की भावना का मैं आदर करता हूँ, लेकिन साथ ही साथ यह भी कहना चहता हूँ कि ताज़ महल के निर्माण के लिए शाहजहाँ ने शोषण और उत्पीड़न के द्वारा धन एकत्र किया था। उसके प्रत्येक प्रस्तर–खंड पर जनता के रूधिर और आँसू की छाप लगी है। किन्तु गोरक्षनाथ मन्दिर के नव निर्माण में शैवागमों के आनन्दवादी सामरस्य और जनता की स्वस्थ आकांक्षाओं का योग स्पष्ट परिलक्षित है। कहाँ वह थके हुए जीवन की समाधि, कामुक भावनाओं का प्रतीक, सिसकियों और आंसुओं का इतिहास और कहाँ जनता की धर्मोज्ज्वल आकांक्षाओं का प्रतीक, मंगल का संदेशवाहक, अस्तु।

"महाराणा–प्रताप–शिक्षा–परिषद्" बीतरागी बाबा जी (पूज्य महन्त जी) के समाज के प्रति उत्कट अनुराग का मूर्त रूप है। प्रारम्भिक शिक्षा–शालाओं से लेकर उच्चशिक्षा के लिए उपयुक्त अनेक संस्थाओं का संचालन इसी परिषद् के माध्यम से होता हे। महाराणा प्रताप शिशु विहार, महाराणा प्रताप इण्टर कालेज, महाराणा प्रताप पालीटेकनीक, महाराणा प्रताप डिग्री कालेज (जो गोरखपुर विश्वविद्यालय का अंग हो गया है), श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, श्री दिग्विजयनाथ हाई स्कूल चौक, श्री दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज आदि समस्त संस्थाओं के माध्यम से महन्त जी ने अपने जीवन–काल में ही समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रबुद्ध करने का प्रयास किया था। इन संस्थाओं की संचालिका "परिषद" वस्तुतः महन्त जी की आशा–आकांक्षाओं की ही नहीं, उनके श्वासेच्छासों के निमार्ण में तन–मन–धन से योग दिया था।

पूज्य महंत जी का सारा जीवन ही जनकल्याण की भावना से ओत–प्रोत था। मित्रता, शत्रुता, प्रेम, स्नेह, क्रोध, घृणा आदि के द्वारा अभिव्यक्त उनके सारे सामाजिक सम्बन्ध दूसरों की भलाई के लिए ही थे। उनके प्रयास से सारा समाज गौरवान्वित हुआ। वे महान थे, बहुत ही महान् थे। "परोपकाराय सतां विभूतयः"।

पूज्य–पाद महन्त जी का पार्थिव शरीर अब इस दुनिया में नहीं है। पंचभौतिकत्वों को धरती की गोद में समाधि दे दी गई है। किन्तु उनके सिद्धान्त, उनके आदर्श, उनके त्याग और सफलता के अप्रतिम प्रयास आत्मा की अमरता के साथ निरन्तर अमर रहेंगे। उनकी समाधि के निकट जाने पर एक पवित्र अनुगूँज की अनुभूति होने लगती है। लगता है कि वायु के प्रत्येक झोंके के साथ एक ध्वनि चतुर्दिक परिव्याप्त हो रही है :–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावकः।
न चैने क्लेदयन्त्यापो, न शोष्यति मारूतः।।

दिवंगत महन्त जी ने विभिन्न दिशाओं में अपनी कारयित्रि प्रतिभा का प्रयोग किया था। साथ ही उन्होंने धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में अनेक लोक मंगलदायी कार्यों की निरंतरता और उनसे समुद्भूत लोक हितों की रक्षा के लिए अपने जीवन काल में ही एक ऐसे सुयोग्य व्यक्ति को अपना उत्तराधिकारी चुना, जो अपनी विद्वता, कर्मठता एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व के द्वारा समाज के प्रत्येक वर्ग का आकर्षण–केन्द्र बन गया। योग्य गुरू को योग्य शिष्य मिल गया। शिष्य ने गुरू के मार्ग–दर्शन पर मुग्ध होकर उन्हें "गोबिन्द" से भी ऊपर माना और गुरू ने शिष्य की स्वयंभू प्रतिभा पर चमत्कृत होकर मूक भाव से आननद–सिन्धु में निरन्तर मग्न रहना ही श्रेयस्कर समझा। श्रद्धा–विश्वासरूप गुरू–शिष्य का यह अद्भुत युग्म आधुनिक युग में सर्वथा अलभ्य है। जैसे हवा के झोंको से भस्मावृत चिनगारी की प्रदाकि शक्ति प्रबुद्ध हो उठती है, उसी

तरह परम् पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी के अवसान के आकस्मिक झोकों ने वर्तमान महन्त पूज्य श्री अवेद्यनाथ जी की कर्तव्य–निष्ठा और उत्तरदायित्वों के निवार्ह की भावना को ऊर्जस्वित कर उनके आत्मबल और संयम से गठित व्यक्तित्व को ऐसे बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ से प्रत्येक द्रष्टा निस्संदिग्ध चित्त से उनके व्यक्तित्व की ऊँचाई को देखने में समर्थ हैं। काष्ठ कुण्डलों से युक्त कान, तपस्या के तेज से युक्त चौड़ा ललाट, विर्योजस्वित मुखमण्डल, उत्तरदायित्वों के निर्वाह के लिए समुत्सुक सबल स्कन्ध, कर्तव्य–निष्ठा के आंवेगों से सम्पन्न पीन वक्षस्थल, काषाय वस्त्रों का आच्छादन, पूज्य महन्त जी का यह व्यक्तित्व सहस्रों–लक्ष्यों के मध्य में भी उभर कर एक रह जाता है।

स्वर्गीय महन्त जी के अधूरे कार्यों को पूर्ण करने और उनके स्वप्नों को मूर्त रूप देने का दृढ़ निश्चय करके महन्त अवेद्यनाथ जी ने पूर्ण उत्साह के साथ कार्य प्रारम्भ कर दिया। महाराणा प्रताप इण्टर कालेज के द्वितीय भवन (दिग्विजयनाथ ब्लाक) को, जो अधूरा था, पूर्ण कराया और दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज भवन का उन्होंने निर्माण कराया। महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद् के भवनों का निर्माण–कार्य तो निरन्तर चलता ही रहता है, मंदिर के प्रांगण में भी अनेक कार्यों की योजनाएं अपना मूर्त रूप पाने के लिए अग्रसर हैं।

पूज्य महन्त जी ने थोड़े समय के भीतर ही अपनी कर्तव्यनिष्ठा, संयम, आत्म–विश्वास, दूरदर्शिता, प्रत्युत्पन्नमतित्व और प्रेम तथा विश्वास के द्वारा ऐसी ख्याति अर्जित कर ली है कि उपलब्धिया स्वयं उनके पास आने के लिए आतुर दिखाई देती हैं। लोक सभा का उपनिर्वाचन और गोरखपुर विश्वविद्यालय की कार्य–कारिणी के चुनाव से यह तथ्य स्वतः सिद्ध है। विश्वास की अमित राशि से छलकता हुआ उनका ह्दय अपने निकट सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक सह्दय को इस तरह अपने क्रोड़ में समेट लेता है कि मनुष्य सदा के लिए उनका बन जाता है। गोरखपुर जनपद और आस–पास के लक्षाधिक व्यक्तियों ने दिवंगत महन्त जी के स्वर्गवास के अवसर पर अपने को अनाथ सा अनुभव किया था। किन्तु थोड़े दिनों में ही उन्होंने अनुभव किया कि वे अनाथ नहीं हैं, वरन् पुरानी अभिभावकता पुनः नवीन रूप में नई शक्ति और नये उत्साह के साथ उपस्थित हो गई है। पूज्य महन्त श्री अवेद्यनाथ जी को पाकर गोरखपूर गौरवान्वित हो उठा।

गोरखपुर की यह भूमि इन दोनों युग–पुरूषों की उपस्थिति से पूर्णतया उपकृत है। इसी भूमि पर शताब्दियों पूर्व महान् गुरू गोरक्षनाथ ने अपनी तपस्या और योग–साधना के द्वारा तपोवन की पवित्रता उपसिथित कर दी थी। उस समय स्वर्ग की अमरता उनके पैरों में लोटती थी। अपनी एक दहाड़ मात्र से ही उन्होंने अपने गुरू मत्स्येन्द्रनाथ को सिंघल की पद्मिनी के जाल से मुक्त कर दिया था। इधर सहस्त्राद्बियों से इन्ही गुरू गोरखनाथ की यह तपस्या–भूमि अज्ञानान्धकार के आवरण से घिरी थी। अज्ञान, मोह और प्रवंचना की पद्मिनियों से इस भूमि का उद्धार पूज्यपाद महंत दिग्विजयनाथ जी की ओजस्विनी वाणी के द्वारा हुआ। गोरखनाथ की तपोभूमि श्री बालनाथ के टीले की तरह तीर्थ रूप में परिवर्तित हो गई। स्वर्गीय बाबा जी के कृतित्व में बृद्धि और विस्तार का कार्य पूज्य श्री अवेद्यनाथ जी के द्वाारर हो रहा है। गोरखपुर का भविष्य अनेक निगूढ़ सम्भावनाओं के साथ उनकी ओर निहार रहर है। निश्चय ही एक मंगलमय भविष्य की कल्पना से सब का मन विभोर है। स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त के शब्दों में हमारी आकांक्षाएं भी अभिव्यक्ति पा जाती हैं कि 'गत चिरशान्ति पावे, आगत चिरायु हो'।

अवतारी पुरूष महन्त दिग्विजयनाथ जी

श्री गणेश प्रसाद दुबे

पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज के सम्पर्क में मुझे सर्वप्रथम सन् १९५२ ई० में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वैसे मैं इस नगर में सन् १९४४ से अपना जीवन–यापन कर रहा था। एक दिन मुझे महाराणा प्रताप इण्टर कालेज हॉल में नोवाखाली–काण्ड पर उनका तेजस्वी भाषण सुनने और उनका दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तभी से वह देदीप्यमान मूर्ति मेरे अन्तःकरण में समा गयी और मेरी यह उत्कण्ठा बनी रही कि मैं किसी प्रकार उस महान् पुरूष की छत्र–छाया में पहुँचूँ। वहाँ तक पहुँचने हेतु मैने पथ तथा साधन की खोज की। अन्ततः मेझो एक रास्ता मिल ही गया। मैने महाराणा प्रताप इण्टर कालेज में एक छोटी सी नौकरी कर ली। एक दिन श्री महन्त जी ने विद्यालय के प्रधान लिपिक के पास फोन किया कि उन्हें एक हिन्दी टाइपिस्ट की आवश्यकता है। साधारण टाइप का ज्ञान होने पर भी मुझे ही मन्दिर पर भेज दिया गया। इसके पूर्व मैं कभी गोरखनाथ मन्दिर पर आया भी न था। कहा गया है कि :–

जाकी जस भवितव्यता, वैसी मिले सहाय।
आप न आवे ताहि पै, ताहि तहाँ ले जाय।।

भगवान ने मुझे वहीं पहुँचा दिया, जहाँ मैं जाना चाहता था। स्थान पर पहुँचने पर मुझे एक बहुत बड़ा कागज टाइप करने को मिला। बड़ी कठिनाई और परिश्रम से रात्रि में ११ बजे तक टाइप करके मैने वह कागज महाराज जी की तकिया के निचे रख दिया और चुपके से चला आया। उनके तेज और व्यक्तित्व से मैं बहुत भयभीत था। मैं सोच रहा था कि कहीं कोई गलती न हो गई हो। दूसरे दिन पुनः प्रधान लिपिक के पास फोन आया कि रात वाले टाइपिस्ट को भेज दो। सूचना मिलते ही मैं घबड़ा गया और सोचने लगा कि टाइप में कोई गलती रह गई होगी, इसलिए मैं तलब किया गया हूँ। किन्तु बात दूसरी ही थी। सम्भवतः उन्होंने मेरे कार्य को पसन्द कर लिया था।

मानव की सही परख : एक विलक्षणता

इस संसार में सबसे कठिन कार्य मनुष्यों की पहचान कर पाना है। जीवन भर साथ रहने वाले व्यक्तियों को भी पहचाननें में लोग गलती कर जाते हैं। पूज्य महन्त जी महाराज मानव की परख करना जानते थे। उनका सबसे विलक्षण गुण यह था कि वे एक बार भी जिस किसी को देख लेते थे, उसके सम्बन्ध में अपनी कुछ न कुछ धारणा अवश्य बना लेते थे। संसार में सफलता प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति को कुछ विश्वस्त साथी और सेवक चुनना ही पड़ता है। इन्हीं साथियों और सेवकों के बल पर उसका सारा कार्य होता है। अपने कार्य के लिए उपयुक्त स्वामिभक्त समझ कर वे सर्वदा अपने पास ही रखने लगे। जहाँ कहीं जाते, मुझे अपने साथ ले जाते थे। जिस प्रकार एक पिता की ममता अपने पुत्र पर और गुरू की ममता अपने शिष्य पर होती है, उसी ममता के साथ उन्होंने मेरे ऊपर अनुग्रह किया। अपने साथ जलपान और भोजन कराये बिना उन्हें चैन ही नहीं आती थी। अत्यधिक निकट रहने के कारण मुझे छोटे और बड़े सभी प्रकार के कार्य करने पड़ते थे। कभी–कभी मुझे आश्चर्य होता था कि इतने बड़े कार्यों का उत्तरदायित्व

वे मेरे ऊपर क्यों छोड़ देते हैं ? मुझे स्वयं भी संकोच होता था कि मैं उन कार्यों का निर्वाह कर सकूँगा अथवा नहीं ? किन्तु जहाँ कहीं जिस कार्य से मैं जाता था, मुझे सदैव सफलता प्राप्त होती थी। इसे मैं उस महापुरूष की ही कृपा मानता हूँ। जिस प्रकार एक कुशल जौहरी धूल में पड़े हुए टुकडों को उठा कर काँट–छाँट कर उन्हें उत्तम रत्न (हीरा) का रूप देता है, उसी प्रकार श्री महाराज जी ने मेरे जैसे साधारण व्यक्ति को धूल से उठा कर फूल बना दिया। आज के सार्वजनिक जीवन में बड़े–बड़े पदों पर सुशोभित होने वाले अनेक सौभाग्यशाली पुरूष उन्हीं की कृपा–फल का रसास्वादन कर रहें है। जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आया, उनकी कृपा एवं आशीर्वाद से निरन्तर आगे ही बढ़ता गया। मेरी कार्य–निष्ठा और लगन को देखकर उन्होंने अपनी सबसे प्यारी शिक्षा संस्था (महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्) का कार्य भार मुझे सौंपा। नये भवनों का निर्माण, पुराने भवनों की देखरेख, किराये क़ी वसूली, किरायेदारों की समस्यायों को हल करना तथा परिषद् को उत्तरोत्तर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करना आदि कार्यों का सम्पादन श्री महाराज जी ने मेरे ही ऊपर छोड़ दिया। बहुधा मुझसे गलतियाँ भी हो जाती थीं और उनके लिए मुझे डाँट–फटकार भी सुननी पड़ती थी। किन्तु बाद में वे ऐसे प्रेमपूर्ण और आत्मीयता पूर्ण ढंग से मुझे समझा देते थे कि मेरे समक्ष सिवा नतमस्तक हो जाने के और कोई विकल्प नहीं रह जाता था। वास्तव में उनकी डाँट–फटकार भी मेरे लिए एक पाठ थी।। महाराज जी वास्तव में एक साधारण मानव न होकर अवतारी पुरूष थे। श्री गोरक्षनाथ मन्दिर और संलग्न मठ यद्यपि एक प्राचीन तीर्थ स्थान हैं, किन्तु उनके गद्दी पर बैठने से पूर्व यहाँ का दृश्य एवं प्रबन्ध बिल्कुल ही साधारण था। उनके महन्त पद पर आसीन होने के साथ ही इस स्थान पर ऋृद्धियाँ और सिद्धियाँ एकत्रित होने लगीं। रात–दिन भक्तों और श्रद्धालुओं की भीड़ एकत्रित होने लगी। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त ही विलक्षण और असाधारण था। उनकी दृष्टि बड़ी तेज थी। उन्होंने एक ओर इस मन्दिर की आध्यात्मिक परम्परा को उज्ज्वल बनाया, वहाँ उन्होंने दूसरी ओर इसकी चतुर्दिक उन्नति की। अपने ३२ वर्ष के महन्ती काल में उन्होंने इतना अधिक निर्माण कार्य किया और मन्दिर की स्थिति इतनी अधिक सुदृढ़ हो गई कि यह विश्वास ही नहीं होता है कि इतने अल्प काल में एक व्यक्ति ने इतना अधिक कार्य कर डाला। उनके कार्य की छाप न केवल गोरखपुर अपितु श्री देवीपाटन (मन्दिर माई पाटेश्वरी देवी), हरिद्वार (गोरक्षनाथ मन्दिरम्), कुरूक्षेत्र, गोरखटिल्ला वाराणसी आदि स्थानों पर भी पड़ी। गोरखपुर जनपद में भी चौक, भरोहिया, सरहरी, कैलाश आश्रम, लालडिग्गी शिव मन्दिर, हनुमान मन्दिर, धर्मशाला बाजार आदि स्थान भी उनकी कृपा से पुनः जागृत हुए। शिक्षा, धर्म, राजनीति, समाजसेवा आदि सभी क्षेत्रों में वे सदैव अग्रणी रहे। संसद सदस्य के नाते उन्होने इस जनपद और देश की जो महत्वपूर्ण सेवाऐ की हैं, उनके लिए जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम है।

जब भी उनके कार्य पर एक विहंगम दृष्टि डालता हूँ, तो आश्चर्य होता है कि इतने कम समय में इतने महान् कार्य कैसे सम्भव हो सके। विश्वास ही नहीं होता कि कोई व्यक्ति उन कार्यों को इतने अल्प काल में पूरा कर सकता है। उनके समाधिस्थ होते समय एकत्रित विशाल जनसमूह को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे एक दिव्य पुरूष थे और हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान करने हेतु इस धराधाम पर आये थे। इसलिए मैं स्पष्ट शब्दों में यही कहूँगा कि पूज्य महाराज जी साक्षत् गुरू गोरक्षनाथ जी के अवतार थे।

ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ

श्री कुँवर नरेन्द्र प्रताप सिंह

उस दिन सुना महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी को ब्रह्मलीन हुए दो वर्ष बीत गये। सुन कर मन जाने कैसा हो गया। महन्त जी का विलक्षण प्रभावशाली व्यक्तित्व, जिसे उनके कृतित्व ने और महिमामण्डित बना दिया था, जन–जन के इतना करीब और उन पर इतना हाबी रहा है कि विश्वास ही नहीं होता कि उनको ब्रह्मलीन हुए सचमुच इतने दिन हो गये। यद्यपि अपने पार्थिव शरीर से अब वे संसार में नहीं हैं, तथापि उनका यशः शरीर, उनका असर तथा रूआब, लोक–मानस में कुछ ऐसा और इतना है कि सब कुछ अभी कल ही की बात लगती है।

उस दिन जब महाराज जी का देह–पात हुआ था, बिजली की लहर की भाँति क्षण–भर में सारे शहर में यह खबर दौड़ गई थी। फिर तो सारा शहर उमड़ पड़ा था। सड़कों पर, गलियों में, जन–समुद्र ठाटें मार रहा था। औरत, बच्चे, बूढ़े, जवान, गैर–हिन्दू, जिसने भी, जहाँ भी सुना, स्तब्ध और अवाक् रह गया।

उनके चेहरों पर शोक छाया हुआ था। बताने वाले पर लोग संदेह और अविश्वास की दृष्टि से बार–बार देखते थे कि क्या सचमुच बड़े बाबा चले गये ? लोगों की आंखों में यह प्रश्न झलक रहा था। वे सब इस बात को मानने के लिए अपने आप से जूझ रहै थे। जैसे मृत्यु बड़े बाबा को जीत लेगी, इस पर उन्हैं विश्वास ही नहीं हो रहा हो। वास्तविकता यह थी कि लोगों के लिए गारखपुर का यह लौहपुरूष मृत्युजंय था। बाबा के आकस्मिक निधन के दुःखद सम्वाद से सब विचलित थे। उनसे साक्षात् या परम्परया सम्बन्धित लोग ही नहीं, अपितु सर्वथा असम्बन्धित लोगे ने भी अनुभव किया कि सचमुच कोई लोक–नायक, राशि–राशि लोगों का प्रिय नेता चला गया है, लोगों का अपने निकट का व्यक्ति दिवंगत हो गया है। शोक–विह्वल होकर घर से निकल पड़े। भरे गले से बोलते, चिन्तामग्न किंकर्तव्यविमूढ़ जन–समूह को देखकर, इस मुद्रा में जनता–जनार्दन के अर्पूव साक्षात्कार से मैं अभिभूत हो गया। संझबाती की बेला में आँखे अवश्य भीग गईं। मैं भी शोकाकुल जनता के साथ मंदिर तक गया और राशि–राशि लोगों की तरह मैनें भी शोकाभिभूत चित्त से देश तथा जाति के कल्याण के लिए सम्पूर्ण जीवन की यज्ञ की बेदी पर चढ़ा देने वाले एक युग–पुरूष के पार्थिव–अवशेष का पुण्य–दर्शन किया। उनके चेहरे पर तब भी मृत्यु की काली छाया नहीं थी। सदा की भाँति चिर–परिचित स्मिति स्फुटित थी। संध्या मंदिर की देहरी पर रात से गले मिलकर विदा हो रही थी। सूर्य अस्ताचल के शिखर से गिर कर पश्चिमी समुद्र में डूब चुका था। कमल दल मुँद गये थे। चिर निद्र में लीन महाराज जी के अनावृत मुखमण्डल के चारों ओर एक प्रभा–मण्डल अब भी मौजूद था, जिसकी अनुभूति प्रत्येक प्रत्यक्ष दर्शी को अवश्य हुई होगी। मुझे एक श्लोक अनायास याद आ गया था :–

उदेति सविता ताम्रः ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।।

महन्त दिग्विजयनाथ जी का जन्म अपनी आन और बान के लिए विश्व–विख्यात जाति

के श्री सिसौदिया वंश में हुआ था, जिसमें महाराणा संग्राम सिंह और प्रताप सिंह जैसे महान् मनस्वी एवं यशस्वी बीर पैदा हो चुके हैं। महन्त जी के शाल–प्रंशु शरीर में इसी वंश का अमिताभ उष्ण–उष्ण रक्त प्रवाहित था। स्वदेश तथा स्वजाति का स्वाभिमान उनमें कूट–कूट कर भरा था। उनके आदर्श महाराणा प्रताप थे। वे उनकी प्रतिकृति थे। मैंने जितना ही अधिक उनके विषय में सोचा है, मेरा यह विश्वास दृढ़तर होता गया कि वे महाराणा प्रताप के ही एतत्कालीन संस्करण थे। मध्ययुगीन वातावरण से नितांत भिन्न आधुनिक लोकतांत्रिक देश में आदि यदि महाराणा प्रताप पैदा हुए होते, तो वह निश्चय ही देश और जाति के कल्याण का वही मार्ग चुनते, जो महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी ने चुना था। उनके चाचा जी ने कण्टक–शोधन–बुद्धि से उन्हें एक नाथ योगी को सौंपकर उनका हक मारा था। कदाचित् उन्हें महाराणा की गद्दी से भी वंचित कर दिया था। लेकिन अपकार करके भी उन्हों ने अनजाने उपकार ही किया था। राणा नान्हू सिंह ने अपनी पैतृक जागीर से बड़ी एक जागीर पायी। महाराणा की राज गद्दी से भी बड़ी योगिराज गोरक्षनाथ के पूज्यपीठ के अधीश्वर की गद्दी पायी और हिन्दू–हृदय–सम्राट हिन्दू–पति महाराणा प्रताप की तरह ही हिन्दू राष्ट्र–पति होने का गौरव भी पाया।

महन्त जी प्रशस्त–ललाट, सुपुष्ट कन्धे, चौड़े सीने, लम्बी बाहों तथा लम्वोत्तरे भद्र चेहरे पर बड़ी–बड़ी तेजस्वी आँखों वाले एक कद्दावर व्यक्ति थे। उनके लम्बे–लम्बे कानों में लटकते कुण्डलों की एक अलग ही छटा थी। मैंने उन्हें ढलती अवस्था में देखा था, लेकिन उससे भी उनकी युवावस्था का अनुमान भली–भाँति लग जाता था। जिन्होंने उन्हें भरी जवानी में देखा था, बताते हैं कि उनके सम्पूर्ण श्री–विग्रह से पौरूष एवं पराक्रम की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती थी। ऐसी थी पूर्वाश्रम के राणा नान्हू सिंह तथा कालान्तर के बाबा दिग्विजयनाथ की शरीर–सम्पत्ति। उनकी अनन्य साधारण शारीरिक घटना ने, उनके व्यक्तित्व को अतिरिक्त श्री–युक्त प्रभाव प्रदान किया था। उनके कुल ने, उनके आभिजात्य शील ने, आकर्षण तथा संयम ने ऊर्जस्वलता का दान दिया था। गेरूए वस्त्रों ने उनके प्रति अनायास पवित्रता एवं श्रद्धा की भावना जोड़ दी थी। वे स्पष्ट तथा ओजस्वी वक्ता थे। निर्भयता तथा अनभिभवनीयता उनके व्यक्तित्व के सहज उपादान थे। वे निर्भीक और निडर व्यक्ति थे, लेकिन आवश्यकतानुसार लचीले और समन्वयशील भी थे। झुकना भी जानते थे और झुकाना भी। वे महामहिम राष्ट्रपति से बात कर रहे हों या या पांशुल पादहालिक से, उनकी वही सहज स्वाभाविक प्रसन्न मुद्रा बनी रहती थी। वाह्य की तरह उनका अन्तर भी उदार था। उनके व्यक्तित्व की इन विशेषताओं का उनसे मिलने वाले छोटे–बड़े, साधारण तथा विशिष्ट सभी व्यक्तियों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता था, लोग अभिभूत हो जाते थे।

बाबा बहुमुखी प्रतिभा के एक सुरूचि–सम्पन्न व्यक्ति थे। वास्तव में उन्होंने एक राजसी स्वभाव पाया था। भव्यता उनके स्वभाव में ही थी और उनके कृतित्व के प्रत्येक उदाहरण में उनकी परिष्कृत रूचि तथा भव्यता को पदे–पदे देखा जा सकता है। बात स्थूल की हो या सूक्ष्म की, धर्म की हो या राजनीति की, तकनीक की हो या विज्ञान की, बागवानी की हो या वास्तु और स्थापत्य की, टाई बाँधने की हो या फाइलिंग की, उठने–बैठने की हो या खाने–पीने की, वे सब में बराबर दखल रखते थे। वे सच्चे जिज्ञासु थे और जिज्ञासा के कारण ही उन्हें विभिन्न विषयों का पर्याप्त सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त था।

बाबा अभी पढ़ ही रहै थे कि देश में कांग्रेस के नेतृत्व में भारत की स्वतंत्रता का महायज्ञ प्रारम्भ हो गया।स्वदेश को स्वतंत्र करने का संकल्प उनके मन में बहुत समय से दृढ़ होता जा रहा था। लेकिन वे अभी अपना कर्तव्य–मार्ग निश्चित नहीं कर पा रहै थे। तभी सन् १९२०–२१ में महात्मा गाँधी सारे देश को जगाने के लिए दौरा करते हुए गोरखपुर में भी पधारे। बाबा गाँधी जी के स्वागत में उनके कार्यक्रमों को सफल बनाने में सक्रिय रूप से कांग्रेस के साथ हो गए। लेकिन जब कांग्रेस ने मुस्लिम–तुष्टिकरण की नीति अपनाई, तथा भारत की अखण्डता और हिन्दू–हितों को एक–एक कर मुस्लिम लीग की बलि–बेदी का बकरा बनाना शुरू कर दिया, तो जातीय गौरव की महाचेतना से अनुप्राणित उनका मन विद्रोह कर उठा और वे स्वातंत्र्य वीर सावरकर आदि के साथ होकर मोह–निद्रा में पड़ी हिन्दू जनता को जगाने और उसके हितों को सुरक्षित करने में प्राण–पण से जुट गये। वे आजीवन हिन्दू महासभा के गण्मान्य नेता रहै। उनके आयोजकत्व में सम्पन्न महासभा के सफलतम गोरखपुर महाधिवेशन ने हिन्दूओं के विरोधियों और सरकार की नींव हिला डाली थी। वे बहुत समय तक प्रदेशीय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष, अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के उपाध्यक्ष और बाद में महासभा के ग्वालियर महाधिवेशन के समय हिन्दू राष्ट्रपति भी चुने गये थे।

जिस समय दिग्विजयनाथ जी को गोरक्षनाथ के मठ की गद्दी मिली थी, उस समय मठ निहायत मामूली हालत में था। न कोई आकर्षण था, न कोई विस्तार। लोगों ने घुसपैठ करके मठ की जमीन पर नाजायज कब्जा भी जमा लिया था। बाबा ने अपनी महन्ती में बड़े पराक्रम से लोंगो के अतिक्रमण को समाप्त किया और चारों तरफ दीवार खींचकर मन्दिर को उसकी ख्याति तथा अपनी स्वभाविक भव्यता के अनुरूप बनवाना प्रारम्भ कर दिया। दर्शनीय मठ बना, सरोवर बना और पुनः श्वेत प्रस्तरों का विशाल भव्य मन्दिर शुरू हुआ, जो अब प्रायः पूर्ण हो चला है। कई लाख रूपये खर्च हो चुके हैं, कई लाख और अभी होंगे। अब यह गोरखपुर नगर का सर्वोत्तम दिव्य दर्शनीय स्थान है। मैं जानता हूँ कि बनारस को छोड़कर पूर्वी उत्तर प्रदेश में इतना भव्य कोई दूसरा मन्दिर या दर्शनीय स्थान नहीं हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश का पिछड़ापन आज भी एक उल्लेखनीय तथ्य है। अब से ३–४ दशक पूर्व इसकी हालत और भी गई बीती थी। आबादी का अधिकांश गरीबी और जहालत का शिकार था। रोजी और रोटी के मुहताज राशि–राशिलोगों का असह्य शोषण हो रहा था। जनता की इस दीन दशा की ओर लोक–संग्रही बाबा का ध्यान आकृष्ट होना अवश्यम्भावी था। इन्होंने देखा कि शिक्षा के अभाव में इस जनपद के तमाम लोग न केवल अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों से अनभिज्ञता का जीवन बिता रहै हैं, अपितु अन्दर दबी पड़ी अनन्तान्त सम्भावनाओं का दम घोटकर भयंकर राष्ट्रीय क्षति भी कर रहै हैं। उन्होंने इस व्यापक विभीषिका को समाप्त करने के लिए शिक्षा के प्रसार के महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर 'महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्' की नीवं डाली। इसके अन्तर्गत नन्हैं मुन्नों की शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की बड़ी शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना की। गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना में भी उनका सर्वाधिक योग–दान रहा। उन्होंने ३० लाख से भी अधिक सम्पत्ति के साथ अपने महाराणा प्रताप डिग्री कालेज तथा महिला कालेज को विश्वविद्यालय में विलीन कर गोरखपुर विश्वविद्यालय की नींव डाली। आज जब वे हमारे बीच अपने भौतिक शरीर से नहीं हैं, तब उनके वे सारे काम जिन्हैं उन्होंने यावज्जीवन देश और जाति

के लिए, इस अत्यन्त पिछड़े जनपद को शिक्षा के आलोक से मण्डित करने के लिए तथा अपनी लीला–भूमि बाबा गोरखनाथ की पुरी को सुन्दर और भव्य बनाने के लिए किया, पहले से कहीं ज्यादा याद आ रहै हैं। हमें कवीन्द्र रवीन्द्र की कुछ पंक्तिया याद आ रही है :–

जाहार अमर स्थान प्रेमेर आसने
क्षतितार क्षयनय मृत्यूर शासने।।
देशेर माटिर थेको निलो जारे हरि।।
इसेर ह्वदय तारे राखि याछे वरि।।

अर्थात जिनका स्थान प्रेम का आसन ह्वदय में हैं, मृत्यु के शासन–चक्र में उनकी हानि कोई हानि नहीं है। वस्तुतः, देश की माटी ने जिसे अन्दर छिपा लिया है, देश के ह्वदय ने वरण कर लिया है। अस्तु किञ्चित विपरिवर्तन के साथ मैं महाकवि सुबन्धु का एक श्लोक कहकर ब्रह्मलीन महाविभूति की पूण्य स्मृति में सादर श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

सारसवत्ता विहता नवकाः विलसन्ति चरति नोकंकः।
सरसीव कीर्तिशेषंगतवति भुवि दिग्विजयनाथे।।

इति ओम् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

योगीराज महंत जी

श्री भोलानाथ तिवारी

एक योगी का तन धारण करते हुए भी जिसकी साधना स्वयं के लिए न होकर समस्त समाज के लिए हो, अपार सम्पत्ति का स्वामी होते हुए भी जो अपने को भौतिक सुखों से अलग रखकर समस्त समाज के दुख–सुख को अपना समझो, ऐसे महापुरूष "योगिराज", महानिवार्ण प्राप्त, ब्रह्मलीन, आदरणीय गुरूदेव श्री दिग्विजयनाथ जी के चरण–कमलों में श्रद्धांजलि सुमन के दो पुष्प सादर समर्पित हैं।

बचपन एवं युवावस्था गुरूदेव के साथ बीती। अतः स्वाभाविक है कि उनका प्रभाव मेरे जीवन पर पड़े। एक पूज्य स्थान का एक पूज्य महन्त होते हुए भी जिसने महन्त का सुख–वैभव त्याग कर राष्ट्रयीता एवं देश–भक्ति का मार्ग अपनाया और देश–सेवा को ही लक्ष्य बनाया, ऐसे महापुरूष का अभिनन्दन कौन नहीं करेगा ? जब वे युवा थे, कालेज की पढ़ाई समाप्त कर स्वतंत्रता के युद्ध में उतरे, उसी समय चौरीचौरा–काण्ड का जन्म हुआ, जिसने आँग्ल सरकार की नींव झकझोर कर रख दी। ब्रिटिश सरकार ने अनेक देश–भक्तों को फाँसी पर लटका दिया। उनमें महन्त जी भी एक थे, जिन्हैं लोग उस समय श्री नान्हू सिंह के नाम से पुकारते थे, जो पहचान में न आने से फाँसी से बच गये। इन्हैं ईश्वर ने बचाया, उसे इनसे कुछ काम लेना था, देश के लिए और समाज के लिए। अनेक युवको का निर्माण कर उन्होंने देश को सुपुर्द किया, जिनमें मैं भी हूँ जो

आज़ एक ट्रेड यूनियनिस्ट का जीवन यापन कर रहा हूँ और बतौर एक सोशलिस्ट देश–सेवा कर रहा हूँ। यद्यपि श्री महन्त जी एक हिन्दू नेता थे, अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष थे, फिर भी वे मेरा समाजवादी होना बुरा नहीं मानते थे। इससे उनके ह्रदय की विशालता ही प्रकट होती है। सन् १६३६ ई० मं जब महामना मालवीय जी महाराज एवं श्री महात्मा गाँधी के नेतृत्व में दिल्ली में शिव मंदिर सत्याग्रह छिड़ा, उस समय महन्त जी भला उससे दूर कैसे रह सकते थे। उन्होंने २५ स्वयं सेवियों को श्री नौमीनाथ के नेतृत्व में, जिसमें एक मैं भी था, दिल्लिी सत्याग्रह हैतु भेजा। चार माह की कैद काटने के बाद दिल्ली व मुल्तान की जेलों से हम लोग रिहा होकर आये, जिसमें मेरी कालेज की पढ़ाई छूट गई।

गोरखपुर जनपद शिक्षा के क्षेत्र में काफी पीछे था। आप ही के सत्याग्रह से गोरखपुर में महाराणा प्रताप कालेज, पालीटेकनीक स्कूल एवं विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। गोरक्षनाथ जी का मन्दिर जीर्ण–शीर्ण था। पारस्परिक कलह और विवाद हो गया था। जो कुछ सम्पत्ति थी, नष्ट हो गई थी। पर जब वे महन्त बने, गोरक्षनाथ जी के मन्दिर को उन्होंने स्वर्गवत् चमका दिया। बीस लाख से ऊपर रूपये लगाकर श्री गोरक्षनाथ जी के मन्दिर का निर्माण हो रहा है, संगमरमर जड़े जा रहैं हैं, मन्दिर के सम्मुख का अद्‌भुत पार्क देखते ही बनता है। दर्शकों का मन बरबस अपनी ओर खींच लेता है। सैकड़ों हजारों दर्शनार्थी नित्य नाथ जी का दर्शन करने एवं मन्दिर का अलौकिक निर्माण देखने आते हैं। हर एक मंगलवार को मेला लगता है, यह सब आप ही के सत्प्रयास से सम्भव हो सका है। मन्दिर के समीप एक आयुर्वेद अस्पताल का निर्माण आप ही के नाम पर हो चुका है, जहाँ निःशुल्क दवा गरीबों की दी जाती हैं। गोरखपुर जनपद के निर्माण में जितना हाथ आप का है, शायद ही किसी अन्य का हो। क्रूर काल ने आप को लगभग ७५ वर्ष की आयु में उठा लिया। इसे गोरखपुर का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा, अन्यथा आप इस पिछड़े जनपद को क्या से क्या कर देते। आप भारतीय संसद के सदस्य थे। गोरखपुर में बड़ी लाइन लाने एवं पूर्वी जिलों का पीछड़ापन दूर करने में आप प्रमुख भूमिका अदा करते थे। यदि वे कुछ दिन और जी जाते, तो निःसन्देह उपर्युक्त दोनों प्रमुख काम अवश्य सम्पन्न कराते, जिससे पूर्वी जनपदों का उद्वार हो जाता। आपके पार्थिव शरीर के दर्शनार्थ लगभग १५ लाख नर–नारी इकट्ठे हुए थे, इससे पता चलता है कि आपं केवल एक साधु न होकर एक जन–नेता भी थे। आपकी आत्मा जहाँ भी स्वर्ग में हो, ईश्वर उसे शान्ति दे, यही कोटि–कोटि निवेदन है।

कर्तव्यनिष्ठ महन्त जी

श्री गोपाल सिंह बिशारद

मानवीय जगत में कर्तव्य–पूर्ण प्रगतिशील जीवन ही वास्तविक जीवन है। स्वर्गीय महन्त जी का कर्मठ जीवन भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गोरखपुर स्थित गोरखनाथ मंदिर के आप विरक्त सन्त तथा मठाधीश थे। सिसोदिया कुल में राणा प्रताप के वंश में जन्म लेने के

कारण आप राजर्षि पद के भी अधिकारी थे। प्राचीन काल से ही यह नियम प्रचलित है कि ब्राह्मण सन्त महर्षि और क्षत्रिय संत राजर्षि की उपाधि से सम्बोधित किये जाते थे। बाल्य काल से ही विरक्त जीवन का संस्कार आप पर पड़ गया था। इसलिए उसके पालन में उनकी अभिरूचि थी। गुरूवर की अनुकम्पा से आप नाथ–सम्प्रदाय में दीक्षित हुए और अपनी असाधारण योग्यता से उक्त गद्दी को सुशोभित किया। आप ने उत्तरोत्तर उस पुनीत एवं प्रसिद्ध स्थानाकाश में प्रकाशपूर्णेन्दु का उदय किया।

आप के धार्मिक जीवन में राजनीतिक जीवन का अद्‌भुत सामंजस्य था। उस पवित्र स्थान पर हमें सांसारिक वेभव और दैवी विभूति दोनों के दर्शन होते हैं। आप के मठ में विरक्त तथा गृहस्थ शिष्यों, अनुयायियों एवं श्रद्धालुओं का पृथक–पृथक मर्यादित स्वरूप है। प्राचीन काल में भी आर्य–वसुन्धरा में धार्मिक तथा राजनीतिक एकता का योग रहा है। इसलिए इन्हें हम कभी वन्य पर्ण–कुटीरों में योग करते पाते थे, तो कभी राजप्रासादों में शासन के सक्रिय व्यवहार में मंत्रणा तक करते देखते थे। जिस प्रकार आप ने विरक्त जीवन से सम्बन्धित सम्प्रदायगत् कर्तव्यों का पालन किया, उसी प्रकार राजनीतिक जीवन में भी सफलता आप के हस्तामलकवत् थी। भारतीय आर्य संस्कृति, आर्यधर्म एवं भारतीय सभ्यता के आधार पर आपने अपना राजनीतिक जीवन व्यतीत किया और विदेशी सभ्यता से प्रभावित अन्य संस्थाओं की अपेक्षा हिन्दूमहासभा को ही आप ने अपने अनुकूल पाया। महासभा में पदार्पण करते ही आप ने उसमें एक प्रगति–शील क्रान्ति को जन्म दिया, और देश भर में हिन्दूत्व की भावना की धूम मचा दी।

सर्वप्रथम आपने हिन्दू महासभा के अध्यक्ष पद को उत्तर प्रदेश में सुशोभित किया और महासभा की दससूत्रीय मांगों की राजकीय उपेक्षा पर सामूहिक सत्याग्रह कर सहस्त्रों हिन्दूओं से कारागारों को भर दिया। स्वयं महंत जी, राजा साहब जगमनपुर, सेठ विशनचन्द, तेजनारायण एडवोकेट, विश्वनाथ अग्रवाल और इन पंक्तियों के लेखक आदि भी लखनऊ कारागार में नजरबन्द थे। अन्त में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के लिए राष्ट्रपति डाफ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी की, जो उस समय भारत सरकार के साथ मंत्री थे, मध्यस्थता में प्रान्तीय सरकार के आश्वासनपूर्ण समझौते पर सत्याग्रह समाप्त हुआ।

श्री महन्त जी ने अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का कोषाध्यक्ष पद सँभाला। कई बार उपाध्यक्ष रहै। इसके पश्चात् हिन्दू राष्ट्रपति का शुभासन भी ग्रहण किया तथा लोकसभा के सदस्य भी थे। सन् १६४५ में आप ने अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के महाधिवेशन का भार स्वतः वहन कर गोरखपुर में ही उसे आयोजित किया, जिसमें देश के बड़े बड़े हिन्दू नेताओं तथा राजा महाराजाओं ने भाग लिया। डॉ० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, डॉ० धर्मवीर भोपटकर, डॉ० मुन्जे, डॉ० वी० जी० देशपाण्डेय, सर गोकुलचन्द नारंग आदि ने मंच को सुशोभित किया। इनके अतिरिक्त राजा साहब पयागपुर, राजा साहब जगमनपुर आदि भी उपस्थित थे तथा महाराजा बलरामपुर ने स्वागताध्यक्ष का पद ग्रहण किया था। उनकी बीसों सहस्त्र मुद्राओं की आर्थिक सेवायें सराहनीय थीं।

वेदोक्त 'आत्मैव सर्वं जगत' सिद्धान्त के आप पूर्ण पक्षपाती थे। इसलिए दलित कही जाने वाली जातियों की स्थिति में सुधार की भावना आप में बलवती थी। सन् १६४४ ई० के

बेलासपुर अधिवेशन में एक ऐसी दलित हिन्दू जाति के प्रमुखों ने , जिसका जलादिक ग्रहण करने में हिन्दूओं को आपत्ति थी, खुले अधिवेशन में पहुँचकर महन्त जी से अपनी अवस्था का स्पष्टीकरण किया। उनकी विनम्र प्रार्थना पर महन्त जी ने विचार–पूर्वक सहज ही उनसे कह दिया कि आप लोग आगत अतिथियों तथा स्थानीय हिन्दू महासभाइयों को भी आमंत्रित कर प्रीति–भोज दें, जिसमें हम सब सम्मिलित होगें। उक्त जाति–समूह ने वैसा ही किया, जिसमें स्वातंत्र्य वीर सावरकर, श्री महन्त जी, डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, डॉ० मुन्जे, श्री वी० वी० देशपाण्डेय, रायबहादुर श्री शुकदेव बिहारी मिश्र आदि नेताओं ने सहर्ष भाग लिया, जिसके फलस्वरूप वहाँ के हिन्दूओं के हृदय से उनके प्रति घृणा का भाव जाता रहा। राष्ट्रीय उत्थान और विदेशी फौलादी पंजो से देश को मुक्त करने की भावना से होने वाले चौरीचौरा काण्ड के आप प्रमुख सेनानियों में से थे। अयोध्या स्थित ऐतिहासिक श्री राम जन्म–भूमि के हित में आप की सेवायें चिरस्मरणीय रहैंगी।

गोरखपुर नगर में आप ने जनहितार्थ महाराणा प्रताप इण्टर कालेज की स्थापना की। आप के संकेत पर ही गोरखपुर की जनता उठ खड़ी होती थी। जिले के राज्याधिकारी आप का सम्मान तो करते ही थे, साथ–साथ स्थान पर जाकर शिष्यवत् बाहर बैठ जाते थे और अपने निवास से उनके निकलने की देर तक प्रतिक्षा भी करते थे।

श्री महन्त जी का व्यक्तित्व विशाल था। आप हिन्दी तथा अंगेजी के अच्छे ज्ञाता थे, साथ–साथ सफल वक्ता भी थे। आप की सिंह–गर्जना से सभी प्रभावित हो जाते थे। जन–सेवार्थ आप अधिक परिश्रमी थे। सम्प्रदायगत सहज भेष–भूषा ही आप को ईष्ठ थी। आस्तिकता तथा सैद्धान्तिक दृढ़ता के तो श्री महन्त जी पुजारी ही थे।

आज श्री महन्त जी का पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं है, किन्तु उनके द्वारा किये गये महानतम कार्यों में उनका स्वरूप स्पष्ट झलकता है। इस प्रकार वह चिरकाल तक हिन्दू–जगत में स्मरणीय रहैंगे। इन शब्दों के साथ हम उस महापुरूष को सादर श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

दृढ़–प्रतिज्ञ महंत जी

श्री पुरन मल जैन

आ नो भद्राःक्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथासदमिद् बृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारों दिवे दिवे।।

य० अ० २५ मन्त्र १४

उक्त वेद मंत्र का संक्षेप में अर्थ है कि :– क्रान्तिकारी सदा निर्भीक होता है। वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति–हैतु मृत्यु का भय नहीं करता, अपने उद्देश्य की प्राप्ति में संलग्न रहता है। किसी से डरता नहीं है। अपनी इन्द्रियों पर संयम रखता है। इस प्रकार के क्रान्तिकारी को अतीत के विद्वानों (देवताओं) का इतिहास मार्ग–दर्शन कराता है, और वे देव सदैव दिन प्रति दिन आयु–पर्यन्त उसके रक्षक होते हैं।

उपयुक्त वेद मंत्र हमारे प्रातःस्मरणीय परम पूज्य १००८ श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी के जीवन पर अक्षरशः सिद्ध होता है। क्योंकि पूज्य महन्त जी का जब जन्म भी नहीं हुआ था, गर्भस्थ काल में ही इनके माता–पिता ने गोरक्षनाथ जी को अर्पित कर देने की मनौती मानी थी और अपनी मनौती के अनुसार जब श्री महन्त जी केवल चार वर्ष के ही थे, गोरक्षनाथ जी को समर्पित कर दिया। घर से अलग होते ही आप के हृदय में क्रान्ति के अंकुर उत्पन्न हो गए। गोरखपुर के शिव–मंदिर–रक्षक के रूप में श्री महन्त के रूप में वे क्षेत्रीय जनता के सम्मुख आये, और प्रसिद्ध चौरीचौरा–काण्ड के प्रमुख अभियुक्त के रूप में श्री महन्त जी को चौमुखी प्रतिभा प्रदान करके इन अंकुरों ने अपनी शाखों को पल्लवित किया। परन्तु मुसलमानों द्वारा आये दिन हिन्दूओं पर अत्याचार की घटनाओं ने, दूसरी ओर कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टिकरण नीति ने आप को झकझोर दिया, ओर आप के हृदय में विद्रोह की भावना ने स्थान बना लिया। अतएव आप ने कांग्रेस से विद्रोह किया तथा कांग्रेस से त्यागपत्र देकर आप हिन्दू महासभा में सम्मिलित हो गए।

हिन्दू महासभा में आने के बाद जीवन–पर्यन्त तन, मन, धन से सोते–जागते, उठते–बैठते हिन्दू–हित चिन्तन में ही लीन रहै। सन् १९६१ में अखिल भारत हिन्दू सम्मेलन दिल्ली में हुआ, जिसके आप स्वागताध्यक्ष मनोनीत किये गये। इस सम्मेलन में प्रतिष्ठित हिन्दूओं को और संस्थाओं कोआमंत्रित किया गया। कुछ तथाकथित स्वार्थी हिन्दूओं ने विरोध भी किया। परन्तु आप विरोधों के विरूद्ध अपने ध्येय की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहै और अपने अन्य साथियों एवं नेताओं के सहयोग से पुनः सन् १९६५ में विश्व हिन्दू–धर्म–सम्मेलन की स्थापना करके विश्व के समस्त हिन्दूओं को एक मंच पर खड़ा करने का प्रयत्न किया, जिसमें पूर्ण सफल रहै।

पूज्य महन्त जी की कार्यशैली अपने ढंग की निराली ही थी। यही कारण था कि अंग्रेज शासकों ने उन्हैं सदैव सन्देह की दृष्टि से देखा और हर प्रकार से परेशान किया। इतना ही नहीं, अंग्रेज शासकों के चले जाने के बाद अपनी कही जाने वाली सरकार ने भी पूज्य महन्त जी को पग–पग पर हर प्रकार से आतंकित करना चाहा और किया भी।

महन्त जी सिंह की भाँति क्रान्ति के उपासक, स्वातंत्र्य विनायक दामोदर के अनन्य भक्त, अकबर सरीखे राजनीतिज्ञ का छक्का छुड़ा देने वाले हिन्दू राष्ट्र के मुकुट–मणि प्रातः स्म्रणीय महाराणा प्रताप के वंशज, सिसौदिया–कुल–भूषण थे, जो अपनी आन एवं अपने ध्येय की प्राप्ति में रत रहै। एक बार नहीं, अनेक बार पूज्य महन्त जी को राजकीय पदों का प्रलोभन दिया गया, परन्तु वे तिल–मात्र भी अपने सिद्धान्त से विचलित नहीं हुए और हिन्दू राष्ट्र की सेवा को ही ध ार्म समझ कर हिन्दूत्व की सेवा करते रहै।

जहाँ पूज्य महन्त जी निर्भीक, स्पष्टवादी, दृढ़निश्चयी एवं उग्र विचारवादी थे, वहीं उनका हृदय कोमल, विशाल और अपनत्व की भावना से ओत–प्रोत था।

वैसे तो सन् १९४० में ही मुझे पूज्य महन्त जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, परन्तु सन् १९४२ में हिन्दू महासभा के ४२ वें अधिवेशन ने कानपुर में मुझे उनके निकट पहुँचा दिया और उसके बाद उन्हीं की आज्ञानुसार प्रान्तीय बैठकों, अधिवेशनों आदि में समयानुसार भाग लेता रहा। कुछ दिनों के बाद तो वे मुझ जैसे एक स्वयंसेवक से अपने हृदय की बात भी कहने लगे। जब कभी भी मैं दर्शन–हैतु गोरखपुर गया, वे डाक द्वारा आये प्रान्तों के, केन्द्र के व अन्य महानुभावों

के तथा हिन्दू सभा सम्बन्धी पत्रों को मुझे देकर कहते, देखो प्रान्त में क्या हो रहा है ? क्या सब मेरे ही ऊपर है ? तुम लोग कुछ नहीं करते। यदि समय रहते नहीं जगे तो हिन्दू धर्म समाप्त हो जायेगा। काम करो।

इतना ही नहीं जब उत्तर प्रदेश में संविद सरकार बनी और श्री बाबा अवेद्यनाथ जी एम० एल० ए० (उस समय छोटे बाबा) ने अपना समर्थन संविद सरकार को दिया, उस समय जनसंघ की ओर से समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचार कि श्री अवेद्यनाथ जी जनसंघ में आ गये हैं, पढ़ कर उन्हें आन्तरिक वेदना हुई थी। उन्हीं दिनों मैं अपने कार्य से पूज्य महन्त जी के पास गया था। मुझे देखते ही कहा कि यह सब क्या हो रहा है ? क्या हिन्दू सभा समाप्त हो जायेगी? यदि हिन्दू–सभा समाप्त हुई तो हिन्दूत्व भी समाप्त हो जायेगा। हिन्दू के नाम पर रोने वाली या पानी देने वाली कोई संस्था नहीं है। केवल वोट प्राप्त करने हैतु जो हिन्दू बने टहल रहै हैं, इनसे हिन्दूओं को बहुत बड़ा धोखा है। तुम्हें लखनऊ जाना चाहिए और पता लगाओ कि क्या बात है? मैंने वर्मा जी (लक्ष्मी शंकर जी वर्मा) को भी फोन किया है, वे अभी आयेंगे।

वैसे छोटे बाबा से पूछे जाने पर कहा कि हम ऐसा नहीं करेंगे। लखनऊ के लिए भी फोन मिलाया गया। महन्त जी ने कहा कि देखो क्या उत्तर आता है। लगभग दो घंटे बाद लखनऊ फोन मिल गया और छोटे बाबा ने इस सामाचार को गलत बताया। तब उन्हें आदेश दिया कि तुम भी इस समाचार का प्रतिवाद समाचार पत्रों में दे दो। इस समाचार से उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई और फोन रखते हुए बोले कि देखा! आज की राजनीति में इस प्रकार की गन्दगी आ जायेगी, यह सोचा भी नहीं था। इतना झूठ!!

पूज्य श्रीमहन्त जी का मेरे ऊपर सदैव पुत्रवत् प्यार और आशीर्वाद रहा। परन्तु अब परम पूज्य ब्रह्मलीन महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी को वास्तविक श्रद्धांजलि तो उनके द्वारा बताये हुये मार्ग पर चलकर तथा हिन्दू राष्ट्र की सेवा करके ही दी जा सकती है, जिसमें उन्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त हो।

अतएव परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे ब्रह्मलीन पूज्य श्री महन्त जी के उत्तराधिकारी महन्त श्री अवेद्यनाथ जी को अतुल शक्ति प्रदान करें कि वे श्री गोरक्षनाथ मंदिर की परम्परा एवं मर्यादानुसार हिन्दू, हिन्दी, हिन्दूस्तान की सेवा हेतु मार्ग–दर्शन करते रहें, और हम सब बिना किसी स्वार्थ के स्वर्गीय पूज्य श्री महन्त जी के चरण–चिन्हों पर चल कर हिन्दू राष्ट्र की सेवा करते रहें।

स्मृति–शेष महन्त जी

श्री चिन्तामणि शुक्ल

सोचता हूँ कि जिसे पाकर जितना हर्ष नहीं हुआ था, उसे खोकर इतना विषाद क्यों हो रहा है? जहाँ तक उनकी बात है, उन्होंन अन्धे को आँखे दी, मुर्दे को जीवन दिया और फिर अपनी राम कहानी को सुने बिना सहसा एकदम निस्पन्द हो गये। मेरी वाणी अधरों में टकरा कर,

मन को टटोल कर और हृदय को उन्मथित कर व्यथित आत्मा से प्रश्न करती है कि आज दो शब्द क्या कह दूँ कि जिससे संतोष हो जाय। एक दृष्टि से अब तक के बीते सारे वर्ष मेरे लिए एक क्षण विशेष को मूर्त करने के लिए भूमिका मात्र है। ऐसे में परिणाम और प्रभाव की चर्चा कौन करे? लेकिन मेरे स्मृति–पत्रों पर उनका नाम–रूप जिन रूपों में रूपायित होकर एक श्रद्धा जाग्रत कर गया है और जिसके कारण मैं लेखनी हाथ में लेकर उनके लिए अपनी श्रद्धा को निवेदित करने की भावना में ध्यानस्थ हूँ, उसके भाव–जगत का शोधन करते हुए मैं जिन प्राणवान क्षणों को अक्षरों में केवल मूर्त कर सका हूँ, केवल उन्हीं को यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। पूज्यपाद ब्रह्मलीन दिग्विजयनाथ जी अचानक रास्ता छोड़कर वहाँ चले गये, जहाँ "यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" वाली स्थिति है और उनके साथ चलने वाले उनके महिमा–स्वरूप का दर्शन किसी दिवामय स्वपन के माध्यम से नहीं, अपितु मन के सहयोग से करके उनके उस रूप का विराट् कल्पना हिमालय की तरह करते हैं। वैसे यह कोई कल्पना नहीं है। इसमें आदर्श और यथार्थ का मिश्रित रूप है और जिन लोगों ने उनके रूपों को देखा है, उनके लिए यह कोई अत्युक्ति नहीं है। कहना न होगा कि नाथ जी के उस मिश्र रूप का एक द्रष्टा इन पंक्तियों का लेखक भी है। लेकिन मेरे समक्ष कठिनाई यह है कि मैं जब भी उनके सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ, मेरा अन्तर्मन उसपर ब्रेक लगाते हुए कहता है, अभी तुमने उन्हें पूर्णतः जाना ही नहीं और कुलाचने के लिए रस्सी तुड़ा रहे हो। लेकिन ऐसी बात एकदम नहीं है। मैं उनके सम्पर्क में था ही नहीं, यह कहना गलत है। न जाने कितनी बार साथ बैठने, बात करने और कई बार साथ खने–पीने का भी अवसर आया था। किन्तु इतना होने पर भी प्रतिपल परिवर्तित होने वाले उनके व्यक्तित्व का आलोक सम्मुख बैठे किसी भी श्रोता को एक विचित्र मनःस्थिति में लाकर छोड़ देता था और उनकी विनोद से सराबोर मीठी किन्तु लच्छेदार बातें मन को छू जाती थीं और शायद यही कारण था कि रोता हुआ व्यक्ति भी उनके दरबार में जाकर हँसता हुआ वापस लौटता था। एक बार जो उनके पास गया, बिना बिके नहीं लौटा। लघुता में प्रभुता की प्राप्ति उनकी बराबरी की विशेषता थी। उनके लिए असम्भव शब्द बेमानी था। वे प्रतिभा के धनी और इच्छा के सम्राट थे। उनकी एक अलग दुनिया थी और उनका एक अलग कारवाँ। वे एक महान देशभक्त, एक लोकप्रिय जननायक और गोरखपुर के सर्वश्रेष्ठ नागरिक थे। हिन्दू धर्म के महान पोषक और उद्धारक थे, वे देश के एक दिग्गज नेता थे।

वे निर्भीक और कुशल वक्ता तथा विमल मन–संयुक्त कर्मयोगी योद्धा थे। सर्वथा आकर्षित करने वाला इनका प्रभा–प्रोज्वल व्यक्तित्व और मन्दस्मिति को बिखेरता हुआ उनका स्वर, जो किसी भी क्षण क्षत्रियोचित् दर्प में परिवर्तित हो श्रोता को रसानुभूति में निग्न और भय–स्तम्भित कर सकता था, एक साथ सम्पूर्ण प्रभाव की दृष्टि से वैचित्र्यपूर्ण था, जो किसी भी प्राणी को पराभूत करने में सक्षम था। व्यूह–रचना के वे शिल्पी थे और किसी भी विकट परिस्थित में घुटने टेकना उनके सिद्धांत और संस्कार में नहीं था। वह किसी को 'करिए' नहीं 'करो' ऐसा आदेश देते थे, यानी एक शब्द में वह दबंग थे। साधु होकर भी वह देश के सार्वजनिक कार्यो में सोत्साह भाग लेते थे। वे 'योगः कर्मसु कौशलं' के पक्के हिमायती थे। हिन्दूओं की हीनता और देश की पराधीनता उनके लिए असह्य थी। उनमें एक साथ अनेक गुण विद्यमान थे। वे बड़े ही

दृढ़ निश्चयी और स्पष्टवादी थे। अपने श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध करने की कला में वे सिद्धहस्त थे। विद्वानों का आदर करते थे। एक शब्द में उनमें आदर्श पुरूष के सभी गुण विमान थे। वे धुन के पक्के ओर हिन्दू राष्ट्र के सजग प्रहरी थे। वह हिन्दू धर्म के प्रबल समर्थक, यशस्वी, समाजसेवी और मनस्वी जीव थे। गोरखपुर का शिक्षा–जगत उनका चिर ऋणी है। वे अनेक संस्थाओं के जन्मदाता, भवन निर्माता और भाग्य–विधाता हैं। प्रातः स्मरणीय स्वनामधन्य, हिन्दू–कुल–गौरव के अग्रदूत महाराणा प्रताप की पावन स्मृति में महन्त जी का सम्पूर्ण जीवन चिरनिवेदित था। उनके निर्देशन में चलनेवाली अनेक संस्थाओं के साथ महाराणा प्रताप का नाम अंगूठी में नगीने की भाँति फिट है। वे आन, बान, शान तथा प्रतिष्ठा के प्रमुख प्रस्तोता थे। गोरखनाथ मन्दिर का निर्माण उनकी अक्षयकीर्ति है। संसार में परिवर्तन अवश्यमभावी है। एक प्रकार से वह उसका गुण–धर्म भी है, जिसके परिप्रेक्ष्य में घटनाएँ होती हैं उसी घटना का शिकार पूज्य महन्त जी भी हुए। लेकिन वह मर कर भी अमर हैं और दूर होकर भी पास हैं।

स्वर्गीय महन्त दिग्विजयनाथ जी

श्री शिव कुमार गोयल

अखिल भारत हिन्दू महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष, वयोवृद्ध संसद सदस्य, पूज्यपाद महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी के निधन से एक और पुरानी पीढ़ी का देशभक्त, क्रान्तिकारी, धर्माचार्य तथा शिक्षा–सेवी देश से कम हो गया। पुरानी पीढ़ी के एक संघर्ष शील नेता से देश वंचित हो गया।

कांग्रेस आन्दोलनों में

महन्त जी महाराणा प्रताप की पवित्र संघर्ष–भूमि में उत्पन्न हुए थे। अतः उनके हृदय में अंग्रेजों के गुलामी के प्रति विद्रोहाग्नि धधक उठी। सन् १९२० में कांग्रेस ने जैसे ही असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया कि वे उसमें कूद पड़े और जेल–यातनायें सहन की।

चौरीचौरा काण्ड में

क्रान्तिकारियों ने चौरीचौरा कांड किया, तो महन्त जी को अन्य क्रान्तिकारियों के साथ बन्दी बना कर मुकदमा चलाया गया। उन्हें फाँसी तक का दण्ड दिया गया, किन्तु प्रमाणों के अभाव में वे मुक्त कर दिये गये।

उन्होंने अंग्रेजों के विरूद्ध गोरखपुर जिले में भारी जन–जागरण में योगदान किया। उनके ओजस्वी भाषणों से अंग्रेज सरकार काँप उठी तथा बन्दी बनाकर काफी समय तक जेल में यातनायें दी जाती रहीं। महन्त जी को जेल–यातनायें अपने पथ से विचलित करने में सर्वथा असमर्थ रहीं।

सन् १९२० से सन् १९३१ तक वे कांग्रेस में रहकर स्वाधीनता–प्राप्ति के लिए संघर्ष करते रहै। किन्तु गांधी जी की मुस्लिम–तुष्टीकरण नीति पर उनका कांग्रेस से मतभेद हो गया और उन्होंने कांग्रेस से त्याग–पत्र दे दिया।

हिन्दू महासभा में

सन् १६३६ में स्वातंत्र्यवीर सावरकर हिन्दू महासभा में सम्भिलत हुए। महन्त जी स्वातंत्र्य वीर सारकर के क्रान्तिकारी जीवन से प्रभावित थे ही तथा हिन्दू–संगठन के प्रंश्न पर भी दोनों के विचारों में साम्य था। अतः उन्होंने वीर सावरकर के नेतृत्व में हिन्दू महासभा में कार्य करने की घोषणा कर दी। वे उत्तर प्रदेश हिन्दू महासभा के अध्यक्ष–पद पर रहै। वीर सावरकर एवं परमानन्द उनकी कार्य–शक्ति एवं लगन से बहुत प्रभावित थे। वीर सावरकर ने कहा था कि यदि महन्त दिग्विजयनाथ की तरह अन्य धर्माचार्य भी देश, जाति व धर्म की सेवा में लग जाँय, तो भारत पुनः जगद्गुरू के पद पर अधिष्ठित हो सकता है।

महन्त जी सन् १६६१ में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष चुने गये। तीन वर्षो तक वे अध्यक्ष रहै। उन्होंने हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के रूप में वीर सावरकर के अनुसार राजनीति का हिन्दू–करण और हिन्दूओं के सैनिकी–करण की पूर्ति के लिए भारी प्रयास किया।

महान शिक्षा–सेवी

महन्त जी राजनीतिक नेता एवं धर्माचार्य के अतिरिक्त महान् शिक्षा–सेवी भी थे। उन्होंने गोरखपुर में महाराणा प्रताप डिग्री कालेज की स्थापना की। गोरखपुर विश्वविद्यालय की प्रग्रती में भी उनका विशेष योगदान रहा।

उन्होंने गोरखपुर के सदियों पुराने गोरखनाथ मंदिर, नाथ–साधुओं की समाधियों तथ मठ का जीर्णोद्धार कराया। विशाल गोरखनाथ मंदिर, महन्त जी की कर्मठता, कलाप्रेम तथा लगन का परिचायक है। उन्होंने मठ में विशाल शोध केन्द्र की स्थापना का लक्ष्य भी बनाया था। महन्त दिग्विजयनाथ ने भारी परिश्रम और प्रयास करके गोरखनाथ–सम्प्रदाय पर शोध कराया तथा इस सम्बन्ध में साहित्य के प्रकाशन की ओर भी ध्यान दिया। उनके उत्तराधिकारी बाबा अवेद्यनाथ भी एक सुशिक्षित, अध्यनशील तथा कर्मठ व्यक्ति हैं तथा उत्तर प्रदेश विधानसभा एवं लोकसभा में हिन्दू महासभा–सदस्य रहै हैं।

हिन्दी–सेवी

महन्त जी अंग्रेजी, हिन्दी एवम् संस्कृत के ज्ञाता थे, किन्तु हिन्दी को ही वे भारत की जनभाषा मानते थे। अंग्रेजी को हटा कर उसके स्थान पर हिन्दी को प्रतिष्ठापित करने के लिए उन्होंन निरंतर प्रयास किया और शिक्षा मंत्रालय को सभी भारतीय भाषाओं की प्रगति और आपसी सामञ्जस्य के लिए देवनागरी लिपि को राष्ट्रीय लिपि बनाए जाने का सुझाव दिया था।

विश्व के हिन्दूओं का संगठन

महन्त जी विश्व भर के हिन्दूओं को संगठित देखने के प्रबल इच्छुक थे। जब बर्मा, श्रीलंका और अन्य देशों से प्रवासी हिन्दूओं को भगाया जाने लगा, तो उन्होंने विश्व के हिन्दूओं के सम्मेलन की आवश्यकता महसूस की। सन् १६६१ में महन्त जी के प्रयास से दिल्ली में अखिल भारत हिन्दू–धर्म–सम्मेलन का आयोजन किया गया था। जिसमें हिन्दू–संगठन की आवश्यकता पर बल दिया गया। महन्त जी हिन्दू शब्द को सम्प्रदायिक न मानकर उसे राष्ट्रीयता का पर्यायवाची मानते थे। उन्होंने गत दिनों संसद में कहा था–हिन्दू नाम न तो साम्प्रदायिक है और न राष्ट्रविरोधी ही। यह युगों से इस देश के लिए राष्ट्रीय एकता की सर्वाधिक सुगठित शक्ति रहा

है, जिसने विभिन्न जातियों, विरोधी जलवायु, अनेक भाषाओं की विभिन्नताओं के बीच इस देश को एक राष्ट्र बनाया। भगवान बुद्ध का महान् धार्मिक अभियान, जैन धर्म, सिक्ख धर्म और अन्य धार्मिक विश्वास हिन्दू राष्ट्रीयता की शक्तिशाली धारा में ही समाहित हो गये।

७४ वर्षीय महन्त जी गत अनेक वर्षो से रूग्ण रहते हुए भी संसद में नियमित उपस्थित रहकर राष्ट्ररक्षा और देश की प्रगति के लिए बड़ी रूचि के साथ सभी के विचार सुनते थे, अपने सुझाव देते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास बन चुका था कि जब तक हिन्दू राष्ट्रवादी एक मंच पर एकत्रित नहीं होंगे, तब तक अराष्ट्रीय़ तत्त्वों से संघर्ष नहीं किया जा सकता।

कर्मठ जनसेवक

महन्त जी केवल धर्माचार्य या मठाधीश ही नहीं थे, अपितु वे एक कर्मठ जन–सेवी भी थे। इसलिए वे कहा करते थे कि सन्यासी–व्यवस्था की दृष्टि से मानवता की सेवा धार्मिक गति–विधियों का एक अविछिन्न अंग है। महन्त जी यद्यपि कर्मठ हिन्दू महासभाई नेता थे, किन्तु सभी दलों के नेता उनकी वरिष्ठता तथा राष्ट्रीय भावना के कारण उनका सम्मान करते थे तथा उनके अनुभवों से प्रेरणा प्राप्त करते थे। श्री लाल बहादुर शास्त्री ने एक बार कहा था– आज देश को महन्त जी जैसे कर्मठ धर्माचार्यो की आवश्यकता है, जो देश में जन–जागृत करके देश की प्रगति में योगदान कर सकें। महन्त जी जब कभी संसद में बोलते थे, सदस्य उनके ओजस्वी विचारों को बड़े ध्यान पूर्वक सुनते थे। गत दिनों जब संसद के एक सदस्य ने हिन्दू महासभा और अन्य हिन्दू संस्थाओं पर प्रतिबन्ध लगाने की मांग की, तो उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि यह देश हिन्दूओं का देश है। यदि उनके प्रति इस प्रकार की नीति अपनाई गयी तो देश में दूसरा पाकिस्तान बन जाने का खतरा उत्पन्न हो जायेगा। उन्होंने स्पष्ट कहा कि हिन्दू ही इस देश का सच्चा राष्ट्रीय है।

एक बार संसद में जब मुस्लिम सदस्य बदरूज्जुहा खाँ ने हिन्दूओं पर आक्षेप किया तो महन्त जी ने उसे ऐसी लताड़ बताई कि सभी सदस्य देखते रह गये।

श्री महन्त जी ने कभी निराश होना नहीं सीखा था। इसलिए वे जीवन के अन्तिम क्षण तक हिन्दू महासभा के ध्वज के नीचे डटे रहै तथा हिन्दू राष्ट्र के लिए संघर्ष करते रहै। उन्हैं अनेक बार कांग्रेस और अन्य संस्थाओं नें प्रलोभन भी दिए, किन्तु महन्त जी का सदैव यही उत्तर होता था कि मैं संसद में एक मात्र हिन्दू नाम पर चुनकर आया हूँ, तथा जीवन के अन्तिम क्षणों तक हिन्दू के लिए ही संघर्ष करता रहूँगा।

महान् ऋषि

श्री ब्रजमोहन सिंह

पूज्य श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज से मेरा १६४५ ई० से सम्पर्क रहा है। इन वर्षों में बहुधा मुझे उनका दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनकी कर्मठता, त्याग, बुद्धिमत्ता,

निर्भीकता एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व की मेरे ह्रदय पर आज भी गहरी छाप है। वे एक उच्च कोटि के सन्त और ऋषि थे, उन्हें केवल प्रथम श्रेणी और उच्च कोटि की वस्तुएँ पसन्द थी। वे जो भी कार्य करते थे, उसका अत्यन्त ही उत्तमता पूर्वक निर्वाह करते थे। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल, जिलाधीश, अथवा एस० पी आये दिन उनसे पत्राचार करते ही रहते थे और बहुधा श्री महाराज से उनका वार्तालाप भी होता था। व्यवहार में निर्भीकता और बड़े से बड़े व्यक्तियों पर छा जाना, उनके लिए साधारण सी बात थी।

उनके सम्बन्ध में बहुधा यह कहा जाता है कि वे एक विरक्त सन्यासी थे। अतः उन्हें राजनीतिक और सामाजिक जन–सेवा के कार्य नहीं करने चाहिए थे। उनका तो एक मात्र कार्य केवल एकान्त–साधना और भगवान का भजन मात्र था। शिक्षा–संस्थाओं का निर्माण, विश्वविद्यालय की स्थापना, निर्वाचनों में भाग लेना आदि ऐसे कार्य हैं, जिनकी भ्रम–वश लोग आज भी आलोचना करते हैं। हम गम्भीरता पूर्वक थोड़ा भी विचार करें और भारत के प्राचीन इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डाले तो हमें ज्ञात होगा कि इस देश का निर्माण साधु–सन्त–महात्माओं एवं ऋषि–मुनियों के द्वारा ही हुआ है। प्राचीन काल से ही ऋषि–महात्मा हमारे सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक एवं सार्वजनिक जीवन को उत्साहित, प्रेरित एवं अनुप्राणित करते आये हैं। चाहै साहित्य–सर्जन का कार्य हो, चाहै आश्रम के रूप में शिक्षण–संस्थाओं का संचालन हो, चाहै चिकित्सा–तंत्र में अनुसंधानकार्य हो, सभी क्षेत्रों में हम ऋषि–मुनियों को अग्रणी पाते हैं। यही नहीं, अपितु समय–समय पर उन्होंने राज–सत्ता पर भी नियंत्रण किया है। अत्याचारी एवं अन्यायी राजाओं को पदच्युत करने एवं सुयोग्य, लोकप्रिय भूपतियों को राजतिलक प्रदान करने में भी वे सदा अग्रणी रहै हैं। भारत के सभी दर्शनों के वे ही निर्माता है। युद्ध–क्षेत्र में भी अनेक सन्त–महात्माओं ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाग लिया है। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं, जो साधु–महात्माओं से अछूता रहा हो।

पूज्य श्री महाराज जी इसी कोटि के एक महान् ऋषि थे। उनका आविर्भाव देश, धर्म एवं समाज के कल्याण के लिए हुआ था। वास्तव में वे कर्म के सच्चे पुजारी थे। कर्म के बिना जीवन ही सम्भव नहीं है। कर्म के बिना शरीर–यात्रा का निर्वाह भी सम्भव नहीं है। मनुष्य मात्र को कर्म करना पड़ता है। कर्म करना ही मनुष्य का स्वभाव है। जन्म से ही क्षण–मात्र भी कभी किसी न किसी कर्म में लगे रहै बिना मनुष्य जी नहीं सकता। मानव की सत्ता का प्रधान उपादान ही है कर्म। उसकी भीतरी और बाहरी प्रकृति उसे बलपूर्वक कर्म में लगाती रहती है। श्रीमदभगवद्गीता में स्पष्ट रूप में कर्म की प्रधानता प्रदर्शित की गई है। 'निःसन्देह गीता के उपदेश ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ शब्द है।'

यह निर्विवाद है कि गीता के उपदेश किसी बन्द कमरे में नहीं दिये गये हैं। युद्ध–क्षेत्र में जब दो सेनायें आमने–सामने संघर्ष तथा घनघोर युद्ध के लिए उद्यत हैं, ऐसे समय में कर्म की प्रधानता पर प्रकाश डाला गया है। ज्ञान–मार्गी लोग कर्म–मार्ग की निन्दा करते हुए इसे वासनामय एवं लोकेषणा से परिपूर्ण बतलाते हैं। किन्तु यह बात केवल उन पर ही लागू हो सकती है, जो कर्म का फल चाहते हैं और अपने लिए कार्य करते हैं। जो वीतरागी सन्यासी संसार को

त्याग चुके हैं और सम्पूर्ण समाज ही जिनका परिवार है, उनके लिए ऐसी बात सोचना ज्ञान–मार्गियों की बुद्धि का दिवालियापन ही सिद्ध करता है। सन्यास और कर्म–योग इन दोनों की तुलना करते हुए योगिराज भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग को अधिक श्रेष्ठ कहा है। ईशोपनिषद् ने भी सौ वर्ष तक कार्य करते हुए जीवित रहने की इच्छा व्यक्त की है। पूज्य श्री महाराज जी एक सच्चे योगी थे और निष्काम भाव से जनता की सेवा के लिए उनका सम्पूर्ण जीवन समर्पित था। आसक्ति को त्याग कर सिद्धि और असिद्धि में समबुद्धि होकर समत्व–भावना से उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य किया है। उनके द्वारा स्थापित विभिन्न शिक्षण–संस्थाए, जिनमे शिशु पाठशालाओं से लेकर महाविद्यालय, संस्कृत महाविद्यालय, तकनीकी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय एवं महाराणा प्रताप शिक्षा–परिषद् जैसे सेवा–संस्थान सम्मिलत हैं, इस बात के ज्वलन्त प्रतीक है कि उन्होंने अहर्निश अपने शरीर को जलाकर, स्वयं के स्वार्थ को त्याग कर केवल समाज के हित के लिए कार्य किया है। १६३५ ई० में पीठाधिपति होने के पश्चात् १६६६ ई में तिरोधान के समय तक केवल ३४ वर्षों में एक अकेले व्यक्ति ने जितने अद्भुत महान् और सार्वजनिक कार्य किए है, देखकर आश्चर्य होता है। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसमें उनकी सूक्ष्म दृष्टि न गई हो। श्री गुरू गोरक्षनाथ के भव्य विशाल और महान मंदिर का पुनर्निर्माण उन जैसे असाधारण अलौकिक महापुरूष का ही कार्य है। उन्होंने जो कुछ भी किया अपने लिए नहीं, बल्कि समाज के लिए किया। वे महान् आदर्शों से प्रेरित थे। उनका प्रत्येक कर्म यज्ञीय था। ऐसे दिग्विजयी महापुरूष संसार में यदा–कदा ही अवतीर्ण होते हैं। जो लोग जीवन में उनके सम्पर्क में आ सके, वे परम सौभाग्यशाली और धन्य हैं। उन्होंने जिसको छू दिया, वही सोना हो गया। उनकी कीर्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ अजर अमर रहैगी। आधुनिक युग के साक्षात् श्रीकृष्ण, योगीराज श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज के पावन चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित है।

महान् पराक्रमी

श्री श्याम वर्ण द्विवेदी

हिन्दूहिन्दहिताय दत्तमनसे, गोरक्षिणां रक्षिणे,
दीनार्ते शरणागते कृतदयायापन्नकष्टच्छिदे।
गीतासंमतकर्मतत्परफलानाङ्ि–क्षणे योगिने,
तस्मै दिग्विजयाय नाथ गुरूवे सिहाय तुभ्यं नमः।।१।।

हिन्दूओं और हिन्दूस्थान के हित के लिए मन देने वाले, गोरक्षकों के रक्षक, दीन, दुःखी और शरणागतों पर दया करने वाले, सेवकों का कष्ट काटने वाले, फलाकाङ्श्रारहित गीता–संमत–कर्म में सदा तत्पर, सिंह के समान पराक्रमी, योगी गुर श्री दिग्विजयनाथ को नमस्कार है।

सर्वश्रीगुरूनाथयोगिनिवहध्याताङि्घ्र पंकेरूह–
श्रीमदगोरखनाथशिष्यविहिते सत्सम्प्रदायें शुभे।

नाथे योगपरायणे सुविदिते तन्त्रे च मन्त्रे सदा,
पूज्ये भानुरिव प्रभाति महसा नाथाग्रणीयों महान।।२।।

सर्वश्री गुरू नाथ योगियों के समूह द्वारा ध्यात पद कमल वाले श्री गोरखनाथ तथा उनके शिष्यों द्वारा संस्थापित शुभ सम्प्रदाय, योग-परायण, तंत्र-मंत्र से युक्त, पूजनीय नाथ सम्प्रदाय में नाथाग्रणी दिग्विजयनाथ जी तेज सूर्य के समान चमक रहै हैं।

नाथ कैरवमंशुना च बिधुना येनामुना काशितम्,
गर्जन्मेघगम्भीरतोयवचसा हिन्दू-वनं हर्षितम्।
सिंहैनाद्पालायिताश्च भयतो हिन्दूहितध्नाः खलाः,
सोऽयं साधुसुधारको विजयते राजेव नाथः सताम्।।३।।

चन्द्रमा के समान जिन दिग्विजयनाथ ने नाथ-सम्प्रदाय-कुमुद को खिलाया था। गरजते बादल के समान गम्भीर वचन रूपी जल से हिन्दू-वन को प्रसन्न किया था, जिस सिंह ने हिन्दू-हितों को नष्ट करने वाले दुष्टों को खदेड़ दिया था, वे सज्जनों के स्वामी तथा रक्षक साधु एवं हिन्दू धर्म के सुधारक सर्वोत्कृष्ट रत्न थे।

विद्यादानसमादरेण गुरूभिः दक्षैबुर्घ राष्ट्रियै-
नम्नि सद्मसमेन येन बहवो राणाप्रतापाः कृताः।
कृण्मस्ततस्ममार्यमेव जगतां विद्यालयः स्थापितः,
सोऽयं धर्मधुरनधरो विजयते हिन्दूहिते तत्परः।।४।।

विद्या-दान के आदर से जिन गुरू श्री दिग्विजयनाथ जी ने चतुर, विज्ञ, राष्ट्रीय अध्यापक गुरूओं द्वारा महाराणा प्रताप महाविद्यालय के नाम ही के समान बहुत से राणा प्रताप पैदा कर दिये तथा "कृण्मो विश्वमार्यम्" समस्त संसार को हिन्दू बनाये इस ध्येय से गोरखपुर में विश्वविद्यालय की स्थापना की है। हिन्दूओं के हित में तल्लीन धर्म-धुरंधर उस दिग्विजयनाथ जी के संकल्पों की विजय हो।,

तीक्ष्ण तीव्रजने कठोरवचसा स्वान्ते परं कोमलं,
शन्तं साधुषु सौम्यकर्कशतनु विभ्राजमानं श्रिया।
धीरं वीरवदान्यदक्षसुधियं वक्तारमीज्यं वरं,
नाथं दिग्विजयाय लक्षितमतिं सिंह नमामी वयम्।।५।।

तीव्र लोगों में कठोर बचन से तीक्ष्ण किन्तु ह्रदय से कोमल, साधुओं में शान्त, सुन्दर और कर्कश शरीर वाले, श्री से सुशोभित, धीर, बीर, उदार, चतुर एवं श्रेष्ठ वक्ता, हिन्दू धर्म के दिग्विजय के लिए प्रबुद्ध उस नाथ-सिंह को हम नमस्कार कर रहै हैं।

राष्ट्र–पुरूष महन्त दिग्विजयनाथ

श्री राजेन्द्र कपूर

सुप्रसिद्ध दार्शनिक जे० एस० मिल० के अनुसार–''शाश्वत जागरूकता ही स्वाधीनता का सच्चा मूल्यांकन है।'' जब कोई राष्ट्र विस्मृति की निद्रा में सो जाता है, तब कोई राष्ट्र–पुरूष उसे आवाज देकर जागरण का सन्देश देता है। हिन्दू जाति ने सदैव ही ऐसे नर–पुंगवों को जन्म दिया है, जिनके साहस, पराक्रम, वीरता, त्याग और बलिदानों से इस जाति की रक्षा होती रही है। हिन्दू जाति के इतिहास में राजस्थान का इतिहास बड़ा ही गौरवपूर्ण रहा है। जब कभी हिन्दू–राष्ट्र भारत आत्म–विस्मृति की गोद में सो जाता रहा, तब राजस्थान की वीरोन्मादिनी भूमि ने ही रणभेरी बजाकर इस राष्ट्र को जगाया और स्वाधीनता के नन्दा–दीप को कभी भी विदेशी आक्रान्ताओं के झंझावत और तूफानों से बुझने नहीं दिया। राजस्थान की रक्त–स्नाता भूमि के कण–कण ने स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा निमित्त मुस्लिम–आक्रमणकारियों से लोहा लिया है और हिन्दू–राष्ट्र का जय–जयकार किया है। इसी वीर–भूमि ने ही बप्पा रावल, राणा सांगा, राणा कुम्भा और हिन्दू सूर्य महाराणा प्रताप जैसे राष्ट्र–पुरूषों को जन्म दिया है। कोटि–कोटि हिन्दूओं की श्रद्धा और प्रेरणा के स्रोत पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी को भी जन्म देने का श्रेय राजस्थान की पावन भूमि को ही है। महनीय राष्ट्र–पुरूष आदरणीय महन्त जी का सम्बन्ध महाराणा प्रताप की वंश परम्परा से ही है।

हिन्दूओं के प्रेरणा–स्रोत महन्त जी ने सन्यासी होते हुए भी अपनी गति–विधियों को केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा था। आपका अटल विश्वास था कि सच्चा मोक्ष केवल एकान्त साधना में नहीं, वरन् जन जन की सच्ची सेवा में है। यही कारण है कि आप के जीवन का प्रत्येक क्षण धर्म, समाज और राष्ट्र के चिन्तन में व्यतीत हुआ। आप का विद्यार्थी–जीवन एक क्रान्तिकारी का था और कुछ समय के लिए आप ने कांग्रेस के मंच से देश की सेवा की। १६३७ में क्रान्तिकारियों के मुकुट–मणि हिन्दू–राष्ट्र–द्रष्टा स्वातन्त्र्य वीर सावरकर जी की प्रेरणा से हिन्दू महासभा में प्रवेश किया और हिन्दू–हितों की रक्षा के लिए प्राण–पण से जुट गये तथा कांग्रेस की मुस्लिम–पूजक हिन्दू–विरोधी नीति का विरोध किया। देवता स्वरूप भाई परमानन्द और वीर सावरकर के समान जीवन के अन्तिम क्षणों तक वे हिन्दू–हितों के लिए संघर्ष करते रहै। १६३७ से लेकर १६६६ तक इस देश का कोई भी ऐसा आन्दोलन नहीं था, जिसका आपने सक्रिय नेतृत्व न किया हो। १६६१ में अ० भा० हिन्दू महासभा के अध्यक्ष निर्वाचित होने पर आप ने हिन्दू राष्ट्रपति के पद को सुशोभित किया। आप की मान्यता थी कि यदि इस धराधाम पर हिन्दूओं को सम्मान के साथ जीवित रहना है तो हिन्दूओं को एक राष्ट्र के रूप में संगठित होना ही पड़ेगा। हिन्दू–संगठन के द्वारा ही भारत की समस्त समस्यायों का निदान किया जा सकता है। हिन्दूत्व ही इस राष्ट्र की आत्मा है, जिसका विरोध करके इस देश में कोई भी जीवित नहीं रह सकता। आप का राष्ट्रवाद संकीर्णता की जंजीरों में जकड़ा हुआ नहीं था। महन्त जी के राष्ट्रवाद और सच्चे मानव–वाद में किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं किया जा सकता, क्योंकि आप की मान्यता थी कि

हिन्दू धर्म और मानव धर्म में किसी प्रकार का विरोध और मतभेद नहीं है। आप ने कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित सेक्युलर राज्य का विरोध करते हुए कहा कि कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित सेक्युलरवाद हिन्दू विरोध पर आधारित है।

अखण्ड भारत के स्वप्न–द्रष्टा

किसी राष्ट्र के जीवन में आततायी तत्वों का उत्पन्न हो जाना उस राष्ट्र का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। पराधीन भारत में आँग्ल महाप्रभुओं द्वारा पोषित मुस्लिम–लीग ने भारत विभाजन की माँग रखी और इस देश के मुसलमानों के लिए पाकिस्तान माँगा। यह देश–द्रोहिता–पूर्ण मांग १९४७ के पूर्व जोर पकड़ती जा रही थी। कांग्रेसी नेता हिन्दूओं को झूठे आश्वासन देते रहे। कांग्रेस के सर्वेसर्वा गांधी जी ने यहाँ तक कहा कि–मेरे शरीर के भले ही दो टुकड़े हो जाँय, लेकिन कांग्रेस भारत–विभाजन की माँग स्वीकार नहीं करेगी। इस कारण हिन्दूओं को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और वर्तमान भारत के कौटिल्य महन्त दिग्विजयनाथ जी कांग्रेस की मुस्लिम–तुष्टीकरण नीति से भलीभाँति परिचित थे। आप ने हिन्दूओं को देश–विभाजन के विरूद्व चेतावनी दी, लेकिन उनकी चेतावनी को इस देश के अभागे हिन्दूओं ने नहीं सुना। हिन्दू समाज गाँधी की आँधी में बह गया। परिणामतः जिस कार्य को औरंगजेब की तलवार न कर सकी थी, उस पाकिस्तान का निर्माण जिन्ना की ललकार और गांधी की जयजयकार के मध्य हुआ। १५ अगस्त १९४७ को भारत माँ का अंग–भंग हुआ। पश्चिम बंगाल, सिन्ध, सीमान्त प्रदेश और पूर्वी बंगाल के असंख्य हिन्दूओं को मुस्लिम साम्प्रदायिकता की आग में झुलसना पड़ा। आज भी जब मातृ–भूमि का विभाजन हुए २५ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, देश के अधिकांश नेता इस कठोर सत्य को स्वीकार करते हैं कि साम्प्रदायिकता के आधार पर भारत का विभाजन एक भयंकर भूल थी। बंगला देश के उदय से यह सत्य सिद्व हो गया। स्वतन्त्र भारत को अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए चार'–चार बार पाकिस्तान के साथ युद्ध करना पड़ा।

युग–पुरूष महंत जी के स्वप्नों का भारत 'अखण्ड भारत' था। अखण्ड भारत के स्वप्नद्रष्टा का कथन थ कि–"भारतीय सीमा के अन्दर की भूमि के एक एक कण में हिन्दूओं की संस्कृति का अंकुर फलता फूलता रहा है। भरत की सीमा 'आसिन्धु सिन्धु पर्यन्ता है'। इस भूमि पर हमारे तीर्थ, हमारे गौरव पूर्ण इतिहास की स्मृतियाँ, हमारे देश की हिन्दू जनता के विश्वास, मोक्ष, स्वर्गादि के साधन हैं। जिसमें सिन्धु की इतनी महत्ता है कि पूरे राष्ट्र का नाम ही सिन्धु के नाम पर पड़ा है। वेदों के सप्त सिन्धु की व्याख्या 'सिन्धु सप्त नदी' कह कर की गई है।

"बिना सिन्धु जल के हमारा कोई यज्ञ पूर्ण नहीं, हमारे राष्ट्राध्यक्ष का अभिषेक तक नहीं हो सकता। इस प्रकार की युग–युगान्तर की परम्परा–प्राप्त राष्ट्र–भक्ति की दृढ़–भावना कैसे मिटाई जा सकती है ? हम अपनी मातृ–भूमि को अवश्य अखण्ड करके दम लेंगे। क्योंकि बिना अखण्ड भारत के हमारा कोई धर्म–कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः अखण्ड भारत हमारा जन्म–सिद्व अधिकार है और हम इसे लेकर रहैंगे। हिन्दूओं की पुण्यभूमि आसिन्धु–सिन्धु पर्यन्ता सम्पूर्ण भारत भूमि ही है। हम अपनी पुण्यभूमि पर दूसरो का अधिकार नहीं देख सकते। अपनी

मातृ भूमि को हम अखण्ड करके रहैंगे।"

आज पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी की स्मृति ही शेष है, लेकिन उनका अखण्ड भारत का स्वप्न हिन्दू युवकों को उनकी धरोहर है। आज नहीं तो कल उनका यह स्वप्न अवश्य ही साकार होगा, ऐसा मेरा अटल विश्वास है। सुर-सेविनी सिन्धु सरिता ही हिन्दू का मूल है, उसे हम कभी भी नहीं विस्मृत कर सकते हैं। सारा भारत सोता रहै, किन्तु हिन्दू राष्ट्रवादी 'सिन्धु को मुक्त करके ही रहैगा।

शुद्धि के मन्त्र दाता

पूज्य चरण राष्ट्र-पुरूष महन्त जी के दर्शन का प्रथम सौभाग्य मुझे १९५४ में लखनऊ में उत्तर प्रदेश हिन्दू महासभा द्वारा आयोजित 'शुद्धि महायज्ञ' में प्राप्त हुआ। महन्त जी की प्रेरणा से उस शुद्धि महायज्ञ द्वारा सहस्त्रों अहिन्दूओं को पुनः हिन्दूधर्म में दीक्षित किया गया। उस समय मैं और मेरे जैसे अनेक युवक उनके तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित हुए। उनकी ओजमयी वाणी मुझे अभी तक स्मरण है, जब तथागत के शब्दों को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा था :-

"कुरू धर्म कुरू कर्म, प्रसारय धर्मध्वजाम्
प्रताऽयधर्म दुनदुभिम्, प्रपूरय धर्मसंखम"।

अर्थात 'धर्म करो, धर्म ध्वजा फहराओं, धर्म-दुदुम्भी बजाओं और धर्म का शंखनाद करो।' आप की मान्यता थी कि धर्म परिवर्तन से राष्ट्रीयता का परिवर्तन हो जाता है। इस कारण शुद्धि-कार्य एक पुनीत राष्ट्रीय कार्य है।

हिन्दू महासभा के माध्यम से मेरा १५ वर्षो तक उनसे सम्पर्क रहा। वे हम युवकों की प्रेरणा के स्रोत थे। हिन्दूत्व के उस वीर योद्धा और पुरोधा का प्रेरणामयी व्यक्तित्व आज भी हमारे लिए अविराम संघर्ष का संदेश है। मुझे यह कहते हुए गौरव का अनुभव होता है कि इस राष्ट्र-पुरूष को निकट से देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त रहा। हिन्दूओं के अधिकारों के लिए उनमें हिमालय के समान अटलता और दृढ़ता देखा तथा साथ ही साथ उनके ह्दय की कोमलता को भी देखा। स्वाधीन भारत में आततायी तत्वों द्वारा हिन्दूओं को लुटते और पिटते देख कर उनकी आँखों से गंगा और यमुना को बहते हुए मैंने कई बार देखा है। हिन्दू महासभा के बड़े बड़े महारथी डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, एन० सी० चटर्जी, प्रो० वी० जी० देशपाण्डे, निरंजन वर्मा, कैप्टन केशवचन्द महासभा को छोड़ गये, लेकिन राष्ट्र-पुरूष महन्त जी ने हिन्दू हितों के साथ विश्वासघात नहीं किया और जीवन के अन्तिम क्षणों तक हिन्दूत्व की पवित्र गेरूक ध्वजा को झुकने नहीं दिया। परिस्थितियों से निराश होने, अथवा जनता की मृगतृष्णा लेकर सिद्धान्तों का भी व्यापार बना लेने की व्यवसायिक प्रवृति को इस युग-पुरूष ने क्षण-भर के लिए भी अपने पास तक न फटकने दिया। वरम् जनहितम् ध्येयम्, केवल न जनस्तुति' ही उनके जीवन का आदर्श था।

२८ सितम्बर १९६९ को उनकी महासमाधि से हिन्दूराष्ट्र का एक दृढ़ स्तम्भ धराशायी हो गया। राष्ट्रहित सर्वस्व समर्पित करने वाले एक राष्ट्र-पुरूष का अन्त हो गया। उनके निधन से एक महामानव, एक धर्माचार्य, हिन्दू हितों का रक्षक, गौभक्त, राष्ट्र भाषा का पुजारी, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचारक एवं कुशल संसदीय वक्ता की संवाओं से राष्ट्र वंचित हो गया। सागर से भी

अधिक गहन जिसका राष्ट्रचिन्तन था, गगन से भी अधिक विशाल जिसका व्यक्तित्व था, उस राष्ट्र–पुरूष की अब स्मृति सुगन्ध ही शेष है। इस राष्ट्र देवता के पावन चरणों में मेरा सादर प्रणाम।

एक वे है जिन्हें भाई बहन रोते हैं।
मौत तेरी है कि तुझे अहले वतन रोते हैं।।

स्वर्गीय महन्त दिग्विजयनाथ जी : एक स्मृति

डॉ० कृष्ण कुमार मिश्र

स्वर्गीय महन्त श्री दिग्विजयनाथ न केवल गोरखपुर जनपद के अपितु संपूर्ण हिन्दू राष्ट्र के पुनर्निर्माणकर्ता एवं २०वीं शदी के आधार स्तंभ रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे। जिन लोगों ने उन्हें देखा है या जो उनके सम्पर्क में रहे हैं, उनके व्यक्तित्व पर महन्त जी का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य पड़ा है। नयी पीढ़ी के अधिकांश लोग जो उनका दर्शन नहीं कर सके, आज उनके आदर्शों पर चलना अपना पुनीत कर्तव्य मानते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण जो मुझे ज्ञात होता है वह यह है कि महन्त जी एक समाजसेवी के साथ साथ एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भी थे। राजनीतिज्ञ से हमारा तात्पर्य किसी दल–विशेष से न होकर राष्ट्र–प्रेम से है। वे हमेशा हर प्रकार के त्याग के लिए तैयार रहते थे, जब कभी भी वह त्याग राष्ट्र कल्याण के लिए आवश्यक हुआ है।

१९६०–६१ की बात है, तब मैं गोरखपुर विश्वविद्यालय में बी० ए० का विद्यार्थी था। सैन्य–विज्ञान परिषद् के तत्वावधान में गठित एक कमेटी बनी, जिसका एक सदस्य मैं भी था। कमेटी के सभी सदस्य महंत जी के यहाँ अपनी माँग लेकर पहुँचे कि इस विश्वविद्यालय में सैन्य विज्ञान का अध्यापन स्नातकोत्तर–स्तर पर भी होना चाहिए। जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि वे एक दूरदर्शी विचारक थे, उन्होंने तुरन्त हम लोगों की माँग स्वीकार की और कहा कि जब चीन और पाकिस्तान जैसे पड़ोसी हम लोगों के शत्रु हैं, तो इस विषय का पठन–पाठन उच्चतम स्तर पर आवश्यक है। उन्होंने यह भी कहा कि चाहे हम लोग अपने इस अभियान में सफल न हों, लेकिन १० वर्ष बाद शायद कोई भी विश्वविद्यालय इस देश में ऐसा नहीं होगा, जो इस विषय की पढ़ाई स्नातकोत्तर स्तर पर शुरू न कर दे। आज महन्त जी नहीं रहें, लेकिन उनकी भविष्यवाणी सत्य प्रमाणित हो रही है। अधिकांश विद्यालयों में यह विषय स्नातकोत्तर–स्तर पर पढ़ाया जा रहा है।

उन्होंने एक सीख हम लोगों को दी और कहा कि यदि जीवन में आत्म–सम्मान के साथ जीवित रहना है, तो अन्याय का जम कर विरोध करो। उनका कहना था कि शैक्षणिक संस्थाओं में विभिन्न उच्च पदों को लेकर अन्यायी शोषण कर रहे हैं। अतः प्रत्येक युवक का यह कर्तव्य है कि वह शोषण कर्ता का हनन करे। यदि ऐसा संभव नहीं हुआ, तो राष्ट्र का पतन अवश्यभावी होगा। महन्त जी को सच्ची श्रद्धांजलि उनके इसी आदर्श पर अमल करके दी जा सकती है।

शिशु शिक्षा एवं श्री महाराज जी

श्रीमती इन्दिरा श्रीवास्तव

बाल अनुरागी, करूणामय, निःस्वार्थ युगस्रष्टा, हिन्दू धर्म के महाप्राण, प्रसिद्ध शिक्षा–शास्त्री, भारतीय संस्कृति के स्वाभिमान के रक्षक, गरिमामय व्यक्तित्ववाले, अनन्य धर्म प्रवर्तक, महान् देशभक्त तथा लोकप्रिय जन–नायक, श्री ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी को महा–समाधि लिए हुए आज तीन वर्ष व्यतीत हो रहे हैं। वे चले गये, परन्तु उनकी प्रतिच्छ मनुष्यता के अन्तस्तल में बस गई है। अतः वे गये नहीं, स्थूल से सूक्ष्म बनकर हमारे मन में अन्तर्लीन हो गये। क्योंकि आत्मा कभी मरती नहीं। उमकी प्रखर वाणी, महान् व्यक्तित्व, उनका यश और कीर्ति, उनके सिद्धांन्त तथा आदर्श, उनके सुकृत्य और उनका शौर्य आज भी हमारे मध्य वर्तमान है और जब तक यह विश्व है और हिन्दूत्व है उनका नाम श्रद्धा और भक्ति के साथ लिया जायेगा।

२८ सितम्बर ६६ की सांय पौने ६ बजे इस धरती का एक प्रोज्ज्वल नक्षत्र बुझ गया और सौर मंडल के जगमगाते सितारों में मिलकर देदीप्यमान होने लगा। "हिन्दू–राष्ट्रपति" के रूप में यह सितारा सदैव चमकता रहैगा और प्रत्येक हिन्दू को प्रेरणा देकर अपने पद चिह्नों पर चलने के लिए अनुप्राणित करता रहैगा। ब्रह्मलीन दिग्विजयनाथ जी अमर बनकर हिन्दू–इतिहास के सन्धान को सदैव सुरक्षित करते रहैंगे।

रत्नगर्भा भारत भूमि ने प्रत्येक युग में महान् विचारकों, दार्शनिकों एवं धर्म प्रवर्तकों की अविस्मरणीय देन द्वारा भारत में ही नहीं विश्व के मानव समाज का अधिकाधिक कल्याण किया है। दिग्विजयनाथ जी का अवतरण हिन्दू–धर्म तथा समाज के कल्याण के लिए हुआ था। प्रतिभा और विवेक से युक्त मनुष्यता के लिए उनका संघर्षशील जीवन दैव सन्देश देता रहैगा 'कर्म ही सौन्दर्य है, कर्म ही पराक्रम और कर्म ही भगवान और उसकी उपासना है।'

बच्चों के प्रति उनका विशेष अनुराग था। देश तथा समाज का मंगलमय भविषय वे बालकों में ही देखते थे। बालक ही राष्ट्र की वाटिका के हंसते प्रसून हैं जिनका विहंसना ही राष्ट्र का विहंसना है। वे भारत के बालक–बालिकाओं में आत्मविश्वास, त्याग, देश तथा समाज के प्रति दायित्व ग्रहण करने की गम्भीरता तथा सफलता प्राप्त करने की आकांक्षा की भावना कूट–कूट कर भरना, चाहते थे। वे बच्चों के अन्दर देश की संस्कृति और सभ्यता तथा पुराने आदर्शों के प्रति आस्था फैलाकर आने वाले समय के लिए सुयोग्य नागरिक बनाना चाहते थे।

किसी राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति, विकासशीलता और प्रगति एवं समृद्धि, उस राष्ट्र में प्रचलित शिक्षा पद्धति, उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं, शिक्षा के स्तर, शिक्षितों की संख्या तथा शिक्षा और व्यवहारिक जीवन के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर करती है। विश्व के सभी प्रगतिशील राष्ट्र बच्चों की शिक्षा तथा उनके चरित्र निर्माण पर सबसे अधिक ध्यान देते हैं। उनके राष्ट्रीय कार्यक्रम में शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है, किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश में शिक्षा की ओर कम ध्यान दिया जाता है। दिग्विजयनाथ जी महाराज सरकार तथा समाज द्वारा अपने देश में शिक्षा की ओर से उपेक्षा के लिए सदैव आलोचना करते रहै और बच्चों को अच्छी शिक्षा की प्राथमिकता

दिलाने के हैतु आजीवन प्रयत्नशील रहैं। उनका दृष्टिकोण रचनात्मक था। वे कहने से ज्यादा करने में विश्वास करते थे। नगर में अन्य कार्यों के अतिरिक्त महान् शैक्षिक कार्यक्रम के अन्तर्गत उनके द्वारा संस्थापित अनेक शिक्षा संस्थाएँ शैक्षिक अभाव की पूर्ति कर रही हैं जो महाराज जी के शिक्षा–प्रेम तथा बाल अनुराग की ज्वलन्त प्रतीक है।

छात्रों में बढ़ रही अनुशासन हीनता से वे सदैव चिन्तित रहते थे और शिक्षकों तथा अभिभावकों का ध्यान इस ओर सदैव आकृष्ट किया करते थे। बच्चों को अनुशासित रखकर उनकी सुप्त प्रतिभाओं को विकसित करके समाज का उत्तरदायी घटक तथा राष्ट्र का प्रखर चारित्र्य सम्पन्न नागरिक बनाना शिक्षा पद्धति तथा विद्यालय का उद्देश्य बताते थे। उनके अनुसार भरत में शिक्षा की जो प्रणाली अपनायी जाय उसकी मजबूत नीव भारत की संस्कृति पर होनी चाहिए।

शिशु शिक्षा की इन आधार–भूत मान्यताओं को साकार रूप देने के उद्देश्य से उन्होंने जुलाई १९६२ में हमारे शिशु बिहार की संस्थापना की थी जो हिन्दू–कुल–कमल दिवाकर वीर महाराणा प्रताप के नाम पर है और "यथा नाम तथा गुण" तथा संस्थापक द्वारा दर्शाये मार्गो पर चलकर वांक्षित लक्ष्य की ओर अग्रसारित हो रही है। उनकी प्रबल इच्छा थी कि शिशुओं की सुविधा को दृष्टिगत कर नगर के प्रायः प्रत्येक प्रमुख मुहल्लों में महाराणा प्रताप शिशु–शिक्ष बिहार की शाखा कार्य करे। नगर के रामदत्तपुर मुहल्ले में "बिहार" की एक शाखा गत आठ वर्षों से चल रही है जो इसकी प्रथम कड़ी है और अन्यत्र भी शाखाओं के संचालन का लक्ष्य प्राप्त करना है। बालिकाओं की शिक्षा संस्था के अभाव के कारण, वे बालिकाओं के लिए इण्टर मीडिएट एवं डिग्री कक्षाओं तक की शिक्षा भी सुलभ करना चाहते थे। बालिकाओं के लिए जूनियर हाई स्कूल तक की कक्षायें हमारे विद्यालय में सुलभ है जिसे शनैः शनैः इण्टरमीडिएट कालेज का रूप देने की योजना है।

महाराज जी मुझे सदैव समझाते रहते थे कि बच्चों को ममता–मय वातावरण में रखकर उनकी बोद्धिक एवं नैतिक प्रतिभाओं को विकसित किया जाय। बच्चों की शिक्षा में वे इतनी रूची रखते थे कि वे जब कभी किसी स्थान का भम्रण करने जाते थे तो वहाँ के शिशु विद्यालयों में अवश्य जाते थे। अपने संस्मरणों को मुझसे प्रायः उल्लेख करके मुझे बच्चों के प्रति मेरे दायित्वों को प्रभावशाली ढंग से निभाने के लिए प्रेरित करते रहते थे और मुझसे भी अपेक्षा करते थे कि जब कभी मुझे भारत के अन्य नगरों में जाने का अवसर प्राप्त हो तो मैं भी शिशु विद्यालयों में जाकर वहां की प्रचलित पद्धतियों का अवलोकन करूँ, उसपर मनन करूँ और अपने "शिशु बिहार" के शिशुओं के लिए उसका सदुपयोग करूँ।

साधना का प्रथम स्थल शिशु है। बालकों में सही संस्कार बचपन से ही समाविष्ट करना चाहिए। कुम्हार जिस प्रकार कच्चे घड़ों का निर्माण करता है, और उसकी कमियों को ठोक–ठोक कर दूर करता है, तथा उन्हैं सुन्दर और सुडौल रूप प्रदान करता है, तत्पश्चात् वह उन पर स्वेच्छा–पूर्वक सुन्दर–सुन्दर बेल–बूटे अंकित करता है जिसकी छाप उन पर सदैव बनी रहती है, उसी प्रकार शिशुओं को हर प्रकार से देख भाल कर उनके अज्ञान तथा अवगुणों को दूर कर के उनका भावी जीवन प्रशस्त किया जाना चाहिए। अतीत के गौरव के श्रेष्ठत्व की छाप बालक के मन पर अंकित करने के लिए देंश के वीर बालको, महापुरूषों तथा उपदेशकों की गौरवपूर्ण गाथा

बच्चों को सुनने के लिए प्रेरित करते रहते थे।

बच्चों में साहस, निर्भीकता एवं आत्मविश्वास की भावना के संचार हैतु विद्यालय के बच्चों द्वारा आयोजित सांहसिक सामूहिक क्रीडा तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अवलोकन वे सहृदय होकर करते थे। समाज सुधार के लिए संघर्षशील महापुरूष होने के कारण वे बहुत थोड़ा समय निकाल पाते थे पर जब कभी शिशुओं के सम्मुख आ जाते थे तो घण्टों उनका किलकना तथा विहंसना, आत्मीयता से अवलोकन करते थे। १२ मार्च १९६७ को विद्यालय के बच्चों ने उनके महानिर्वाचन में लोकसभा के सदस्य पद के लिए भारी बहुमत से निर्वाचित होने पर अभिनन्दन–पत्र समर्पित करते हुए विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया था। अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने "भारत माता के सपूतों तथा देश के भावी कर्णधारों" के रूप में प्यारे बच्चों के प्रयासों की तथा उनकी निर्भीकता की भूरि–भूरि प्रशंसा की थी और उनके मंगलमय भविष्य की कामना की थी। प्रोत्साहित करने तथा स्वस्थ्य स्पर्धा की भावना जागृत करने के उद्देश्य से उन्होंने बच्चों को पारितोषिक भी दिए थे। बच्चों के निर्भीक प्रस्तुतीकरण से वे इतने प्रभावित हुए थे कि जब कभी उनका प्रसंग उठता था तो वे प्रफुल्लित हो उठते थे और अपने पास बैठे श्रद्धालुओं को प्रसन्न चित्त मुद्रा में बाल–लीलाओं का उल्लेख करते थे। बच्चों के प्रति उनका अगाध प्रेम उस समय स्वतः प्रकट हो जाता था।

बालकों में विद्यमान शक्तियों कौ प्रकट करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। बच्चों का सर्वांगीण विकास शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक करना ही शिक्षा की सही मान्यता है। बच्चों के शारीरिक बौद्धिक एवं नैतिक जीवन का विकास ही उनके व्यक्तित्व के विकास का अर्थ है और यह स्वस्थ शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। गुरू ही अपने शिष्यों को ऐसा "दिव्य चक्षु" प्रदान करता है, जिसकी ज्योति कभी नष्ट नहीं होती। गुरू वस्तुतः ज्ञान का प्रतीक है, वह अपने सदुपदेश से शिष्यों के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर उसमें ज्ञान के प्रकाश का प्रादुर्भाव करता है। इसके लिए महाराज जी प्राचीन गुरूकुलों के इतिहास का स्मरण कराते थे। भारतीय संस्कृति अपनी प्राचीन गौरवमयी परम्परा के लिए विश्वविख्यात है। भारतीय संस्कृत में गुरूओं का स्थान समाज में सर्वोच्च माना गया है। प्राचीन आदर्श व्यवस्था का उल्लेख केवल गौरव गाथा के गायन के लिए नहीं अपितु उसके अनुकरणीय अंश एवं आदर्श के ग्रहण तथा उनके मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है जो शिशु के पुनः निर्माण में योगदान दे सकें। बाल विकास के लिए अध्यापिकाओं का अत्यधिक महत्व है क्योंकि आज का विद्यार्थी ही कल के भारत का कर्णधार है। भविष्य में उसके हाथ में समाज, संस्कृति तथा राष्ट्र की बागडोर आने वाली है इसलिए वांछनीय ही नहीं अनिवार्य है कि शिशुओं को आरम्भ से सुयोग्य शिक्षिकाओं द्वारा आत्मीयतापूर्ण व्यवहार, अध्यनशील जीवन, भक्तिपूर्ण हृदय से उत्तम संस्कार प्रदान किये जाये। अतः शिक्षकाओं का योग्य और प्रशिक्षित होना आवश्यक है। परन्तु इस नगर ही नहीं इंस अंचल में बच्चों की शिक्षा की विशिष्ट प्रणालियों में विशेष रूप से दीक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। गोरखपुर विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त बी० एड० अध्यापिकाएँ इस कमी की पूर्ति कर रही हैं परन्तु नर्सरी एवं मान्टेसरी प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का अभाव है जिसकी नितान्त आवश्यकता है। यह अभाव महाराज जी

को सदैव खटकती रही और बच्चों की शिक्षा प्रणाली के लिए महिलाओं के लिए ट्रेनिंग स्कूल अति शीघ्र खोलना चाहते थे। उनकी इच्छापूर्ति का लक्ष्य आज भी शिक्षा परिषद के सम्मुख प्रधानता पर है।

उनकी प्रबल इच्छा थी कि बच्चों को विद्यालय में ही रखकर परिवार स्वरूप वातावरण में सर्वांगीण विकास किया जाय। इस दिशा में प्रयत्नशील एवं जागरूक होने के लिए मुझे सदैव ध्यान दिलाते रहते थे। बच्चों के विकास की समुचित व्यवस्था होने पर उनकी इच्छापूर्ण हो जायगी।

महाराज जी सच्चे माने में बच्चों के शुभेक्षु थे और उनके भविष्य निर्माण के लिए आजीवन कार्यशील रहे। वे बच्चों के हितों की रक्षा के लिए सदैव चिन्तित रहते थे। अपनी अस्वस्थता में भी वे अपने को इस चिन्ता से मुक्त नहीं कर पाते थे। मुझे अच्छी तरह याद है महाराज जी की महासमाधि के पूर्व संध्या में दिनांक २७–६–६९ को जब मैं उनका दर्शन करने गई थी तो उन्होंने विद्यालय के बच्चों की प्रगति के बारे में जानना चाहा और चिन्ता व्यक्त की थी कि बच्चों के छात्रावास तथा महिला प्रशिक्षण केन्द्र के लिए भूमि प्राप्ति का कार्य ठीक से नहीं हो पा रहा है। सम्बन्धित अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करके इसका निस्तारण कराने का आदेश उन्होंने मुझे दिया था। मैंने उनसे निवेदन किया था "आप स्वस्थ हो जायं सब कार्य हो जायेंगे"। पर वे स्वस्थ नहीं हुए दूसरे ही दिन काल के क्रूर हाथों ने उन्हें हमसे छीन लिया। महन्त जी के निधन का समाचार वज्राघात के समान प्रतीत हुआ। नियतिक्रम को कौन रोक सकता है। महाराज जी ने महासमाधि ले ली परन्तु उनका त्याग एवं तपस्यापूर्ण जीवन, भव्य आकृति और गौरवपूर्ण मुखमण्डल आज भी चक्षुओं के सम्मुख विद्यमान हो जाता है और मन गहन अनुभूतियों से भर उठता है। उनकी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके दर्शाए मार्ग पर चलकर बाल–विकास में पूर्ण योगदान देकर देश समाज और संस्कृति की सेवा में जुटे रहैं।

गामवजित्यसुचरितैरेवञ्जेतुन्दिवस्म्प्रयातम्

कुँवर नरेन्द प्रताप सिंह

सिद्धाय शुद्धबुद्धाय मुक्ताय प्रयतात्मने।
गोरक्षाय कस्मेचिन्नमो नाथाय तेजसे।।१।।
आदिनाथं नमस्कृत्य, मत्स्येन्द्रञ्च जलन्धरम्।
सिद्धामन्यान्गुरून्नुत्वा, बन्दे दिग्विजयन्त्वहम्।।२।।
स्यन्दन्मरन्दमलिवृन्दयृतम्प्रसन्नम्
मांगल्यमूलमनिशं विकसत्सुगन्धम्
पापापहम्प्रणततापहरम्प्रसिद्धम्
वन्दे महापुरूष ते चरणारविन्दम।।३।।
येन प्रतापसिंहस्य नाम्ना तास्ता: कृतास्तथा

संस्था जनपदस्यास्य शिक्षार्थञ्जयतेतराम् ।।४।।

नाथं बन्दे दिग्विजयाख्य–
–न्दिशि दिशि विदिशि ख्यातम् ।
गामवजित्य सुचरितैरवे–
–ञ्जेतुन्दिवम्प्रयातम् ।।५।।
गोरक्षपीठाधिपतिं बन्दे
नियतम्प्रयतं शान्तम्
दिव्यैस्तैजोंऽर्शः सम्भूत–
–न्दिव्याकारन्दान्तम् ।।६।।
वृषभस्कन्धं व्यूढोरस्कम्
शालप्रांशुशरीरम्–
–प्रथितयशस्कमुदात्तमनस्कम्
पीरन्धीरगभीरम् ।।७।।
स्फीतन्नेत्रकंमललिविजैत्रम्
वक्रत्रपरम पवित्रम् ।
मज्जाज्जाति समुद्धरणार्थम
विहितवहित्रचरित्रम् ।।८।।
चंचलकुण्डलमण्डलमण्डित–
–गण्डस्थलमभिरामम् ।
विपद्विरामन्निर्जितकाम–
–न्यक्कृतनिकृतिग्रामम् ।।९।।
हिन्दूजनानामाशाबन्धम्
शीर्षोदयकुलजातम् ।
मनसि खलानां भ्लेच्छदलालना–
गड्ढं शल्यमलातम् ।।१०।।
दीनार्तानां शरणगताना–
–न्दातारन्त्रातारम् ।
सच्छास्त्राणाँल्ललितकलाना–
–ङ्ख्यातारं ज्ञातारम् ।।११।।
प्रातर्बन्दे सायं बन्दे
बन्देऽहं मध्यान्हम् ।
वारं वारन्तारं बन्दे
रात्रिन्दिवं निकामम् ।।१२।।

युगपुरूष श्रीमहाराज जी

श्री महन्त अवेद्यनाथ

इस पवित्र भारत भूमि में समय समय पर महान् आत्माओं का अवतरण होता आया है। जब कभी भारतीय जनता का जीवन अनाचार और अनीति, दम्भ और पाखण्ड तथा अन्ध–विश्वास और रूढि से जर्जर होकर गतिहीन हुआ है, तभी दिव्य विभूतियों ने धर्म की रक्षा के लिए अपने को मनुष्य रूप में अवतरित किया है। भगवान गोरक्षनाथ इन्हीं दिव्य विभूतियों में से एक थे। उन्होंने गोरक्षपुर को अपनी साधना का केन्द्र बनाया। युग बीते। सहस्त्रों वर्षों की दीर्घ अवधि में काल–देवता का रथ चक्र बहुत आगे बढ़ आया, किन्तु जनता के मन में गोरक्षनाथ शिव रूप में प्रतिष्ठित रहै और गोरखपुर योगी साधको की सिद्ध पीठ बना गया।

आधुनिक युग में एकान्त तपस्या और साधना धर्म विरूद्ध प्रपंचों और कुचक्रों को विफल करने में असमर्थ सिद्व हुई, इसलिए धार्मिक नेताओं को राजनीति में आना पड़ा। मेर पूज्य गुरूदेव महन्त दिग्विजयनाथ एक ऐसे ही धार्मिक, नेता थे जिन्हैं त्याग, तपस्या के साथ राजनीति में सक्रिय होना पड़ा था।

आप का जन्म इतिहास प्रसिद्ध मेवाड़ वंशीय राणा परिवार में हुआ था। अत्यल्प अवस्था में ही इनके चाचा ने इन्हैं योगिश्रेष्ठ श्री फूलनाथ जी को समर्पित कर दिया था। श्री फूलनाथ जी इन्हैं गोरक्षपुर ले आये। बचपन से ही महन्त जी के व्यक्तित्व की ओजस्विता का परिचय मिलने लगा था। उस समय आप 'राणा नान्हू' के नाम से प्रसिद्ध थे। राणा नान्हू सिंह में अद्‌भुत संगठन–शक्ति थी। वे शिक्षा कक्ष और क्रीड़ा क्षेत्र दोनों में अग्रणी थे। स्वतंत्रता और देश–प्रेम का संस्कार आप के रक्त में था। सन् १६४२ में महात्मा गाँ ने अंग्रेजी शिक्षा और विदेशी वस्त्रों के बहिस्कार की घोषणा की और राणा नान्हू सिंह कालेज को प्रणाम कर सक्रिय राजनीति में कूद पड़े। इतिहास प्रसिद्ध चौरी–चौरा काण्ड का आपने नेतृत्व किया था और आप उसके प्रमुख अभियुक्त थे।

आगे चलकर गांधी जी की मुस्लिम तुरूटीकरण नीति से खिन्न होकर आप कांग्रेस से अलग हो गये। आप वीर सावरकर के सम्पर्क में आए और हिन्दू महासभा की सेवा में लग गये। आपने आजीवन हिन्दू, हिन्दी और हिन्दूस्तान के लिए संघर्ष किया। सन् १६२१ से लेकर १६६६ तक भारतीय इतिहास की ऐसी कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं है जिसमें महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी ने महत्वपूर्ण भूमिका न अदा की हो। इसलिए उन्हैं युग–पुरुष कहना सवर्था उचित है। असहयोग आन्दोलन, चौरीचौरा काण्ड, १६३१ की जनगणना के अवसर पर हिन्दूओं के व्यापक हितों के लिए संघर्ष, साइमन कमीशन का बहिष्कार, १६४२ की क्रान्ति में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का उग्र विरोध, हैदराबाद के निरंकुश निजाम की हिन्दू–उत्पीड़क नीति का विरोध, देश के विभाजन का प्रबल विरोध, नेहरू लियाकत पैक्ट का विरोध आदि ऐसी घटनाए है जिनसे आप के व्यक्तित्व की दृढ़ता और ओजस्विता का परिचय मिलता है। इसके समानान्तर हिन्दू महासभा का संगठन, विश्व–हिन्दू सम्मेलन का आयोजन, हिन्दू महासभा के अध्यक्ष रूप में सम्पूर्ण भारत का दौरा और हिन्दूओं के मन में नवीन विश्वास और शक्ति का संचार, लोकसभा में सन्तुलित एवं तर्क पूर्ण विचारों द्वारा

विरोधियों को भी प्रभावित करने की क्षमता, गोरखपुर में शिशु विहार से लेकर विश्वविालय तक की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान तथा महाराणा प्रताप इण्टर कालेज, महाराणा प्रताप डिग्री कालजे, महाराणा प्रताप पालीटेकनीक, गेरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, दिग्विजयनाथ स्नातकीय महाविद्यालय आदि शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, गोरक्षनाथ के विशाल मंदिर का निर्माण तथा गोरक्षनाथ मठ को भगवान गोरक्षनाथ के गौरव के अनुकूल भव्य रूप प्रदान करना आदि ऐसे कार्य हैं जो आप के रचनात्मक व्यक्तित्व के साक्षी है। इतिहास ने ऐसे इने–गिने महापुरूषें को जन्म दिया है, जिनमें एक साथ इतने विरोधी गुणों का सामञ्ज्स्य हो।

२८ सितम्बर १६६६ को सायँकाल पौने छः बजे बड़े महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी ब्रह्मलीन हुए गोरखपुर सिद्ध–पीठ ने अपना धर्म नेता खोया। गोरखपुर की जनता ने सम्भवतः अपना सर्वाधिक लोकप्रिय जन नायक खोया। सम्पूर्ण भारत की हिन्दू जनता ने अपना कर्णधार खोया। किन्तु महन्त श्री दिग्विजयनाथ ने मात्र अपना पार्थिव शरीर खोया। उनकी महान् आत्मा अमर है। ज्ञान और योग की वह अखण्ड ज्योति जिसको आत्माहुति से प्रज्वलित कर दिया, निरंतर ज्योतिर्मान रहैगी।

योगी सम्प्रदाय के प्रेरणास्रोत

धर्माईनाथ योगी

हिन्दू जाति एवं मानव समाज पर योगिराज श्री गुरू गोरक्षनाथ जी महाराज एवं उनके अनुयायियों का महान् उपकार है। नाथ सम्प्रदाय में समय समय पर ऐसे अमर योगी एव नर रत्न महापुरूष उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने समस्त मानव समाज व हिन्दू जाति को नवीन प्रकाश प्रदान किया है। आधुनिक युग में ही श्री बाबा मस्तनाथ जी महाराज व श्री बाबा गम्भीर नाथ जी महाराज सिद्ध पुरूष को साक्षत् भगवान श्री गोरखनाथ जी का अवतार ही समझा जाता है। आर्विभूत हुए जिनकी दिव्य छटा से सम्पूर्ण भारत देदीप्यमान हो उठा था। अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारहपंथी योगी महासभा के संस्थापक अमर योगी श्री १०८ पूज्यपाद श्रीमान् महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज का नाम आज भारत के बच्चे–बच्चे की जिव्हा पर है। उनके प्रयास एवं अथक परिश्रम से योगी सभा की स्थापना हुई और हरिद्वार में इतना भव्य एवं विस्तृत दलीचा तथा श्री 'गोरक्षनाथ मन्दिरम्' बन सका। यह मन्दिर इस महापुरूष की पावन थाती है। योगी महासभा अपने संस्थापक को अत्यन्त ही समादर एवं श्रद्धा से विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है, और आशा करती है कि सारा योगी सम्प्रदाय ऐसे महापुरूषों के चरित्र से प्रेरणा ग्रहण करेगा।

महन्त दिग्विजयनाथ–व्यक्तित्व एवं कृतित्व

श्री सोमेश्वर सिंह

प्रारम्भिक जीवन

युग–पुरूष महन्त दिग्विजयनाथ जी बचपन में राणा नान्हू सिंह के नाम से विख्यात थे। उनका आविर्भाव बप्पा रावल के उस इतिहास प्रसिद्ध वंश में हुआ था, जिसमें उत्पन्न होकर राणा सांगा और महाराणा प्रताप जैसे स्वदेशाभिमानी वीरों ने देश और धर्म की रक्षा के लिए आजीवन संघर्ष किया था। महाराणा प्रताप की तलवार ने जिस वंश के इतिहास को त्याग, बीरता और आत्मसम्मान का इतिहास बना दिया था।, जिस धरती को शत्रुओं के रूधिर से सींच–सींच कर पवित्र और पूज्य बनाया था, उसी उदयपुर की धरती पर सिसोदिया वंश में जन्म लेकर राणा नान्हूसिंह ने भी अपने जीवन को त्याग और बलिदान का निदर्शन बना दिया।

राणा नान्हूसिंह का जन्म उदयपुर के राणा परिवार में सन् १८६४ में वैशाखी पूर्णिमा को हुआ था। बचपन में ही माता–पिता के स्वर्गवासी हो जाने के कारण उनके पालन–पोषण का दायित्व उनके चाचा पर आ पड़ा। उस समय उदयपुर के निकट एक नाथ पंथी योगी महात्मा फूलनाथ साधना–रत थे। वे गोरखपुर स्थित श्री गोरक्षनाथ मंदिर के तत्कालीन महन्त श्री बलभद्रनाथ जी के शिष्य और महन्त सुन्दरनाथ जी के गुरूभाई थे। बाल्यावस्था में ही राणा नान्हू सिंह के माता–पिता हैजे की बिमारी में मर चुके थे। उनके चाचा सम्पत्ति के लोभ में उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने महात्मा फूलनाथ जी से निवेदन किया कि सन्तान–प्राप्ति–हेतु हमने यह मनौती मानी थी कि अपनी प्रथम सन्तान श्री गुरूगोरक्षनाथ जी के चरणों में समर्पित करेगें। उनकी कृपा से मेरे कई सन्तानें हो गई हैं। अस्तु, मैं अपनी प्रथम सन्तान श्री गोरक्षनाथ जी के चरणों में समर्पित करना चाहता हूँ। किन्तु घर के लोगों का इस बालक के प्रति विशेष स्नेह एवं ममत्व है। इस कारण वे उसको अपने से अलग नहीं करना चाहते हैं, जिससे मुझे बराबर हार्दिक कष्ट रहता है। अतः आप मेरी इस मनौती को पूर्ण करने में सहायता करें। मैं गणगौरी के मेले के दिन जैसे ही बालक आप को समर्पित करूँ, आप उसे ले कर गोरखपुर चले जायँ। अन्यथा घर के लोग उसे पुनः घर ले जायेंगे। जिसका मुझे जीवन भर खेद रहेगा। श्री बाबा फूलनाथ जी को चाचा के षड्यंत्र का पता नहीं था। उन्होंने सहज ही में उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और योजना नुसार चाचा ने जैसे ही बच्चे को समर्पित किया, वे तुरन्त उसे लेकर गोरखपुर आ गये। गोरखपुर पहुँचने पर उन्होंने तत्कालीन योगिराज श्री बाबा गम्भीरनाथ जी एवं अन्य लोगों से बालक राणा नान्हू सिंह के श्री गोरक्षनाथ जी को समर्पित करने की कहानी से अवगत किया और बताया कि उदयपुर के राणा ने अपने पुत्र को श्री गोरक्षनाथ जी के चरणों में समर्पित किया है। उधर उदयपुर में षड्यंत्री चाचा द्वारा यह प्रचार किया जा रहा था कि बालक मेले में गायब हो गया और उसे खोजने के लिए बनावटी व्यग्रता दिखाई जा रही थी। बाद में जो बातें प्रकाश में आई, उनसे पता चला कि उस समय सारे राजस्थान में बालक राणा नान्हू सिह की तलाश दिखावे के लिए चाचा ने कराई। तालाब में डूबने की आशंका समाप्त करने के लिए तालाब

में जाल भी डाला गया, किन्तु बालक का कहाँ पता चलता! वह तो एक साजिश के साथ गोरखपुर पहुँचा दिया गया था। श्री गोरक्षनाथ मंदिर पर बालक नान्हू सिंह को साधु–संतो एवं सन्यासियों के सम्पर्क में रहना पड़ा। राजवंश में उत्पन्न इस बालक को मंदिर में निवास करने वाला साधु–समाज आश्चर्य और आशंका–मिश्रित कौतूहल से देखता था। उन्हें यह विश्वास था कि मंदिर के वातावरण में यह बालक अधिक दिनों तक टिक नहीं पायेगा। किन्तु नान्हू सिंह को उसी समय महायोगी गम्भीरनाथ जी की अहैतुकी कृपा प्राप्त हो गई थी। योगिराज गम्भीरनाथ जी उस समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित और ख्यातिलब्ध योगी थे। उनकी स्नेहच्छाया में बालक नान्हू सिंह को व्यवधानविहीन जीवन व्यतीत करने का अवसर मिला। नन्हें बालक की प्रतिभा को देखकर ही उस महान साधक ने उन्हें आशीर्वाद दिया था कि भविष्य में वह महान् यश की उपलब्धि करेगा।

शिक्षा

मंदिर की ओर से ही बालक नान्हू सिंह की प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था कराई गई। स्थानीय जुबली हाई स्कूल में उन्होंने सातवी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। प्रारम्भ से ही वे बड़े स्वाभिमानी थे। जुबली स्कूल के तत्कालीन प्रधानाचार्य राय साहब अघोरनाथ चट्टोपाध्याय से उनकी अनबन हो गई। फलतः उन्होंने सातवी कक्षा के बाद स्कूल का परित्याग कर दिया। फिर उन्होंने स्थानीय हाई स्कूल में प्रवेश लिया, जो आज कल महात्मा गांधी इण्टर कालेज के नाम से प्रसिद्ध है। सेन्टएण्ड्रयूज कालेज में उन्होंने इण्टरमीडिएट कक्षाओं में प्रवेश लिया था। सन् १६२० ई० में राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होंने विद्यालय का परित्याग कर दिया और वे सक्रिय रूप से देश के स्वतंत्रता–आन्दोलन में सम्मिलित हो गये।

बालक नान्हू सिंह सदा एक औसत छात्र रहे। किन्तु विद्यालय के पाठयक्रमेतर कार्यक्रमों में वे सदा सर्वाधिक उत्साह से भाग लेते थे। सभा–सोसाइटी तथा व्याख्यान आदि का आयोजन करने और उनमें सोत्साह भाग लेने, छात्रों को संगठित करने तथा विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं की व्यवस्था करने में वे अत्यन्त कुशल थे। नेतृत्व, निर्भीकता, स्वाभिमान, अनुशासनप्रियता, प्रत्युत्पन्नमतित्व और कार्य कुशलता उनके जीवन के प्रधान गुण थे। छात्र–जीवन में बीज–रूप में अंकुरित ये गुण उनके भावी जीवन में पूर्णतया पल्लिवत और पुष्पित हुए। इन्ही गुणों के बल पर बालक नान्हू सिंह ने आगे चलकर दिग्विजयनाथ के अभियान को सार्थक करते हुए जीवन के समस्त धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों को अपनी स्वतःसम्भूत प्रखर बौद्धिकता से भली भाँति आलोकित किया।

क्रीड़ा के क्षेत्र में

छात्र–जीवन में वे हाकी के श्रेष्ठ खिलाड़ी थे। मैदान में उतरने के पश्चात् वे अपने व्यक्तित्व, व्यवहार और क्रीड़ा–कौशल के कारण समूचे जन समूह पर छा जाते थे। दर्शकों की दृष्टि निरन्तर उनका ही अनुगमन करती रहती थी। वे सेन्टर फारवर्ड और राइट आउट दोनों स्थानों से समान कुशलता के साथ खेलते थे। खेल के प्रति उन्हें इतना मोह था कि बाद के जीवन में भी वे जब कभी सन्ध्या के समय महाराणा प्रताप कालेज की ओर निकल आते और बच्चों को हाँकी खेलते देख लेते, तो वे खेलने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। छात्र–जीवन समाप्त करने के बाद

भी वे सेन्टऐन्ड्रयूज कालेज में बराबर हाकी खेलने जाया करते थे। हाकी के अतिरिक्त बैडमिन्टन और टेनिस में उनकी अधिक रूचि थी। इन दोनों खेलों की व्यवस्था उन्होंने मन्दिर पर भी कर रक्खी थी। उनके साथ टेनिस खेलने वाले लोग आज भी मुक्त कण्ड से उनकी प्रशंसा करते हैं। घुड़सवारी तो उनके नित्य जीवन का एक अंग ही थी।

हिन्दू धर्म और संस्कृति से प्रेम

विद्यार्थी जीवन में ही राणा नान्हू सिंह के ह्रदय में हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के प्रति पूरी आस्था उत्पन्न हो गई थी। परम पूज्य योगिराज गम्भीरनाथ जी के चरणों में बैठकर उन्होंने सर्व प्रथम हिन्दू संस्कृति के मूल तत्वों को पहचानने का प्रयास किया था। विद्यार्थी जीवन की धर्म–प्रेम सम्बन्धी कुछ घटनायें अविस्मरणीय हैं।

राणा नान्हू सिंह (महन्त दिग्विजयनाथ) आठवी कक्षा के छात्र थे। उस समय वर्तमान राजकीय टेकनिकल स्कूल के निकट बने शिव मंदिर को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया। टेकनिकल स्कूल के पास की भूमि रेलवे कर्मचारियों के आवास के लिए अधिकृत की जा रही थी। उसी भूभाग में एक लोहार द्वारा निर्मित शिव मन्दिर सार्वजनिक उपासना का केन्द्र बन चुका था। जब उसे गिरवाने का प्रयास किया जाने लगा, तो राणा नान्हू सिंह के नेतृत्व में विद्यार्थियों के एक विशाल समूह ने रेलवे के तत्कालीन चीफ इंजीनियर ममी साहब का बंगला घेर लिया। उस समय छात्रों के साथ नृसिंह प्रसाद एडवोकेट भी थे। छात्रों के विशाल परेड का नेतृत्व करने के कारण राणा नान्हू सिंह और स्थानीय रईस बाबू पुरूषोत्तम दास जी को पकड़ कर हवालात में डाल दिया गया। बाद में समझौता हुआ और मन्दिर गिरने से बच गया।

सन् १६२८ में जब वे कक्षा ६ के छात्र थे, उस समय गोरखनाथ मन्दिर के अहाते में ईसाई मत–प्रचारक कैम्प लगा कर अपने मत का प्रचार कर रहे थे। कई वर्षों से वे यह कार्य करते आ रहे थे। एक हिन्दू मन्दिर के प्रांगण में हिन्दू धर्म के ही विरूद्ध प्रचार किया जाय, इसे राणा नान्हू सिंह सहन न कर सके। विद्यार्थियों का एक विशाल समूह लेकर उन्होंने ईसाई मत प्रचारक कैम्प पर आक्रमण कर दिया। कैम्प उजाड़ डाले गये। ईसाई धर्म की पुस्तकों को पोखरे में जल–समाधि दे दी गई। इसके बाद कभी किसी ईसाई प्रचारक को मन्दिर के पावन प्रागण में आने का साहस न हुआ।

इस घटना से समस्त प्रशासकीय अधिकारी अप्रसन्न हो गये। उस समय स्थानीय कमिश्नर, कलक्टर और एस० पी० सब के सब ईसाई धर्मावलम्बी थे। उन्होंने मुकदमा चलाना चाहा, किन्तु नगर के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों के हस्तक्षेप के कारण यह कार्यवाही रूक गई।

मन्दिर के प्रांगण में आर्यसमाजियों द्वारा भी प्रचार कार्य होता था। युवा राणा नान्हू सिंह सनातन–हिन्दू–जीवन–पद्धति में निष्ठा रखते थे। अतः उन्होंने आर्य समाज के इस कार्य–कलाप का भी सक्रिय विरोध किया और आर्य समाज प्रचारकों को मन्दिर प्रांगण से हटना पड़ा।

राजनीतिक गतिविधियों से सम्पर्क

राणा नान्हू सिंह का विद्यार्थी जीवन भारतीय पराधीनता का कठोरतम समय था। अंग्रेजी शासन की कठोरता और दमन की दुर्दमनीयता के कारण साधारण जनता में नौकरशाही

के विरूद्ध आवाज उठाने का साहस न था। तथापि, उस अवस्था में भी राष्ट्र प्रेम रखने वाले लोगों की कमी नहीं थी। विदेशी शासन–सत्ता को उन्मूलित करके राष्ट्र को स्वाधीन बनाने का प्रयास करने वाले राष्ट्रभक्तों के दो वर्ग थे। एक वर्ग ऐसे लोगों का था, जो प्रत्यक्ष रूप से जनता के मध्य जागरण का सन्देश देता रहता था। सरकारी अधिकारियों से मिलकर जनता के कष्टों को दूर करने का प्रयास करता था और आवश्यकता पड़ने पर सत्याग्रह आदि का भी सहारा लेता था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस आदि से सम्बन्धित लोग इसी वर्ग के थे।

दूसरे वर्ग में वे लोग थे, जो सरकारी कार्यो में व्यवधान उपस्थित करते थे। सरकारी खजानों को लूटते, नौकरशाही के विभिन्न शिकंजों को तोड़ कर आतंक का वातावरण उत्पन्न कर के विदेशी शासन सत्ता को दहला देने का प्रयास करते थे। ऐसे लोग गुप्त संगठनों के माध्यम से कार्य करते हुए स्वाधीनता प्राप्ति के लिए एक युगान्तरकारी क्रान्ति का बीजारोपण कर रहे थे।

राणा नान्हू सिंह ने विद्यार्थी जीवन में ही दोनो वर्गों से सम्बन्ध स्थापित किया था। उनके ह्रदय में हिन्दू धर्म, हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राष्ट्र के प्रति संस्कारतः अंकुरित उत्कट प्रेम और बलिदान की भावना उन्हें एक सही दिशा प्रदान करने के लिए जागरूक थी। उस काल में ही उन्होंने अनेक क्रन्तिकारियों से सम्पर्क स्थापित किया था, जो यथा अवसर मन्दिर पर भी आया करते थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में भारतीय जनता की भावनाओं का नेतृत्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हाथों में आ गया था। कांग्रेस में भी दो प्रकार के लोग थे। एक उग्रवादी, जो प्रत्यक्ष ध्वन्सात्मक कार्यवाही में विश्वास करते थे। दूसरे समझौतावादी, जो अपने नम्र विचारों के कारण "नरम दल" के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। उस समय कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गाँधी ऐसे नरम दलीय नेता के हाथों में आ रहा था।

सन् १९२० में महात्मा गाँधी का गोरखपुर में भव्य स्वागत हुआ। बाले के मैदान में महात्मा गाँधी ने एक विशाल जनसमूह को सम्बोधित किया था। राणा नान्हू सिंह ने गाँधी जी के कार्यों की निर्विघ्न समाप्ति के लिए 'वालेन्टियर कोर' का संगठन किया था ओर गाँधी जी के कार्यों को पूरा करने में तन–मन–धन से सहयोग दिया था। किन्तु थोड़े दिनों पश्चात चौरीचौरा की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना ने यह सिद्ध कर दिया कि राणा नानहू सिंह (पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ) महात्मा गाँधी के समझौतावादी सिद्धान्तों के पोषक न थे।

चौरीचौरा काण्ड

सन् १९२१ में महात्मा गाँधी का राष्ट्रव्यापी असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। राष्ट्र प्रेमी युवकों ने अपने अध्ययन–अध्यापन, नौकरी तथा व्यवसाय आदि का त्यागकर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। इस समय पूर्वी उत्तर–प्रदेश में– विशेष रूप से गोरखपुर देवरिया जनपद में–कांग्रेस का संगठन अत्यन्त शक्तिहीन था। राणा नान्हू सिंह ने इन आन्दोलनों से प्रभावित होकर सन् १९२० ई० में ही कालेज का परित्याग कर दिया था। उन्होंने असहयोग आन्दोलन को सफल बनाने का पूरा प्रयास किया।

गोरखपुर जिले में स्थित चौरीचौरा स्थान पर आन्दोलन के दमन की जो प्रतिक्रिया

उत्पन्न हुई, उससे नौकरशाही तो आतंकित हुई ही, महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलन का रूप ही बदल गया। उन्हे बहुत शीघ्र ही अपना आन्दोलन वापस लेना पड़ा। इस चौरीचौरा काण्ड के अभियुक्तों में प्रमुख स्थान उनका ही था। अतः उन्हें पकड़ कर कारावास में डाल दिया गया। जिन अभ्युिक्तों को फाँसी की सजा देने का निश्चय किया गया था, उनमें राणा नान्हू सिंह भी थे। किन्तु शिनाख्त (Identification) की दुर्बलता के कारण वे मुक्त कर दिये गये।

बाल जीवन की कुछ प्रमुख घटनायें

गोरखनाथ मंदिर पर आने के पश्चात् उनको योगिराज गम्भीरनाथ जी की अहैतुकी कृपा प्राप्त हो गई थी। सम्भवतः बालक की विलक्षण प्रतिभा को पहचान कर उन्होंने अनायास उसे संरक्षण देना प्रारम्भ कर दिया था। योगिराज गम्भीरनाथ जी महान् विभूति–सम्पन्न सिद्ध योगी थे। वे आधिभौतिक सम्बन्धों का परित्याग कर चुके थे। उनके स्वाभाविक गाम्भीर्य, एवं तपोपूत निःस्पृह व्यक्तित्व से प्रभावित बालक नान्हू सिंह के मन में एक आध्यात्मिक जिज्ञासा बलवती होने लगी। योगीराज गम्भीरनाथ जी ने उन्हें अपने शिष्य महात्मा ब्रह्मनाथ जी के संरक्षण में दे कर, उनके पालन–पोषण तथा शिक्षा आदि की पूरी व्यवस्था कर दी थी योगीराज सिद्ध महात्मा थे। बालक के प्रति उनके मन में अपार स्नेह था। योगिराज अपने योग–बल से अलौकिक कार्य करने में समर्थ थे। उन्होंने बालक नान्हू सिंह के जीवन को प्रभावित करने वाले अनेक चमत्कारिक कार्य किये थे, जिनका उल्लेख ब्रह्मलीन महन्त जी प्रायः किया करते थे। ८–९ वर्ष की अवस्था में बालक नान्हू सिंह गम्भीर रूप से बीमार पड़े। उनका शरीर ज्वर–ताप से दग्ध होने लगा। जब साधुओं ने योगिराज को बालक की बीमारी का समाचार सुनाया, तो उन्होंने एक कूउी के जल पर हाथ फेर कर उन्हें पिला दिया। ज्वर का ताप तत्काल समाप्त हो गया। इसी तरह १३–१४ वर्ष की अवस्था में एक घटना और घटित हुईं एक दिन एक वृद्ध एक पुरानी अचकन और पैजामा लिए हुए आया। पूज्य योगिराज के आदेश से नान्हू सिंह ने इच्छा न रहते हुए भी, उसे धारण कर लिया। उसकी जेब में हाथ डाला तो उसमें से केश का एक लट निकला। रात्रि में उन्हें जोर का बुखार चढ़ा और दो एक दिनों के पश्चात् चेचक निकल आई। चेचक का इतना भयंकर प्रकोप हुआ कि उससे बचना असम्भव ज्ञात होने लगा। जब योगिराज गम्भीरनाथ को बालक के संज्ञाशून्य होने का समाचार दिया गया, तो उन्होंने उनके निचेष्ट शरीर को मंगवा कर अपनी चारपाई के नीचे रखवा दिया। सबेरे, लोगों ने उन्हें जीवित पाया

अन्य घटनायें

स्थानीय हाई स्कूल में उनके एक अध्यापक यदुनाथ चक्रवर्ती थे। वे बड़े ही सरल स्वभाव वाले अध्यापक थे। राणा नान्हू सिंह के हृदय में उनके प्रति सात्विक श्रद्धा थी। उक्त अध यापक को अवकाश–प्राप्ति की आयु के पूर्व ही विद्यालय की सेवाओं से मुक्त कर दिया गया। उस समय राणा नान्हू सिंह गोरक्षनाथ मंदिर के महन्त हो चुके थे। उन्होंने अपने अन्य सहयोगियों से परामर्श कर तत्काल एक नये विद्यालय की स्थापना कर दी। यह विद्यालय 'गुडलक विद्यालय' के नाम से बक्सीपुर मुहल्ले में एक किराये के मकान में प्रारम्भ हुआ और श्री यदुनाथ चक्रवर्ती को ही विद्यालय को संचालित करने का कार्य सौंपा गया। उन्हें उसका प्रधानाचार्य बना दिया गया।

कालान्तर में इसी विद्यालय ने विकसित हो कर महाराणा प्रताप इण्टर कालेज का रूप धारण कर लिया।

विद्यार्थी जीवन में अपने शिक्षा–गुरू के प्रति उनके मन में जो श्रद्धा और आदर का भाव उत्पन्न हो गया था, उसी के निर्वाह के लिए उन्होंने इतने बड़े विद्यालय की स्थापना कर डाली। यह वस्तुतः उनके स्वाभिमान और गुरूभक्ति का सच्चा निदर्शन है।

गद्दी के लिए विवाद, दीक्षा और अभिषेक

सन् १६२१ ई० में छात्र जीवन का परित्याग करने के पश्चात् राणा नान्हू सिंह राजनीतिक कार्यों में अधिक रूचि लेने लगे थे। इधर गोरखपुर मठ के महन्त पद को लेकर पहले से ही विवाद चल रहा था। तत्कालीन महन्त सुन्दरनाथ जी तथा महन्त ब्रह्मनाथ जी का स्वत्वाधिकार सम्बनधी विवाद हाई कार्ट तक पहुँच गया था। इन आन्तरिक एवं वाह्य, गृह सम्बन्धी एवं राजनीतिक विवादों में फंस कर जीवन का अस्त–व्यस्त हो जाना स्वाभाविक है। किन्तु उन्होंने बड़े धैर्य के साथ परिस्थितियों का सामना किया और अन्ततः वे विजयी रहे।

विवाद

सन् १८८० ई० में महन्त गोपालनाथ जी की महासमाधि के पश्चात् योगिराज गम्भीरनाथ जी के ज्येष्ट गुरूभाई महात्मा बलभद्रनाथ जी महन्त हुए। सन् १८८६ में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य बाबा दिलवर नाथ गद्दी पर आसीन हुए। १४ अगस्त सन् १८६६ को उनका देहान्त हो गया। उस समय समस्त साधुओं एवं सन्तों ने योगिराज गम्भीरनाथ जी से गद्दी पर बैठने का आग्रह किया। किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। फलतः बाबा दिलवरनाथ जी के गुरूभाई (महन्त बलभद्र नाथ जी के शिष्य) महात्मा सुन्दर नाथ जी को महन्त पद पर अभिषिक्त किया गया। लोगों के मन में यह विश्वास बद्धमूल था कि महन्त सुन्दरनाथ गद्दी के गौरव का निर्वाह करने में सफल न होंगे। सचमुच गद्दी मिलने के पश्चात महन्त सुन्दरनाथ इस मंदिर की व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने में असमर्थ रहे।

गोरक्षनाथ मंदिर के साधुओं और नगर के संभ्रात लोगों ने गया में जाकर योगिराज गम्भीरनाथ जी से महन्त सुंदरनाथ जी की शिकायतें कीं। योगिराज ने अनेक बार गोरखपुर में आकर परिस्थितियों को सुलझााने का प्रयास किया, किन्तु बाबा सुन्दरनाथ के ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा।

सन् १६०६ में योगिराज को दूसरी बार गया से गारखपुर लाया गया। सब लोग चाहते थे कि महंत सुन्दर नाथ को पदच्युत कर दिया जाय, किन्तु योगिराज ने ऐसा होने न दिया। उन्होंने एक कार्य अवश्य किया। उन्होंने महंत सुन्दर नाथ से २५ जून १६०६ को एक एकरार नामा लिखवाया कि मंदिर के व्यवस्था–सम्बन्धी किसी कार्य में उन्हें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है, और वे किसी को दीक्षा नहीं दे सकते। उन्हें माहवारी व्यय के लिए निश्चित धन राशि मिलने लगी। योगीराज गम्भीरनाथ जी समय से गोरखुपुर में रहने लगे। २१ मार्च १६१७ को वे ब्रह्मलीन हुए। अगस्त सन् १६१७ में महंत सुन्दरनाथ ने गोरखपुर के सबआर्डीनेट जज की अदालत में महात्मा ब्रह्मनाथ जी के विरूद्ध एक वाद प्रस्तुत किया। १५ जून सन् १६१८ को जज ने महंत सुन्दर नाथ

के पक्ष में फैसला कर दिया। २४ अक्टूबर १६१८ को बाबा ब्रह्मनाथ ने जिला न्यायालय मं अपील की, किन्तु, सफलता न मिली। उन्होंने हाई कोर्ट इलाहाबाद में अपील की। एक मार्च १६२१ को पुनः बाबा ब्रह्मनाथ के विरूद्ध फैसला हुआ।

अपने गुरू बाबा ब्रह्मनाथ की पराजय से श्री दिग्विजयनाथ जी को घोर कष्ट हुआ। यद्यपि बाबा ब्रह्मनाथ जी ने उन्हें विधिवत दीक्षित नहीं किया था, तथापि वे उन्हें गुरू के तुल्य मानते थे। मुकदमें के समय सुन्दरनाथ ने प्रलोभन देकर बाबा ब्रह्मनाथ से अलग करने का बहुत प्रयास किया, किन्तु वे टस से मस न हुए। अब उन्होंने बाबा ब्रह्मनाथ जी की विजय के लिए प्रयास प्रारम्भ कर दिया। सन् १६२१ में मुकदमें में पराजित हो जाने के पश्चात् बाबा ब्रह्मनाथ जी मानसरोवर (गोरखपुर) और श्री महाराजा क्षत्रिय छात्रावास में रहने लगे। १६२२ में उपर्युक्त मुकदमें की अपील हाई कोर्ट में हुई। यह मुकदमा अभी चल ही रहा था कि १६२४ में महंत सुन्दरनाथ का देहावसान हो गया। बाबा ब्रह्मनाथ जी को तत्काल बुलाया गया। वे उस समय गुजरात गये हुए थे। स्वर्गीय महंत सुन्दरनाथ ने बाबा गोकुलनाथ को एक वसीयत लिख दी थी कि उनका शिष्य होने के कारण वे ही गद्दी के अधिकारी होंगे, यद्यपि योगिराज गम्भीरनाथ जी ने अपने जीवन काल में ही महन्त सुन्दरनाथ जी से एकरारनामा लिखवा लिया था कि उन्हें किसी को दीक्षित करने का अधिकार नहीं है। अपने को गद्दी का वास्तविक अधिकारी प्रमाणित करने के लिए बाबा ब्रह्मनाथ ने दीवानी में दावा किया। सन् १६२७ में वे विजयी घोषित हुए। बाबा गोकुलनाथ ने इलाहाबाद हाई कोर्ट में अपील की, किन्तु १६३२ में हाईकोर्ट ने भी बाबा ब्रह्मनाथ जी के पक्ष में फैसला किया। इस तरह बाबा ब्रह्मनाथ जी सन् १६३२ में गोरक्षपीठ के महंत हुए। १५ अगस्त सन् १६३३ में महंत ब्रह्मनाथ ने दिग्विजयनाथ जी को विधिवत् योगधर्म एवं नाथ सम्प्रदाय की दीक्षा दी। इस समय तक वे अपने पुराने नाम से ही पुकारे जाते थे।

सन् १६३५ में महंत ब्रह्मनाथ जी का गोलोक वास हो गया। उनके ब्रह्मलीन होने के पश्चात् श्रावण पूर्णिमा के दिन १५ अगस्त सन् १६३५ में पूज्य दिग्विजयनाथ जी गोरक्षनाथ मंदिर के पीठाधीश्वर पद पर अभिषिक्त हुए। जिस समय पूज्य महंत जी ने गोरक्षनाथ पीठाधीश्वर का उत्तरदायित्व पूर्ण पद ग्रहण किया, उस समय मन्दिर की आर्थिक स्थित ठीक न थी। लगभग एक दशक पूर्व से निरन्तर मुकदमें की पैरवी में लगे रहने के कारण पूर्वाधिकारियों ने मंदिर की व्यवस्था पर ध्यान नहीं दिया था। पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी ने मंदिर के विकास की योजनाएँ बनाईं और तत्काल योजनाबद्ध रूप से इन कार्यों के सम्पादन में लग गये। मंदिर के पुनर्निर्माण और क्षेत्र–विस्तार के साथ उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और राजनीतिक कार्यों का भी सफलता पूर्वक संचालन किया। उनकी कारयित्री प्रतिभा एवं समय की गति विधियों को पहचान कर कार्य करने की अद्‌भुत सूझ ने दो तीन दशकों में ही मंदिर को पूर्वांचल का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ और पर्यटन केन्द्र बना दिया। आज गोरक्षनाथ मंदिर हिन्दू संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन गया है।

गोरक्षनाथ मन्दिर

नाथ सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक आदिनाथ और उसे शक्ति प्रदान करने वाले महान् साधक श्री मत्स्येन्द्रनाथ तथा गुरु गोरक्षनाथ के गौरव का पुण्य प्रतीक यह मंदिर उसी स्थान पर निर्मित है, जहाँ महान् गुरू गोरक्षनाथ ने योग की साधना की थी। उन्होंने इस पुण्य धरती पर तपस्या के द्वारा उस ज्ञान–ज्योति की प्राप्ति की थी, जिसके प्रकाश में केवल उत्तरी भारत और हिमांचल के क्षेत्र ही नहीं, समूचे भारतवर्ष और पड़ोसी देशों ने भी शाश्वत् सत्ता को हृदयंगम किया था। योगीराज गोरक्षनाथ की अखण्ड साधना, अलौकिक सिद्धि एवं शाश्वत् आध्यात्मिक जीवन–दृष्टि के कारण ही उनके अनुयायी उन्हें अजर अमर मानते हैं और उनका अस्तित्व, द्वापर, त्रेता और कलियुग सभी कालों में एक समान स्वीकार करते हैं।

महान् गुरू गोरक्षनाथ की यह तपस्या–भूमि प्रारम्भ में एक तपोवन के रूप में रही होगी। इस जन–शून्य शान्त तपोवन में योगियों के निवास के लिए कुछ छोटे–छोटे मठ रहे होगे। मंदिर का निर्माण बाद में हुआ होगा। आज हम जिस विशाल और भव्य मंदिर का दर्शन करक्रे हर्ष और विस्मय का एक साथ अनुभव करते हैं, वह पूज्य श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज की ही देन है।

पुराना मंदिर इस नव निर्माण की विशालता और व्यापकता में समाहित हो गया है। यह कहना अधिक समीचीन ज्ञात होता है कि पुराने मन्दिर ने अपनी विशाल साधना का चतुर्दिक प्रसार करके आज के अर्थवादी स्थूल संसार को अपनी शाश्वत महानता का अनुभव करने का अवसर दिया।

पुराने मंदिर का निर्माण कब और किसके द्वारा हुआ, यह ज्ञात नहीं है। मुसलमानी शासन काल में अनेक बार इस मन्दिर को नष्ट किया गया, किन्तु महान् साधक गोरक्षनाथ की तपस्यारथली पर निर्मित इस मंदिर ने अपनी विशेषताओं को निरंतर अक्षुण्ण रक्खा। अलाउद्दीन के शासन काल में मन्दिर को पूर्णतया ध्वस्त कर दिया गया था। यहाँ पर निवास करने वाले योगियों और साधकों को निष्कासित कर दिया गया था। किन्तु थोड़े दिन पश्चात् मन्दिर का पुननिर्माण हो गया था और साधक योगी भी यथास्थान समासीन हो गए थे। औरंगजेब की हिन्दू धर्म विरोधी नीति का भी इसे शिकार होना पड़ा था। मंदिर पुनः नष्ट कर दिया गया, किन्तु अवसर मिलते ही उसका पुननिर्माण हो गया। बार–बार निर्मित होने पर भी इसके मूल स्थान में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया गया।

मंदिर का प्रांगण

महन्त के रूप में गोरक्षनाथ पीठ पर आसीन होते ही महन्त जी ने मंदिर के विस्तार का संकल्प तो किया ही, उन्होंने मन्दिर के प्रांगण को अत्यन्त विस्तृत, हरा भरा और अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के अनुकूल अपकरणों से युक्त करने का भी निश्चय किया। आज मन्दिर की विराट् भव्यता तो पर्यटकों और श्रद्धालुओं को आकर्षित करती रही है, उसका प्रांगण भी दर्शकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है। प्रतिदिन सहस्त्रों स्त्री–पुरूष मन्दिर में दर्शन करने आते हैं। पर्वों के अवसर पर उनकी संख्या अगणित हो जाती है।

मंदिर के विस्तार–कार्य के साथ ही महंत जी ने पुराने मठ के स्थान पर विशाल मठ

का निर्माण प्रारम्भ करा दिया। सन् १९५३ में यह विशाल प्रासाद पूर्ण हुआ।

१९५६–५७ में उन्होंने प्रांगण में स्थित सरोवर का निर्माण कराया। इसी वर्ष उन्होंने साधु सन्यासियों के आवास के लिए एक भवन का निर्माण कराया, जिसे संत–निवास के नाम से अभिहित किया जाता है।

श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ का भवन निर्माण १९५७–५८ में हुआ। योगिराज गम्भीरनाथ तथा अपने गुरू बाबा ब्रह्मनाथ की समाधियों का निमार्ण भी उन्होंने कराया। मंदिर से सम्बन्धित सारी भूमि के चारों ओर सुदृढ़ प्राचीर का निर्माण कराया। वाटिका, लॉन, और फूलों की क्यारियों से उन्होंने समूचे प्रांगण को हरा भरा कर दिया। आज गोरक्नाथ मंदिर के प्रांगण के भवन, उनका शिल्प तथा उनपर उत्कीर्ण कला के नमूने महंत जी की सुरूचि–सम्पन्नता और सूक्ष्मदर्शिता की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

गोरक्षनाथ मन्दिर–हिन्दू धर्म और संस्कृति का केन्द्र

महंत दिग्विजयनाथ जी ने मंदिर को नवीन रूप से व्यवस्थित किया। अब तक यह मंदिर केवल नाथ पंथी साधुओं का साधना केन्द्र और पर्यटक साधुओं और श्रद्धालुओं के लिए पूजा का मंदिर था। महंत जी ने इसे नाथ–योग के प्रचार और प्रसार का प्रमुख केन्द्र बनाया ही, हिन्दू धर्म और संस्कृति के समस्त अंगों को प्रोत्साहन देने के लिए उन्होंने इसे महान् सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया। शिवावतार महायोगी गोरक्षनाथ की पूजा तो यहाँ नित्य होती ही थी, राम और कृष्ण के नामोच्चारणों से भी मंदिर का प्रांगण गुजित होने लगा। ब्रिटिश शासन–काल में इस मंदिर ने हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष किया। अनेक विप्लवों के समय महन्त दिग्विजयनाथ ने परिस्थितियों का डट कर सामना किया, अन्यथा गोरखपुर में आज हिन्दू जाति का रूप ही कुछ दूसरा ही होता।

बहुमुखी प्रतिभा का विकास

सन् १९३५ में गोरक्षनाथ मंदिर के पीठाधीश्वर के पद पर अभिषिक्त होने के पश्चात् मंहत दिग्विजयनाथ को बहुमुखी प्रसार का अवसर मिला। सन् १९६९ में महासमाधि लेने के समय तक वे विभिन्न क्षेत्रों में अनवरत गति से कार्य करते रहे। उन्होंने समसामयिक समाज को सुधारने का प्रयास किया, विभिन्न शिक्षा–संस्थाओं तथा सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना करके नवयुवक वर्ग को नयी दिशा प्रदान की, साधु समाज की परम्परागत ऐकान्तिकता और निष्क्रियता को दूर कर, उन्हें सच्चे समाज–धर्म से अवगत कराया और सक्रिय राजनीति में भाग लेकर राजनयिकों की अनवधानता दूर करने का प्रयास किया। राष्ट्र की बदली हुई परिस्थितियों ने उन्हें हिन्दू ध र्म और संस्कृति का सजग प्रहरी बना दिया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व में विभिन्न विरोधाभासों को समन्वित कर लिया था। वे साधु होते हुए भी समाज से दूर न थे, विभिन्न संस्थाओं के संस्थापक होते हुए भी उनमें सर्वथा आसक्त न थे, राजनीति में रहते हुए भी कथनी–करनी में अन्तर उपस्थित करने वाले आज के राजननतिक छल–छद्म से उनका लगाव न था, समाज सुधारक के रूप में निरंतर कार्य करते हुए भी अपनी वैयक्तिक प्रभुता का उन्हें मोह न था। वे योगी होते हुए भी पूरे सामाजिक थे। उनके संग्रह में सेवा और त्याग का महान् योग अन्तर्निहित था। वस्तुतः

इस संग्रह और त्याग के सामरस्य ने ही उनको महान् से महत्तम बना दिया था।

हिन्दू धर्म और संस्कृति के सजग प्रहरी

हिन्दू जाति और धर्म के प्रति महन्त जी का संस्कारगत प्रेम था। उनके शरीर में सिसौदिया वंश का रक्त प्रवाहित हो रहा था। राणा सांगा और प्रताप की आन और मानरक्षा की भावना उन्हें वंशानुगत रूप में प्राप्त हुई थी। भगवान गोरक्षनाथ के मंदिर की पवित्रता और आध्यात्मिक गरिमा ने मान–रक्षा तथा हिन्दुत्व–प्रेम के साथ ही हिन्दू–संस्कृति की रक्षा की भावना को और दृढ़ कर दिया। देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों ने भी उनके सांस्कृतिक भावों को सुदृढ़ किया। राष्ट्र और संस्कृति की रक्षा के लिए ही सन् १६३४ ई० तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रस के सिद्धान्तों को स्वीकार कर उन्होंने कार्य किया। किन्तु कांग्रेस की मुसिलम–तुष्टीकरण की नीति से असंतुष्ट हो कर उन्होंने उसे छोड़ दिया।

हिन्दू महासभा की सदस्यता

सन् १६३६ ई० में अमर वीर वी० डी० सावरकर काले–पानी की सजा भुगत कर अंडमान से कलकत्ता आए। वहाँ अपने स्वागत में आयोजित एक विशाल सभा को उन्होंने सम्बोधित किया। उस अवसर पर भाई परमानन्द और अमरवीर सावरकर के भाषणों को सुनकर महन्त जी अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने उसी समय हिन्दू महासभा की सदस्यता स्वीकार कर ली।

गोरखपुर की साम्प्रदायिक स्थिति

सन् १६३८–३६ में गोरखपुर व। वातावरण भी साम्प्रदायिक भावनाओं के कारण विषाक्त हो गया था। इस अवसर पर हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म की रक्षा का संकल्प लेकर महन्त जी हिन्दू जाति के अग्रदूत के रूप में सामने आए।

गोरखपुर में साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्द्विता की भावना का जन्म सर्व प्रथम १६१६ में हुआ था। इस वर्ष हिन्दुओं का दशहरा और मुसलमानों का मुहर्रम संयोगवश एक साथ ही पड़ गया था। काजी फिरासत हुसेन मुसलमानों के नेता थे। खजांची के चौराहे पर नवे दिन की ताजिया बैठाई जाती थी। उसी दिन वहाँ बड़ी चहल पहल रहती थी। अली नगर की रामलीला का जुलूस भी उसी रास्ते निकलता था। बड़े बड़े रस्सों में बंधे रथ को खींचते हुए हिन्दू लोग जब मानसरोवर से खजांची के चौराहे पर पहुँचे, तो काजी फिरासत हुसेन ने जलूस को रूकवाना चाहा। अधिकारियों के हस्तक्षेप से जुलूस शान्तिपूर्वक निकल गया, किन्तु हिन्दू मुसलमानों के ह्रदय में पारस्परिक विभेद की गांठ दृढ़ हो गयी।

सन् १६१६ के पश्चात् नगर में हिन्दू मुस्लिम विद्वेष की आग निरन्तर सुलगती गई।

गोरक्षनाथ मंदिर की पूर्व दिशा में प्रतिष्ठित मुस्लिम रईस जाहिद बाबू ने जाहिदाबाद के नाम से एक मुहल्ला ही बसा दिया था। वहाँ नित्य गौकसी हुआ करती थी। मुस्लिम लीग कार्यालय से मुसलमानों का एक जलूस निकलता था। जलूस में प्रश्न होता था कि कहाँ जाना है? उत्तर मिलता, जाहिदाबाद। क्या करने ? गौकसी करने। इस प्रकार के जलूसों से हिन्दू–मुस्लिम विद्वेष की भावना बहुत बढ़ गई थी। सन् १६३७ में स्थित ऐसी हो गई थी कि महन्त जी को सत्याग्रह करना पड़ा। इन दो वर्षों का समय गोरखपुर के लिए घोर साम्प्रदायिक आतंक का समय

था। महन्त जी ने बड़े साहस, धैर्य और बुद्धिमत्ता से हिन्दू जाति की रक्षा की।

हिन्दू महासभा के मंच से

हिनदू महासभा की सदस्यता ग्रहण करते ही महन्त जी सभा के प्रमुख नेताओं के वर्ग में समादृत होने लगे। कांग्रेस में रहते हुए भी वे हिन्दू हितों की रक्षा के लिए तत्पर रहते थे। सन् १६३४ के पूर्व उन्होंने कांग्रेस की उन मीतियों का विरोध किया था, जिनसे हिन्दू जाति ओर धर्म के ऊपर किसी प्रकार के आघात की आशंका थी। सन् १६३१ में कांग्रेस ने भारतीय जनगणना का विरोध किया था। महन्त जी ने कांग्रेस की उस अदूरदर्शिता की निन्दा की और देश में हिन्दुओं की संख्या को कम दिखाये जाने से रोका। सन् १६३५ में कांग्रेस ने साइमन कमीशन का विरोध ा किया था। सन् १६४५ में क्रिप्समिशन का भी बहिष्कार किया। महन्त जी ने दोनों अवसरों पर कांग्रेस की नीतियों का खुलकर विरोध किया। देश के विभाजन के अवसर पर महंत जी की बातें अधिक दूरदर्शितापूर्ण सिद्ध हुई।

हिन्दू महासभा के मंच से महन्त जी को मुक्त रूप से कार्य करने का अवसर मिला। एक वर्ष पश्चात् ही उन्होंने मदुरा में अखिल भारत हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन में भग लिया। उस अवसर पर उनके भाषणों की उबने सराहना की। उन्होंने एक साथ ही धर्मिक और राजनीतिक कार्यों को अपने हाथ में लिया और कुशलतापूर्वक उनका निर्वाह किया।

वे आगरा प्रान्तीय हिन्दू महासभा के मंत्री रहे। संयुक्त प्रान्तीय हिन्दू महासभा के मंत्री और फिर अध्यक्ष चुने गये। सन् १६३६ में डा० मुनजे की अध्यक्षता में उन्होंने कमिश्नरी हिन्दू महासभा के अधिवेशन का आयोजन किया। इसी वर्ष उन्होंने अखिल भारतवर्षीय अवधूत वेष बारह पंथ योगी महासभा की स्थापना की। अनेक वर्षों तक वे इसके अध्यक्ष रहे। साधु सम्प्रदाय को उन्होंने नवीन दिशा प्रदान की। निष्क्रियता और ऐकान्तिकता के स्थान पर उन्होंने समाज सापेक्ष्य कार्यों की ओर प्रेरित किया। उन्होंने संमस्त हिन्दू मंदिरों और मठों को धीरे–धीरे संगठित और उनमें एकसूत्रता लाने का सफल प्रयास किया।

सन् १६३६ में दिल्ली शिव मंदिर सत्याग्रह में उन्होंने अपने गुरुभाई बाबा नौमीनाथ के नेतृत्व में सत्याग्रहियों का जत्था भेजा था। मुल्तान की जेल में पर्याप्त समय तक सजा भुगतने के बाद यह जत्था मुक्त हुआ। इस वर्ष फौज में मुसलमानों की भर्ती पर अधिक जोर दिया जा रहा था। मुहम्मद अली जिन्ना चाहते थे कि फौज में मुसलमानों की संख्या अधिक हो जाय। महन्त जी ने इस नीति का सख्त विरोध किया। फलतः हिन्दुओं की भी भर्ती होती रही।

सन् १६४२ में

ब्रिटिश शासन की दृष्टि पहले से ही महन्त जी पर लगी हुई थी। सन् १६४२ में महात्मा गांधी ने "भारत छोड़ो" आन्दोलन का नेतृत्व किया। समूचा राष्ट्र विदेशी शासन–सत्ता और विदेशी सामग्रियों के बहिष्कार के लिए उतावला हो रहा था। महन्त जी को उस अवसर पर मुक्त न रहने देने के लिए नौकरशाही की ओर से उनपर आरोप लगाये गये। कहा गया कि नेपाल में राणा विरोधी आंदोलन में वही पुरस्कर्त्ता है। यह भी कहा गया कि वे जर्मनी और जापान को अंगेजों के विरूद्ध मदद देते हैं। महंत जी के विरूद्ध वारन्ट निकाला गया। उस समय मि० यंग डी० आई०

जी० के पद पर कार्य कर रहे थे। गोरखपुर में मि० वाडेल पुलिस अधीक्षक थे। यंग साहब हाकी के मैदान में महन्त जी के साथ खेल चुके थे और उनके विचारों से पूर्णतया अवगत थे। उन्होंने अपने उत्तरदायित्व के आधार पर महन्त जी के विरूद्ध भेज गये वारन्ट को वापस करा दिया था।

सन् १९४४ में महन्त जी ने प्रान्तीय हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन गोरखपुर में किया। डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने इस अधिवेशन को सम्बोधित किया था। सन् १९४७ में भारत विभाजन का प्रश्न भारतीय नेताओं के सम्मुख था। राजगोपालाचार्य ने विभाजन के सम्बन्ध में अपना सुझाव प्रस्तुत किया था, जो सी० आर० फारमूला के नाम से प्रसिद्ध है। महन्त जी ने इस फारमूले का डटकर विरोध किया। उन्होंने गोरखपुर में इस वर्ष अखिल भरतवर्षीय हिन्दू महासभा का अधिवेशन बुलाया। उस समय महन्त जी आगरा प्रान्तीय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष थे। धर्मवीर भोपटकर की अध्यक्षता में होने वाला यह अधिवेशन राजनीतिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। उस समय भारत के विभाजन का कुचक्र तेजी से चल रहा था। नोवाखाली, त्रिपुरा, कोमिला आदि स्थानों पर हिन्दुओं के ऊपर संगठित ढंग से आघात किये गये थे। महन्त जी के प्रयास से इस अधिवेशन में अखण्ड भारत आन्दोलन का शक्ति पूर्वक समर्थन किया गया था। दूसरी ओर परिस्थितियों को देखते हुए समस्त हिन्दू जाति को अपनी कट्टरता और रूढ़िवादिता को त्यागकर उदार होने की अपील की गई। इस अधिवेशन का तत्काल प्रभाव पड़ा। पाकिस्तान निमार्ण का कार्य १९४६ में ही हो जाने वाला था। वह कम से कम एक वर्ष के लिए तो रूक ही गया।

ब्रिटिश नौकरशाही ने मूस्लिमलीग के नेताओं को पहले से ही प्रोत्साहन दे रक्खा था। उन्होंने मुसलमानों को महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर नियुक्त कर रक्खा था। ये मुसलमान अधिकारी विभाजन के अवसर पर बहुत घातक सिद्व होंगे, यह सोचकर महन्त जी ने इसका खुलकर विरोध किया। उत्तर प्रदेश में उस समय ७० प्रतिशत प्रशासनिक पदों पर मुसलमान ही थे। पुलिस और गुप्तचर विभाग उन्हीं से भरा था। इन तथ्यों के भीतर छिपी हुई कुटिल राजनीति को परख कर महन्त जी ने ७ अगस्त १९४७ को लखनऊ में हिन्दूओं की १० सूत्रीय मांगों को लेकर सीधी कार्यवाही (Direct Action) का आन्दोलन छेड़ दिया। वे गिरफ्तार कर लिए गये। उनके साथियों को भी जेल में डाल दिया गया। इसके पश्चात् ही भारत विभाजन की घोषण की जा सकी।

१९४६ के अखिल भारतीय हिन्दू महासभा अधिविशन के पश्चात् महन्त जी और श्री लक्ष्मी शंकर वर्मा हिन्दू महासभा की कार्यकारिणि–समिति के सदस्य चुन लिए गये। महन्त जी ने समस्त भारत का पर्यटन किया। उस समय और इसके पश्चात भी यथावसर कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि स्थानों पर जाकर उन्होंने विभिन्न सभाओं में भाषण किया। इन सभी स्थानों पर वे सर्वधिक पूज्य और सममानित हुए। १९४६ में उन्होंने लोकसभा की सदस्यता के लिए श्री श्रीप्रकाश के विरूद्ध पंरचा दाखिल किया था। किन्तु दुर्भाग्यवश परचा ही खारिज हो गया।

गांधी हत्या काण्ड के छींटे (१९४८ ई०)

भारत विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान को अधिक से अधिक सुविधाएँ देने के लिए गाँधी जी ने सप्त सूत्रीय मांगों को लेकर अनशन प्रारम्भ करं दिया। उन्होंने पाकिस्तान को ५५

करोड़ रूपये देने का आग्रह किया। भारतीय नवयुवकों का वर्ग इसे सहन न कर सका। नाथूराम गोडसे ने उतावली में गाँधी जी की हत्या कर दी। गोडसे ने हत्या का समूचा उत्तर दायित्व स्वयं ले लिया था, किन्तु हमारी लोकप्रिय सरकार ने राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ, और हिन्दू महासभा के प्रभाव शाली नेताओं की धर–पकड़ प्रारम्भ कर दी। महन्त जी पर आरोप लगाया गया कि उन्हीं की पिस्तौल से गोडसे ने गाँधी जी की हत्या कर दी थी। उन्हें नजरबन्द कर दिया गया था और १६ महीने तक वे बन्दी जीवन व्यतीत करते रहे। इस अवसर पर मठ की समस्त चल और अचल सम्पत्ति भी जप्त कर ली गई थी, किन्तु महन्त जी न्यायालय के द्वारा निर्दोष सिद्ध हुए।

नवजीवन को क्षमा दान

गाँधी हत्या काण्ड के तुरन्त बाद राष्ट्रीय स्वंयेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। समूचे देश में हिन्दू महासभा विरोधी प्रचार कार्य चल रहा था। इसी समय कलकत्ते में हिन्दू महासभा का अधिवेशन आयोजित किया गया था। अनेक लोगों ने इस अवसर पर बहाने बनाकर अधिवेशन में भाग नहीं लिया किन्तु डाक्टर नारायण भस्कर खरे, वीर सावरकर, प्रो० देशपाण्डेय तथा महन्त जी ने उसमें भाग लिया। महन्त जी ने उसी अवसर पर हिन्दू युवक सभा का उदघाटन किया।

गांधी हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में लखनऊ से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र "नवजीवन" ने महन्त जी के ऊपर खूब कीचड़ उछाला। आरोप सिद्ध न होने पर महन्त जी कारावास से मुक्त हुए। उन्होंने "नवजीवन" के ऊपर एक लाख रूपये की मान हानि का दावा कर दिया। सिविल जज के न्यायालय से नवजीवन के विरुद्ध व्यय सहित एक लाख रूपये की डिग्री हो गई। किन्तु "नवजीवन" के सम्पादकों और व्यवस्थापकों ने महन्त जी से व्यतिगत रूप से मिलकर तथा समाचार पत्रों के माध्यम से जब क्षमा माँगी, तो उदार ह्रदय महन्त जी ने उसे क्षमा कर दिया। नवजीवन को नया जीवन मिल गया। अन्यथा उसके दिवाले की स्थिति आ जाती।

सन् १६४८ के पश्चात् महन्त जी ने अपना जीवन राष्ट्र–हित के कार्यों में लगा दिया नेहरू–लियाकत–पैकट के द्वारा हिन्दू हितों पर आघात होते देख कर उन्होंने उसका विरोध किया। शेख अब्दुल्ला द्वारा कश्मीर के अलग राज्य की मांग को उन्होंने राष्ट्र द्रोही कार्य कहा। गोवा, डामन, डीव की स्वाधीनता का उन्होंने पूर्ण समर्थन किया और स्वाधीनता संग्राम को उग्र बनाने के लिए स्वयंसेवकों का जत्था भेजा। गोरक्षा आन्दोलन का देश व्यापी प्रचार किया। अयोध्या में राम जन्म भूमि के उद्धार कार्य में उन्होंने हार्दिक सहयोग प्रदान किया।

सन् १६५५–५६ में मास्टर तारासिंह ने पृथक पंजाबी सूबे की मांग की। इस मांग को लेकर उन्होंने आमरण अनशन भी प्रारम्भ कर दिया। महन्त दिग्विजयनाथ राष्ट्रीय एकता को किसी भी मूल्य पर खण्डित होते नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने तारा सिंह से भेंट की। परिस्थिति की गम्भीरता और उसके भावी परिणाम से परिचित कराया। अन्ततः मासटर तारा सिंह ने अनशन त्याग दिया। इससे ब्रह्मलीन महन्त जी की निष्ठा, दूरदर्शिता, सूझ–बूझ एवं राजनीतिक प्रभाव का परिचय प्राप्त होता है।

११ मई सर्न १६५७ में दिल्ली में प्रथम स्वाधीनता संग्राम का शताब्दी समारोह मनाया

गया। इस समारोह की अध्यक्षता स्वतंत्र्य सेनानी वीर सावरकर जी ने की थी। भारत की स्वतंत्रता के लिए आजीवन संघर्षशील महंत जी ने इस समारोह में अपना पूरा सहयोग प्रदान किया था। समारोह की सफलता का श्रेय चाहे जो ले, किन्तु समारोह की सच्ची भावना के प्रतिक दो ही नेता थे, वीर सारकर और हिन्दू राष्ट्रपति महन्त दिग्विजयनाथ जी।

सन् १६५६ में काशी विश्वनाथ मंदिर–उद्धार–आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया। दफा १४४ भंग करने के आरोप मं उनके अनेक सहकर्मी गिरफ्तार हो गये। महन्त जी ने राज्यपाल को पत्र लिखकर मंदिर के उद्धार के औचित्य पर बल दिया। गणराज्य भारत की स्वदेशी सरकार हिन्दू कोड बिल, हिन्दू विवाह और तलाक बिल तथा हिन्दू सम्पत्ति उत्तराधिकार अधिनियम जैसे कानमनों का निर्माण कर हिन्दू सत्वों पर कुठराघात कर रही थी। महन्त जी ने इन बिलों का विरोध किया। सन् १६६० में हरिद्वार में अखिल भारतीय षट्दर्शन साधु सम्मेलन के अध्यक्ष पद से उन्होंने इन बिलों का विरोध किया और अपने ओजस्वी भाषणों से उनके विरूद्ध जन–मत जाग्रत किया।

राष्ट्रीय संकट का वर्ष १६६२

वाह्य और आन्तरिक दोनों दृष्टियों से सन १६६२ का वर्ष देश के लिए घोर संकट का समय था। उस समय तक पंचशील के सिद्धान्तों पर आधारित हिन्दी–चीनी मैत्री का सम्बन्ध टूट चुका था। चीन ने लगभग १२ सहस्त्र वर्गमील भारतीय भूमि पर अधिकार कर लिया था। युद्ध की आशंका बलवती होती जा रही थी। इधर देश में बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता की भावना नयी दिशा की ओर संकेत कर रही थी। केरल में मुस्लिम लीग की स्थापना हो चुकी थी। पाकिस्तान के संकेतों पर देश में ही पंचमागियों का एक बहुत बड़ा वर्ग प्रस्तुत हो रहा था। दिल्ली में उनकी एक विशाल सभा हुई। भारत की किसी भी राजनीतिक संस्था ने इस साम्प्रदायिक सम्मेलन के विरूद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। महन्त जी ने उसी समय यह आशंका व्यक्त की कि यह मुस्लिम सम्मेलन मुस्लिम लीग के संगठन और देश के पुनर्विभाजन की नींव को मजबूत करने वाला हे। उन्होंने उसका खुलकर विरोध किया।

अक्टूबर १६६१ में महन्त जी ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विरोध करने के लिए अखिल भारतीय हिन्दू सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में किया। सम्मेलन की अध्यक्षता कलकत्ता उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति और बंगाल विधान परिषद के सदस्य डॉ० शम्भूनाथ बनर्जी ने की। उस सम्मेलन में भारत के प्रसिद्ध अर्थ शास्त्री डॉ० चिन्तामणि देशमुख ने भी भाग लिया। जनरल करियप्पा ने भी इस सम्मेलन में उपस्थित होकर अपने राष्ट्र प्रेम का परिचय दिया। महन्त जी ने उस सम्मेलन को मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बढ़ते हुए रोग के लिए एक मात्र औषधि कहा था।

हिन्दू महासभा के अध्यक्ष

हिन्दू महासभा ने सन् १६६० में महन्त जी को महासभा का अध्यक्ष निर्वाचित किया था। वे हिन्दू जाति के राष्ट्रपति कहे गये। देश की बिगड़ती हुई स्थिति को देखते हुए महन्त जी ने हिन्दू राष्ट्रपति के अनुरूप आचरण करके हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा का अथक प्रयास किया। अखिल

भारतवर्षीय हिन्दू महासभा के अधिवेशन में उन्होंने समस्त आलोचकों ओर विरोधियों को जो उत्तर दिया था, वह ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण है।

विश्व हिन्दू धर्म सम्मेलन

सन् १९६५ में महन्त जी ने अखिल विश्व हिन्दू धर्म सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में किया। इस सम्मेलन में विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। तीन जगत्गुरू शंकराचार्यों की उपस्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। डॉ० राधा कृष्णन ने भी सम्मेलन को सम्बोधित किया था।

लोक सभा के मंच से

सन् १९६७ में महन्त जी ने गोरखपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से हिन्दू महासभा के प्रत्याशी के रूप में कांग्रेस के प्रत्याशी को पराजित कर लोकसभा का चुनाव जीता। लोकसभा में वे हिन्दू महासभा के एक मात्र सदस्य थे। अकेले होते हुए भी लोकसभा के प्रत्येक विवाद में अपनी वाग्मिता, चातुर्य प्रत्युत्पन्नमतित्व के कारण उन्होंने सदैव सबका ध्यान आकर्षित किया। यों तो उनकी हिन्दू राष्ट्रवादी विचारधारा के कारण मुसलमानों और साम्यवादी सदस्यों में उत्तेजना का वातावरण उत्पन्न हो जाता था, तथापि वे अपने विचारों को निर्भीकता के साथ अभिव्यक्त करने से चूकते न थे। नक्सलियों की समस्या पर उन्होंने सदैव कम्युनिष्टों को ललकारा। परिवार नियोजन के प्रश्न पर हिन्दू हितों की हमेशा वकालत की। गोरक्षा–अभियान का अखिल भारत वर्षीय स्तर पर नेतृत्व किया। पूर्वोत्तर रेलवे की छोटी लाइन को बड़ी लाइन के रूप में परिवर्तित करने की स्वीकृति उन्हीं के प्रयास से मिली।

नाथ पंथ का प्रचार और प्रसार

गोरखनाथ मंदिर के महंत के रूप में महन्त दिग्विजयनाथ जी ने भारत में इतस्ततः स्थापित नाथ पंथी मंदिरों को संगठित करने का प्रयास किया। इन मठों में रहने वाले योगियों को उन्होंने उनके सामाजिक दायित्व से परिचित कराया। नाथ पंथ सम्बन्धी साहित्य के उद्धार का भी उन्होंने सम्यक् प्रयास किया। उन्होंने प्रामाणिक विद्वानों से अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कराया। महन्त दिग्विजयनाथ ट्रस्ट और गोरखनाथ मंदिर की ओर से अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। 'फिलासफी आफ गोरखनाथ' पुस्तक की सराहना महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज एवं पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानों ने की है। इस बहुप्रशंसित पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी गोरखदर्शन के नाम से प्रकाशित हो चुका है। ट्रस्ट तथा मंदिर के प्रमुख प्रकाशन निम्नांकित हैं।

१– हिन्दू धर्म औ संस्कृति (हिन्दी)
२– आदर्श योगी योगिराज गम्भीरनाथ (हिन्दी)
३– नाथ योग–एक परिचय (हिन्दी)
४– योगिराज गम्भीरनाथ (अंग्रेजी)
५– नाथ योग (अंग्रेजी)
६– योग रहस्य (हिन्दी)
७– आदर्श योगी (हिन्दी)

८– एक सत्यान्वेषी के अनुभव (अंग्रेजी)

९– गोरखदर्शन (हिन्दी)

इन पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त महन्त जी ने एक विशाल पुस्तकालय की भी स्थापना की है, जिसमें नाथ योग तथा हिन्दू धर्म और संस्कृति से सम्बन्धित सहस्त्रों पुस्तकें संग्रहीत हैं। इस पुस्तकालय का निरन्तर विकास किया जा रहा है। भारतीय धर्म और साहित्य पर शोध करने वाले छात्रों के लिए इस पुस्तकालय को व्यवस्थित करने का प्रयास चल रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र में

गोरखपुर ऐसे पिछड़े जनपद की जनता को केवल धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कार्यों के द्वारा प्रगति के पथ पर लाना सम्भव न था। उन्हें शिक्षित तथा प्रबुद्ध करना नितान्त आवश्यक था। इसलिए गद्दी पर बैठते ही महन्त दिग्विजयनाथ जी ने शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने सर्वप्रथम 'गुड लक स्कूल' के नाम से एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की, जो बक्सीपुर में एक किराये के भवन में चलने लगा तथा श्री यदुनाथ चक्रवर्ती उसके प्रथम प्रधानाचार्य थे। कालान्तर में इसी विद्यालय से दो विद्यालयों की स्थापना हुई। 'आर्य समाज मंदिर' के संरक्षण में डी० ए० बी० कालेज खुला और 'महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्' के संरक्षण में महाराणा प्रताप इण्टर कालेज की स्थापना हुई। 'महाराणा प्रताप शिक्षा परिषद्' की स्थापना करके महन्त जी ने गोरखपुर के शैक्षणिक जगत में एक क्रान्ति सी पैदा कर दी। इस परिषद् के तत्वाधान में प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा प्रदान करने तक की व्यवस्था हुई। प्रारम्भिकं शिक्षा के लिए महाराणा प्रताप शिशु विहार, रामदत्तपुर में और दूसरा सिविललाइन्स में खोला गया। हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट की शिक्षा के लिए महाराणा प्रताप इण्टर कालेज की स्थापना हुई, जो इस जनपद की प्रमुख शैक्षणिक संस्था है। इसी विद्यालय के प्रांगण में महाराणा प्रताप डिग्री कालेज की स्थापना हुई। महिलाओं के लिए अलग से महाराणा प्रताप महिला डिग्री कालेज खुला। गोरखपुर में विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर उसकी प्रगति और उन्नति में सहयोग देने के विचार से महन्त जी ने इन दोनों डिग्री कालेजों को विद्यालय भवन और उसके समसत उपकरणों के साथ विश्वविद्यालय को दान कर दिया। गोरखपुर की किसी संस्था ने कभी भी इस प्रकार का दान नहीं किया था। वस्तुतः महन्त जी संस्थाओं के स्वामित्व के लोभी न थे। उनका उद्देश्य महान् था। वे किसी मूल्य पर गोरखपुर में विश्वविद्यालयी शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे। इसलिए इतनी बड़ी सम्पत्ति का दान करते हुए उन्हें तनिक भी हिचक न हुई। 'विश्वविद्यालय स्थापना समिति' के वे वरिष्ठ सदस्य थे। उसकी स्थापना में उन्होंने तन, मन और धन से सहयोग दिया।

ओवरी चौक में इन्हीं के नाम से दिग्विजयनाथ हाई स्कूल की स्थापना हुई। भारतीय धर्म और संस्कृत का प्राचीन–पद्धति से अध्ययन करने के लिए उन्होंने मन्दिर पर ही श्री 'गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ' की स्थापना की। मृत्यु के कुछ दिनों पूर्व उन्होंने 'दिग्विजयनाथ डिग्री कालेज' की स्थापना की। उन्होंने एक कृषि महाविद्यालय की स्थापना का प्रयास भी किया था। किन्तु आकस्मिक रूप से इह लीला समाप्त हो जाने के कारण यह संकल्प पूर्ण न हो सका।

प्रौद्योगिक शिक्षा

पौरस्त्य एवं पाश्चात्य ढंग की महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा के साथ महन्त जी प्रौद्योगिक शिक्षा की भी व्यवस्था चाहते थे। उन्होंने महाराणा प्रताप पालीटेकनीक इन्स्टीट्यूट की स्थापना की। पूर्ण विकसित एवं पल्लवित करके उन्होंने इसे सरकारी संरक्षण में दे दिया। उन्होंने एक इन्जीनियरिंग कालेज खोलने की योजना भी बनाई थी। विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ, उसी के तत्वाधान में उन्होंने इन्जीनियरिंग कालेज को विकसित करने में सहयोग दिया।

महन्त जी ने गोरखपुर में मेडिकल कालेज खोलने का भी प्रयास किया था। उसी प्रयास के फलस्वरूप यह्रा मेडिकल कालेज खोलने की घोषणा हुई और अब विधिवत कार्य प्रारम्भ हो चुका है।

इस तरह स्पष्ट है कि महन्त जी ने शिक्षा के विकास का बहुबिध प्रयास किया। इस क्षेत्र में उनकी उपलब्धियाँ सदैव स्मरणीय रहेंगी।

गिरता स्वास्थ्य

महन्त जी सन् १९६३ से ही अस्वस्थ रहने लगे थे। इस समय उनकी अवस्था ७० वर्ष की थी। गोरखपुर के उच्चकोटि के डाक्टरों से उन्होंने दवा कराई। १९६६ में आल इण्डिया इंस्टीच्यूट आफ मेडिकल साइंस, नई दिल्ली में दवा कराई। लोकसभा का सदस्य हो जाने पर दिल्ली में निरन्तर डाक्टरों से सम्पर्क स्थापित रखते थे। ऐसी अवस्था में भी विवादात्मक प्रश्नों पर विशेष रूप से हिन्दूहितों से सम्बन्धित प्रश्नों पर, अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रखते हुए अपने आदर्शों को चरितार्थ करने के लिए वे निरन्तर सक्रिय रहते थे।

चिर समाधि

सितम्बर १९६६ के अन्तिम सप्ताह में महन्त जी पुनःअस्वस्थ हो गये। डाक्टरों ने पूर्ण निष्ठा के साथ उनकी दवा की। २६ से २८ सितम्बर तक वे दवा के बल पर मृत्यु से जूझते रहे। अनेक बार दिल के दौरे पड़े, किन्तु उनका मस्तिष्क उस समय भी 'रबात सम्मेलन' और मुसलिम साम्प्रदायिकता का समाधान ढूँढने में ही लगा रहता था। २८ सितम्बर को अपरान्ह् में उनकी स्थित बिगड़ने लगी और उसी दिन ५ बजकर ३० मिनट पर उन्होंने चिर समाधि ले ली।

अन्तिम दर्शन

महन्त जी की मृत्यु का समाचार विद्युत गति से सारे नगर में फैल गया। अन्तिम दर्शन की आकांक्षा से नगर के निवासी गोरक्षनाथ मन्दिर के प्रांगण में एकत्र होने लगे। श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए स्वर्गीय महन्त जी के मृत शरीर को २४ घन्टे के लिए गोरक्षनाथ मन्दिर के प्रांगण में दर्शनार्थ रक्खा गया। दूसरे दिन लगभग १५ लाख व्यक्तियों ने उस महामानव के दर्शन किये और उनके प्रति अपने श्रद्धा–सुमन अर्पित किये।

देश के कोने कोने से लोग दर्शनार्थ दूसरे दिन गोरखपुर में उपस्थित हो गये। समवेदना के तारों और पत्रों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। भारत के लगभग समस्त समाचार पत्रों ने उनकी मृत्यु के समाचारों को प्रथम पृष्ठ पर स्थान दिया और अपने अग्रलेखों के द्वारा इन्हें श्रद्धांजलियाँ अर्पित की। वस्तुतः महन्त जी की मृत्यु इस देश के लिए एक राष्ट्रीय घटना थी। श्री महन्त जी हिन्दुओं के लिए आधुनिक युग के महाराणा प्रताप थें। उनमें ब्रह्मबल और क्षात्रबल का अद्भुत समन्वय था। उनकी स्मृतियाँ यावत् चन्द्रदिवाकरौ जन–मानस पर छाई रहेगी।

नाथ निरंजन की आरती

नाथ निरंजन आरती गाऊं। गुरूदयाल अग्यां जो पाऊं।।टेक।।
जहां अनन्त सिधां मिलि आरती गाई। जहां जम की बाच न नैड़ी आई
जहाँ जोगेसुर हरि कूँ ध्यावे, चंद सूर तहाँ सीस नवांवें।
मछिन्द्र प्रसादे जती गोरषनाथ आरती गावै।
नूर झिलमिल दीसै तहाँ अनत न आवै।
नाथ निरंजन आरती साजै। गुर के सबदूँ झालरि बाजे।।टेक।।
अनहद नाद गगन में गाजै। परम जोति तहाँ आप बिराजै।।
दीपक जोति अषंडत बाती। परम जोति जगे दिन राती।।
सकल भवन उजियारा होई। देव निरंजन और न कोई।।
अनत कला जाके पार न पावै। शंख मृदंग धुनि बेनि बजावै।।
स्वांति बूँद ले कलस बंदाऊं। निरति सुरति ले पहुप चढ़ाऊ।।
निज तत नांव अमूरत मूरति। सब देवां सिरि उदबुदि सूरति।।
आदिनाथ नाती मछेन्द्र ना पूता। आरती करै गोरष अवधूता।।

गोरखबानी

गोरक्षनाथ मंदिर की प्राचीनता, उसका आध्यात्मिक महत्व, तथा परम्परागत महंतों का संक्षिप्त परिचय

श्री गोरक्षनाथ मंदिर, गोरखपुर

श्री राधेश्याम तिवारी

शिवावतार अमर योगी श्री गुरू गोरक्षनाथ के नाम से संसार का कौन ऐसा बुद्धिजीवी व्यक्ति है, जो परिचित नहीं है। वे अलौकिक दिव्य प्रभा से मण्डित उन महापुरूषों में हैं, जिन्होंने अपनी योग–साधना से न केवल संसार को चमत्कृत किया, अपितु जिनका महान् आलोक आज भी एशिया के आध्यात्मिक भाव–ऐक्ए का प्रकाशपुञ्ज बना हुआ है। उन्होंने सृष्टि का उद्धार करके उसे प्रकाश–पथ की ओर उन्मुख एवं अग्रसर किया है। वे भारतीय आध्यात्मिक चेतना और चिरंतन आत्मदर्शन के ऐसे समुज्ज्वल प्रतीक हैं कि उनका नाम स्मरण करते ही मन महान् अनुभूतियों से भर उठता है और हमारे समक्ष पुरातन इतिहास के ऐसे लुप्तप्राय स्मृति–चिन्ह उभरने लगते हैं, जिनका पावन प्रकाश समय के प्रवाह के साथ चारो युगों पर अमिट रूप से छाया हुआ है। उस दिव्य दृष्टि की साधना और वाणी से प्रादुर्भूत सिद्धान्त आज भी उतने ही जीवन्त हैं जितने वे अतीत में थे, और उनके स्मरण मात्र से आज भी मन, वाणी और आत्मा पवित्र हो जाती है।

भगबान गोरक्षनाथ चारों युगों में सर्वत्र विराजमान हैं। पुराणों में उन्हें अयोनि शंकर अर्थात स्वंभू की महान् उपाधि से विभूषित किया गया है। यौगिक ग्रन्थों में उन्हें महान् और पूर्ण योगी, राज योगी और सिद्ध योगी कहा गया है। उन्होंने चारों युगों की आध्यात्मिक परम्परा का प्रतिनिधित्व एवं जाग्रत नेतृत्व किया है। आदियुग (सतयुग) में उनकी साधना स्थली गोरखटिल्ला झेलम, पंजाब में थी। त्रेतायुग में गोरखपुर स्थित श्री गोरक्षनाथ मंदिर ही उनका साधना पीठ था। द्वापर में जूना गढ़ (हुमुर्ज) राज्य स्थित गोरखमढ़ी प्रभासपत्तन को उन्होंने आध्यात्मिक चेतना का प्रकाश पुञ्ज बनाया। चतुर्थयुग, कलयुग में पेशावर स्थित गोरखमढ़ी उनकी दिव्य ज्योति से अभिषिक्त शीर्ष की भाँति हमारा ध्यान आकर्षित करती है।

सम्राट रघु और मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम ने भी श्री गुरू गोरक्षनाथ जी की पूजा एवं अराधना की थी। वे हठयोग के केन्द्र–बिन्दु हैं। मूलस्रोत के रूप में उनका नाम राज प्रासाद और अरण्य–उपत्यकाओं में समान रूप से गूँजता रहा। नेपाल के विशाल हिन्दू साम्राज्य के वही संस्थापक हैं। वहाँ के सिक्कों पर आज भी श्री श्री गुरू गोरक्षनाथ का नाम अंकित रहता है। वीर गोरखा जब युद्ध–भूमि में जाते हैं तो 'जय गोरख' का सिंहनाद करते है। उनकी महिमा एशिया के आदि सन्त के रूप में है।

जिस समय त्रेता युग में श्री गोरक्षनाथ जी तीर्थाटन करते हुए ज्वाला देवी (कांगड़ी, हिमांचल प्रदेश) पहुँचे, उस समय स्वयं साक्षात् देवी ने प्रकट होकर उनका स्वागत किया और उनसे आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया। श्री गुरू गोरक्षनाथ जी ने कहा कि उनके यहाँ तामसी पदार्थों का बाहुल्य रहता है, इसलिए वे भिक्षा द्वारा प्राप्त अन्न स्वयं लाकर भोजन करेंगे।

श्री देवी ने चूल्हे पर जल चढ़ा दिया, जो आज भी उबल रहा है। किन्तु श्री गोरक्षनाथ जी वहाँ से भिक्षाटन करते हुए गोरखपुर पहुँचे और खिचड़ी माँगते हुए समाधि में निमग्न हो गये। भक्त लोग उनके पात्र में बराबर खिचड़ी चढाते ही रहते हैं। किन्तु आज तक उनका पात्र भर नहीं पाया है।

जिस समय गुरू गोरक्षनाथ जी गोरखपुर पधारे, उस समय यह स्थान एक निर्जन बन था। यहाँ की रमणीयता एवं हरीतिमा को देखकर उनका मन यहीं रम गया और उन्होंने इसी स्थान को त्रेतायुग में तपस्थली बनाया। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय वे इसी स्थान पर रह कर तपस्या कर रहे थे। महाराज भीमसेन उन्हें जिस समय यज्ञ में सम्मिलत होने के लिए बुलाने के हेतु आये थे, उस समय श्री गुरू गोरक्षनाथ जी महाराज समाधि में निमग्न थे, अतः उन्हें कुछ काल तक ठहरना पड़ा था।

भारतवर्ष के प्रसिद्ध स्थानों में श्री गुरू गोरक्षनाथ मंदिर का प्रमुख स्थान है। यह मंदिर ठीक उसी स्थान पर स्थित है, जहाँ त्रेता युग में श्री गुरू गोरक्षनाथ जी महाराज ने दीर्घ अवधि तक गहन समाधि लगाई थी। मुस्लिम शासन काल में तेरहवीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी द्वारा यह मंदिर ध्वस्त कर दिया गया था, किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के बाद भी यह स्थान आध्यात्मिक प्रेरणा एवं योग साधना का केन्द्र बना रहा। यौगिक संस्कृति का यह जीवित जागृत प्रेरणा स्रोत, इसके बाद भी कई बार क्रूर मुस्लिम शासकों का कोप–भाजन बना। अन्तिम बार मुगल शासक क्रूर औरंगजेब ने भी इसे भारी क्षति पहुँचाने की चेष्टा की। नाथ योगी सम्प्रदाय के महान् प्रवर्तक श्री श्री गुरू गोरक्षनाथ जी की तपस्थली होने के कारण यह मंदिर नाथ योगियों सिद्धों, साधु–महात्माओं एवं विद्वान ब्राह्मणों के लिए सतत् आकर्षण का केन्द्र बना रहा। यह सिद्ध स्थान श्री गुरू गोरक्षनाथ जी के तपोयोग एवं अलौकिक आकर्षण का केन्द्र बना रहा। देश के कोने कोने से लक्षाधिक दर्शनार्थी एवं तीर्थयात्री इस मंदिर के दर्शन हेतु आते रहते हैं।

वास्तव में यह मंदिर पाँचवा धाम है और सिद्ध–पीठों की कोटि में आता है। भक्त जनों का विश्वास है कि श्री गोरक्षनाथ मंदिर का दर्शन किए बिना तीर्थ यात्रा अधूरी है।

इस मंदिर में तीन अलौकिक विशेषताएँ विद्यमान हैं। अमर योगी अयोनी शंकर स्वयंभू श्री भगवान गोरक्षनाथ जी की तपसथली होने के साथ साथ आज भी इस मंदिर में श्री गोरक्षनाथ जी की चरण पादुकाएँ प्रतिष्ठित हैं। ये चरण पादुकाएँ मंदिर में मुख्य पूजा–स्थल पर श्री भगवान गोरक्षनाथ जी के चित्र के साथ साथ प्रतिष्ठित हैं और इनकी विधिवत पूजा अर्चना एवं बन्दना होती है। शीघ्र ही इसी स्थान पर श्री गोरक्षनाथ जी की मूर्ति की भी स्थापना होने जा रही है। श्वेत संगमरमर की दिव्य मूर्ति को देखकर मन गद्‌गद् हो जाता है और स्वाभाविक रूप से दर्शक भगवान गोरक्षनाथ जी के चरणों में नतमस्तक हो जाता है। ठीक ३ बजे प्रातः काल घण्टों नगाड़ों और तुमुल घोषों के साथ भगवान श्री गोरक्षनाथ जी की पूजा तांत्रिक विधि द्वारा प्रारम्भ हो जाती है। मध्यान्ह् में पुनः श्री नाथ जी की पूजा होती है। फिर सायंकाल निश्चित समय से नियत समय तक पुनः पूजा एवं आरती होती है। जिस समय यहाँ पर पूजा समाप्त होती है, ठीक उसी समय दांग (चौगड़ा) नेपाल में पूजा प्रारम्भ हो जाती है और जब वहाँ पूजा समाप्त होती है तो माई पाटेश्वरी देवी मंदिर तुलसीपुर, देवीपाटन, जिला गोण्डा, में पूजा प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार

इन तीनों स्थानों में मिलाकर क्रम से निरन्तर चौबिस घण्टे पूजा होती रहती है। प्रति मंगलवार को सहस्त्रों की संख्या में एकत्र होकर भक्त गण भगवान श्री गोरक्षनाथ जी का दर्शन करते हैं और इच्छानुसार फूल, बताशा, लड्डू, खिचड़ी, फल, बर्तन, घण्टा, त्रिशूल एवं द्रव्य आदि सेवा में समर्पित करते हैं।

मन्दिर की दूसरी विशेषता यह है कि श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा त्रेतायुग में जलायी गई अखण्ड ज्योति आज भी अनवरत रूप से अनेक झंझावातों एवं प्रलयंकारी आपत्तियों के थपेड़ें खाकर भी अखण्ड रूप से जल रही है। इस ज्योति का दर्शन करने के लिए भक्तगण सदैव ही लालायित रहते है। बहुत सी मातायें इस ज्योति का काजल ले जाकर अपने बच्चों की आँखों में लगाती हैं। उनका विश्वास है कि इससे उनकी आँखे ठीक रहेंगी एवं दिव्य–दृष्टि प्राप्त होगी। यह अखण्ड ज्योति आध्यात्मिक पवित्रता का प्रतीक है। इसके दर्शन मात्र से मनोवाञ्छित फलों की प्राप्ति होती है।

"अखण्ड धूना" भक्तों एवं योगियों का तीसरा बड़ा आकर्षण है। इस धूने में त्रेतायुग में श्री योगी गोरक्षनाथ जी द्वारा प्रज्वलित अग्नि आज भी विद्यमान है। साधू महात्मा एवं योगी गण, धूने पर बैठ कर घण्टों भजन किया करते हैं। अनेकानेक ज्ञानप्रद बातें साधुगण धूने पर ही बतलाया करते हैं। इस अखण्ड धूने की 'विभूति' को भक्तगण बड़ी श्रद्धा से मस्तक पर लगाते हैं और कोई प्रेम पूर्वक खाते है। भक्तों एवं श्रद्धालुओं का विश्वास है कि इस धूने की विभूति मस्तक पर लगाने से भाग्य की रेखायें भी बंदल जाती हैं और मनुष्य का भाग्योदय हो जाता है।

जिस समय अमर योगी श्री गोरक्षनाथ जी ने इस स्थान को अपनी तपस्या से पवित्र किया था, उस समय यह एक निर्जन बन प्रदेश था। इस क्षेत्र के लोग श्रद्धालु होते हुए भी पिछड़े हुए थे और इस क्षेत्र की जनसंख्या बहुत कम थी। न गांव थे, न नगर, न पुल, न यातायात के साधन। इस विशिष्ट स्थान को योगिराज ने अपनी तपस्थली क्यों चुना, यह वही जान सकते हैं। इस क्षेत्र के भोले–भले लोग धीरे धीरे उस दिव्य साधक के प्रति आकर्षित होने लगे। श्री गोरक्षनाथ जी महान आध्यात्मिक चिन्तन एवं दीर्घ कालीन समाधि में व्यस्त रहते और सांसारिक वार्ताओं की ओर ध्यान नहीं देते थे, तथापि साधारण जनता स्वतः उनके प्रति आकर्षित होकर श्रद्धावनत होने लगी थी। यदि कभी वे किसी भक्त की सेवायें स्वीकार कर लेते थे, तो वह मनुष्य अपने को धन्य समझता था।

उस महान विभूति ने इस क्षेत्र को और पूरे वातावरण को आध्यात्मिक, तथा अत्यन्त पवित्र बना दिया। श्री गोरक्षनाथ जी के भक्तों ने धीरे धीरे गोरखपुर नगर और जिले को बसाया और अपने इष्ट देव के नाम पर इस जनपद का नाम गोरखपुर रखा। यहाँ की सीधी सच्ची जनता में एक प्रकार की गत्यात्मक आध्यात्मिक चेतना उद्‌बुद्ध हुई। उन्हें अनुभव हुआ कि स्वयं साक्षात् लोकेश्वर भगवान शंकर ही मनुष्य रूप में उनके मध्य विराजमान हैं। भक्तगण उन्हें 'शिव गोरख' के नाम से पूजने लगे। उनकी दिव्यता एवं अलौकिक योग–बल की चर्चा प्रभावशाली ढंग से सारे देश में और इसके बाद मध्य एशिया एवं संसार भर में व्याप्त हो गई। अनेक सच्चे साधक एवं सत्यान्वेषी उनके चरणें में एकत्रित होने लगे और उनकी कृपा पाने को याचना करने लगे। उनकी अलौकिक जीवन–चर्या और सरल शिक्षा सच्चे जिज्ञासुओं एवं अध्यात्म प्रेमियों को त्याग तपस्या

और योग–साधना की प्रेरणा देने लगी। उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से स्वतः यहाँ एक साधनाश्रम सा बन गया। वे सफल शिष्य ही विभिन्न क्षेत्रों में उनकी आध्यात्मिक शिक्षाओं के प्रचारक बने। उन्होंने देश के कोने कोने में और भारत से बाहर जाकर एशिया के अन्य देशों में मठों मन्दिरों, आश्रमों, धूनी, टीलों, कुटियों और अन्य प्रकार के केन्द्रीय मठों को बनाया। महान स्वामी का भौतिक अस्तित्व मठ की स्थापना के पश्चात विलुप्त हो गया, तथापि यह मठ (गोरखपुर की साधना भूमि) अनेक सांस्कृतिक केन्द्रों की मूल प्रेरक साधनास्थली बन गई। आज भी मठ में उनकी आध्यात्मिक उपस्थिति के अस्तित्व का प्रत्येक भक्त अनुभव करता है। यह विश्वास जनमन में भर गया है कि मनुष्य रूप में स्वयं भगवान शिव थे। वे जन्म और मरण, जरा और दुःखों के बन्धन से परे सत्–चित–आनन्द स्वरूप हैं। उनका भौतिक शरीर आज भी जीव विज्ञान सम्बन्धी सामान्य लौकिक नियमों से परे है। पल भर में इस प्रकार के अनेक शरीर उत्पन्न करने में समर्थ हैं और स्वेच्छा से जब चाहें इन शरीरों को अदृश्य बना सकते हैं। वे अमर और सर्वव्यापी समझे जाते हैं। मठ का आध्यात्मिक प्रभाव–क्षेत्र उत्तरोत्तर विकसित होता गया। धीरे धीरे इस सम्पूर्ण जनपद का भौतिक उत्थान भी हुआ, जिसे लोगों ने उनकी कृपा का ही फल समझा। यहाँ से लेकर नेपाल तक का पूरा क्षेत्र और भारी समुदाय श्री गोरक्षनाथ जी के नाम से ही प्रेरणा प्राप्त करता है।

यद्यपि यह एक धार्मिक मठ था और राजनीतिक प्रपंचों से इसका कोई सम्बन्ध न था, तथापि कई बार मुसलिम आक्रांताओं ने इस मंदिर एवं मठ को ध्वस्त करने का प्रयत्न किया। इसके व्यापक प्रभाव एवं प्रसिद्धि के कारण ही अलाउद्दीन खिलजी और औरंगजेब जैसे क्रूर मुसलमान शासकों ने मंदिर को भारी क्षति पहुंचाई। कई बार योगी बलपूर्वक इस स्थान से निकाल दिये गये थे। किन्तु जनता के ह्रदय से गोरक्षनाथ जी का निष्कासन नहीं हो सका। मठ का पुनः निर्माण किया गया। साधक योगी पुनः लौट आये और इस स्थान में यह मठ पुनः निर्माण किया गया। इस मठ से पर्याप्त संख्या में दिव्य एवं अलौकिक गुणों वाले योगी प्रादुर्भूत हुए, जिनका आध्यात्मिक प्रभाव पूरे देश में व्याप्त था। अनेक प्रबल झन्झावतों का सामना करने में सफल, श्री गोरक्षनाथ जी की कृपा से अमरत्व को प्राप्त यह मठ आज भी सम्पूर्ण देश का सतत् प्रेरित, उत्साहित एवं अनुप्राणित कर रहा है।

मठ का प्रधान मन्दिर जिस रूप में आज स्थित है, निश्चय ही यह पुराना नहीं है। सम्भव है कि इससे पूर्व भी मंदिर का पुननिर्माण बार–बार करना पड़ा हो, किन्तु इतना निश्चय है कि वह पवित्र स्थान जहाँ गुरू गोरक्षनाथ जी ने साधना की एवं समाधि लगाई थी, कभी भी छोड़ा नहीं गया और पुननिर्माण के पश्चात भी मन्दिर उसी पवित्र स्थान पर स्थित हैं, जहाँ पहले रहा है। जिस स्थान पर भगवान श्री गोरक्षनाथ जी की चरणपादुकाएँ एवं चित्र प्रतिस्थापित है, वह स्थान सनातन एवं पुरातन है। मंदिर के मध्य में एक विस्तृत वेदी है, जो गोरखनाथ जी के पवित्र आसन का प्रतीक है और निर्द्धारित विधि के अनुसार नियम पूर्वक प्रतिदिन उसी स्थान पर धार्मिक पूजा की जाती हैं यद्यपि उस स्थान पर कोई मूर्ति प्रतिस्थापित नहीं है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से वहाँ पर श्री गुरू गोरक्षनाथ जी विद्यमान समझे जाते हैं। हर योगी से यह आशा की जाती है कि वह पूजा के समय श्री गुरू गोरक्षनाथ जी का स्मरण एवं मनन करेगा।। एक योगी के ध्यान और पूजा का परम उद्देश्य परम तत्व का चिन्तन और मनन है और इस तत्व का न तो कोई

रूप है और न नाम है। वह सम्पूर्ण ही पूर्ण एकता का आधार है। वह जीव ओर शिव, व्यष्टि और समष्टि, अहम् और इदम्, पदार्थ और चेतना, मन और दिव्य मन तथा ह्वदय की एकता है। वह अभेदात्मक है। वह परमपूज्य और परमपूर्ण है। उसमें अस्तित्व और अनास्तित्व की एकता है। पूजा का वास्तविक स्वरूप यह है कि आराधक का ह्वदय इस परम पुरूष की भावना से भर जाय और आंतरिक दृष्टि से परमात्म तत्व से अभिन्न हो जाय। इस परम एकता की पूर्ण अनुभूति करने वाला ह्वदय 'नाथ', अवधूत या सिद्ध का ह्वदय है। गोरक्ष–सिद्धान्त संग्रह में नाथ की चारित्रिक स्वरूप इस प्रकार वर्णित है :–

निगुणम् वाम भागे च लब्ध भागे अद्‌भुजानिजा।
मध्य भागे तु स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नमः।।
वामभागेस्थितः शम्भुः सत्ये विष्णुस्तथैव च।
मध्ये नाथः पर ज्योतिस्तद् ज्योतिः भक्तमनोहरम्।।

मैं उस नाथ को नमन करता हूँ जिसके वाम भाग में निर्गुण ब्रह्म स्थित है, जिसके दक्षिण भाग में आत्म शक्ति जो विश्व प्रपंच का गत्यात्मक आधार है और जो मध्य में स्वयं पूर्ण स्थित में है अर्थात अपनी पूर्ण ज्योर्तिमय आदि–चेतना की स्थिति में परमात्मा के दोनो रूपों का आलिंगन किये हुए हैं। शम्भु या शिव उसके वाम भाग में हैं, विष्णु उसके दक्षिण भाग में है और नाथ उनके बीच परम ज्योति के रूप में विद्यमान हैं। यह परम ज्योति हमारे अंधकार को दूर करे। निर्गुण और विश्व प्रपंच की मूलाधार शक्ति सर्वनिरपेक्ष शिव और सर्व व्यापक विष्णु, ये सभी नाथ की पूर्ण ज्योर्तिमय परम चेतना में एक साथ एकान्तर हो गये हें। श्री नाथ जी मंदिर के प्रधान देवता हैं, वही योगी गुरू हैं। अज्ञानता के अन्धकार को नष्ट करने वाले श्री गुरू गोरक्षनाथ जी महाराज की ही मंदिर में विशेष विधि–विधान से पूजा होती है।

मंदिर के अन्तर्वर्ती भाग में अखण्ड ज्योति और वेदी इन दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीकों के अतिरिक्त कुछ मुर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं। शिव के असीम वक्षस्थल पर शाश्वत नृत्य करती हुई काली माता की मूर्ति है। योग–पद्धति के दाशनिक आधार का थोड़ा ध्यान रखने वाले को भी इस पवित्र मूर्ति का आध्यात्मिक महत्व स्पष्ट हो जायेगा। यह कहा जा चुका है कि शि परम् तत्व का निरपेक्ष स्पष्ट स्वरूप प्रकट करता है और काली माता (जगत का सृजन करने वाली परम शक्ति) उसके गत्यात्मक स्वरूप को प्रकट करती हैं। उसे ही महाकुण्डलिनी या महामाया कहते हैं। आत्म ज्योतित सर्व निरपेक्ष स्वरूप (शिव) को अपना मूलाधार बनाकर यही गत्यात्मक स्वरूप (शक्ति) अपने को शाश्वत रूप से अनेक रूपों तथा काल और स्थित में अभिव्यक्त करता है। काली शिव का ही गतिशील रूप हैं। शिव के वक्षस्थल पर काली का नृत्य प्रकट करता है कि शाश्वत परिवर्तित विविधिताओं से युक्त यह संपूर्ण विश्व ही अपरिवर्तनशील परम तत्व की अभिव्यक्ति है, जो इसके सभी वाह्य रूपाों के मूल में अधिष्ठित है। सभी प्रकार की परिवर्तित विविधताओं, जन्म–मृत्यु के बन्धनों, सुख–दुःखात्मक अनुभूतियों, सभी प्रकार के संघर्षो और भिन्नताओं, सभी गुण दोषों में, जिनमें महाशाक्ति काली अपने को व्यक्त करती हैं, शिव तत्व की अन्तर्निहित आनन्द रूपी एकता शाश्वत रूप से समरस (आक्षुण्ण) रहती है।

विश्व की सृजन करने वाली माता (आदिशक्ति) सभी समानवेषी जीवों को प्रेरित करती

हैं कि वे सभी क्षणिक और सीमित अस्तित्वों के मूलाधार रूप में शिव तत्व को देखें। वे अनेक में एक की, परिवर्तशीलता में अपिवर्तनशीलता की, सीमा में असीम की, द्वैत में अद्वैत की अनुभूति करें। काली की उपासना का तात्पर्य अहं (आत्मतत्व) तथा इदम् में शिव तत्व का अनुभव करना है। अतः योग–साधना की दृष्टि से इसका महत्व है। मंदिर में एक ओर गणेश जी की मूर्ति स्थापित है। गणेश जी भारत वर्ष के सर्वाधिक लोकप्रिय देवताओं में से एक हैं। वे सदैव एक आदर्श योगी की भाँति ध्यान की मुद्रा में रहते हें। उन्हें शिव और शक्ति का पुत्र माना जाता है है। अर्थात परम तत्व और गत्यात्मक दोनों स्वरूपों की एकता की आत्माभिव्यक्ति गणपति के व्यक्तित्व में आध्यात्मिकता का रूप ले लेती है। वे जनता के देवता है, बुद्धि के देवता हें, देवताओं के मुखिया हैं और विघ्न–बाधाओं के विनाशक हैं। इनकी गणना नव नाथों में है और इन्हें गजकन्धर नाथ जी कहते हैं। ये सदैव अपने ही में संतुष्ट रहते हैं, सर्वदा पूर्ण शान्त रहते हैं, सदैव ध्यानावस्थित रहते हैं और सदैव अपनी अन्तचेतना को शिव–शक्ति से संयुक्त रखते हैं। ऐसा समझा जाता है कि गणेश जी ही शिव–शक्ति के अन्तःपुर के द्वार–रक्षक हैं।

मंदिर में श्री महावीर हनुमान जी को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ये श्री रामचन्द्र जी के दूत एवं कलयुग के सिद्ध देवता हैं और अजर अमर हैं। इनका भौतिक शरीर एक बन्दर जैसा लगता है, किन्तु भक्ति और योग के गहन और पूर्ण अभ्यास से वह दिव्य, अमर ओर आध्यात्मिक हो गया हैं। हनुमान जी की सारे भारत वर्ष में देवता के रूप में पूजा होती है, क्योकि उनकी मूर्ति हमारे सामने पशुता पर आध्यात्मिकता की पूर्ण विजय का ज्वलन्त उदाहरण है तथा सबकों प्रकाशित करने वाली और योग–शक्ति का प्रमाण है। हनुमान जी एक आदर्श योगी, आदर्श भक्त, आदर्श ज्ञानी हैं। उनमें योग बल से ऐसी अद्‌भुत् शक्ति विद्यमान है कि समुद्र को छलांग लगाकर पार कर सकते हैं, किन्तु इतने अतुलित बलधारी होने पर भी उनमें लेशमात्र भी घमण्ड नहीं है। उनहें सभी प्रकार की शक्तियों का अतिक्रमण कर जाने की शक्ति प्राप्त की है और उनकी चेतना में सर्वतोभावेन परम तत्व राम स्थित हैं। योग का यही आदर्श रूप है। इस समय श्री हनुमान जी का मंदिर अत्यन्त ही ाव्य, सुन्दर तथा आकर्षक रूप से पुनः निर्मित कराया गया है।

मुख्य मंदिर के पार्श्व में एक मंदिर त्रिशूलों से ही भरा हुआ है। अति प्राचीन काल से शिव का विशिष्ट अस्त्र समझा जाता है। इसी अस्त्र की नोकों में महायोगीश्वर शिव जी ने उस त्रिपुरासुर का बध किया था, जिसने मृत्यु पर भी अधिकार कर लिया था और त्रिपुर में चुपचाप निवास करता था। असुर वैयक्तिक अहंकार का प्रतीक है और त्रिपुरा से तात्पर्य क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से है, जिसमें अहंकार की स्थित होती हैं स्थूल भौतिक शरीर के विनाश से अहंकार का विनाश नहीं होता। वह अपने को सूक्ष्म शरीर में छिपा लेता है और पुनः अपने कर्मो का फल भोगने के लिए तथा नवीन कार्य करने के लिए दूसरा स्थूल शरीर ग्रहण करता है। किसी भी प्रकार के पूर्ण कर्म से अहंकार का विनाश सम्भव नहीं है ओर उनसे इस कर्म अथवा भोग के बन्धन से ही छुटकारा मिल सकता है। त्रिशूल के तीनों नोंक क्रमशः वैराग्य, ज्ञान और समाधि है। यह त्रिशुल वस्तुतः योग का प्रतिनिधित्व करता है। योग भी आत्मचेतना को पूर्ण ज्योति मान कर त्रिविध शरीर स्थूल, सूक्ष्म और कारण से आत्म–तत्व के अनुवादावरण को नष्ट कर डालता है। यह आत्मा को सभी प्रकार के बन्धनों, सीमाओं और दुःखों से मुक्ति दिला सकता है और अन्ततः

उसे परम तत्व से एकाकार करा सकता है। त्रिशुल की उपासना वैराग्य, ज्ञान और समाधि के गहन अभ्यास की ओर संकेत करती हे। इसलिए मंदिर में बहुत से त्रिशुल गड़े हुए हैं, जो योग की साधना करने वाले जिज्ञासु साधकों को उनके आदर्श का स्मरण कराते रहते हैं। यह श्री भैरव जी के मन्दिर का स्वरूप है, जो अत्यन्त ही पूज्य है। मन्दिर के एक ओर सतत् रूप से अग्नि प्रज्वलित रहती है, जिसमें सांसारिक पदार्थों की आहुति दी जाती है। यह अखण्ड धुना श्री गुरू गोरक्षनाथ जी के समय से ही प्रज्वलित है और मठ की शाश्वत विशिष्टताओं में से एक है। इससे संकेत मिलता है कि बन्धनों और दुःखों से मुक्ति की कामना रखने वाले साधकों के ह्रदय में वैराग्य की अग्नि सतत् रूप से प्रज्वलित रहनी चाहिए। सभी प्रकार की इच्छाओं ओर लगावों, सभी प्रकार की अपवित्रताओं और अस्थिरताओं को वैराग्य की अग्नि में जल जाना चाहिए। इस साधना में संसार की विविध वस्तुएँ सांसारिक जीवन की विविधात्मकता के मूल्य को इस अग्नि में जला डालने की स्थिति में एकाकार हो जाती है। यही राख विभूति है, जो योगियों और तपस्यियों के लिए आभूषण है। शिव जी अपने पूरे शरीर में यही विभूति रमाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उनकी आत्मा संसार के सभी पदाथों में एकता की भावना से प्रकाशित है।

मठ की सीमा के अन्दर ही समाधि–स्थल है, जहाँ दिवंगत योगियों के भौतिक शरीरों को समाधिस्थ कर दिया जाता है, जिनकी अमर आत्माएँ मानों इसी मिट्टी में मिलने के लिए छोड़ी जाती है। यह समाधि–स्थल सभी लोगों को सांसारिक नश्वरता का सतत् आभास कराता रहता है। यह दृश्य वैराग्य भावना को दृढ़ करता है और साधक के ध्यान को असीम शाश्वत की ओर लगा देता है, जिसके प्रति एकान्त निष्ठा से ही जीवन कृतार्थ हो सकता है और आत्मा को आनन्द की अमरता प्राप्त हो सकती है। देव मन्दिर और समाधि स्थल (श्मशान भूमि) दोनों ही परस्पर विरोध ी भावना उत्पन्न करते हैं। एक ओर जीवन है दूसरी ओर मृत्यु, एक ओर त्याग और वैराग्य है दूसरी ओर भोग और विनाश। यह मठ कई शताब्दियों से स्थित है और इसने सहस्त्रों व्यक्तियों को अध्यात्मिक पथ की ओर आकर्षित किया है। इस मठ के प्रख्यात योगियों की एक लम्बी परम्परा है। इन योगियों की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ अलौकिक रही हैं और उन्होंने असंख्य युवकों को योग–मार्ग की शिक्षा दी। यह मंदिर दीर्घ काल से योग–संस्कृति का जीवित–केन्द्र रहा है और राष्ट्र के अध्यात्मिक वातावरण के निर्माण में इसने बहुत बड़ा सभाव डाला है। अनेक व्यक्ति आध्यात्मिक जिज्ञासा लेकर प्रेरणा और शिक्षा के लिए यहाँ आते रहे हें और अब भी आते रहते हैं। विदेशों से भी योग में रूची रखने वाले श्रद्धालु भक्त–जनों के पत्र आते रहते हैं। अनेक तीर्थ–यात्री देश के कोने कोने से यहाँ वर्ष भर आते रहते हैं। काफी संख्या में आने वाले अतिथियों को भोजन तथा अन्य सुविधाओं का प्रबन्ध प्रायः प्रतिदिन करना पड़ता है।

मकर संक्रान्ति (खिचड़ी) के महान् पर्व पर यहाँ भारत विख्यात मेला लगता है। लाखों की संख्या में भक्त गण उस दिन मन्दिर का दर्शन करने के लिए आते हैं और श्रद्धा पूर्वक खिचड़ी, रूपया, वस्त्र, बर्तन, घन्टा, त्रिशुल, सोना, चांदी आदि भेंट चढ़ाते हैं। सामान्यंतः प्रति मंगलवार को काफी बड़ी संख्या में भक्त गण श्री गोरक्षनाथ जी के दर्शन करने आते हैं। मठ से सम्बन्धित एक गोशाला भी है। जहाँ भली प्रकार गोसेवा की जाती है। मन्दिर में सांस्कृतिक पूजा का क्रम तो

रात–दिन थोड़ी–थोड़ी देर बाद बराबर चलता ही रहता है। जिस स्थान पर स्थान के प्रबन्धक, जिन्हें महन्त जी या श्री महाराज जी कहते हैं, निवास करते हैं, वह मठ कहलाता है। मन्दिर के पार्श्व में वर्तमान मठ उसी प्राचीन क्षेत्र पर स्थित है, जहाँ पहले से ही मठ स्थित रहा है। महन्त का स्थान ही आदरणीय, श्रद्धास्पद एवं पूजनीय समझा जाता है। वह योगी श्री गुरू गोरक्षनाथ जी का प्रतिनिधि या उन्हीं का मूर्तिमान स्वरूप समझा जाता है। इस मंदिर के महन्त को महामंडलेश्वर तथा जगत् गुरू की उपाधि भी धार्मिक जनता द्वारा प्राप्त है।

महन्त ही योगियों का आंध्यात्मिक नेता माना जाता है। व्यवहार की दृष्टि से वह गोरक्षनाथ जी का प्रधान सेवक है और गुरूओं के गुरू गोरक्षनाथ जी द्वारा संस्थापित इस संस्था के संचालक के रूप में उच्चतम आध्यात्मिक आदशों के निवार्ह के लिए उत्तरदायी है। वह निर्द्धारित विधि के अनुसार नियमित रूप से निश्चित समय पर की जाने वाली नैतिक पूजा के लिए, वर्ष की विभिन्न ऋृतुओं में आने वाले सामाजिक पर्वों को विधिवत मनाने के लिए, मठ के नैतिक तथा आध्यात्मिक वातावरण, पवित्रता और शान्ति की रक्षा के लिए, अतिथियों की सुविधा के लिए, श्री गोरक्षनाथ के नाम पर आने वाले प्रत्येक पैसे के उचित व्यय तथा तपस्वी जीवन के सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित कार्यों के उचित निर्वाह के लिए पूर्णतः उत्तरदायी है। उससे आशा की जाती है कि वह अपने वैयक्तिक जीवन में विविध प्रकार के दायित्वों और कर्तव्यों का भार वहन करते हुए भी त्याग तपस्या ओर शान्ति मय जीवन के उच्चादर्शों का पूरी निष्ठा से पालन करेगा। उसे सभी प्रकार की भौतिक सुख सुविधाओं, प्रलोभनों, चरित्र सम्बन्धी दुर्बलताओं और शारीरिक सुखों से परे रहना होगा। गोरखपुर का गोरक्षनाथ मठ इस दृष्टी से विशेष भाग्यशाली रहा है। इसके महन्तों की परम्परा में कुछ ऐसे महायोर्गा, हुए हैं, जो अपने आध्यात्मिक ज्ञान तथा अद्वितीय योग–शक्ति के लिए दूर दूर तक विख्यात रहे हैं। कहा जाता है कि इस मंदिर के प्रथम महंत श्री वरद नाथ जी थे, जो श्री गोरक्षनाथ जी के भाई और शिष्य कहे जाते हैं। बाबा परमेश्वरनाथ नाम के एक अत्यन्त ही प्रतापी महन्त की महिमा का आज भी सर्वत्र गुणगान किया जाता है। इस मंदिर के एक महन्त श्री बालक नाथ जी यहाँ सन् १७५८ से १७८६ (२८ वर्ष पर्यन्त) महन्त रहे हैं। सांसारिक वातावरण में रहते हुए भी उनके अलौकिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक प्रेरणाप्रद गाथाएँ प्रचलित हैं। उनके पहले श्री वीर नाथ, अजब नाथ, पियार नाथ इस मठ के महन्त रह चुके हैं। महन्त श्री बुद्ध नाथ और श्री रामचन्द्र नाथ का नाम भी बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया जाता है। सम्भवतः वे वीर नाथ जी के कई पीढ़ी पूर्व यहाँ पर भजनरत थे। श्री बालक नाथ जी के पश्चात् श्री मन्सा नाथ को गद्दी मिली, जो २५ वर्षों तक महन्त रहे। उसके बाद सन् १८११ से १८३१ तक (२० वर्ष तक) श्री संतोष नाथ जी महंत रहे। इसके पश्चात् २५ वर्षों तक (१८५५ से १८८० तक) श्री गोपाल नाथ जी मंदिर के महंत रहे। उनके पश्चात् उन्हीं के शिष्य श्री बलभद्र नाथ जी केवल ६ वर्षों तक महन्त रहे।। इनमें सभी उच्चकोटि के योगी थे। श्री बलभद्र नाथ के शिष्य श्री दिलवर नाथ केवल ७ वर्षों के लिए १८८६ से १८६६ ई तक गद्दी पर बैठे। उनके उत्तराधिकारी श्री सुन्दरनाथ जी हुए, जो कई वर्षो तक महन्त पद पर आसीन रहे, यद्यपि उनके समय में बहुत दिनों तक महन्त का अधिकार और दायित्वपूर्ण प्रबुद्ध महायोगी बाबा गम्भीरनाथ जी को सौंप दिया गया था, जो गोरक्षनाथ जी के यथार्थ अवतार प्रतीत होते थे। श्री सुन्दर नाथ जी की मृत्यु के उपरान्त बाबा

गम्भीरनाथ जी के प्रमुख शिष्य ब्रह्मनाथ जी गद्दी के लिए चुने गये थे, जिसे उन्होंने कुछ ही वर्षो तक सुशोभित किया।

१६३४ ई० में बाबा ब्रह्मनाथ जी के समाधिस्त हो जाने के उपरान्त उनके प्रमुख शिष्य भारत विख्यात सन्त तथा हिन्दू नेता श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज महन्त पद पर आसीन हुए। वे एक उच्च राज्य परिवार (महाराणा उदयपुर के परिवार) से सम्बन्धित, महान् तेजस्वी, आधुनिक शिक्षा प्राप्त प्रभावशाली महात्मा थे। उनके दिवंगत होने के पश्चात उनके एक मात्र शिष्य श्री महन्त अवेद्यनाथ जी सन् १९६९ ई में १७ सितम्बर को इस पद पर अभिषिक्त हुए हैं। उनकी दूरदर्शी नीतियों, प्रगल्भ विद्वता, उदार दृष्टिकोण एवं अद्भुत् संगठन–शक्ति से मंदिर का कार्य सूचारू रूप से चल रहा है। उनसे देश एवं धर्म को बहुत बड़ी आशायें हैं। वे अपनी लोकप्रियता एवं जन–सेवी मनोवृत्ति के कारण अनेक वर्षों तक विधायक एवं संसद सदस्य भी रह चुके हैं।

मंदिर में भीमसेन जी का मंदिर दर्शकों में वीरत्व की भावना संचारित करता है। द्वापर युग में महाभारत युद्ध में विजय के पश्चात् जब धर्मराज युधिष्टिर ने राजसूय यज्ञ किया था, तो उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए उन्होंने महान् योगी श्री गोरक्षनाथ जी को निमंत्रित करने के लिए अपने अनुज महाबली भीमसेन को भेजा था। उस समय योगिराज श्री गुरू गोरक्षनाथ जी गहन समाधि में लीन थे। अतः भीमसेन जी को कुछ समय यहाँ रूकना पड़ा था, उनके शरीर के भार से एक गहरा सरोवर बन गया जिसे भव्य रूप में पक्का बना दिया गया है। यह पक्का सरोवर अत्यन्त ही पवित्र माना जाता है और निकटवर्ती क्षेत्रों की जनता भरी संख्या में पर्वों के अवसर पर इस पवित्र सरोवर में स्नान करने आती है। इस पवित्र सरोवर में सभी तीर्थों का जल विद्यमान है। वसतुतः यह तीर्थों का संगम ही है।

यह मंदिर ५२ एकड़ के सुवविस्तृत क्षेत्र में स्थित है, जिसे सुन्दर एवं आकर्षक फूलों, वृक्षों ओर हरी घासों से सजाया गया है। इस मन्दिर के दो मुख्य पर्व हैं, विजयादशमी एवं मकरसंक्रान्ति (खिचड़ी)। विजयादशमी के महान् पर्व पर मठ में नौ दुर्गा की स्थापना बड़े ही समारोह के साथ की जाती है और विद्वान श्रोत्रिय ब्राह्मणों द्वारा श्री दुर्गा जी के पाठ एवं हवन का आयोजन किया जाता है। हिन्दू धर्म से सम्बन्धित सभी त्योहारों ण्वं पर्व मन्दिर में धूम–धम से मनाये जाते हैं, जिनमे जनपद की जनता भी भारी संख्या में भाग लेती है। विजयादशमी के दिन महन्त जी का राजतिलक होता है, जिसमें सहस्त्रों की संख्या में एकत्र होकर भक्तगण श्री महाराज का तिलक करते और उन्हें (प्रणामी) द्रव्य भेंट करते हैं। विजयादशमी के दिन महन्त जी की सवारी मानसरोवर–यात्रा पर निकलती है, जिसमें मन्दिर के सहस्त्रों भक्त सम्मिलित होते हैं। श्री महाराज जी रामलीला मैदान जाकर रामचन्द्र जी का तिलक करते हैं और मानसरोवर तीर्थ पर स्थित श्री रामचन्द्र जी, जानकी जी तथा श्री शिवजी के मन्दिर में पूजा करते हैं।

मन्दिर की दक्षिण दिशा में योगिराज श्री बाबा ब्रह्मनाथ जी, बाबा श्री गम्भीर नाथ जी तथा ब्रह्मलीन महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी की भव्य समाधियाँ है। श्री बाबा गम्भीरनाथ जी का समाधि–मन्दिर अत्यन्त ही भव्य एवं सुन्दर बना हुआ है और उसी के पार्श्व में श्वेत संगमरमर का समाधि–मंदिर ब्रह्मलीन महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी की स्मृति में बनाया गया है। इस मंदिर में उनकी श्वेत संगमरमर की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है। श्री बाबा गम्भीरनाथ जी अपने समय के

एक दिव्य अवतारी पुरूष थे। वे एक सिद्ध योगी थे और जो कहते थे, वह हो जाता था। उनके चमत्कार की अनेक कथाएँ हैं, जिनका प्रत्यक्ष साक्ष्य आज भी विद्यमान है। वे आजानुबाहु, गम्भीर नेत्र और करूणा से परिपूर्ण अद्भुत् योगी थे। लोग उन्हें प्रत्यक्ष गुरू गोरक्षनाथ जी ही समझते थे।

मंदिर में विशाल पुस्तकालय भी विद्यमान है, जिसमें हिन्दू धर्म से सम्बन्धित सभी प्रकार के ग्रन्थों का भारी संकलन है। नाथं सम्प्रदाय से सम्बन्धित प्रचुर साहित्य इस पुस्तकालय में एकत्रित किया गया है। वेद–पुराण, स्मृतियों आदि का भी अद्भुत् संकलन है। मठ के अधोभाग में एक विशाल कक्ष निर्मित किया गया है, जिसकी दीवालों में आलमारियाँ बनाकर विषय तथा महत्व के क्रम से पुस्तकों को रखने की व्यवस्था है। कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिसकी दुर्लभ पुस्तकें इस पुस्तकालय में विद्यमान न हों।

मंदिर की ओर से स्थापित 'श्री महन्त दिग्विजयनाथ ट्रस्ट' द्वारा अनेकानेक प्रकार की पुस्तकों एवं ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया है, जिनमें गोरखदर्शन, आदर्श योगी, नाथ योग, योग रहस्य आदि प्रमुख हैं।

वास्तव में यह मन्दिर हिन्दुओं का एक मात्र आश्रयस्थल एवं प्रेरणा केन्द्र है, जिसपर हिन्दू मात्र को अभिमान होना चाहिए। इस मन्दिर से सम्बनिधत अन्य भी कई मन्दिर विद्यमान हैं, जिनकी व्यवस्था एवं देख–रेख यहीं से होती है। चौक (महराजगंज) भरोहिया, सरहरी, लालडिग्गी का शिव मंदिर, कैलाश मन्दिर और धर्मशाला बाजार का हनुमान मंदिर यहीं से संचालित होते हैं। तुलसीपुर, देवीपाटन (गोन्डा) स्थित श्री माई पाटेश्वरी देवी के मन्दिर के प्रबन्ध का भी उत्तरदायित्व यहीं के महन्त पर है। मन्दिर में शीघ्र ही कुछ अन्य देवताओं की सुन्दर और भव्य मूर्तियाँ स्थापित होनेवाली हैं, जिनमे श्री बाबा ब्रह्मनाथं जी, पूज्य पाद श्री महन्त श्री दिग्विजयनाथ जी महाराज, श्री हनुमान जी, श्री दुर्गा जी, श्री काली जी, श्री गणेश लक्ष्मी जी, काल भैरव आदि प्रमुख हैं। श्री शिव जी और शीतला माता तथा हट्ठी माई के मन्दिर भी जनता की दृष्टि में अत्यन्त ही पूज्य समझे जाते हैं। हट्ठी माई के स्थान पर तो नित्यप्रति मेला ही लगा रहता है, जहाँ पर कथा, पूजन, हवन और भण्डारा आदि चलता ही रहता है। वास्तव में श्री गुरू गोरक्षनाथ जी का मन्दिर एक दिव्य धाम है, जहाँ पर समाज के लिए आवश्यक सभी पक्षों पर कार्य होता रहता है। यह सच्चे अर्थों में योगाश्रम है। यहाँ की परम्परा ऋषियों और मुनियों की परम्पराओं की याद दिलाती रहती है।

गोरख–बानी

बसती न सुन्यं न बसती, अगम अगोचर ऐसा।
गगन–सिषर महिं बालक बोले, ताका नाँव धरहुगे कैसा।।

(परम–तत्त्व ऐसा अगम (दुर्ज्ञेय) और अगोचर (इन्द्रियों का–अविषय) है कि हम न उसे बस्ती (सत् या भावरूप) कह सकते हैं, न शून्य (असत् या अभाव रूप)। वह गगन–मण्डल (ब्रह्म–रन्ध्र) में रहने वाला बालक (बालक की तरह पाप–पुण्य से अछूता) है। {वह अस्ति और नास्ति दोनों से विलक्षण है, नाम और रूप दोनों उपाधियों से परे है अतः} उसका नाम कैसे रखा जा सकता है।)

वेद–कतेब न षांणी बांणी, सब ढंकी तलि आंणीं।
गगनि सिषर महिं सब्द प्रकास्या, तहें बूझै अलख विनाणी।।

(परब्रह्म का ठीक–ठीक निर्वचन न वेद कर पाये हैं, न किताबी धर्मों की पुस्तके और न चारों खानि की वाणी। इन्होंने तो परतत्त्व को प्रकट करने के बदले उस पर आवरण डाल दिया है। ब्रह्मरन्ध्र में समाधि द्वारा जो शब्द प्रकाश में आता है, उसमें विज्ञान रूप अलक्ष्य का ज्ञान प्राप्त करो)

मन मैं रहिणां भेद न कहिणाँ, बोलिबा अमृत बांणी।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पांणी।।

(बहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुख कर देना चाहिए। अपने मन का भेद किसी से नहीं कहना चाहिए, क्योकि इस रहस्यमयी अनुभूति को कोई समझने वाला नहीं है। व्यक्ति को मधुर भाषी होना चाहिए। अगर दूसरा आदमी आग बबूला हो जाय तो स्वयं पानी हो जाना (क्षमाशील हो जाना) चाहिए)।

असाध साधंत गगन गाजंत, उनमनी लागंत ताली।
उलटंत पवनं पलटंत बांणी, अपीव पीवत जे ब्रह्मग्यांनी।।

(जो असाध्य अथवा असाधु मन को वश में करते हैं, (ब्रह्मरन्ध्र) को (अनाहत नाद से) गर्जित करते हैं, उन्मनी समाधि लगाते हैं, पवन को उलटते और सुषुम्णा के मार्ग में पलट कर लगा देते हैं और (इस तरह) अमृत पान करते हैं, वे ब्रह्म–ज्ञानी हैं।)

देवल जात्रा सुंनि जात्रा, तीरथ जात्रा पांणी।
अतीत जात्रा सुफल जात्रा बोले अमृत बांणी।।

(देवालय की यात्रा शून्य यात्रा है, उससे कोई फल नहीं मिलता। तीर्थ की यात्रा भी पानी की ही यात्रा ठहरी। सुफल यात्रा अतीत यात्रा साधु–सन्तों के दर्शनों के लिए की जाने वाली यात्रा है– जो अमृत वाणी बोलते हैं)

महन्त दिग्विजयनाथ (१९३१)

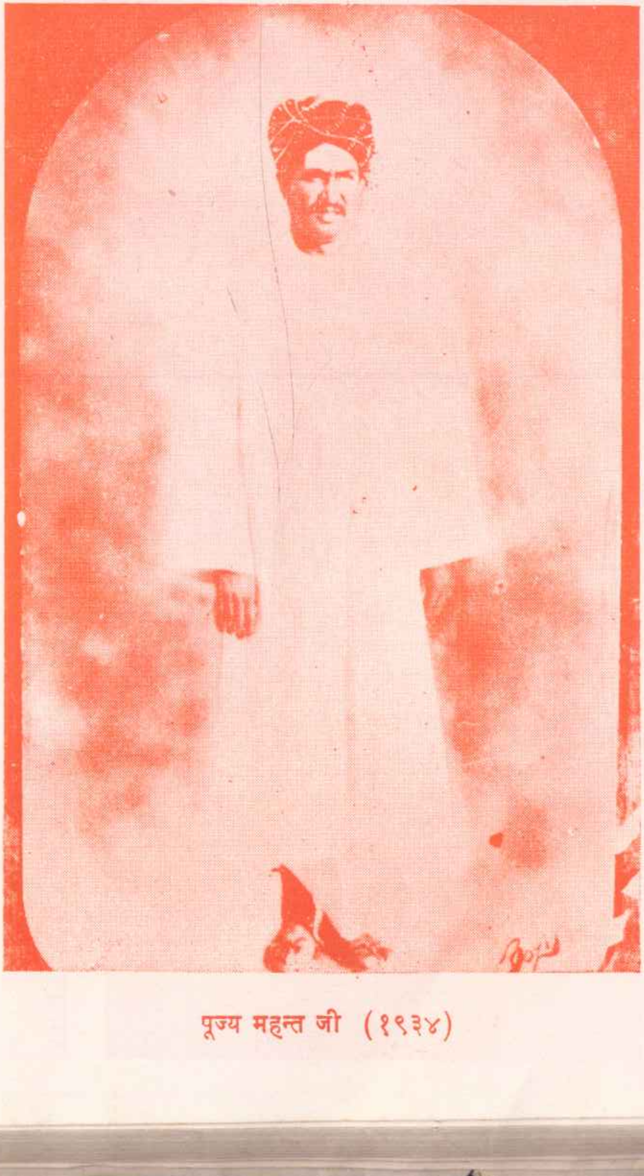

पूज्य महन्त जी (१९३४)

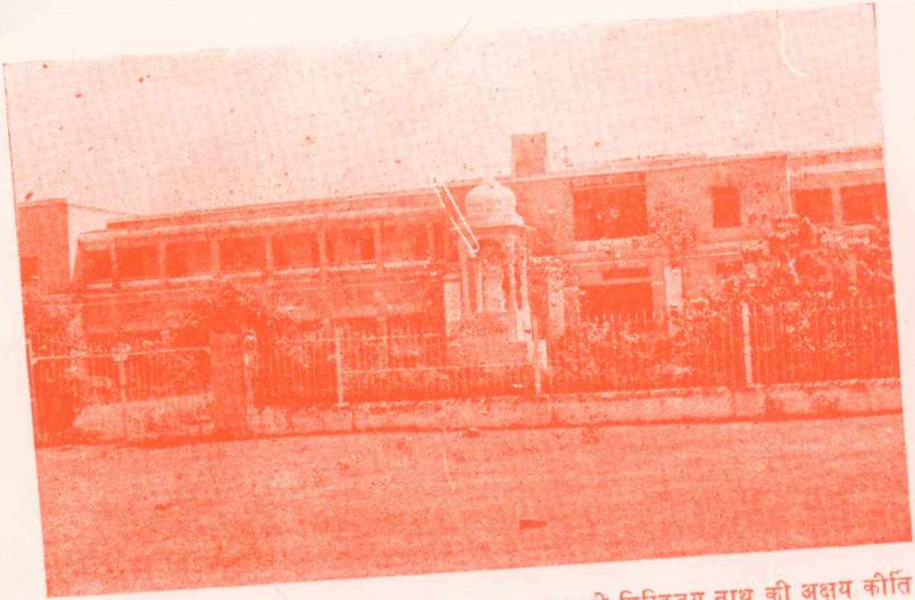

महाराणा प्रताप महाविद्यालय का भव्य भवन : महन्त श्री दिग्विजय नाथ की अक्षय कीर्ति

प्रौद्योगिकीय शिक्षा संस्थान महाराणा प्रताप पॉलीटेकनीक इंस्टीट्यूट

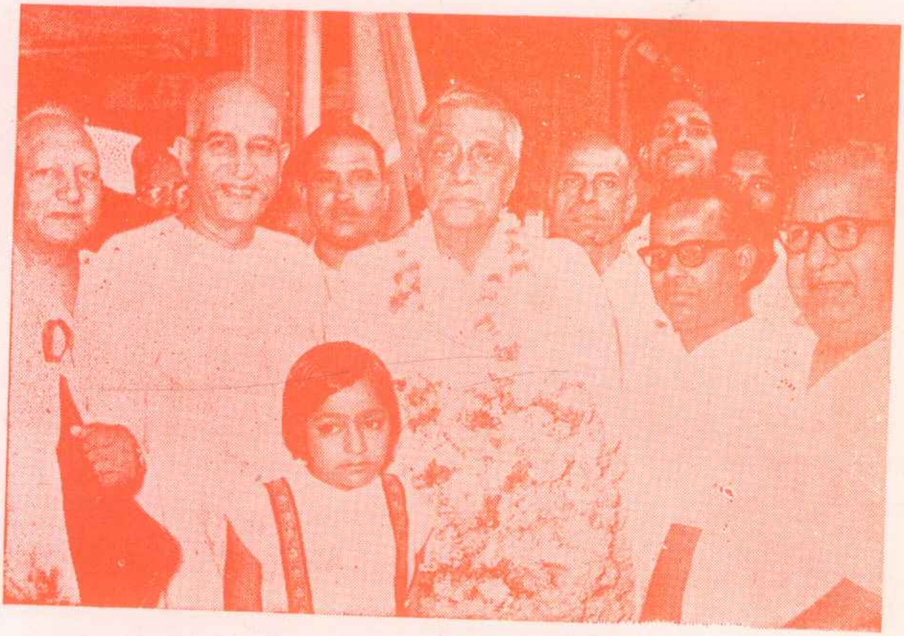

हिन्दू सम्मेलन के आयोजक के रूप में
सम्मेलन के अध्यक्ष डा० शम्भू नाथ बनर्जी के साथ, अक्टूबर १९६१

हिन्दू राष्ट्रप्रति के रूप में ग्वालियर में स्वागत (१९६०-६१)

हिन्दू हितों के लिए सतत् संघर्षशील महन्त
दिग्विजयनाथ जी श्री विशन चन्द सेठ
के साथ लखनऊ कारागार में सन् १९४७ ई०

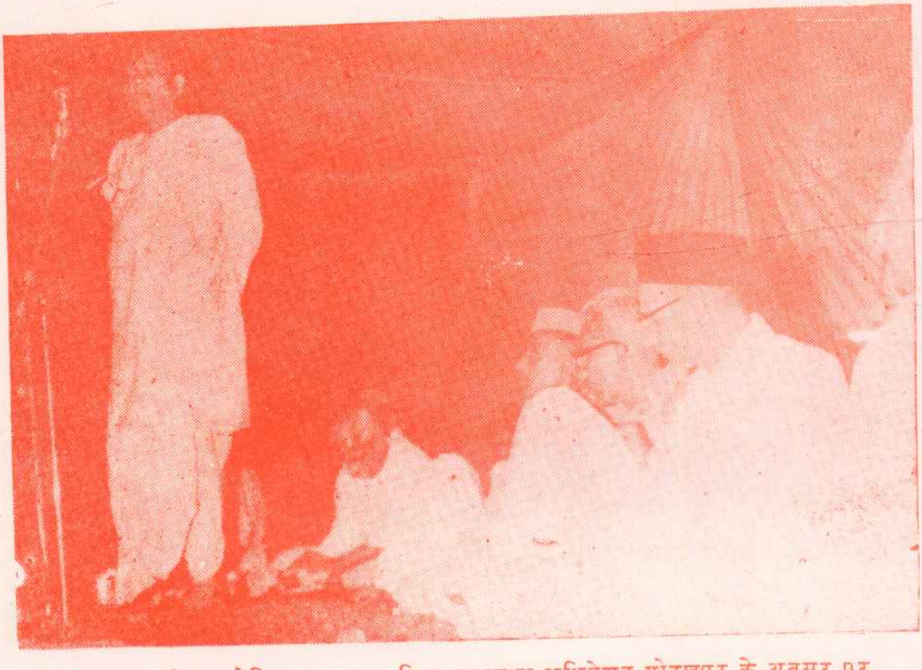

सन् १९४६ में आयोजित अ० भा० हिन्दू महासभा अधिवेशन गोरखपुर के अवसर पर

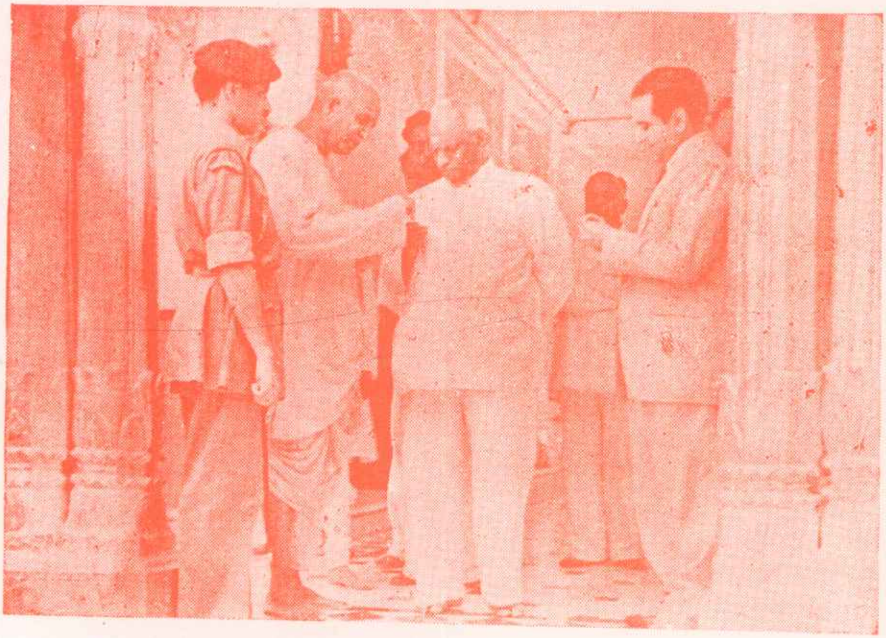

श्री महन्त जी उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल वी० वी० गिरि के साथ

हिन्दू सम्मेलन के अवसर पर भूतपूर्व सेनाध्यक्ष श्री के० एम० करियप्पा के साथ

महन्त श्री दिग्विजयनाथ भारत की दो अन्यतम विभूतियों
(डॉ० राजेन्द्र प्रसाद एवं श्री वी० वी० गिरि) के साथ

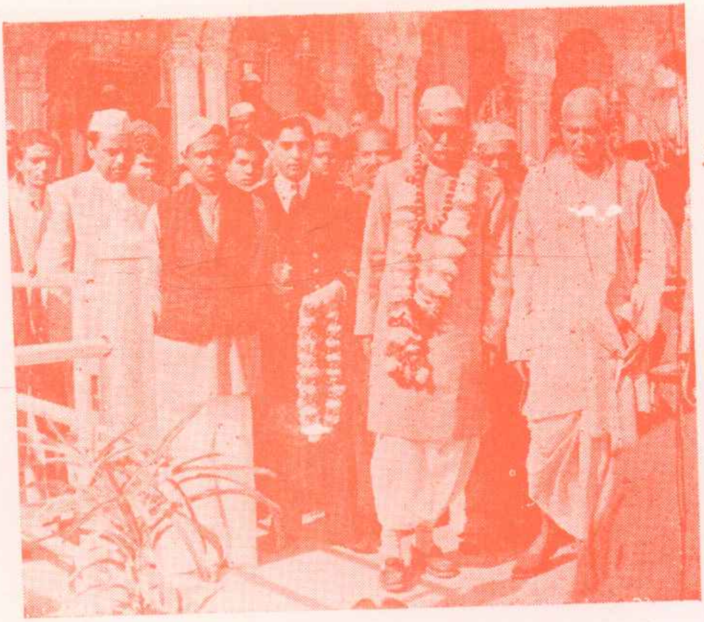

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के साथ श्री गोरक्षनाथ मंदिर में

अपने वैविध्यपूर्ण जीवन के समस्त कार्य–कलापों के लिए ब्रहमलीन महंत श्री दिग्विजयनाथ जी को अपनी दैनन्दिनी पूजा से ही शक्ति प्राप्त होती थी। चित्र में पूज्य महंत जी ध्यान–मुद्रा में दिखाई दे रहे हैं।

अन्तिम झाँकी (चिर समाधि)

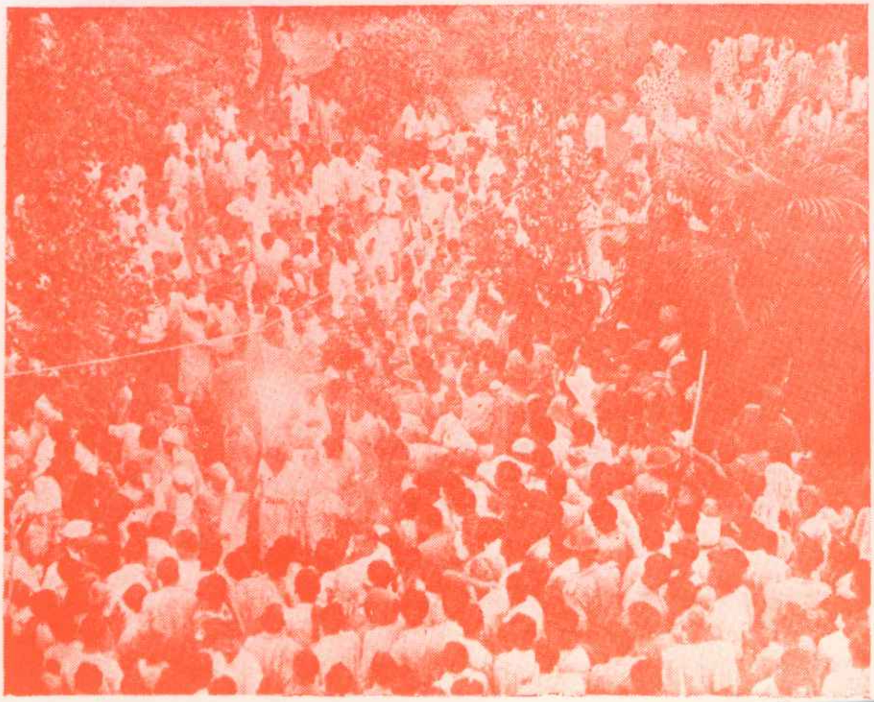

अन्तिम दर्शन के लिए
एकत्र जनसमूह

पूज्य महंत जी का समाधि मन्दिर
निर्माणाधीन

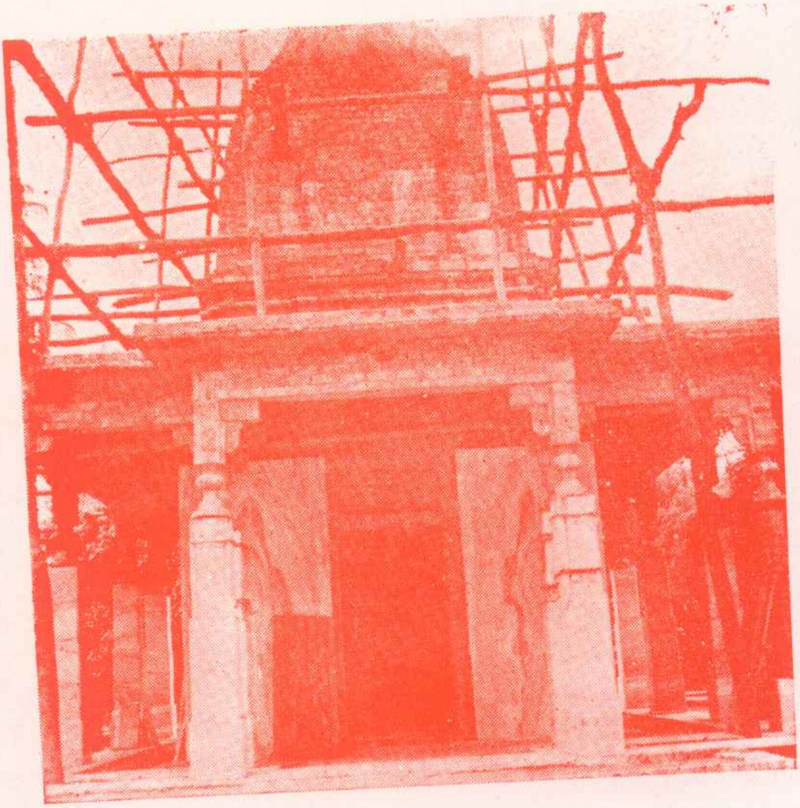

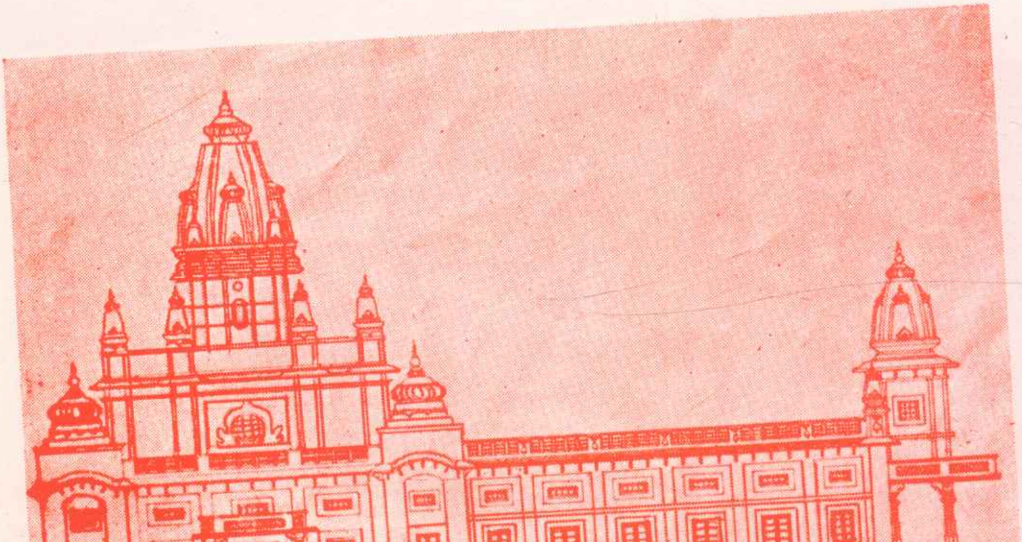

नवीन मंदिर का प्रारूप

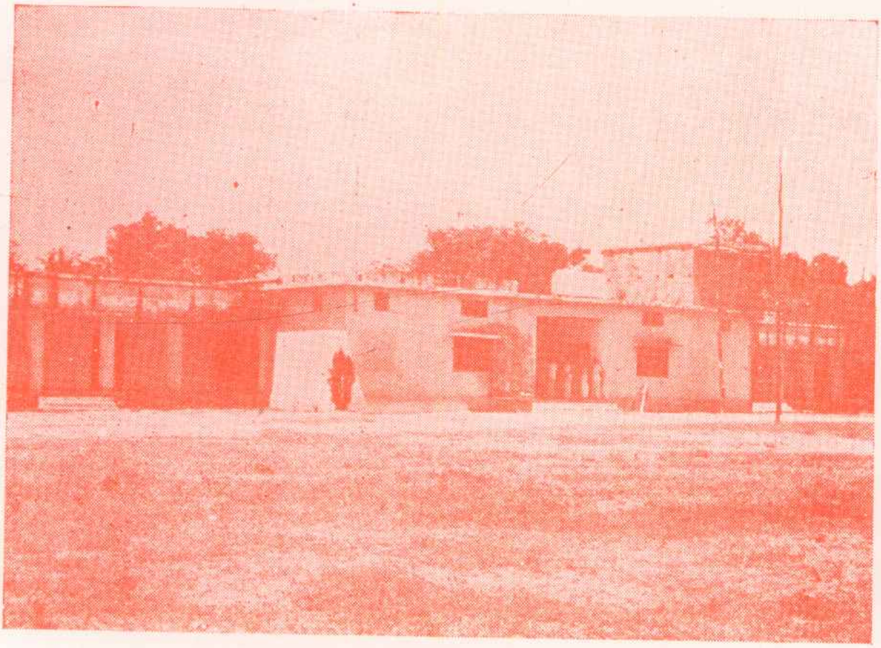

महन्त जी द्वारा स्थापित—श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ

श्री महाराज की पुण्य स्मृति में स्थापित (७ सितम्बर १९७१)
श्री दिग्विजयनाथ धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय

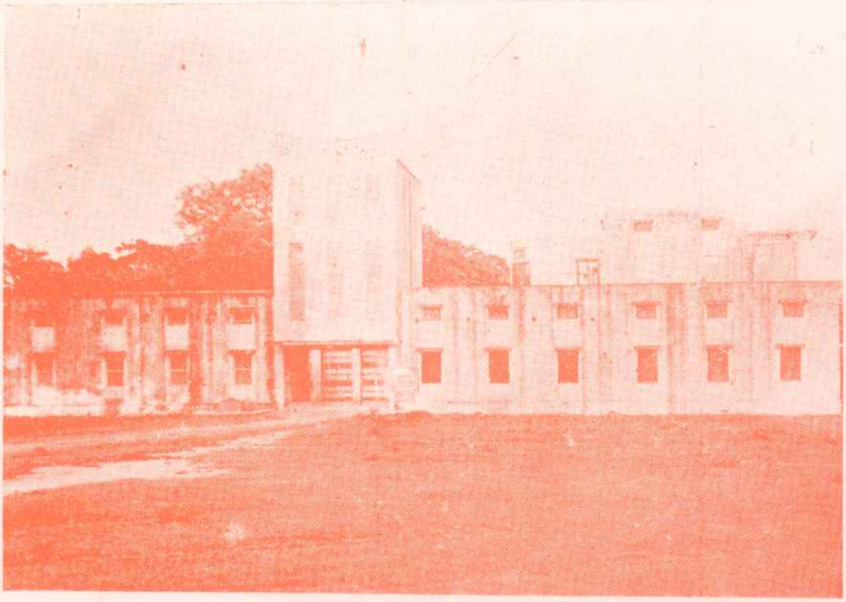

महाराणा प्रताप डिग्री कालेज जिसे महंत जी ने गोरखपुर विश्वविद्यालय को
समर्पित कर अपनी उदारता का परिचय दिया ।

नन्हें-मुन्ने बच्चों की शिक्षा का केन्द्र महाराणा प्रताप शिशु विहार ।

श्री गोरक्षनाथ मंदिर में दर्शनार्थियों की भीड़

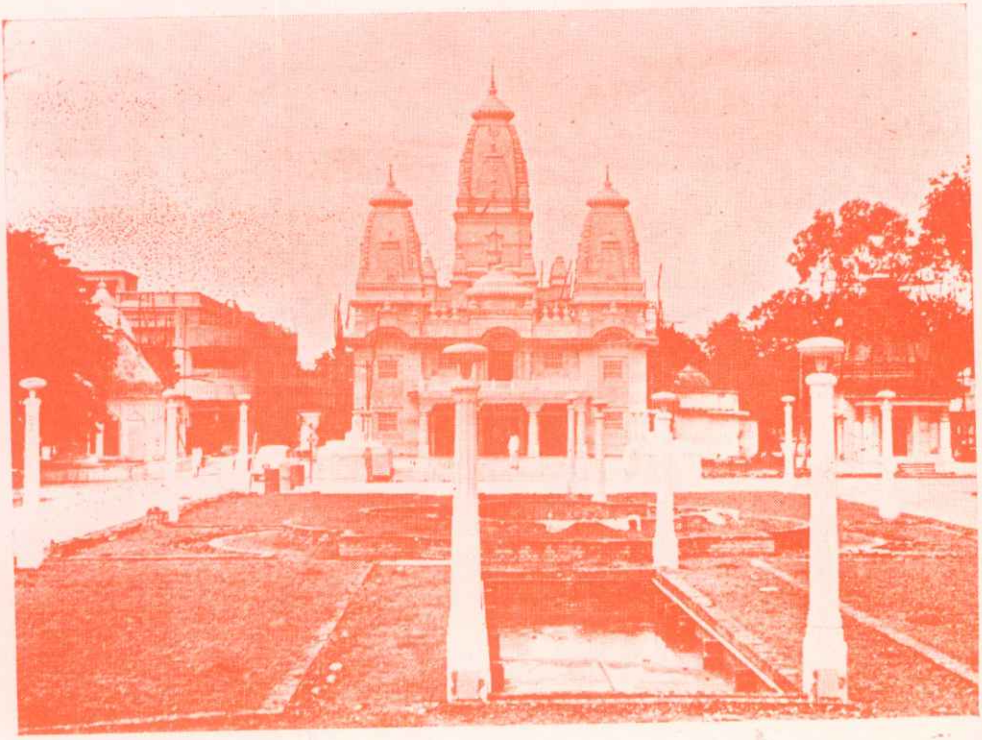

श्री गोरक्षनाथ मंदिर की भव्य झांकी

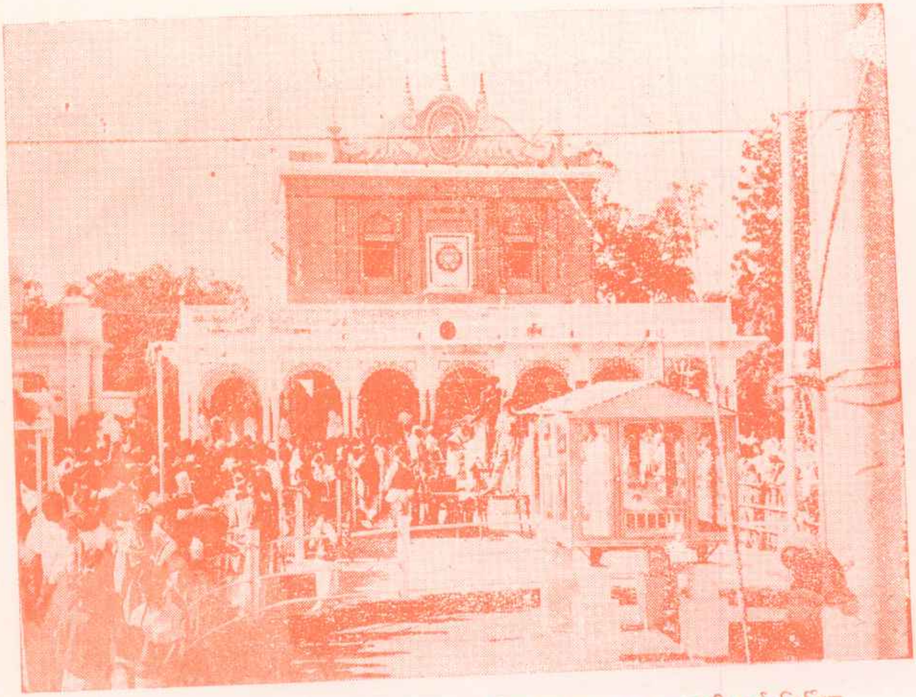

भगवान गोरक्षनाथ का पुराना मंदिर लगभग एक शताब्दी पूर्व निर्मित

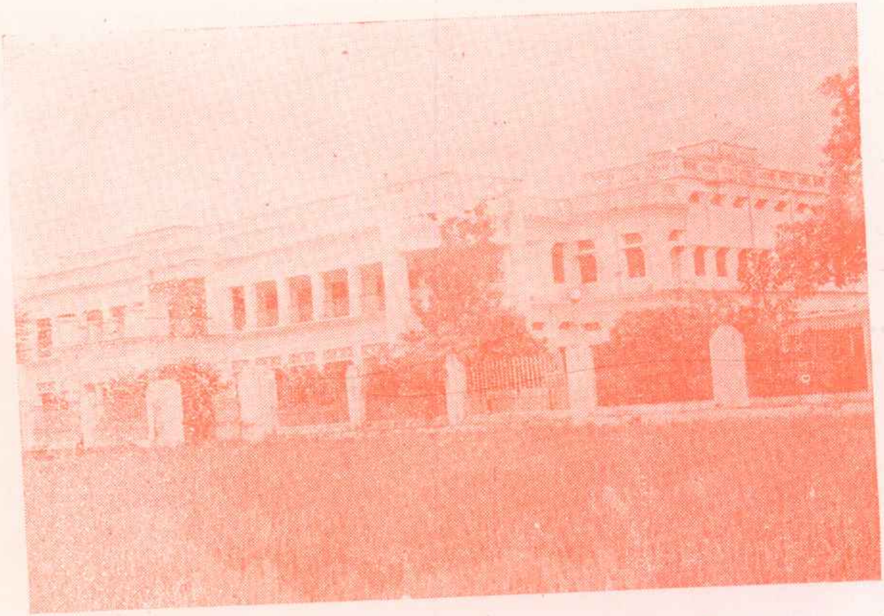

महंत श्री दिग्विजयनाथ की तपस्या एवं साधना का भव्य प्रतीक
गोरक्षनाथ मंदिर का वर्तमान मठ

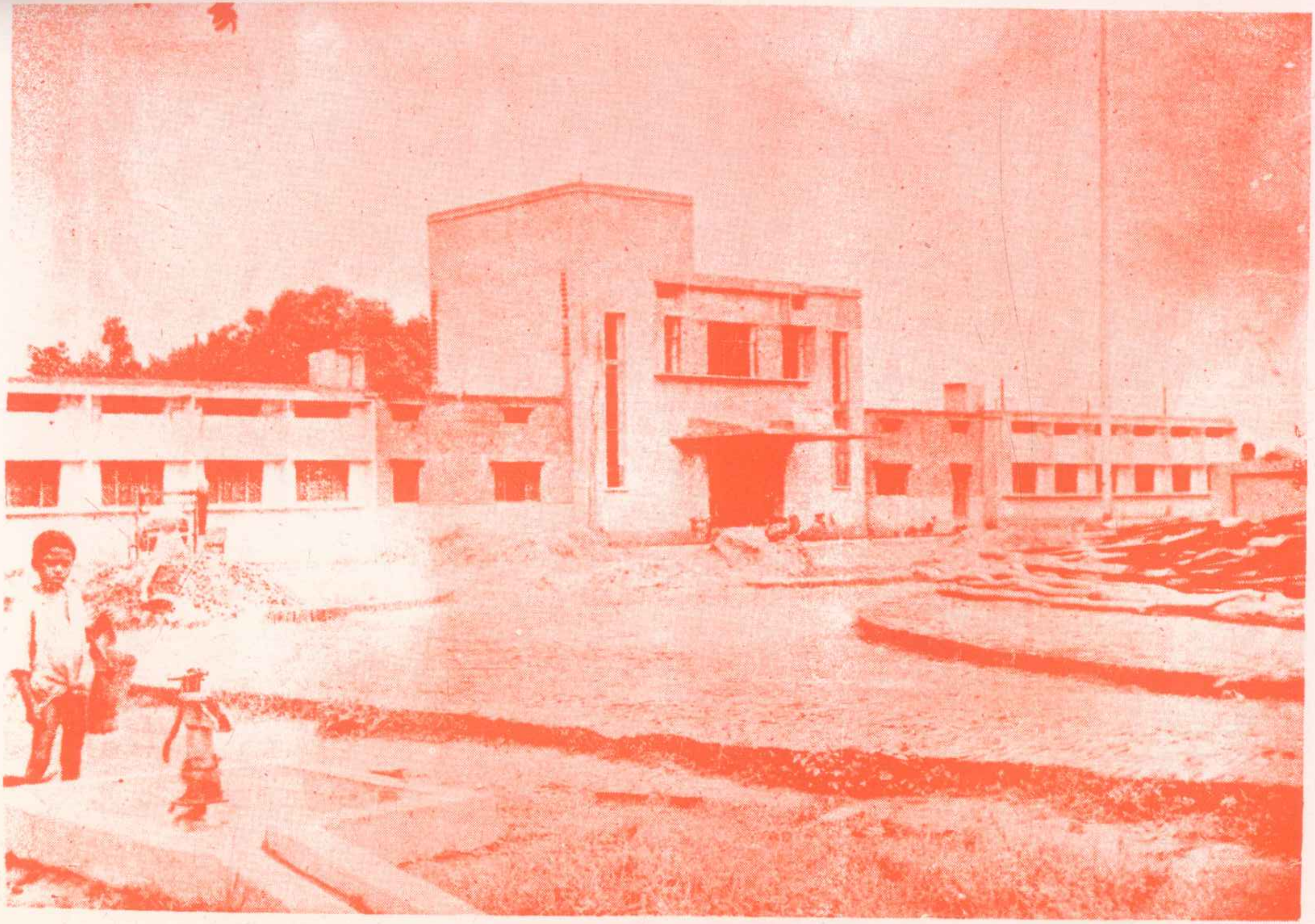

प्रौद्योगिक संस्थान महाराणा प्रताप पालीटेकनीक का नवीन भवन

महंत दिग्विजयनाथ : विचार दर्शन

{इस अध्याय में यह प्रयास किया गया है कि पूज्य महंत जी के विचारों को यथाशक्ति उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किया जाय। उन्होंने धर्म, राजनीति, समाजनीति एवं शिक्षा आदि के सम्बन्ध में अपने विभिन्न लेखों, भाषणों तथा पुस्तिकाओं में अपने विचारों को बहुत ही स्पष्टता के साथ उपस्थित किया है। यह निबंध वस्तुतः उनहीं विचारों का संकलन–मात्र है।–सं०}

ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ बहुमुखी प्रतिभा के सम्पन्न युग–पुरूष थे। उनमें युग की प्रत्येक साँस को पहचानने की अद्भुत क्षमता थी। अपने अगाध चिन्तन के द्वारा उन्होंने युग के समस्त धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजीतिक क्षेत्रों को प्रभावित किया था। उनके सुस्पष्ट विचारों ने अपने युग की समस्त परिस्थितियों का स्पर्श किया था। धर्म, समाज और राजनीति के सम्बन्ध में समय–समय पर उन्होंने अपने विचारों को समाज के सम्मुख उपस्थित किया, जिनमें उनकी प्रतिभा, सम्पन्नता, दूरदर्शिता एवं दार्शनिक–गरिमा के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

धर्म

महन्त जी ने धर्म के गहन सिद्धांतो का भली प्रकार अध्ययन किया था। उसके सनातन स्वरूप से वे पूर्णतया अवगत थे। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक और वर्ग–वाद को प्रोत्साहित करने वाले तथाकथित धार्मिक प्रबंचकों से समाज की रक्षा करने के लिए उन्होंने निरंतर प्रयास किया। उनका कहना था कि 'सत्यार्थ रूप में केवल धर्म ही मानव जाति की रक्षा कर सकता है, क्योंकि धर्म में ही यह क्षमता है कि भौतिकतावादी राजनीति एवं आर्थिक आदर्शों पर आध्यात्मिक या दिव्य परमादर्श को विजयी बनाये।''*

महन्त जी ने धर्म को ही विश्व–शान्ति का एकमात्र साधन माना है। कुंभ के मेले के अवसर पर सनातन धर्म के मौलिक रूप की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि धर्म से ही विश्व–व्यापी अनेकता में आध्यात्मिक एकत्व की स्थापना हो सकती है। विद्वज्जनों के मध्य उन्होंने कहा कि 'व्यक्तिवाद, साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता आदि के निम्नस्तरों से मानव–चेतना को ऊपर उठाकर विश्वात्मकता एवं परम अध्यात्मवाद के चूड़ान्त स्तर पर ले जाना ही धर्म का कर्म है। कुछ मतों, सिद्धान्तों अथवा अभ्यासों के आधार पर मानवता को अनेक परस्पर विरोधी, साम्प्रदायिक तथा विभिन्न मतावलम्बी संघों में विभाजित करना धर्म का हेतु नहीं। मानव जाति के अन्तर्गत धर्म का परमोद्देश्य योग है, वियोग नहीं, प्राणी–प्राणी के बीच के व्यवधान को दूर करना है, न कि और अधिक अन्तर उपस्थित करना। धर्म मनुष्यता को दिव्यता के उच्च सोपान पर ले जाता है। वह नर को नारायण बनाने का अभिक्रम करता है। इस भूमि पर भगवान का ऐसा राज्य स्थापित करना ही धर्म का लक्ष्य है, जिसमें मानवों के व्यक्तिगत और सार्वजनिक सभी व्यापारों में, सत्य एवं एकता, विश्व–प्रेम एवं मैत्री–भाव, विश्व–शान्ति एवं सामन्जस्य, विश्व–आनन्द एवं सौन्दर्य का राज हो।

---

* महन्त दिग्विजयनाथ–विश्वशांति (सम्वत् २०१०) पृ० २

आज मानवता सतत् संग्राम शीला है – चाहे प्रत्यक्ष या परोक्ष में, घोषित या अघोषित रूप में संघर्ष चल रहे हैं। इन संघर्षों के मूल में राजनीतिक और आर्थिक आदर्श हैं, जिनका प्रभाव मानवों की बुद्धि पर व्याप्त है और जो मानव के कर्म परायण जीवन से धार्मिक एवं आध्यात्मिक आदर्श को दूर करते जा रहे हैं। अतएव ये अन्वेषणों पर राजनीतिक और विनाशकारी होते जा रहे हैं। सभ्यता ने संवर्द्धनशील सैनिकता का रूप ग्रहण कर लिया है, जो स्वयं सभ्यता के विनाश का कारण होती जा रही है। प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्दिता, घृणा, भय, संपत्ति और शक्ति के निमित्त संघर्ष और शक्तिशाली द्वारा शक्तिहीनों का पराभव, ये ही आज मानव के पारस्परिक सम्बन्धों में सर्वमान्य हो रहे हैं। फलतः मानवता के मानस से करूणा की कराहें उठ रही हैं।

सत्य तो यह है कि मानव की आभ्यान्तर धार्मिक एवं आध्यात्मिक चेतना को न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, एकत्व, शान्ति और सामन्जस्य की आवश्यकता है– ये आवश्यकताएँ मानव की सत्य प्रकृति में निहित ईश्वरत्व की ही आवश्यकताएँ हैं। किन्तु राजनीति एवं अर्थनीति के पुजारी अपनी आवश्यकतानुसार मानवता के इन आध्यात्मिक आदर्शों को ठकुर–सुहाती मात्र मानते हैं और समय–समय पर राजनीतिक तथा आर्थिक लाभ उठाने के लिए इन आदर्शों को सैनिक नारों का रूप देते हैं। प्रस्तुत समय में विश्व–शांति और विश्व–एकता की बड़ी गरम चर्चायें हैं और आश्चर्य हैकि इस शान्ति एवं इस एकता को सुव्यवस्थित सैनिक साधनों द्वारा लाने की चेष्टा की जा रही है। किन्तु सत्य तो यह है कि आज के राजनीतिज्ञ अपनी–अपनी स्वार्थ–संकीर्ण राजनीतिक और आर्थिक प्रवृत्तियों में ही बुरी तरह फंसे हैं। अतः उनमें क्षमता नहीं कि संसार की समस्याओं को सुलझाा सकें और उन्हें कार्यान्वित कर सकें। क्योंकि इन समस्यायों में मूलतः आध यात्मिक आदर्शों का सन्निवेश है। जन साधारण की आध्यात्मिक चेतना को जागृत करना ही वर्तमान की परम आवश्यकता है।"*

धर्म और योग

योग में ऐकान्तिकता के स्थान पर समष्टिगत विस्तार और क्रियाशीलता का संदेश देकर महन्त जी ने उसे धर्म के सनातन स्वरूप से अलग होने से बचाया। उन्होंने स्पष्ट किया कि "धर्म का परम सूक्ष्म सार ही योग है। योग का अर्थ मिलाप है, जिसमें कर्म परायण जीव का मिलाप परस्पर आत्मा में होता है, व्यक्ति का मिलाप विराट समष्टि विश्व हृदय से होता है। प्रत्येक का मिलाप सभी से होता है– वह मिलाप होता है जिसमे वाह्यतः संसार की सारी विभिन्नतायें उस एक परमात्मा में ओत–प्रोत हो जाती हैं, जो इन सारी विभिन्नताओं में स्वयं अपना अवतार अभिव्यक्त कर रहा है। समस्त ज्ञान, अनुभूतियों एवं अभिकर्म के संयमन द्वारा मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष में इस पूर्ण योग का अभ्यास ही धर्म का अन्तिम उद्देश्य है। सभी मत–मतान्तरो कर्मकाण्डों और संस्थाओं में आध्यात्मिक गुणों का अस्तित्व तभी माना जायेगा, जब वे इस योग–प्राप्ति की ओर मानव को ले जाता है। यह योग ही समस्त विभेद के बीच अभेद की सजीव सक्रिय चेतना है और यही मानव जीवन के सभी पक्षों का विश्व–जीवन के साथ समन्वय है। धर्म व्यवस्था देता है कि हमारे व्यक्तिगत एवं पारिवारिक राजनीतिक एवं आर्थिक, सामाजिक एवं

* महंत दिग्विजयनाथ–विश्वशांति (सं० २०१०) पृ० २–४

साम्प्रदायिक, राष्ट्रीयएवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के सभी कार्य व्यापार इसी योगादर्श से संचाालित एवं आलोकित होते रहें। यहीं योग–धर्म मानव संसार में सच्ची सुख शान्ति, सच्ची माधुरी और मंजुलता का आनयन कर सकता है।''*

हिन्दू धर्म : सिद्धान्त और व्यवहार का सामरस्य

धार्मिक सिद्धानतों की व्यावहारिकता का सर्वाधिक विस्तार महंत जीने हिन्दू धर्म में ही देखा। उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा में ही समस्त धर्मों के मूल तत्त्वों की रक्षा का अनुभव किया था। हिन्दू धर्म के उदात्त स्वरूप की ग्लानि उन्हें कदापि सह्य नहीं थी। समस्त सामाजिक ओर राजनीतिक विचारों के प्रेरणा का प्रधान उत्स उन्हें हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों में ही मिला। हिन्दुस्तान की राजनीति और अर्थ–नीति में यदि हिन्दू सिद्धान्तों की रक्षा न हो, तो इस देश का 'हिन्दुस्तान' अभिदान ही व्यर्थ है। विदेशी शासन–सत्ता की लूट–खसोट एवं प्रपीड़न की नीति तथा मुसलिम सम्प्रदाय को उभाड़कर हिन्दुस्तान में सामाजिक् अस्थैर्य बनाये रखने की भावना को देखकर ही महन्त जी को राजनीति में आना पड़ा। इस धर्म में सिद्धान्त और व्यवहार का जो सामरस्य वर्तमान में है, वह अत्यन्त दुलर्भ है। धर्म की इस उदात्त प्रकृति के कारण ही उन्होंने 'हिन्दू राष्ट्रवाद'' को हिन्दुस्तान की प्रमुख राष्ट्र–भावना घोषित की और अखण्ड हिन्दुस्तान की रक्षा के लिए शासन का विरोध किया। हिन्दू राष्ट्रवाद, राष्ट्र की आन्तरिक एवं विदेशी नीति, राष्ट्र के विभिन्न राजनीतिक दल और उनकी नीतियाँ, राष्ट्र भाषा, राष्ट्र लिपि, शिक्षा–पद्धति आदि समस्त विषयों पर विचार करते हुए उन्होंने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को ही केन्द्र–बिन्दु के रूप में रक्खा।

धर्माधृत राष्ट्रीयता : हिन्दू राष्ट्रीयता

हिन्दू राष्ट्रवाद की विस्तृत व्याख्या करते हुए उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता सम्बन्धी अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। वे 'हिन्दू राष्ट्रीयता' को ही पूर्ण एवं सच्ची राप्ट्रीयता मानते थे। इस मान्यता के विरोध में प्रस्तुत किये जाने वाले तर्कों का खण्डन करते हुए उन्होंने कहा था कि ''हिन्दू राष्ट्र के विरोध में एक तर्क यह दिया जाता है कि भारत–विभाजन के पश्चात् मुसलमानों से पृथक किसी हिन्दू हित का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि भारत में हिन्दू ८० प्रतिशत है। इस कारण शासन पर निश्चय ही हिन्दू संस्कृत की छाप लगेगी। अतः इतनी विशाल बहुसंख्यक जाति को अपने हितों की रक्षा के लिए एक पृथक साम्प्रदायिक दल बनाने की कोई आवश्यकता नहीं हैं।

दूसरी ओर यह भी प्रचार किया जाता है कि अब कांग्रेस में मुसलमान सम्मिलित नहीं हो रहे हैं। और सरदार पटेल और श्री पुरूषोत्तमदास टण्डन एक मजबूत नीति को आश्रय दे रहे हैं। फिर केवल 'हिन्दू' शब्द पर इतना अनावश्यक हठ करके संघर्ष खड़ा करने की क्या आवश्यकता है ? इससे कांग्रेस में ही सम्मिलित होकर सरदार पटेल और टण्डन जी के हाथ मजबूत करना अधिक लाभप्रद है।

---

* मन्ति दिग्विजयनाथ–विश्वशांति, पृ० ४–५।

हम लोगों को यह भी सलाह दी जाती है कि इस बीसवीं शताब्दी में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पर आधारित दल असामयिक हैं। अब तो उन्हीं दलों को राजनीति में भाग लेना चाहिए, जिनका आधार पूर्णतया आर्थिक कार्य–क्रम पर ही निर्भर करता हो। अतः हिन्दू महासभा को अपना साम्प्रदायिक रूप छोड़ कर "आर्थिक कार्य–क्रम" के आधार पर ही असाम्प्रदायिक दल के रूप में कार्य–रत होना चाहिए। इन सब तर्कों के साथ–साथ हिन्दू महासभा के कार्यकर्ताओं को यह भय भी दिखाया जाता है कि "हिन्दू महासभा" पर प्रतिबन्ध लगा दिया जायेगा। पिछले दो वर्षों की घोर दमन–नीति का उदाहरण सामने रखते हुए सत्तारूढ़ दल "हिन्दू महासभा" को कुचलने के लिए उन उपायों को अपनाने के लिए भी संकेत करता है, जो नृशंसता में हिटलरशाही और हैलेटशाही को भी हरा दें। तब फिर हिन्दू महासभा इन भ्रामक प्रचारों और धमकियों के होते भी हिन्दू राष्ट्र की क्यों स्थापना करना चाहती है ?

हिन्दू राष्ट्रीयता ही हिन्दू महासभा का मूल स्वर

हिन्दू महासभा के इस दृढ़ निश्चय का एक मात्र कारण उसकी हिन्दू राष्ट्रीयता एवं उसके वैज्ञानिक और सांस्कृतिक आधार के प्रति अटूट निष्ठा है, क्योंकि हमारा कांग्रेस की तरह यह विश्वास नहीं कि भारत की राष्ट्रीयता एक रासायनिक घोल है, जो हाईड्रोजन और आक्सीजन के सम्मिश्रण से पानी के समान स्वतः उत्पन्न हो जाता है। हमारा विश्वास है कि न तो ऐसी खिचड़ी राष्ट्रीयता ने भारत अथवा संसार के अन्य किसी देश में जन्म लिया और न भविष्य में ही इसके जन्म की कोई सम्भावना है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असम्भव है।

राष्ट्रीयता का निर्माण विदेशी राष्ट्रों की संस्कृति, सभ्यता, मनोभावना, एवं पृथक–पृथक महत्वाकांक्षाओं के समिश्रण से कभी नहीं होता। 'राष्ट्र' शब्द की परिभाषा ही एक सांस्कृतिक इकाई है। किसी भूखण्ड में निवास करने वाले उस समूह को ही राष्ट्र कहा जाता है, जो उस भू–खण्ड की संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, इतिहास आदि को मानता हुआ परस्पर एकता की अनुभूति रखता हो।

कांग्रेस की भ्रामक प्रादेशिक राष्ट्रीयता और मुस्लिम–पूजा की नीति ने ही इस देश में मुस्लिम सम्प्रदाय को इतना अधिक प्रोत्साहन दिया कि वह अन्ततः हमारी परम पवित्र मातृभूमि को, जिसे प्रत्येक राष्ट्रवादी भक्त पूज्य समझता रहा और जिसकी स्वतंत्रता एवं अखण्डता के लिए शताब्दियों तक भीषण संघर्ष करता रहा, बलि की वेदी पर चढ़ाने में सफल हो गया। कांग्रेस की ५० वर्षों की भयंकर भूलों के दुष्परिणामों का अन्त केवल देश के विभाजन के रूप में ही नहीं हुआ, वरन् उसके पश्चात् भी कांग्रेस सरकार की मुस्लिम–पूजा की नीति के कारण, जो अब पाकिस्तान–पूजा के रूप मे धर्म–निरपेक्षता के नारे के साथ आरम्भ हुई है, असंख्य हिन्दू पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों को बलिदान होना पड़ा और आज भी हिन्दू, जो किसी प्रकार अपना जीवन बचा कर भारत आने में सफल हुए, भिखारी जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कांग्रेस सरकार ने अपने जेल–यात्री साथियों को 'राजनीतिक पीड़ित' कह कर बड़े–बड़े ईनाम और जागीरें बाँटी हैं, परन्तु इन सच्चे देश–भक्तों को, जिन्हें भारत–विभाजन के कारण अपना सर्वस्व अर्पण करना पड़ा, पुनर्वासित करने की कोई व्यवस्था अभी तक नहीं हो पाई।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे राष्ट्र का स्वाभिमान और अपनत्व जागृत नही हुआ। हमारी राष्ट्रीय संस्कृति, भाषा, सभ्यता, परम्परा, इतिहास, मनोभावना एवं राष्ट्रीय महत्वकांक्षा को दमन करने वाली ब्रिटिश सरकार द्वारा संचालित पुरानी नीति नहीं बदली। आज भी भारत के कोने–कोने में हमें अपमानित करने वाले विदेशियों के चिन्ह एवं अत्याचारी शासकों के स्मारक बने हुए दिखाई देते हैं। कुछ कांग्रेसी नेताओं को छोड़ कर देश पर बलिदान होने वाले हजारों देश–भक्तों के स्मारक के लिए कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता, उनकी स्मृति में दो शब्द भी सुनायी नहीं देते।

पाकिस्तान बनने के पश्चात् भी भारत में निवास करने वाले ४ करोड़ मुसलमानों की नीति नहीं बदली और हमारी कांग्रेसी सरकारा सेक्युलरिम के नाम पर उनके राष्ट्र–द्रोह को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्र के स्वाभिमान, हिन्दी भाषा, भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन इतिहास का दमन करने पर तुली है। इसी कारण स्वतंत्रता की भावना भारत के जन–समूह में प्रविष्ट नहीं हो सकी, यह केवल कुछ व्यक्तियों के उपयोग की ही वस्तु बन कर रह गई।''*

हिन्दू राष्ट्र : स्वरूप और सीमायें

हिन्दू राष्ट्र के स्वरूप और सीमाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि ''हिन्दू राष्ट्र में किसी पर अत्याचार नहीं होगा। इस देश में रहने वाले प्रत्येक निवासी के साथ न्याय होगा। प्रत्येक नागरिक को धर्म की पूर्ण स्वतंत्रता होगी, परन्तु राष्ट्र के प्रत्येक निवासी को यहाँ की संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, इतिहास, साहित्य और राष्ट्र–वीरों को सम्मान की दृष्टि से देखना होगा। उन्हें विदेशी होने की मनोवृत्ति औ विश्वासघात को त्यागना पड़ेगा।

परन्तु, यदि आज भी भारत के मुसलमान अपनी विदेशी मनोवृत्ति रखते हुए विदेशी संस्कृति, सभ्यता, भाषा, वेष–भूषा, आदि को ही अपनाते हैं, विदेशी आक्रमणकारियों एवं विश्वासघात करने वालों को अपना आदर्श पुरूष मानते है, तो वे अपनी देशभक्ति के ही अनुपात से अधिकारों की भी आशा रक्खें।

हिन्दू महासभा यह भूलने को तैयार नहीं कि आज के बचे हुए भारत में रहने वाले चार करोड़ मुसलानों ने ही पाकिस्तान के लिए सबसे अधिक आन्दोलन किया था और आज भी उनकी मनोवृत्ति बदली नहीं है।

आज भी काश्मीर तथा अन्य प्रश्नों पर पाकिस्तान से मतभेद है। हम भारतीय मुसलमानों पर अन्ध–विश्वास करके, उन्हें पुनः राजद्रोह करने का अवसर प्रदान करना नही चाहते।

कांग्रेस सरकार को भी स्वतः हैदराबाद की पुलिस कार्यवाही के समय केवल हिन्दू सेना पर ही निर्भर करना पड़ा था। मद्रास धारा–सभा में एक प्रश्न के उत्तर में बताया गया कि मुसलमान डी० एस० पी० का स्थानान्तरण इसलिए किया गया कि युद्ध मुस्लिम शासक से हो रहा था, अतः हम मुसलमान अधिकारी पर विश्वास नहीं कर सकते थे। फिर यदि हम संदेहात्मक लोगों से सचेत रहने की सम्मति सरकार को दें, तो इसमें कौन सा अपराध है ?

---

* महन्त दिग्विजयनाथ–हिन्दू राष्ट्र क्यों ? पृ० १ से ४ तक

जब तक मुसलमान अपनी राष्ट्र विरोधी मनोवृत्ति को त्याग कर शुद्ध राष्ट्रवादी नहीं बनते, उस समय तक हिन्दू महासभा उन्हें केवल जीवन, सम्पत्ति और धर्म की सुरक्षा का ही वचन दे सकती है।

हमारा विश्वास है कि यदि कभी पाकिस्तान से युद्ध करने को बाध्य होना पड़ा तो केवल हिन्दू ही भारत के लिए एक सबल रक्षा–पंक्ति का निमार्ण करेंगे।

कहा जाता है कि सैद्धान्तिक रूप से यह देश हिन्दू राष्ट्र ही है और क्रियात्मक रूप से भी इसे मष्तिष्क में रखा जा सकता है, परन्तु हिन्दु राष्ट्र की घोषणा से विश्व की आँखों में भारत का सम्मान गिर जायेगा।

यह धारणा पूर्णतया असत्य है कि सेक्युलर राष्ट्रीयता के कारण भारत ने विदेशों में अत्यधिक यश प्राप्त किया है। कश्मीर और हैदराबाद की समस्याआं पर हम देख चुके हैं कि विश्व के राष्ट्रों की सहानुभूति हमारी अपेक्षा पाकिस्तान के साथ अधिक है।

हिन्दुत्व ही भारतीय राष्ट्रीयता का मूलाधार बन सकता है।

आज हिन्दुत्व ही वह शक्ति है जो इस विस्तृत देश की विभिन्न जलवायु वाले प्रदेशों के विभिन्न–भाषा–भाषी ४० करोड़ जनता को एक सूत्र में बाँध सकती है।

आज हम देख रहे हैं कि हिन्दुत्व से हीन होने के कारण स्वतःकांग्रेस के ही नेता शंकरराव देव, गाडगिल, पाटिल, पट्टाभिसीतारमैया आदि भाषानुसार प्रान्तों के विभाजन के लिए अपने भाइयों से संघर्ष की चुनौती कर रहे हैं। मैं पूछता हूँ कि मद्रास का तमिल भाषा–भाषी हिन्दू, लायलपुर के पंजाबी भाषा–भाषी हिन्दू से, जिसकी रहन–सहन भी परस्पर भिन्न है, स्नेह और प्रेम का व्यवहार क्यों करता है ? उसके इस प्रेम का कारण केवल भौगोलिक नहीं है। हम देखते हैं कि जब पाकिस्तान बनने के कारण वहाँ से हिन्दू मार–मार कर भगाये गये और जब इस देश में आये, तो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक सद्भावना और प्रेम की लहर दौड़ गई भारत के विभिन्न प्रान्तों में विभक्त होते हुए, तथा भाषा और रहन–सहन में भिन्न होते हुए भी, ऐसी कौन सी शक्ति है, जो समस्त हिन्दुओं को एक सूत्र में जोड़ देती है ? यह हिनदुत्व की ही विशाल शक्ति है। हमारा यह विश्वास है कि भारत में अनेक आक्रमणकारियों से संघर्ष करने के पश्चात् भी जो हिन्दुत्व आज जीवित है, उसका मूल कारण हमारी अपनी संस्कृति, सभ्यता, परम्परा और इतिहास आदि राष्ट्रीय तत्वों के प्रति अटूट निष्ठा है और आज भी जब तक हम राष्ट्रीयता के उपयुक्त मौलिक तत्वों पर बल न देंगे, तबतक हमारा राष्ट्र सबल न हो सकेगा।

हमारे देश के मुसलमानों में एक विदेशी धर्म अपनाने के कारण विदेशी राष्ट्रों के प्रति स्नेह और निष्ठा उत्पन्न हो गई थी, जिसे ब्रिटिश सरकार ने प्रोत्साहित करके उन्हें देश के प्रति शत्रुता रखने के लिए प्रेरित किया। क्या आज स्वाधीन भारत में भी हम अपने राष्ट्र के किसी भी नागरिक के ह्रदय में ऐसी विदेशी भावनाओं को जीवित रहने देना नहीं चाहते, जो उन्हें पुनः अपने देश के साथ विश्वासघात करने को प्रोत्साहित करे ?

यदि हमने इस प्रकार की भूल को दोहराकर पुनः इतिहास की आवृति की तो शताब्दियों के घोर बलिदान के पश्चात् प्राप्त की हुई स्वतंत्रता किसी भी क्षण संकट में पड़ जायेगी।

हिन्दू महासभा चाहती है कि हिन्दुस्तान के समस्त राजनीतिक दल हिन्दू राष्ट्र के तथ्य को अपना चरम सत्य और चरम उद्देश्य स्वीकार करें। फिर देश के सम्मुख अपने कार्यक्रम रखें। जैसे इंग्लैण्ड में अंग्रेजी राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखना सभी राजनीतिक संस्थाओं का समान उद्देश्य है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान में हिन्दु राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखना सभी राजनीतिक संस्थाओं का समान उद्देश्य होना चाहिए। एक बार यदि यह स्वीकार कर लिया गया तो वह दल चाहे आर्थिक अथवा सामाजिक किसी कार्यक्रम पर निर्भर हो, वह राष्ट्र के लिए घातक नहीं हो सकता।

हिन्दू राष्ट्रवाद और भारत की अखण्डता

इस प्राचीन भारत–भूमि की अखण्डता का प्रश्न महासभा के लिए एक शाश्वत उद्देश्य और विश्वास का प्रश्न है। अत्यन्त प्राचीन काल से सिन्धु नदी हमारी सीमा–रेखा का निर्माण करती आई है और इसी नदी से हमारा राष्ट्रीय नामकरण हुआ है। फिर केवल इसलिए कि नेहरू और जिन्ना सहमत हो गये, हम अपनी सीमा–रेखा सतलज तक संकुचित करने के लिए प्रस्तुत नहीं।

हिन्दू महासभा भारत के विभाजन को एक समाप्तप्राय अध्याय नहीं मानती। यह जीता–जागता घाव है। ऐतिहासिक आधारों के अतिरिक्त भी हमारी सीमाएँ हमारी रक्षा के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। दर्रा खैबर का मार्ग बिना अपने हाथ रक्खे इस देश की रक्षा नहीं की जा सकती। हमें यह तथ्य भली–भाँति स्मरण है कि पाकिस्तान स्थापित हो जाने से लाखों हिन्दू अपने पूर्वजों के स्थान से निकाल दिये गये। इसलिए हमारा प्रथम कार्य यह है कि हम भारत के खण्डित भागों को शीघ्र प्राप्त करें और साथ ही सब हिन्दुओं को, जो अपनी मातृभूमि से बलपूर्वक निकाल दिये गये हैं, उनके पुराने घरों में बसायें।

"तुम यह कार्य कैसे कर सकते हो ?" पहला प्रश्न जो पूछा जाता है वह यह है कि 'क्या तुम पाकिस्तान से युद्ध छेड़ोगे।"

हाँ ! अवश्य ! यदि ऐसी आवश्यकता आ पड़ी ! क्या हम निजाम से नहीं लड़े ? क्या हम कश्मीर के प्रश्न पर पाकिस्तान से नहीं लड़ रहे हैं ? तब यदि हमारे समस्त शान्तिपूर्ण एवं वैधानिक प्रयत्न असफल हो जाँय, और अन्त में हमें युद्ध ही करना पड़े, तो इसमें कौन सा पाप है? हम इस समस्या को उसी प्रकार हल करेंगे, जैसे अन्य राष्ट्रों ने ऐसी समस्याओं को हल किया है।"

हमें अपने कार्य–क्रम की क्रियात्मकता में तनिक भी सन्देह नहीं। यदि राष्ट्र ने अपने खोये हुए भूभाग को पुनः प्राप्त करना निश्चत कर लिया है, तो विश्व में ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो इसे रोक सके। यदि मुट्ठी भर यहूदी शताब्दियों की छोड़ी हुई अपनी पुण्य भूमि को, मुसलमानों की संगठित शक्ति के होते हुए भी प्राप्त करने में सफल हुए, यदि आयरलैण्ड कोरिया और बर्लिन के निवासी अपने राष्ट्र की अखण्डता के लिए प्रयत्नशील हैं, तो चालीस करोड़ जनसंख्या पर आधारित एक बलशाली राष्ट्र क्या अपने छीने हुए भूभाग को वापस नहीं करा सकता ? परन्तु, इस कार्य के पूर्व हमें भारत को अत्यन्त सबल हिन्दू राष्ट्र बनाना होगा, जिसमें एक भी नागरिक अपने राष्ट्र के प्रति विद्रोह एवं विश्वासघत करने वाला न हो, तभी हम अपने लक्ष्य में सफल होंगे।*

---

* महंत दिग्विजयनाथ–हिन्दू राष्ट्र क्यों पृ० १२ से १६ तक।

सेक्युलर (धर्म निरपेक्ष) राज्य क्या है ?

भारतीय संविधान में देश को सेक्युलर राज्य घोषित किया गया है। किन्तु इसका स्वरूप बड़ा ही भ्रामक रहा है। महन्त जी ने सेक्युलर की व्याख्या करते हुए कहा है कि "कांग्रेस सरकार ने अभी तक सेक्युलर राज्य की कोई निश्चित परिभाषा नहीं की, परन्तु व्यवहारतः वह सेक्युलर राज्य का अर्थ, अरबी, पारसी, तुर्किस्तानी आदि विदेशी संस्कृति एवं सभ्यता का भारतीय संस्कृति के साथ समन्वय, पाकिस्तान के प्रति दब्बू नीति, राष्ट्र द्रोह करने पर भी मुसलमानों के साथ दया आदि करना, लगाती है। परन्तु जिन विदेशी देशों– अमेरिका, इंग्लैड, फ्रांस आदि–के आधार पर नेहरू सरकार ने भारत का संविधान बनाया है, उनमें से किसी भी राष्ट्र की नीति इतनी अनिश्चित एवं दब्बूपने की नहीं है। अमेरिका, इंग्लैड, फ्रांस आदिसभी राष्ट्रों की अपनी संस्कृति एवं भाषायें है। वे अपने देश के पंचमागियों तथा पड़ोस के किसी भी विरोधी राष्ट्र के प्रति दब्बू नीति का व्यवहार नहीं करते, परन्तु फिर भी नेहरू सरकार उन्हें सेक्युलर मानती है। फिर यह बात समझ में नहीं आती कि भारत में यहाँ के सांस्कृतिक विकास एवं अटूट देश–भक्ति को साम्प्रदायिक क्यों कहा जाता है ? जब हिन्दू महासभा अपने देश में छिपे पंचमाँगी, एवं अने देश के पड़ोसी विरोधी पाकिस्तान के प्रति कड़ी कार्यवाही की मांग करती है, तो उसके नेताओं को प्रतिक्रियावादी कह कर उन्हें जेलों में क्यों ठूसा जाता है ?

आज कोरिया का युद्ध चल रहा है। क्या अमेरिका एवं इंग्लैड की किसी संसथा एवं व्यक्ति को, जो कोरिया से कम्युनिष्टों को खदेड़ने अथवा अपने राष्ट्र को कम्युनिष्ट पंचमांगियों से सचेत रहने की मांग करे, तो अमेरिका व इंग्लैड की सरकार उस संस्था अथवा व्यक्ति को सेक्युलरिज्म का विरोधी अथवा साम्प्रदायिक कहने का दुःसाहस करेगी ? यदि नहीं, तब फिर हिन्दुस्तान में यदि हिन्दू महासभा कश्मीर युद्ध को जीतने अथवा पाकिस्तान में निवास करने वाले भारतीयों की रक्षा के लिए पाकिस्तान के साथ कड़ाई की मांग करती है, तो उसके नेताओं को राष्ट्र के शत्रुओं को प्रसन्न करने के लिए बन्दी क्यों बनाया जाता है?

कांग्रेस सरकार द्वारा व्यवहृत सेक्युलरिजम की यह मनगढ़न्त परिभाषा संसार के किसी भी राष्ट्र ने स्वीकार नहीं की है। यदि आज हमारा अभागा भारत पं० नेहरू की तानाशाही के सामने सर झुकाकर उनकी पुरानी मुसलिम–पूजा–नीति को ही सेक्युलरिम के नाम पर स्वीकार करता है, तो निःसन्देह इस देश का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा।

सेक्युलर राज्य को नेता इन मौलिक मत–भेदों को छिपाने के लिए, हिन्दू राष्ट्र का विकृत एवं भ्रामक स्वरूप दिखाकर, जनता को अन्धकार में रखने का प्रयत्न कर रहे है।

'सेक्यूलर राज्य' के नारे को जन्म देने वाले पं० नेहरू ने 'हिन्दू राष्ट्र' को किसी सम्प्रदाय अथवा वर्ग विशेष का राज्य बतलाया, जिसमें शासक वर्ग के अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदाय एवं वर्ग को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। कुछ काल पश्चात् हमारे प्रान्त के मुख्यमंत्री श्री गोविन्द बल्लभ पंत तथा सरदार पटेल ने इसे महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों का राज्य कहा और कभी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की दुहाई देने वाले, नासिक कांग्रेस के निर्वाचित अध्यक्ष श्री पुरूषोत्तम दास टंडन ने हिन्दू राष्ट्र को किसी विशेष धार्मिक पुस्तक पर आधारित राज्य समझते हुए देश के लिए

हानिकारक बतलाया। कोई–कोई कांग्रेसी नेता हिन्दू राष्ट्र को किसी सम्प्रदाय विशेष–सनातनी, आर्यसमाजी, जैनी आदि –का राज्य समझ कर , उसे मुस्लिम विरोधी होने की कल्पना करते हैं, और इन कारणों से हिन्दू राज्य को असामयिक और हानिकारक बताते हैं।

आज कांग्रेस के नेता हिन्दू राष्ट्र के स्वरूप को चाहे कितना ही विकृत रूप देकर सेक्युलर राज्य का ढोल पीटते रहें, किन्तु हमारा तो विश्वास है कि इतिहास की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि १५ अगस्त की मध्य रात वैदिक मंत्रों के साथ दिल्ली की राजधानी में जिस राज्य का जन्म हुआ, वह एक शुद्ध हिन्दू राज्य ही था। चाहे पं० नेहरू इसे देख न सके हों, परन्तु यह सही है कि पंजाब में जहाँ हिन्दू और मुसलमान पिछले हजार वर्षों से एक साथ रहते थे, एक विद्युत की लहर दौड़ गई और जिस प्रकार विद्युत पानी से आक्सीजन और हाईड्रोजन दोनों तत्वों को अलग कर देती है, उसी प्रकार लाखों हिन्दू पूर्वी पंजाब में और लाखों मुसलमान पश्चिमी पाकिस्तान में अलग–अलग जा बसे।

क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यदि भारत हिन्दू राज्य नहीं था तो पाकिस्तान के हिन्दू वहाँ के मुसलमानों द्वारा मारे जाने पर भारत में ही शरण के लिए क्यों आये ? वे अफगानिस्तान, तिब्बत ईरान और अरब क्यों नहीं चले गये ? उत्तर स्पष्ट है कि भारत में इसलिए आये कि वे जानते थे कि भारत ही ऐसा देश है, जहाँ हम शरण पा सकते है। यही हिन्दूओं की पितृभूमि और पुण्यभूमि है, उनका इस देश से परम्परागत सम्बन्ध रहा है। जब–तक इस भूमि पर हिन्दू बसे हुए हैं, उन्हें कोई यहाँ से हटा नहीं सकता।

अवस्था यहाँ तक आ गई कि सेक्युलरशाही का ढोल पीटने वाली नेहरू सरकार ने स्वतः विशेष योजना द्वारा पूर्वी पंजाब के समस्त मुसलमानों को पाकिस्तान भेजा और पश्चिमी पंजाब और सीमा प्रान्त के समस्त हिन्दुओं को बुलाया। जिस जनसंख्या–परिवर्तन के प्रस्ताव को पं० नेहरू अपनी हार समझते थे, अन्त में विवश होकर उसका छोटा रूप उन्हें मानना ही पड़ा। फिर यदि भारत हिन्दू राष्ट्र नहीं था, तब स्वतः नेहरू सरकार ने हिन्दू और मुसलमानों के जनसमुदाय की अदला–बदली क्यों ही ?

वास्तव में पं० नेहरू की झुझलाहट का कारण वे परिस्थितियाँ ही हैं, जो उन्हें हिन्दू राष्ट्र के आधार पर ही कार्य करने को बाध्य करती हैं। पं० नेहरू इतिहास की घटनाओं का दर्पण इस आशा से देखने लगे कि उसमें उन्हें अपने सेक्युलर राज्य का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ेगा, परन्तु जब उसमें उन्हें अपने ही प्रधानत्व में हिन्दू राष्ट्र का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ा, तो वे चिल्लाने लगे। "जब तक मैं भारत का प्रधान मंत्री हूँ, भारत में हिन्दू राष्ट्र मैं कभी न होने दूगाँ।"

परन्तु पंडित जी ! चाहे आप इसे मानें अथवा न मानें, हिन्दू राज्य तो पहले से ही एक वास्तविक तथ्य है।

पंड़ित जी ! जिस सेक्युलर राज्य की कल्पना भारत में आप करते हैं, वैसे राज्य का स्वरूप तो विश्व के किसी देश में भी दिखाई नहीं देता।

यदि हम किसी अंग्रेज से पूछें कि अंग्रेज एक राष्ट्र क्यों हैं? तो उसका उत्तर होगा कि इंगलिस्तान हमारा देश है। वह कहेगा कि विश्व में कोई भी देश इतना सुन्दर नहीं, जैसी हमारी पितृभूमि है। वह गर्व के साथ कहेगा कि इंगलिस्तान की संस्कृति उसकी संस्कृति है, अंग्रेजी

उसकी राष्ट्र भाषा है, वहाँ का गिरजाघर उसका पूज्य स्थान है। वह भारतीय राष्ट्र को त्याग देगा, परन्तु अपने सैकसपियर को कभी नहीं। उसे महान अलफ्रेड, हैम्पडन, नेशनल ड्रेक जैसे अपने राष्ट्र वीरों पर गर्व है। वह अपने राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व अपर्ण कर सकता है। परन्तु यदि किसी आदर्श कांग्रेसी से पूछों कि उसकी राष्ट्रीयता किन तत्वों से बनी है ? आप का देश क्या है ? तो वह क्या उत्तर देगा ? वह अपने देश के नाम और भूगोल तक के लिए निश्चित नहीं है ? वह कहेगा कि इस देश का नाम भारत है। परन्तु कुछ लोगों को भारत नाम पसन्द नहीं, इसलिए यह 'इण्डिया' यानी भारत है। भूगोल, का, देश विभाजन के कारण, कुछ ज्ञान नहीं। 'रेडक्लिफ कमीशन' की रिपोर्ट देखकर ही मैं कुछ कह सकूँगा। दूसरा प्रश्न इन तथाकथित देश–भक्तों से पूछा जायेगा कि तुम्हारी संस्कृति क्या है ? तो कहेगा कि मेरे राष्ट्र की कोई संस्कृति अभी निश्चित नहीं है, यहाँ हिन्दू और मुसलमान दो संस्कृतियाँ हैं। तब हम उससे पूछेंगें कि तुम्हें राष्ट्रीय होने के नाते अपने साहित्य और राष्ट्र वीरों पर तो अवश्य गर्व होगा। जिस तरह प्रत्येक इंग्लैण्ड का निवासी सेक्सपियर और मिल्टन पर गर्व करता है, उसी प्रकार तुम भी रामायण, महाभारत, शकुन्तलाऔर उनके लेखकों बाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि के लिए गर्व करते होगें? इसका उत्तर होगा, हाँ ! अवश्य, ये महान राष्ट्रीय कवि हैं, परन्तु भारत में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो इनसे भी अधिक फिरदौसी, गालिब और उमर खैयाम पर गर्व करते हैं, अतः वह भी हमारे, और यह भी हमारे।

क्या वन्देमातरम् तुम्हारा राष्ट्रीय गीत है ? मैं इस गीत के लिए अत्यधिक सम्मान अपने हृदय में रखता हूँ। मैं जानता हूँ कि देश के हजारों युवक वन्देमातरम् ! वन्देमातरम् / कहते कहते फाँसी पर लटक गये। परन्तु मुसलमान इसके विरोधी हैं, और विलायती साहबों के सामने विलायती बाजे पर इसका स्वर भी ठीक नहीं बैठता। अतः वन्देमातरम् पूर्णरूपेण हमारा राष्ट्रीय गान नहीं हो सकता। अच्छा, आप के राष्ट्रीय वीर कौन है, जिनसे आप चेतना प्राप्त करते हैं ? क्या राम, कृष्ण, चन्द्रगुप्त, शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरू गोविन्द सिंह को आप राष्ट्रीय वीर मानते हैं ? हाँ, इनमें से कुछ का हमारे हृदय में सम्मान भी है, और कुछ पथ–भ्रष्ट और हिंसक भी थे। परन्तु हमारे देश के मुसलमान इन्हें इसलिए पसन्द नहीं करते हैं कि इन्होंने विदेशी आक्रमणकारियों से युद्ध किया था। अतः से साम्प्रदायिक हैं। और इस सेक्युलर राज्य में आदर्श राष्ट्र–वीर स्वीकार नहीं किये जा सकते। हमारे देश के मुसलमान गोरी, गजनवी, खिलजी, अब्दाली, औरंगजेब, जिन्ना और रिजवी को अपना राष्ट्रीय–वीर मानते हैं, अतः कांग्रेस के जन्म के पूर्व के किसी भी नेता पर हम गर्व नहीं कर सकते। इस विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीयता को, जो न पशु है न पक्षी, समझना अत्यन्त कठिन है।

संसार के सभी देशों में राष्ट्रीयता की नींव, संस्कृति, भाषा, सभ्यता, धर्म और इतिहास पर आधारित होती है, परन्तु हमारे देश की राष्ट्रीयता नकारात्मकता पर आधारित है। क्या यह रूप–रस–गन्धहीन राष्ट्रीयता वाह्य और आन्तरिक कारणों से उत्पन्न हुए संकटकाल में देश को बचा सकेगी ?

इंगलिस्तान में राजा ईसाई धर्म का रक्षक माना जाता है। कोई भी व्यक्ति इंगलिस्तान के सरकारी गिरजाघर से असहमत होकर कभी भी वहाँ का राजा नहीं बन सकता। अमेरिका में,

जो प्रजातंत्र का सबसे बड़ा केन्द्र माना जाता है, श्वेत वर्ण यूरोप निवासी ही एक राष्ट्र के रूप में सीमित हैं। वहाँ आदिवासी हबशियों आदि को निरंतर सताया जाता है। दक्षिण अफ्रीका में भी केवल गोरों का राज्य है। ईसाई और यहूदियों के रहते हुए भी समस्त अरबी देश मुस्लिम राष्ट्र हैं। हम अभी अभी अपनी आँखों देख चुके हैंकि उन यहूदियों ने, जो विश्व भर में विखर चुके थे, पुनः एकत्र होकर प्रबल विरोध के होते हुए भी फिलिस्तीन में इसराइल नामक यहूदी राष्ट्र का निर्माण कर लिया।

दूर जाने की आवश्यकता नहीं। यहीं हमारी पवित्र मातृभूमि के अमूल्य टुकड़ों पर, जहाँ मुसलमान बहुमत में थे, एक नये मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान का निर्माण कर लिया गया और सेक्युलर राज्य का ढोल पीटने वाले कांग्रेसी नेताओं ने इस साम्प्रदायिक मुस्लिम राज्य को केवल मान्यता ही नहीं दी, वरन् करोड़ों रूपयों का धन, और प्रचुर साधन भी पाकिस्तान को प्रदान किया, जिससे उनका राज्य अपने पाँवों पर खड़ा हो सके।

यदि समस्त यूरोप में ईसाइयों का राज्य है, और अरबी देशों में मुसलमानों के राज्य हैं, फिलिस्तीन में यहूदी राज्य बन गया है, तब फिर हम क्या पूछ सकते हैं कि उसी मातृभूमि में–जहाँ हिन्दू इतिहास के अनादि काल से रह रहे हैं, और बहुसंख्यक हैं, यहाँ के प्रत्येक राष्ट्रीय तत्व से ओत–प्रोत हैं और मुसलमानों के लिए अपनी मातृभूमि का एक अंग काट कर दे भी चुके हैं– क्यों न अपना एक राष्ट्र बनावें ?

हिन्दू महासभा चाहती है कि हिन्दू अपने को हीन मनोवृत्ति से स्वतंत्र करके डंके की चोट पर घोषणा करें कि भारत को ईधर–उधर का खिचड़ी राष्ट्र नहीं, प्रत्युत एक प्राचीन हिन्दू राष्ट्र है।''*

हिन्दू राष्ट्रवाद

हिन्दू राष्ट्रवाद ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी के रग–रग में रम गया था। हिन्दू राष्ट्रवाद के वे मूर्तिमंत स्वरूप थे। उनकी आकांक्षा थी कि राष्ट्र का प्रत्येक नवयुवक इस भावना से प्रेरित हो कर कार्य करे। छात्रों और युवजनों को उन्होंने निरंतर उद्‌बोधित किया। हिन्दू–युवक–सभावों की स्थापना की। अखिल भारतवर्षीय हिन्दु–युवा–महासभा के सोलहवे अधिवेशन का उद्‌घाटन करते हुए उन्होंने युग की बदलती हुई परिस्थितियों में हिन्दू यूवकों को राजनीति में आने और अपने कर्तव्यों का निवार्ह करने की प्रेरणा दी। उन्होंने कांग्रेस की हिन्दू राष्ट्र विरोधी नीतियों की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा कि ''देश के वर्तमान विभाजन और उससे प्राप्त तथाकथित स्वतंत्रता ने देश में बह रही राजनीति की अविच्छिन्न धारा को रोक दिया और हिन्दू नवयुवकों के सामने यह प्रश्न हठात् आ गया कि यदि उन्हें अपने अस्तित्व को रखना है, तो उन्हें क्या करना चाहिए ? यह तो सही ही है कि वर्तमान हिन्दू युवक अपने देश की राजनीतिक

*महन्त दिग्विजयनाथ जी–हिन्दू राष्ट्र क्यों ? पृ० सं० ४ से १२ तक

गतिविधि से अपरिचित रह, उसमें अपना सक्रिय सहयोग नहीं देता, तो वह अपने देश, जाति और सभ्यता के प्रति गहरा विश्वासघात करता है, जिसको आने वाली सन्तानें कभी क्षमा न करेंगी। अब प्रश्न उठता है कि देश में फैले हुए विभिन्न वादों और राजनीतिक संस्थाओं के उद्देश्य में से वह किसे उचित समझ कर अपनाये।

हिन्दू राष्ट्रवाद और कांग्रेस

पहले कांग्रेस को ही लीजिए। जो लोग देश की राजनीतिक गतिविधि से किंचित भी परिचित नहीं हैं, वे भली–भाँति जानते हैं कि कांग्रेस ने देश के साथ और हिन्दुओं के साथ कितना बड़ा विश्वासघात किया है। क्या भारत–विभाजन के दो दिन पूर्व तक कांग्रेस के चोटी के नेताओं ने अखण्ड हिन्दुस्तान का नारा लगाकर हिन्दुओं को भ्रम में नहीं डाल रखा था? यदि वे पहले ही से हिन्दुओं को सचेत कर देते तो पंजाब और बंगाल में जो हिन्दुओं का नरमेघ हुआ है, वह न होने पाता। यह तो बीती बात है। वर्तमान ही को लीजिए। क्या उन असंख्य धर्मवीरों पर, जिन्होंने देश और धर्म के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है– मेरे कहने का अर्थ शरणार्थी भाईयों से है– आज की वर्तमान कांग्रेस सरकार काला निष्क्रमणार्थी संपत्ति कानून पास कर उनके जले ह्रदय पर नमक नहीं छिड़क रही है ? जनमत के उल्लंघन का महापाप सदैव से कांग्रेसी नेताओं ने किया है और आज भी करते चले आ रहे हैं। जिसका प्रक्षालन कहीं संभव नहीं। हिन्दी का विरोध कर अपनी विदेशी मनोवृत्ति का जो घृणित परिचय पं० जवाहर लाल नेहरू ने दिया, वह क्या शोभनीय है ? और अभी भी हिन्दू–कोड–बिल ऐसे महापातकी बिल का दम्भपूर्ण समर्थन प्रधान मंत्री के लिए लज्जा की बात नहीं हैं, एक दो नहीं, असंख्य गलतियाँ और भूलें कांग्रेसी नेताओं ने की हैं और करते चले जा रहे हैं।

कांग्रेस का इतिहास ही भूलों और गलतियों का इतिहास है और इन्ही अगणित भूलों ने भारत के मानचित्र को ही पूर्णतया परिवर्तित कर दिया। नहीं तो आज की राजनीतिक परिस्थितियाँ कुछ और ही होती। जो कांग्रेस आज जनता के सम्मुख साम्प्रदायिकता की घोर विरोध ी बनकर उसकी आँखो में धूल झोंक रही है, उसने सदैव से ही साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन दिया है। वर्तमान कांग्रेसी–प्रधान श्री पट्टाभि सीतारमय्या ने संयुक्त निर्वाचन (Joint Electorate) का विरोध करते हुए जो वक्तव्य दिया है कि संयुक्त निर्वाचन द्वारा उन अल्पसंख्यक मुसलमानों को, जिनकी संख्या भारत की कुल जन संख्या की १/७ या १/८ है, हानि उठानी पड़ेगी। अतएव ऐसा निर्णय करके हम लोगों ने अपने ऊपर एक बड़ा भारी उत्तरदायित्व ले लिया है। बहुसंख्यकों को तो अल्पसंख्यकों के लिए उनकी जनसंख्या द्वारा दिलायी सिटों (स्थानों) से कहीं अधिक सीट (स्थान) देनी चाहिए। क्या यह साम्प्रदायिकता नहीं है ? भारत के राजनीतिक शरीर पर कांग्रेसी वैज्ञानिकों ने जो इतने वर्ष तक असफल प्रयोग किये, उससे उनकी आँखे नहीं खुली। कम्युनल एवार्ड को स्वीकार करके, सदैव मुस्लिम तुष्टिकारण नीति को अपनाने वाली कांग्रेस क्या अब भी अपने को राष्ट्रीय कहती है ?

कांग्रेस की भूलों को लेकर तो पोथे लिखे जा रहें हैं। पर प्रश्न यह उठता है कि कांग्रेस के जीवित रहने की अब आवश्यकता ही क्या है ? कोई संस्था किसी उद्देश्य को लेकर जनता के

सम्मुख आती है और अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफल या असफल हो जाने के पश्चात् उसकी आवश्यकता भी समाप्त हो जाती है। कांग्रेस हिन्दू मुस्लिम एकता के द्वारा अखंड भारत की स्वतंत्रता का उद्देश्य लेकर हमारे सम्मुख आई थी। हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए उसने जो मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति अपनाई थी, वह सर्वथा असफल रही, यह सर्वविविद है। और आज हम हिन्दू मुसलमानों के अन्दर एकता के स्थान पर वैमनस्य अधिक पाते हैं। शेष रही अखंड हिन्दुस्तान की सार्वभौम स्वतंत्रता। स्वतंत्रता तो हम येन–केन–प्रकारेण मिल ही चुकी है, पर हम इसे पूर्ण स्वाधीनता नहीं कह सकते। जिस महान् स्वाधीनता का प्रलोभन इसके पहले कांग्रेस द्वारा दिया गया था, वह यह नहीं है। अब रहा भारत की अखंडता का प्रश्न। यह सर्वविदित ही है कि भारत किस प्रकार निर्ममता से खण्डित किया गया। इस प्रकार कांग्रेस अपने सभी उद्देश्यों की पूर्ति में असफल रही। अतएव देश को अब उसकी आवश्यकता नहीं। अन्धकार हट जाने पर दीपक बुझा दिया जाता है। आप के सम्मुख कांग्रेस की स्थित स्पष्ट है और सिद्ध है कि उसमें फँसना युवकों के लिए पूर्णतया विनाशकारी होगा।"

हिन्दू राष्ट्रवाद और साम्यवाद तथा समाजवाद

साम्यवादी एवं समाजवादी संगठनों की अभारतीय नीतियों को उन्होंने राष्ट्र विरोधी बताया। वस्तुतः ये दोनों संगठन पश्चिम की भौतिकतावादी सभ्यता और संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। महन्त जी ने कहा कि "ये दोनों दल मार्क्सवाद से अपनी प्रेरणा लेते हैं और दोनों ही श्रमिकों के लाभ का नारा लगाते हैं। पर इन दोनों की मूल आत्मा ही भारतीयता के विरूद्ध है। दोनों की जड़े भौतिकतावाद पर जमी हुई हैं और देहात्मबाद ही उनकी प्रेरणा का स्रोत है, जैसा कि सर्वविदित है, भारत सदैव भौतिकता का विरोधी रहा है। पर, इसका आदर्शवाद भी सदैव सक्रिय रहा है। भारतीय संस्कृत में रोटी का गौण स्थान है। पाश्चात्य भौतिकवाद रोटी को ही प्रधानता देता है। हमारे लिए रोटी साधन है, साध्य नहीं। मार्क्सवाद रोटी को ही साध्य मानता है तथा धर्म और संस्कृति आदि को साधन। मार्क्स की समाज–रचना के सिद्धान्त का विश्लेषण करने से उपयुक्त बात और भी स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने समाज–रचना के दो पहलू बतलाये है। एक तो समाज की भौतिक नीवं, अधिष्ठान और अधिकरण। और दूसरा, समाज का आध्यात्मिक प्रासाद। मार्क्स के अनुसार उत्पादन की पद्धति और उस पद्धति से उत्पन्न होने वाले मानव–मानव के सम्बन्ध, समाज की भौतिक नींव है। उत्पादन–पद्धति और उससे उत्पन्न हुए मानव वर्गों की नींव पर ही समाज का आध्यात्मिक प्रासाद खड़ा होता है। भाषा, विद्या, साहित्य–कला, कायदे–कानून, राज्य, प्रणाली, धर्म और संस्कृति इन सब के समुच्चय को मार्क्स ने आध्यात्मिक प्रासाद के अन्तर्गत रक्खा है। उसका आगे कथन है कि धर्म विशिष्ट परिस्थितियों के समाज के आध्यात्मिक प्रासाद का एक हिस्सा है। समाज का भौतिक आश्रय आया अधिष्ठान बदला कि उसका आध्यात्मिक प्रासाद भी बदल जाता है। अर्थात् उत्पादन–पद्धति बदली कि धर्म और संस्कृति में भी परिवर्तन हो जायेगा। सारांश यह है कि उनका सिद्धांत हैकि रोटी के लिए ही धर्म और संस्कृत का निर्माण हुआ है। वे भौतिकवाद को अध्यात्मवाद से ऊँचा ठहराते हैं, और हम अध्यात्मवाद को भौतिकवाद से। इसका यह अर्थ नहीं कि रोटी का कोई महत्व नहीं। रोटी साधन है और साधन से ही साध्य की

प्राप्ति होती है। भौतिकवाद से ऊँचा उठ कर हम अध्यात्मवाद की ओर बढ़ते हैं। प्रवृत्ति ही निवृत्ति की सीढ़ी है।

अजरामरवत् प्राज्ञों विद्यामर्थ च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्माचरेत्।।

अर्थात धन और विद्या का उपार्जन सदैव यह जान कर किया करो कि मैं अमर हूँ, अजर हूँ। साथ ही धर्म का चिन्तन भी सदैव इस भावना को लेकर करो कि प्रति क्षण मृत्यु तुम्हारे केश खींच रही है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का, भौतिकता और अध्यात्मवाद का, यही सुन्दर समन्वय हिन्दू धर्म और संस्कृति की विशेषता है। रूस में मार्क्सवाद के सक्रिय प्रयोग का पर्याप्त अवसर मिला, पर हम देखते हैं कि वह अपने दिखाये हुए उच्च आदर्शों तक पहुँचने में पर्याप्त असफल रहा। कुछ महीनों पूर्व पत्रिका के रविवासरीय अंक मे मैंने देखा था कि रूस में भी पूँजीपतियों की शक्ति–वृद्धि पुनः प्रारम्भ हो गई है। मैं मानता हूँ कि मार्क्स ने सच्चे ह्रदय से संसार से दरिद्रता के नाश का उपाय सोचा है, पर उस उपाय के सोचने का ढंग ही गलत है। रोटी की समस्या केवल रोटी के दृष्टिकोण (ऐसा दृष्टिकोण जिसमें रोटी ही सब कुछ है) से नहीं सुलझाई जा सकती, वरन् वह और भी उलझती ही चली जायेगी। रोटी की समस्या जब हम आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सुलझााना प्रारम्भ करेंगें, तभी वह सुलझ सकती है। गीता का समाजवाद क्या कम प्रभावशाली है ? भारतीय दर्शन के अंतर्गत आया हुआ समविष्टवाद क्या कम्युनिज्म के सभी सद्‌गुणों (आर्थिक–व्यवस्था) को नहीं ग्रहण किये हुये है ?

अतएव भारतीय समाजवादी और कम्युनिष्ट पार्टी का वर्तमान मूल स्रोत ही गलत है और इसी कारण वह भारतीय नवयुवकों को विनाश के मार्ग की ओर अग्रसर करती है। रोटी के प्रश्न को सुलझााने का यह तरीका संसार में आज तक कहीं भी सफल नहीं हो सका है। संसार के अन्य देशों में समाजवाद इसी कारण बढ़ता जा रहा है कि अपने आर्थिक संकट और रोटी की समस्या के हल के लिए उनके पास अपना कोई दृष्टिकोण नहीं है और मार्क्सवाद इसकी पूर्ति करता हुआ दिखाई देता है। पर जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है अन्य देशों के विपरीत अपने आर्थिक और रोटी के प्रश्न को हल करने के लिए इसके पास अपना दृष्टिकोण है और वह है सांस्कृतिक और आध्यात्मिक।"*

भारतीय संस्कृति ही हिन्दू राष्ट्रवाद की आधार–शिला है

अन्त में उन्होंने हिन्दू राष्ट्रवाद के द्वारा ही भारत की अखण्डता की रक्षा सम्भव बताई और कहा कि 'वर्तमान परिस्थिति' में हिन्दू राष्ट्रवाद ही वह वाद है, जो देश को साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता और जातीय संकीर्णता से बचा सकता है। जो लोग यह सोचते हैं कि हिन्दू राष्ट्रवाद में केवल हिन्दुओं को ही सब अधिकार मिलेंगे, वे अत्यन्त भूल करते हैं। हिन्दू राष्ट्रवाद के अन्तर्गत सभी जातियों और सम्प्रदायों को बराबर अधिकार रहेंगे, पर साथ ही उनका कर्तव्य भी रहेगा, और वह रहेगा भारतीय राष्ट्र के प्रति पूर्ण निष्ठा। जो सम्प्रदाय या जाति इस कर्तव्य की अवहेलना करेगी, उसके अधिकारों में भी न्यूनता कर दी जायगी। अब प्रश्न उठता है कि जब इसमें सभी

---

* अखिल भारतीय हिन्दु युवक महासभा के १६ वें अधिवेशन का उद्‌घाटन भाषण पृ० ४ से १० तक

जातियों और सम्प्रदायों को समान अधिकार रहेंगे, तो इसे हिन्दू राष्ट्र ही का नाम क्यों दिया जा रहा है ? इसका उत्तर भी सरल और स्पष्ट है। "इण्डियन" शब्द हमारे लिए विदेशी है। दूसरा कारण है कि देश का बहुमत हिन्दू है और तीसरा कारण है कि यह राष्ट्रवाद प्राचीन भारतीय संस्कृति और आर्य सभ्यता द्वारा प्रचलित है और हिन्दू शब्द ही आर्य और भारतीय शब्दों का स्थानापन्न है। जैसा कि नियम है, देश की बहुसंख्यक जनता के अनुसार उस देश का नामकरण होता है। जर्मन राष्ट्र, अमरीकी राष्ट्र, आदि नाम उस देश की बहुसंख्यक जनता के आधार पर ही पड़े हैं। तो क्या उन राष्ट्रों में अल्प संख्यकों का कोई स्थान नहीं ?

आज भारत में यह नारा प्रसिद्ध हो रहा है कि भारत विश्व का नेतृत्व करेगा। पर स्मरण रखिये कि विश्व् का नेतृत्व भारत उसके पदचिन्हों पर चलकर नहीं कर सकता। विश्व के नेतृत्व के लिए समस्त विश्व को अपने पदचिन्हों पर चलाना होगा और उसके लिए एक नया आदर्श रखना होगा, एक नयी ज्योति रखनी होगी। समस्त विश्व आज भौतिकवाद से ऊब चला है। इस बात के भीषण दोष आज पश्चिम के सम्मुख खुलकर निखर पड़े हैं। इसलिए आज पश्चिम अध्यत्मवाद की ओर बढ़ने को उत्सुक है। क्या पश्चिम की इस मांग को भारत पूरा करेगा ? क्या अमेरिका की एक सभा में दिये गये स्वामी विवेकानन्द के ये शब्द कभी पूरे होंगे ? "यह वही भूमि है, जहाँ से दर्शन और आत्म–ज्ञान की ऊँची लहरों ने बार–बार उठकर समस्त विश्व को ओत–प्रोत कर दिया था, और यह वही भूमि है, जहाँ से ऐक बार पुनः उस ज्वार–भाटे के उठने की आवश्यकता है, जो पतनोन्मुख मानवता को नवजीवन और शक्ति दे सके।" मैं विश्वास दिलाता हूँ कि हिन्दू राष्ट्र के निमार्ण के द्वारा ही स्वामी जी के एक एक शब्द की पूर्ति ओर भारत का विश्व–नेतृत्व का स्वप्न सम्भव है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर अवलम्बित सार्वभौम को ही हिन्दू राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है।" *

राष्ट्रवाद से ही भारत का कल्याण सम्भव है

महन्त जी का स्पष्ट मत है कि हिन्दू राष्ट्रवाद के द्वारा ही भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं का हल किया जा जकता है। वे कहते हैं कि "आज अपने देश में फैली अनेकानेक समस्यायों का समाधान हमें हिन्दू राष्ट्रवाद के ही अन्दर मिलता है। आज प्रान्तीयता, संकीर्ण जातीयता और फूट के जो लक्षण दिखाई दे रहे हैं, उन सभी का एक मात्र समाधान हिन्दू राष्ट्रवाद ही है। जब सभी प्रान्तों को यह ज्ञान हो जायेगा कि वे महान् हिन्दू राष्ट्र के अंग मात्र हैं तो वे उससे कभी–भी भिन्न होना न चाहेंगे। जैसे शरीर के प्रत्येक अंग को शरीर से पृथक होने में असहनीय पीड़ा होती है, उसी प्रकार प्रान्तों को भी, जो महान् हिन्दू राष्ट्र रूपी शरीर के एक अंग हैं, उससे पृथक होने में असहनीय पीड़ा होगी। आज सिक्ख जो सिक्खस्थान की मांग कर रहें हैं, जैन जो विशेषाधिकार चाहते हैं, उनमें यह त्रुटि आई क्यों ? हिन्दुत्व वह वह अखण्ड श्रृंखला है, जिसमें भारत की कई जातियाँ और सम्प्रदाय आबद्ध हैं और उसके टूट जाने पर वे उसी प्रकार छिन्न–भिन्न हो जाते हैं जैसे माला के मोती। उपर्युक्त सम्प्रदायों (सिक्ख, जैन आदि) तथा अन्य सम्प्रदायों में भी हिन्दुत्व की भावना क्षीण होती जा रही है। अतएव उनमें असहिष्णुता भी बढ़ती है।

* अखिल भारतीय हिन्दु युवक महासभा के १६ वें अधिवेशन का उद्घाटन भाषण पृ० ४ से १० तक

स्पष्ट है कि इन सब का समुचित हल हिन्दू राष्ट्रवाद के ही प्रचार से निकल सकता है।

जहाँ तक हमारे आर्थिक प्रोग्राम (कार्यक्रम) का सम्बन्ध है, वह बहुत कुछ समाजवादी सा लगता है, क्यों कि वर्तमान समाज़ में फैले धन के अनुचित वितरण के दोष को हम लोग भी समाप्त करना चाहते हैं। पर हममे और समाजवादियों में अन्तर स्पष्ट है। हमारी प्राथमिक मांग है, सांस्कृतिक एकता और तब आर्थिक सुधार। जब कि समाजवादी और कम्युनिष्ट केवल आर्थिक समस्या को ही सुलझााने में व्यस्त हैं। सांस्कृतिक एकता से दूर उनके सुलझाने का मार्ग भी ऐसा है जिसका कि अवश्यम्भावी परिणाम है, वर्ग–युद्ध, अशान्ति, हत्या और नैतिक पतन।" *

हिन्दू राष्ट्र–बाह्य और आन्तरिक खतरे

६ अक्टूबर सन् १९६१ ई० को नई दिल्ली में अखिल–भारत–हिन्दू–सम्मेलन हुआ था। सम्मेलन का सारा दायित्व महन्त दिग्विजयनाथ जी पर ही था। सन् १९६१–६२ का समय भारतीय इतिहास का महान् संकट–काल कहा जा सकता है। उस समय राष्ट्र के ऊपर पश्चिम से तो निरंतर आक्रमण की आशंका बनी ही रहती थी, अप्रत्याशित रूप से भारत दुर्लंध्य उत्तरी सीमा को लाँघ कर चीनियों ने भी आक्रमण कर दिया था। देश के भीतर पंचमाँगियों की कमी न थी। वे इन वाह्य आक्रमणों का स्वागत कर रहे थे और राष्ट्र के भीतर इस प्रकार की विघटन की स्थिति उत्पन्न कर रहे थे कि देश खण्ड–खण्ड विभाजित हो जाय। स्वर्गीय महंत जी को देश की आन्तरिक एवं वाह्य दोनों संकटापन्न स्थितियों को देखकर महान् कष्ट हो रहा था। जून सन् १९६१ में दिल्ली में जो मुस्लिम सम्मेलन हुआ था, उसमें प्रस्तुत की गयी मांगों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि उनमें अराष्ट्रीय तत्वों की मात्रा अधिक थी। ऐसी स्थिति में हिन्दू सम्मेलन का आयोजन अनिवार्य सा हो गया था। इस सम्मेलन में स्वागत भाषण करते हुए पूज्य महन्त जी ने जो उद्‌गार प्रकट किये हैं, उनमें उनके हृदय के आंतरिक क्लेश का पता चल जाता है। इस अवसर पर उन्होंने देश की तत्कालीन स्थिति को स्पष्ट करते हुए हिन्दू–सम्मेलन की उपयोगिता पर प्रकाश डाला और राष्ट्र की रक्षा के लिए पंचमांगी तत्त्वों से सावधान रहने की अपील की। उन्होंने कहा कि "यह एक ऐतिहासिक सम्मेलन है। क्योंकि यह एक संक्रमण काल में हो रहा है। विभिन्न दलों, विचारधाराओं और आदर्शों में आस्था रखने वाले लोग राष्ट्र के जीवन और मृत्यु की समस्या पर गंभीर विचार करने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं। आज हमारे देश पर पश्चिम से पाकिस्तान और उत्तर से कम्युनिष्ट चीन ने आक्रमण की विभीषिका उपस्थित कर दी है। हम पश्चिमी आक्रमणों के अभ्यस्त हैं, किन्तु हमने हिमालय के उस पार से आक्रमण की कभी आशंका भी नहीं की थी और इस दिशा की ओर से हम निश्चिन्त रहे। लेकिन हमारे देश की सुरक्षा के लिए आशा के विपरीत उन दिशाओं से गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई है और एक ऐसी लम्बी सीमा की सुरक्षा की समस्या और संसार में उत्तरोत्तर तेज होने वाली घटनाओं ने राष्ट्रप्रेमियों को इस स्थिति पर गम्भीर चिन्तन के लिए बाध्य कर दिया है।

---

* अखिल भारतीय हिन्दु युवक महासभा के १६ वें अधिवेशन का उद्‌घाटन भाषण पृ० ४ से १० तक

आन्तरिक विद्वेष

आज जब कि देश पर वाह्य आक्रमण का खतरा बना हुआ है और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तीव्रता के साथ ऐसे संसार–व्यापी युद्ध की ओर अग्रसर हो रही है, जिसमें मानवता को नष्ट–भ्रष्ट करने वाले आयुधों का प्रयोग होना है, देश में इस प्रकार के आन्तरिक विद्वेष व्याप्त है, जिनका इस महान् देश के लम्बे इतिहास में कोई ओर–छोर नहीं मिलता। अतीत में भारत में विभिन्न शासनाधिकारियों के बीच झगड़े होते रहे। हमारा पिछले एक हजार वर्षों का इतिहास हिन्दु–मुस्लिम संघर्षों से भरा पड़ा है। परन्तु भारत में भाषायी और प्रादेशिक आधार पर संघर्ष कभी नहीं हुए। गत १० वर्षों के मध्य इस संकट ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। हमने बम्बई नगर को महाराष्ट्र में सम्मिलित करने के प्रश्न पर हिंसात्मक आन्दोलन देखा, और आसाम में भाषायी झगड़े का घृणात्मक प्रदर्शन भी देखा। आज हम पंजाब में उत्पन्न गम्भीर स्थिति को देख रहे हैं। दक्षिण भारत में द्रविड़मुन्नत्र कड़गम भी पृथकता क़ी माँग कर रहा है। उसकी मांग तो लंका के तमिल भाषी लोगों के साथ एक पृथक राष्ट्र के निर्माण तक बढ़ गई हैं। हमने विदेशी ईसाई मिशनरियों के बढावा दिये जाने पर पृथक राज्य नागा लैण्ड का निर्माण होते देखा है, और इस राज्य को पूर्ण स्वतंत्र बना देने के लिए धमकियाँ भी दी जा रही हैं। इस प्रकार देश में इन विघटनकारी शक्तियों को सिर उठाते देखकर सभी देश प्रेमियों का क्षुब्ध होना स्वभाविक ही है।

राष्ट्र से बाह्य स्थानों से प्रेरणा प्राप्त करने वाले तत्त्व

इन आन्तरिक विद्वेषों के अतिरिक्त राष्ट्र की एकता आर अखण्डता को उन तत्वों से भी गम्भीर भय उत्पन्न हो गया है, जिनकी सहानुभूति और आस्था भारत के बाहर के सिद्धान्तों में है। पाकिस्तान का निर्माण भारतीय मुसलमानों द्वारा अपने सम्प्रदाय के लिए गृहभूमि की मांग के आध ाार पर हुआ था और अब भी भारत के राजनीतिक संस्थानों में ऐसे तत्व भरे हुए हैं,जो पाकिस्तान के प्रति सहानुभूति रखते हैं और भविष्य में पाकिस्तान के साथ तनातनी के अवसर पर उनसे मिलकर खतरा भी उत्पन्न कर सकते हैं। यह काल्पनिक उड़ान नहीं है, बल्कि शेख अब्दुल्ला और उनके सहयोगियों के मामले में हमें उनके नग्न प्रमाण भी मिले हैं। उन्हें उस समय भी महान् देश–भक्त और धर्म–निरपेक्ष नागरिक का सम्मान प्राप्त था, जब कि वे पाकिस्तान का हित कर रहे थे। उत्तर प्रदेश सरकार के गुप्तचर विभाग ने प्रदेश में मुसलमानों के ऐसे नव–सम्प्रदायिक संगठनों का रहस्योद्घाटन किया है, जो गुप्त रूप से राष्ट्रविरोधी कार्यक्रमों में संलग्न हैं।

इन विशिष्ट पाकिस्तानी तत्वों के अतिरिक्त देश में कुछ ऐसे दल और तत्त्व हैं, जो अपने सिद्धान्तों के कारण साम्यवादी चीन के शुभेच्छु हैं, जिसने हमारी हजारों मील सीमा को हड़प लिया है। साम्यवादी चीन से युद्ध की स्थिति में ये तत्त्व निश्चित रूप से पंचमांगियों की भूमिका ही अदा करेंगे।

देश का एक तृतीय तत्त्व जो पंचमाँगियों का कार्य कर रहा है, वह है विदेशी ईसाई मिशनरियों का दल, जिन पर, (जैसा कि फिजो के भारत विद्रोही से स्पष्ट है) देश में राष्ट्र–विरोधी अभियानों का उत्तरदायित्व है।

देश के राजनीतिक संस्थान में इन पंचमांगियों के क्रिया–कलापों से कोई भी समझदार आदमी यह विश्वास कर सकता है कि ये पंचमांगी किसी एक धर्म, दल या सम्प्रदाय तक ही सीमित

नहीं है। इन सभी को लौह दस्तों से कुचल दिया जाना चाहिए। फिर चाहे ये पाकिस्तानी मुसलिम हों, साम्यवादी हिन्दू हों या विदेशी ईसाई मिशनरी ही क्यों न हों। आज देश पर दो दिशाओं से वाह्य आक्रमणों का भय बना हुआ है। आन्तरिक विध्वंशकारी शक्तियाँ इतनी सशक्त हो रही है कि इनके परिणाम–स्वरूप देश का पूर्ण विघटन हो सकता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्र के सभी हितैषियों का देश के सम्मुख उपस्थित इन गम्भीर समस्याओं के निदान के बारे में चिन्तित होना स्वाभाविक है।

मुस्लिम सम्मेलन

गत जून मास में राजधानी में हुए मुस्लिम सम्मेलन से उन सभी भारतीयों को आघात पहुँचा है, जो समझते थे कि देश के विभाजन के पश्चात् मुस्लिम समस्या का अस्तित्व मिट चुका है। बहुत थोड़े ही लोगों ने इस मुस्लिम सम्मेलन की उन्माद भरी माँगों के परिणाम का अनुभव किया। इन माँगों में भारत सरकार और भारतीय संसद को विश्व जनमत के न्यायालय के सम्मुख मुस्लिम अल्पसंख्यकों के साथ दुर्व्यवहार करने के आरोप में अपराधी सिद्ध किया गया है। इसने ऐसी माँगें प्रस्तुत की हैं, जिन्हें यदि स्वीकार किया जाय तो ऐसी स्थित उत्पन्न हो सकती है, जो देश के विभाजन से भी भयंकर होगी। क्योंकि इससे प्रत्येक जनपद में पाकिस्तान के निर्माण का भय उत्पन्न हो जायेगा। समस्त राजकीय और अर्द्ध राजकीय सेवाओं में, उद्योग और व्यवसायों में और प्रत्येक जिले की राजकीय तथा अर्द्ध राजकीय प्रशासकीय सेवाओं में प्रान्तीय तथा केन्द्रीय स्तर पर 'उचित प्रतिनिधित्व' की माँग की गई है। यह माँग इस सीमा तक पहुँच गई है कि देश के आयात और निर्यात, लाइसेन्स और औद्योगिक जीवन में भी उचित प्रतिनिधित्व का राग अलापा गया है। इस मुस्लिम कन्वेन्शन ने हमारा उपयोगी उद्देश्य सिद्ध किया है। क्योंकि इससे देश का ध्यान राष्ट्रीय एकता और देश की मुस्लिम समस्या की संभाव्य सीमाओं की ओर आकृष्ट हो गया है। आसाम में राज्य सरकार के कांग्रेसी मंत्रियों के उकसाने पर पाकिस्तानी मुसलमानों की घुसपैठ का परिणाम यह होगा कि आसाम एक मुसलमान बहुल प्रदेश बन जायेगा। इससे अनेक ऐसे हिन्दू श्रद्धालुओं की आँखें खुली हैं, जो इस विश्वास में भूल गये थे कि भारत में हिन्दू मुस्लिम नाम की कोई साम्प्रदायिक समस्या है ही नहीं। पाकिस्तान में बड़े पैमाने पर हिन्दुओं के नर–मेघ ने देश के अदूरदर्शितापूर्ण विभाजन के परिणामों का पर्दाफाश किया है। मैं सोचता हूँ कि एक अर्थ में मुस्लिम सम्मेलन ने देश की बहुत बड़ी सेवा की है, जिसने हमारे सामने खतरे का वह लाल चिन्ह लगा दिया है, जिसके कारण हम राष्ट्रीय एकता की समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने लगे हैं।

हम यहाँ उन तत्वों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे, जो देश के राष्ट्रीय जीवन की प्रमुख धारा में एकरूप होने को तैयार नहीं है। मुस्लिम सम्मेलन के द्वारा मुस्लिम सम्प्रदाय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह देश के राष्ट्रीय जीवन में नहीं खप सकता। मैं इस तथ्य की ओर संकेत करने के लिए क्षमा चाहता हूँ कि प्रो० हिमायूँ कबीर तक ने यह माना है कि भारत के मुसलमान इस देश के राष्ट्रीय जीवन में घुलने–मिलने के लिए किसी न किसी बहाने आना–कानी कर रहे हैं। देश की सुरक्षा के हित में हमें इन सब तत्वों पर कड़ी नजर रखनी होगी, जो देश के आपत्ति–काल में खतरनाक सिद्ध होने वाले हैं।

हमें ऐसे उपायों का निरूपंण करना होगा, जिनसे ये तत्व राष्ट्रीय जीवन की धारा में पूरी तरह खप सकें। वह धारा "हिन्दू" के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हिन्दू किसी धार्मिक पंथ का नाम नहीं, अपितु देश की राष्ट्रीयता का नाम है। और इससे भी अधिक इसने हमारे सम्पूर्ण इतिहास में राष्ट्रीय प्रभाव को एकरूप करके इसे गतिशील बनाया है। इस प्रकार देश के विभिन्न तत्वों का हिन्दूकरण राष्ट्रीय एकता की पहली आवश्यकता होगी। वस्तुतः हममें से प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा है कि इस देश में पूर्ण सौम्यता हो और यह्रा रहने वाले अल्प संख्यकों की रक्षा का उत्तरदायित्व हमारे पर ही हो। यद्यपि इनमें से अनेक तत्व राष्ट्र के राष्ट्रीय–जीवन में आने से आना–कानी भी कर सकते हैं, इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं हो सकता। किन्तु जो साधन और उपाय अपनाये जायँ वे स्थाई और चिरन्तन होने चाहिए।

आज राष्ट्रीय एकता की समस्या ने इतना गम्भीर रूप धारण कर लिया है कि मुख्य मंत्री सम्मेलन और राष्ट्रीय एकता के लिए गठित सर्वदलिय सम्मेलन को भी इन समस्यायों पर विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

हिन्दू–सम्मेलन की आवश्यकता

आगे उन्होंने हिन्दू–सम्मेलन की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए कहा कि यह मुस्लिम सम्मेलन की प्रतिक्रिया के रूप में नहीं रक्खा गया है। मुस्लिम सम्मेलन तो केवल इसलिए बुलाया गया था कि उसमें एक विशिष्ट सम्प्रदाय की शिकायतों को प्रस्तुत किया जाय। जिसका परिणाम यह हुआ है कि उसमें हमारी राष्ट्रीयता पर पक्षपात का आरोप लगाया गया है और इस प्रकार राष्ट्र विरोधी माँगे खड़ी की हैं, जिन्हें यदि पूरा किया गया, तो हमारे राष्ट्र का मौलिक ढांचा ही पूरी तरह से नष्ट–भ्रष्ट हो जायेगा।

यह हिन्दू–सम्मेलन किसी सम्प्रदाय विशेष के विशिष्टाधिकारों की मांग के लिए नहीं बुलाया गया है और न इसका उद्देश्य किसी सम्प्रदाय के प्रति विभेदपूर्ण है। यह ऐसे साधनों की खोज के लिए गठित एक ऐसा राष्ट्रीय मंच है, जिससे राष्ट्रीय एकता प्रतिष्ठापित की जा सकती है।

उस सम्मेलन में सामान्यतया हमें जिन बातों पर विचार करना है, उनमें से कुछ प्रमुख अंश निम्नलिखित हैं :–

(१) राष्ट्र के मनोबल की दशा।
(२) हमारी प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं की तुलना में हमारे उद्योगों की स्थिति।
(३) राष्ट्र का शारीरिक बल।
(४) हमारी सेनाओं की शक्ति, प्रशिक्षण एवं युद्ध–सामग्री।
(५) हमारी विदेश नीति–विशेषकर सैनिक संगठनों के सन्दर्भ में।
(६) देश में विघटन–कार्य एवं राष्ट्रविरोधी तत्वों के निराकरण के लिए प्रभावकारी योजना और पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यकों के संरक्षण की समस्या।

हिन्दू एक राष्ट्रीय सम्बोधन है

हिन्दू नाम न तो साम्प्रदायिक है न राष्ट्रविरोधी ही। यह युगों से इस देश की राष्ट्रीयता

का बोधक बना हुआ है। किसी राष्ट्रीय समूह को हिन्दू की संज्ञा देना कोई दोषपूर्ण या देश–विरोधी बात नहीं है। 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग करने का हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि हिन्दुत्व की थाती राष्ट्रीय एकता की सर्वधिक सुगठित शक्ति रही है जिसने विभिन्न जातियों, विरोधी जलवायु अनेक भाषाओं और धार्मिक विश्वासों की विभिन्नताओं के बीच इस देश को एक राष्ट्र बनाया है। हम देखते हैं कि आज भूतल से सभी पुरातन सभ्यतायें मिट चुकी हैं और संसार की महानतम् शक्तियों के निरन्तर आघातों के पश्चात् भी भारत विविध जलवायु जातियों, भाषाओं और धार्मिक विश्वासों के होने पर भी एक राष्ट्र के रूप में जीवित हैं। इसका कारण है कि भारत के इतिहास में केवल एक प्रभाव हिन्दुत्व का ही रहा है, जो हूण, शक, सिथियन और अन्य कबीलों को एक सूत्र में पिरो सकने में समर्थ है। महात्मा बुद्ध का महान् धार्मिक अभियान, जैन धर्म, सिक्ख धर्म और अन्य अनेक धार्मिक विश्वास हिन्दू राष्ट्रीयता की शक्तिशाली धरा में ही खप गये। क्योंकि हिन्दुत्व एक ऐसा एकीभूत तत्व रहा है, जिसने इन सबको एक राष्ट्र के रूप में मिला दिया है। दुर्भाग्य से हमारे नेता हिन्दुत्व के एकीभूत प्रभाव की ओर से आँखें मूँदे बैठे है। प्रो० हुमायूँ कबीर ने अपने विचारपूर्ण लेख में, जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की गोष्ठी में पढ़ा गया था, हिन्दुत्व की थाती को ही एकीकरण की शक्ति माना और सही ढंग से हमारा ध्यान आकर्षित किया था। किन्दु दुर्भाग्य से हमारे राष्ट्रीय नेता देश में हिन्दुत्व की एकीकरण–शक्ति को अंगीकरण करने में असफल रहे हैं। अगर हमारे धर्मनिरपेक्षतावादी विचारक विसेन्ट स्मिथ, सरदार पणिक्कर तथा अन्य लेखकों द्वारा लिखित भारत का इतिहास पढ़े, तो वे पायेंगे कि देश के विविध विभेदक और विरोधी तत्वों की एकसूत्रता और राष्ट्रीय एकता का आधार यही एक मात्र हिन्दुत्व की भावना ही है। बहुत से विचारक 'हिन्दू' शब्द के अर्थ से घबड़ा जाते हैं। क्योंकि वे यह समझने में असफल रहते हैं कि हिन्दू उस ऐतिहासिक प्रक्रिया की संज्ञा है, जिसने सभी धर्मों, संस्कृतियों और सामाजिक प्रभावों को एक राष्ट्र के रूप में प्रतिस्थापित किया है। अतः जो हिन्दुत्व को विभेदक और पक्षपातपूर्ण बता कर उसकी निन्दा करते हैं, वे इस ऐतिहासिक प्रक्रिया की गरिमा को नहीं समझ सके हैं। जो लोग भारत में राष्ट्रीय एकता को प्रतिस्थापित करना चाहते हैं, उन्हें इस एकीकरण की शक्ति हिन्दुत्व का अधिकाधिक उपयोग करना है, जो विभिन्न भाषा–भाषियों, विभिन्न जलवायु में निवास करने वालों, विभिन्न रीति–रिवाजों और विश्वासों के लोगों को राष्ट्र के रूप में ढाल सके।

भारतीय राष्ट्रीयता का एकमात्र परिचायक हिन्दुत्व ही है

भाषा, जाति, प्रदेश और अन्य विघटनकारी प्रवृत्तियों की बढ़ती हुई दुःश्चिन्ताओं का एक मात्र निदान हिन्दुत्व ही है।

भारत के विभिन्न तीर्थ स्थान, हमारी प्राचीन सामाजिक मान्यतायें और सामान्य आचरण–संहिता, हमारे हिन्दुत्व के व्यक्तिगत सिद्धांत और धार्मिक ग्रन्थों में प्रतिस्थापित अनुष्ठान, इन सबने हमें एक राष्ट्र के रूप में एकत्र होने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है। हमारी पैतृक भाषा के रूप में संस्कृत और राष्ट्र भाषा के रूप मे हिन्दी ने भी देश की राष्ट्रीय एकता के गठन में बहुत बड़ा कार्य किया है। हमारे नेताओं ने राष्ट्र के समस्त खण्डों को एक सूत्र में बाँधने के लिए, इस महान् राष्ट्रीय प्रभाव को भूला दिया है। हम जानते हैं कि दक्षिणी भारत के आचार्यों

का सम्मान दक्षिणी भारत की अपेक्षा उत्तरी भारत में कही अधिक हुआ और भारत के उत्तरी अंचल में प्रवाहित होने वाली गंगा को समूचे देश में दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की किसी भी नदी की अपेक्षा अधिक पवित्र समझा जाता है। राम और कृष्ण जैसे हमारे राष्ट्रनायकों और उनके जन्म स्थानों को सम्पूर्ण देश में श्रद्धा का केन्द्र माना जाता है। यह केवल हिन्दुत्व के व्यापक प्रभाव के ही कारण सम्भव हुआ है। जो लोग हिन्दुत्व को साम्प्रदायिक और राष्ट्रविरोधी कह कर निन्दा करते हैं, वे राष्ट्र के प्रति विश्वासघात करते हैं। हमें ज्ञात है कि भारत की इसी राष्ट्रीय एकता के लिए श्री शंकराचार्य ने भारत के चारों कोनों में चार धार्मिक मठों की स्थापना की थी। गौतम बुद्ध का भी एक धार्मिक मठ वाराणसी में मिलता है, यद्यपि उसका निमार्ण एक पृथक विश्वास के आधार पर हुआ है। उन्होंने हिन्दू राष्ट्रीयता को अबाधित रखा, जैसा की उनकी वेष–भूषा और यज्ञोपवीत से स्पष्ट है, जो कि उनके पहनावे के अपरिहार्य अंग थे। मुझे अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू–मुस्लिम–एकता के मिथ्या नारे के परिणाम स्वरूप भारत का विभाजन हुआ और इस समय अलग–अलग नामों के आधार पर देश के विघटन का भय उत्पन्न हो गया है। देश की पूर्ण राजकीय एकता का प्रश्न आज राष्ट्रीय क्षितिज पर पूरी तरह छाया हुआ है, जो करीब १०० वर्षों से चली आ रही सम्प्रदायातीत राष्ट्रीयता का ही प्रत्यक्ष परिणाम है। हमें उन अवसरों को ढूढ़ना है जब हम सारे तत्वों को एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में बाँधने के लिए राष्ट्रीयता के तत्वों का उपयोग कर सकें।" *

क्या हिन्दुत्व साम्प्रदायिकता है ?

आज के भारत के अधिकांश नागरिक और संसार के प्रमुख व्यक्ति जो हिन्दुत्व से अनभिज्ञ है, प्रायः हिन्दुत्व का अर्थ साम्प्रदायिकता और हिन्दू का अर्थ साम्प्रदायिक समझते हैं। यह आज का एक प्रचलित नारा हो गया है और यह भी दावे के साथ कहा जा सकता है कि इससे भ्रमपूर्ण और अनर्गल नारा दूसरा हो भी नही सकता। यदि आज के भारतीय और विशेषतः हिन्दू यह समझते हैं कि हिन्दुत्व और साम्प्रदायिकता में उतना ही अन्तर है जितना आकाश और पाताल में, तो इसमें सन्द्रेह नहीं कि वे अपनी मानसिक दासता की श्रृंखला को अवश्य तोड़ने में समर्थ हो जायेंगे। इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व कि वास्तव में हिन्दुत्व साम्प्रदायिकता है या नहीं, यह उचित होगा कि हम इन दोनों महत्वपूर्ण शब्दों, हिन्दुत्व और साम्प्रदायिकता, पर अलग–अलग विचार करें।

हिन्दू की परिभाषा भिन्न–भिन्न प्रकार से की गई है, पर सबसे विशद, प्रमाणिक, और सरल परिभाषा अखिल भारतवर्षीय हिन्दू महासभा की ओर से निम्नलिखित प्रकार से हुई है :–

आसिन्धौसिन्धुपर्यन्ता, यस्य भारत भूमिका।।
पितृभू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः।।

अर्थात जो इस सिन्धु नदी से लेकर सागर (कन्याकुमारी) पर्यन्त विस्तृत इस भारत भूमि को अपनीपितृभूमि और पुण्य भूमि मानता है, उसे ही हिन्दू कहा जा सकता है।

---

* श्री दिग्विजयनाथ जी द्वारा दिए गए अखिल भारत हिन्दू सम्मेलन (१६६१) के स्वागत भाषण से उद्धृत। पृ० १ से ६ तक।

कितनी असाम्प्रदायिक परिभाषा है। यह किसी विशेष सम्प्रदाय अथवा आश्रम विशेष की ओर इंगित करती प्रतीत नहीं होती। न तो इसके अनुसार केवल शिवलिंग की पूजा करने वाला हिन्दू है और न गायत्री मंत्र जपने वाला ही। बल्कि हिन्दू वह है जो इस समग्र भारत भूमि को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता है। कितनी राष्ट्रीयता है उसमें, और है कितनी देश-भक्ति। जो मनुष्य इस भूमि को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानेगा वह कभी उसको धोखा नहीं दे सकता है। वह उस देश के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर सकता है। पर हिन्दू-मात्र के लिए इस भूमि को अपनी पितृभूमि मानना ही पड़ेगा, तभी वह हिन्दू कहला सकता है। पुण्यभूमि का अर्थ है कि उसके तीर्थ और महापुरूष इस भारतभूमि में ही उत्पन्न हुए हो। उसके ह्रदय में एक भाव हो की हम इसी भूमि में जन्में हैं यह भाव न रहे कि 'मेरे मौला मदीने बुला ले मुझे'। एक हिन्दू के तीर्थ काशी और मथुरा होंगे न कि मक्का और फिलिस्तीन। हिन्दू वास्तव में शुद्ध राष्ट्रीय होगा पितृभूमि और पुण्यभूमि मानने के पश्चात्। फिर वह अपने देश के साथ किसी भी प्रकार का विश्वासघात नहीं कर सकता। एक मुसलमान या अंग्रेज मानता है कि भारत भूमि उसकी पितृभूमि है, पर वह हिन्दू तब तक नहीं कहला सकता, जब तक वह उसे पुण्यभूमि न माने। अर्थात यहाँ के तीर्थों को अपना तीर्थ न माने, यहाँ के महापुरूषों को अपना महापुरूष न माने। उसे फिलिस्तीन और मक्का की याद छोड़नी ही पड़ेगी और शुद्ध भारतीय बनना ही पड़ेगा। अतएव केवल अपनी पितृभूमि ही मानकर कोई राष्ट्रीय नहीं हो सकता, उसे पूण्यभूमि भी स्वीकार करना होगा।

प्रत्येक मस्तिष्क में दो प्रकार की मनोवृत्तियाँ सुरक्षित रहती है। एक जो पुण्यभूमि की ओर आकर्षित करती हैं, और दूसरी जो पितृभूमि की ओर। अब कल्पना कीजिए की मक्का से और भारत से युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। जिनकी पुण्यभूमि की ओर आकर्षित करने वाली मनोवृत्ति अधिक बलवती रही वे निश्चय ही मक्का का पक्ष ले लेंगे। पर एक मनुष्य जो भारत का शुद्ध राष्ट्रीय व्यक्ति सिद्ध होना चाहता है, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह इसे अपनी पितृभूमि भी माने और पुण्यभूमि भी। चूँकि भारत का एकमात्र राष्ट्रीय हिन्दू है, अतः उसके लिए भी इन दोनों बातों का होना आवश्यक है। यह तो हुई हिन्दू की परिभाषा। अब सम्प्रदाय की परिभाषा भी देख लें और इस परिभाषा की कसौटी पर हिन्दू को कस कर देखें कि क्या यह वास्तव में साम्प्रदायिक है ?

एक शब्द में चिरकाल से चली आने वाली अविच्छिन्न परम्परा को सम्प्रदाय कहते है। अर्थात सनातन धर्म एक सम्प्रदाय हो सकता है या बौद्ध धर्म को हम सम्प्रदाय कह सकते हैं। क्योंकि चिरकाल से चली आ रही इनकी एक अविच्छिन्न परम्परा है। धर्म या सनातन धर्म जिस प्रकार आज माना जाता है अर्थात् इनके पालन करने के जो नियम आज हैं, आज के सहस्त्रों वर्ष पूर्व जब इन सम्प्रदायों का प्रारम्भ हुआ था तक भी उनके पालन करने के नियम वे ही थे। दूसरे शब्दों में चिरकाल से चली आ रही इनकी अविच्छिन्न परम्परा है परन्तु हिन्दू चिरकाल से चले आने पर भी एक ही परम्परा एक ही रूढ़ी, एक ही नियम से आबद्ध नहीं। वेद विरोधी चार्वाक भी हिन्दू थे, भगवान व्यास भी हिन्दू थे जिन्होंने वेद की सत्ता को सर्वोपरि माना है। शाक्त भी हिन्दू हैं जो हिंसा में दोष नहीं मानते एवं बौद्ध और जैन भी हिन्दू हैं, जो अहिंसा परमों-धर्मः के उपासक हैं।

ये सब भिन्न भिन्न सम्प्रदाय हैं पर एक व्यापक रूप में ये सभी हिन्दू हैं। एकत्र होने पर उनकी सत्ता एक राष्ट्रीयता को जन्म देती है, जिसे हिन्दुत्व कहते हैं। न तो ब्राह्मण अधिक हिन्दू है, और न शूद्र कम। दोनों ही हिन्दू हैं और उपर्युक्त सम्प्रदाय की गरिमा पर 'हिन्दू' शब्द को कसने से यह स्पष्ट हो जाता है कि न तो हिन्दू साम्प्रदायिक है और न हिन्दुत्व का अर्थ साम्प्रदायिकता है। हिन्दुत्व एक सागर है, जिसमें भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय रूपी नदियाँ आकर विलीन होने पर सागरमय हो जाती हैं। वे विभिन्न तरंगों के रूप में लहराती हुई एक मात्र समुद्र की ही शोभा बढ़ाती हैं और उसकी महत्ता की घोषणा करती हैं। ये सब मिलकर सागर का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। अतएव हिन्दू एक राष्ट्र का नाम है, न कि किसी फिरके का।

तब हिन्दुत्व है क्या ? हिन्दुत्व एक आदर्श राष्ट्रीय शब्द है, जिसने समस्त भारतीय समाज को एक सूत्र में आवद्ध कर लिया है। बौद्ध धर्म के नाम पर केवल बौद्ध धर्मानुयायी आगे बढ़ेंगे। सनातन धर्म के नाम केवल सनातनी आगे आयेंगे, पर हिन्दुत्व के नाम पर सब एक साथ आयेंगे और सम्मिलित रूप में आयेंगे और उनमें सनातनी, आर्यसमाजी, सिक्ख, बौद्ध और जैनी सभी रहेंगे।

अतएव, हिन्दुत्व साम्प्रदायिकता नहीं राष्ट्रीयता है–ऐसी राष्ट्रीयता जिसका भारत के अतिरिक्त अन्यत्र कोई अस्तित्व ही नहीं। स्मरण रहे कि कितने सम्प्रदाय नष्ट हो चुके हैं, नष्ट होंगे, और हो रहे हैं, पर हिन्दुत्व इन सब के ऊपर है और अमर है। यदि किसी दिन भारत की इस राष्ट्रीयता (हिन्दुत्व) के समाप्त होने की बात सोची जा सकती है, तो उसी के साथ यह भी सोच लेना चाहिए कि उस दिन भारत ही समग्प्त हो जायेगा।

हिन्दुस्तान के एक मात्र राष्ट्रीय हिन्दू, अपने ही देश में अवहेलना के पात्र हैं

ब्रह्मलीन पूज्य श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी ने विदेशी शासन–सत्ता के उत्पीड़न से भारतीयों को मुक्त कराने के लिए प्रारम्भ में कांग्रेस से मिल कर कार्य किया, किन्तु उन्हें कांग्रेस की नीतियाँ अंग्रेजी नीति की ही भाँति राष्ट्र के लिए घातक ज्ञात हुई। अतः उन्होंने कांग्रेस का परित्याग कर हिन्दू महासभा के मंच से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दू जाति की स्थित को देखकर उनका हृदय तड़प उठता था। हिन्दू धर्म, हिन्दू भाषा, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू स्वाभिमान पर होने वाले आघातों को देख कर वे मर्माहत हो उठते थे। उन्होंने हिन्दू राष्ट्रीयता, धर्म, भाषा ओर संस्कृति से सम्बन्धित १५ प्रश्नों की सूची हिन्दू जाति के चिन्तको के सम्मुख उपस्थित की। ये प्रश्न महन्त जी के उदवेलित हृदय के उदगार है। इनसे उनके विचारों को भली प्रकार समझा जा सकता है। ये प्रश्न निम्नलिखित हैं :–

(१) यदि हिन्दुओं को हिन्दू होने के नाते हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक समझा जाता है, तो फिर संसार में कौन सा ऐसा देश हो सकता है, जिसके हिन्दू राष्ट्रीय बन सकें ? क्या हिन्दूओं के लिए कोई देश नहीं होना चाहिए। क्या हिन्दू यहूदियों के समान अपनी स्थिति करना चाहते हैं?

(२) श्री के० एम० मुन्शी ने अपने बम्बई के भाषण में दिनांक ८ सितम्बर सन् १९४७ ई०

को जोर देते हुए कहा कि हम अपने अस्तित्व को कल की टूटी हुई और घिसी हुई राष्ट्रीयता के हेतु नष्ट नहीं होने देंगे। क्योंकि यह राष्ट्रीयता हमारे पड़ोसी की धर्मिक राष्ट्रीयता के मुकाबले में नहीं ठहर सकती। इतिहास तथा दिन प्रतिदिन की घटनाओं से यही सिद्ध होता है कि श्री के० एम० मुन्शी का विचार सत्य है, क्योंकि इसी राष्ट्रीयता के कारण देश का विभाजन हुआ। इसलिए यदि आत्मरक्षा के सिद्धान्त का कोई अर्थ हो सकता है, तो फिर हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र क्यों नहीं घोषित किया जाता है ?

(३) स्वतंत्रता का अर्थ है वह स्थिति जिसमें हमारा देश, हमारी जाति, हमारी संस्कृति, परम्परा, भाषा, अधिकार, नियम और हमारा स्वाभिमान संसार में सम्मानपूर्वक जीवित रह सके। क्या ऐसी स्थिति प्राप्त हो चुकी है ? यदि नहीं तो फिर ऐसी स्वतंत्रता को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है।

(४) हिन्दुओं की दृष्टि से हिन्दुस्तान उनकी मातृभूमि, पितृभूमि और पुण्यभूमि है। श्री नेहरू जी ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। उन्होंने शंकराचार्य के समय का इतिहास लिखते हुए लिखा है कि भौगोलिक दृष्टि से हिन्दुस्तान एक ही खण्ड है। संस्कृति, भाषा, धर्म और परम्परा के आधार पर भी यह एक ही खण्ड है। प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिए यह पुण्यभूमि है। इसलिए जब मुसलमान शासक, कर्मचारी या अधिकारी हिन्दुओं को हिन्दू होने के नाते निर्बल कहते है, तो क्या इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि वे हिन्दुस्तान से युद्ध कर रहे हैं ?

(५) जब हैदराबाद, भूपाल और पाकिस्तान में हिन्दूओं को हिन्दू होने के कारण नष्ट किया जा रहा था, तो सभी कांग्रेसी यही कहते थे कि हिन्दूओं को शक्तिशाली होकर मुसलमानों का मुकाबला करना चाहिए। इसी प्रकार जब सन् ४६ में मुसलमानों का हिन्दुओं पर आक्रमण हो रहा था, तो दिनांक १८ नवम्बर सन् १६४६ ई० को सरदार पटेल ने घोषित किया था कि तलवार का जवाब तलवार से दो।

(६) यद्यपि महाराजा कश्मीर आरम्भ ही से कश्मीर को हिन्दुस्तानी केन्द्र में सम्मिलित करने के पक्ष में थे, उनका शासन उन्नति तथा शान्ति के लिए प्रसिद्ध था, और उन्होंने सन् १६३१ के गोलमेज सम्मेलन में हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के लिए बड़े प्रभावशाली भाषण दिये थे, परन्तु उनके लिए अब स्थिति ऐसी कर दी गयी कि उनको अपने राज्य से निर्वासित होकर रहना पड़ा है और उनके स्थान पर मि० अब्दुल्ला को (जो कि आरम्भ में कश्मीर में मुस्लिम विद्रोह के संचालक थे) कश्मीर के शासन का सूत्रधार बनाया गया है। इसके विपरीत हैदराबाद की दशा है। यद्यपि निजाम सदैव से हैदराबाद को हिन्दुस्तानी केन्द्र में सम्मिलित करने के विरोधी थे, उनका शासन साम्प्रदायिक अत्याचारों के लिए प्रसिद्ध था, वे अंग्रेजों के वफादार मित्र भी रहे और उन्होंने हिन्दुस्तान से विद्रोह भी किया, परन्तु आज उनको ६५ लाख रू० जेब खर्च देकर राज्य में शासन का सूत्रधार बनाया है और स्वामी रामानन्द (जो सदैव कांग्रेसी राष्ट्रीयता को ही अपनाते रहे) का राज्य–शासन में कोई मूल्य नहीं रक्खा गया है।

इस प्रकार की मुस्लिम–भक्ति के क्या कारण हो सकते हैं ? क्या संसार में कोई ऐसा देश है, जिसने अपने विद्रोही के साथ ऐसा व्यवहार किया हो, जो निजाम के साथ कांग्रेसी शासन कर रहा है ? क्या कांग्रेसी विचार–धारा तथा शासन में मुस्लिम–भक्ति की कोई सीमा नहीं है ?

(७) कांग्रेस ने धर्म के नाम पर वोट लिये। परनतु शासनारूढ़ होते ही धर्म को राजनीति से पृथक रखना अपना ध्येय बना लिया और इसी ध्येय कोवह शासन द्वारा जनता पर लादने लगी और धर्म में हस्तक्षेप भी करने लगी। परन्तु प्रश्न है कि धर्म से पृथक रहने वाली धारा–सभाओं को हिन्दू–कोड–बिल जैसे धर्म तथा समाज को नष्ट करने वाले नियम बनाने का क्या अधिकार हो सकता है ?

(८) पाकिस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानों की बोलचाल, रहन–सहन, रीति–रिवाज, भेष–भूषा में कोई अन्तर नहीं है। वहाँ के हिन्दुओं ने जो अपने धन–जन और घर–द्वार का बलिदान किया है, और जो अब भी समस्त प्रकार के कष्ट उठा रहे हैं, यह सब केवल एक शब्द हिन्दू के लिए ही कर रहे हैं। क्योंकि यदि वे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते तो उन्हें कोई भी आपत्ति सहन न करनी पड़ती। अब क्या हमारा यही कर्तव्य है कि हम उनके इतने बड़े त्याग और बलिदान की अवहेलना करते हुए हिन्दू शब्द को ठुकरा कर राजनीति से पृथक कर दें ?

(६) श्री रविशंकर शुक्ल ने दिनांक ८ जून सन् १६४७ ई० को नागपुर में हिन्दुस्तान सोव–दल–कैम्प में भाषण देते हुए घोषित किया कि यदि हिन्दुस्तान का बँटवारा हो गया, तो मुसलमानों को हिन्दुस्तान में विदेशी समझा जायेगा। और देश के टुकड़े हो जाने के पश्चात् आचार्य युगलकिशोर (प्रधान मंत्री, कांग्रेस) ने तारीख २३ जून सन् १६४६ ई० को प्रयाग के भाषण में घोषित किया कि देश के टुकड़े हो जाने से बहुत बड़ा लाभ हुआ है। जिसका यही अर्थ था कि हिन्दु–मुस्लिम समस्या का सदैव के लिए निर्णय हो चुका है। अब देश का धर्म के आधार पर विभाजन हो जाने के पश्चात् भी क्या मुसिलम–समस्या को राजनीति में प्रवेश करने की आवश्यकता रह गई है ?

(१०) कुरान के अनुसार हिन्दू काफिर और हिन्दुस्तान युद्ध–क्षेत्र है तथा काफिरों को नष्ट करना, धर्म और मिल्लत को सहयोग देना प्रथम कर्तव्य है। जब हिन्दुस्तान के सामने हैदराबाद का प्रश्न उठा, मुसलमानों ने इसी अपने सिद्वान्त का कार्यरूप से परिचय दिया था। पाकिस्तान के गुप्तचर तो समय–समय पर मिलते ही रहते हैं, जिनसे यही प्रतीत होता है कि मुसलमान पाकिस्तान से गठबन्धन किये हुए हैं।

चौधरी खलीकुलजमा ने किस प्रकार अपने तारीख ११ अक्टूबर सन् १६४६ ई० के वक्तव्य में हिन्दुस्तान के प्रति वफादारी का विश्वास दिया था, यह सभी जानते हैं। परन्तु वे पाकिस्तान में किस प्रकार हिन्दुस्तान के विरूद्ध विष–वमन करते हैं, यह भी किसी से छिपी नहीं है। हिन्दी के प्रश्न पर संयुक्त प्रान्त की धारा सभा में तारीख ४ नवम्बर १६४७ ई० को मुसलमानों ने घोषित किया कि "हम यहाँ ही पाकिस्तान बनायेंगे"। मुसलमानी पाठशालाओं तथा मुस्लिम राज्यों में तालीम–उल–इस्लाम पुस्तक १ पृष्ठ ४ के द्वारा मुसलमान बालको को आरम्भ से ही शिक्षा दी जाती है कि हिन्दू काफिर हैं और काफिरों को क्षमा नहीं किया जायेगा। देवबन्द से मुफ्ती किफायतुल्ला ने भी अपनी जून १६४६ की नवीन पुस्तक में ऐसा ही लिखा है। इसलिए आत्म रक्षा की दृष्टि से यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या हिंन्दुस्तान में हिन्दुस्तान के राष्ट्रीयों को हिन्दू विरोधी तथा हिन्दुस्तान विरोधी धर्म पालन की आज्ञा होनी चाहिए ?

(११) पाकिस्तान सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार करने का कारण सरदार पटेल ने तारीख १६

जून सन् १६४६ ई० को बताया कि "सेक्रेटरिएट में सारे मुसलमान कर्मचारी चपरासी से लेकर अधिकारी तक मुस्लिम लीग के साथ हैं। इस कारण से केन्द्रीय शासन देश की अशान्ति और धन-धान्य की बरबादी रोकने में असमर्थ है। इस कारण से हमने हिन्दुस्तान का ७५ प्रतिशत भाग लेना स्वीकार किया है।" यदि हम इससे पूर्व की नीति पर दृष्टि डालें तो यही विदित होता है कि सरकारी नौकरियों में मुसलमानों की संख्या को कांग्रेस ने बढ़ाया था और जब भी महासभा ने कांग्रेस की इस मुस्लिमपोषक नीति का विरोध किया, तो इसको ठुकरा कर उसे साम्प्रदायिक कहा गया और अब भी मुसलमानों के लिए नौकरियों में निश्चित स्थान रक्खे गये हैं। इसलिए अब कौन सी रूकावट होगी, जिससे वह स्थिति उत्पन्न न हो सके, जिसके कारण पटेल ने पाकिस्तान का प्रस्ताव स्वीकार किया।

(१२) शुद्धि का अर्थ है कि हिन्दुस्तान को मातृभूमि, पितृभूमि तथा पुण्यभूमि मानने वालों की संख्या बढ़ाना अर्थात् उन लोगों को पुनः हिन्दू धर्म में परिवर्तित करना, जिन्होंने किसी भय या लोभ से दूसरे धर्मों को स्वीकार कर लिया है। शुद्धि की ओर ध्यान न देने का जो कुछ फल हुआ है, उसका अनुमान श्री एन० बी० गाडगील (मंत्री, केन्द्रीय सरकार) के भाषण से भी हो सकता है। ता० २१ अक्टूबर सन् १६४६ ई० को महर्षि दयानन्द की जयन्ती पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि "यदि ऋषि दयानन्द इस समय जीवित होते तो, जब कि कश्मीर के मुसलमानों ने युद्ध के लिए प्रार्थना की, आज कश्मीर की समस्या ही न होती। स्वामी जी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दुओं की जनसंख्या को कम होने से रोका था।" और हम यह देख भी चुके हैं कि हिन्दुओं की जनसंख्या कम होने के कारण ही देश का विभाजन हुआ। क्या देश को अधिक विभाजन से बचाने तथा देश में विदेशी गुप्तचरों की संख्या को कम करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि देश प्रेमी शुद्धि के कार्य में संलग्न हो जाँय ?

(१३) जनता में देशभक्ति की भावना प्रज्वलित करने की दृष्टि से हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा हिन्दी ही हो सकती है, जिसको मुस्लिम साहित्यकारों ने भी स्वीकार कर लिया है। उदाहरणार्थ मौलाना वहीदुद्दीन (प्रो० उसमानिया विश्वविद्यालय) "इफादात सलीम" के पृष्ठ २४ पर लिखते हैं कि "उर्दू" जबान का मौजूदा अदब अरबी रानी (अरब ईरानी) के अदब की नकल है। इसमें हिन्दुस्तानियत की झलक नाम को नहीं है। लेकिन जब हम बाल्मीकि की रामायण पढ़ते हैं तो हर कदम पर अपने देश की झलकियाँ देखते हैं, जो हमको उर्दू अदब में नहीं मिलती।" हिन्दी उर्दू के इस प्रकार के अन्तर पर भी क्या हिन्दी विरोधी लोगों को देशद्रोही नहीं समझना चाहिए? यद्यपि संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्री पंत जी ने अपने ४ अक्टूबर सन् १६४७ के भाषण में विश्वास दिया था कि "हिन्दुस्तान में दूसरे राष्ट्रों से सहानुभूति रखने वालों को सहन नहीं किया जायेगा।" परन्तु जब विधान परिषद ने इस सीमा तक मुस्लिमभक्ति दिखाई कि हिन्दी को १५ वर्ष पश्चात् राष्ट्रभाषा बनाना निश्चित किया, तो इसको भी मुसलमान सहन न कर सके और इसी विषय पर तारीख १६ सितम्बर १६४६ ई० को मि० जेड० एच० लारी ने विधान परिषद से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने लिखा है कि "उर्दू लिपि के स्थान पर देवनागरी तथा हिन्दुसतानी के स्थान पर हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने से मुझको और मुसलमानों को बहुत दुःख पहुँचता है।" इसलिए क्या ऐसी दशा में श्री पंत जी के विचारों को कार्यान्वित करने की आवश्यकता नहीं। यदि नहीं, तो फिर क्या

कांग्रेसी कथन व कार्य परस्पर विरोधी होते हैं ?

(१४) हमारी राजदूतिका मिसेज विजयालक्ष्मी पंडित ने अपने पेरिस के भाषण में तारीख १५ सितम्बर सन् १९४८ ई० को घोषित किया कि 'हमने अपने विधान में फ्रान्स, रूस, इंगलैंड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया के सिद्धान्तों को ही अपनाया है' और यह ठीक भी है कि हमारे विधान में भरतीयता का कोई चिन्ह तक नहीं है। उत्पादन के साधनों को शासन ने अपने हाथ में ही रक्खा है, व्यक्तिगत बुद्धि का कोई मूल्य नहीं माना गया, नागरिक स्वतंत्रता का कोई अस्तित्व नहीं, जनमत का कोई आधार नहीं, नगरपालिकाओं की कोई स्वतंत्रता नहीं, अधिकारियों का वेतन पाँच हजार रूपये से भी अधिक रक्खा गया है और इसलिए इस विधान के सम्बन्ध में ता० १६ सितम्बर १९४९ ई० को श्री जी० वी० मावलेंकर ने बम्बई के अपने भाषण में कहा 'यह विधान हिन्दुस्तान की वृत्ति तथा विचार के विरूद्ध है। इसमें बहुत अधिक पाश्चात्य वृत्ति है।'' तो क्या ऐसा विधान देश का स्वाभिमान जीवित रखने के लिए लाभदायक हो सकेगा ? साथ ही क्या इससे देश की उन्नति हो सकेगी ? ऐसी संस्था द्वारा विधान बनाये जाने की आवश्यकता नहीं, जिनको भारतीयता पर अभिमान न हो।

(१५) मंहगाई के मुख्य कारण शासन पर दिन प्रतिदिन व्यय बढ़ाने के लिए टैक्सों की बृद्धि करना, समाजवादियों की जनता को अपने चंगुल में लेने की चाल को असफल करने के लिए मजदूरों का वेतन बढ़ाना, जिससे वस्तुओं की मूल्य में वृद्धि होना, भोग विलास की वस्तुओं को अधिक मात्रा में मंगाने के कारण आयात निर्यात से अधिक होना, जनता को आकर्षित करने के लिए शीघ्रकालीन योजनाओं के स्थान पर दीर्घकालीन योजनाओं को कार्यान्वित करना, स्टर्लिग की गुलामी स्वीकार करने के लिए रूपये का मूल्य कम करना, इत्यादि बातें ही हैं क्या शासन की इस प्रकार की नीति से जनता की उन्नति हो सकेगी ? क्या इस प्रकार की नीति पर चलने वाला शासन जनहित का शासन कहा जा सकता है ?

अन्ततः उन्होंने हिन्दू जाति को उद्‌बुद्ध किया कि यदि जनता उपर्युक्त प्रश्नों पर विचार करेगी तो उनको कांग्रेसी, समाजवाद या साम्यवाद की विचारधारा तथा नीति से इनका कोई उत्तर नहीं मिल सकेगा और भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगेगा, परन्तु आत्मरक्षा की दृष्टि से उपर्युक्त प्रश्नों का निर्णय होना आवश्यक है और इसलिए हमें और कोई संस्था दिखाई नहीं पड़ती जो हमारे भविष्य को उज्ज्वल बना सके। यह तो अवश्य है कि हम अपनी सरकार को शक्तिशाली बनाना अपना राष्ट्रीय कर्तव्य समझें, परन्तु यह भी आवश्यक समझें कि हम स्वाभिमान से संसार में जीवित भी रहें और इसके लिए एक ही मार्ग हो सकता है कि हम हिन्दू महासभा की विचारधारा को अपनायें और इसी को अपने तन, मन, धन से शक्तिशाली बनायें।*

* महंत दिग्विजयनाथ–हिन्दू जाति से पन्द्रह प्रश्न – पृ० २ से १० तक

भाषा और शिक्षा सम्बन्धी विचार

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक शताब्दी पूर्व ही घोषित किया था कि :–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।" किन्तु विदेशी शासन–तंत्र में भारतीय भाषाओं की सर्वदा उपेक्षा की गई। लार्ड मेकाले की शिक्षा–नीति ने अंग्रेजी भाषा को राज्य भाषा एवं शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। आधुनिक भारतीय भाषाओं को 'वर्नाक्युलर' के नाम से घोषित किया गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने शासन के विरूद्ध आंदोलन करते हुए भारत की प्रमुखतम भाषा हिन्दी का प्रश्न भी उठाया और कांग्रेस के कर्णधारों ने एक स्वर से कहा कि एकमात्र हिन्दी भाषा ही राष्ट्र भाषा होने योग्य है। कालान्तर में कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टिकरण नीति ने हिन्दी के साथ ही उर्दू और हिन्दुस्तानी का प्रश्न उठा दिया। देश के विभाजन के पश्चात् हिन्दुस्तानी का प्रश्न स्वतः समाप्त हो गया। किन्तु भारत में बसे मुसलमानों ने अल्पसंख्यक वर्ग के नाम पर उर्दू को हिन्दी की प्रतिद्वन्दिता में निरन्तर उपस्थित रक्खा। यद्यपि उर्दू स्वतंत्र अस्तित्व वाली भाषा नहीं है, वह हिन्दी की ही एक विभाषा है, किन्तु राजनीतिक कूटनीतियों के कारण उसको अनावश्यक महत्व दे दिया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भाषा के आधार पर कुछ प्रान्तों का विभाजन करके हमारी देशी सरकार ने भाषा के प्रश्न को और भी उलझा दिया। दक्षिण भारत के कुछ राज्यों में अंग्रेजी के प्रति अधिक मोह प्रदर्शित किया गया है। इतना होने पर भी राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त चिन्तकों ने निरन्तर हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा और राज्यभाषा बनाने का आग्रह किया है। पूज्य महन्त दिग्विजयनाथ जी ने प्रारम्भ से ही हिन्दी को हिन्दुसतान की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयास किया। हिन्दुओं के सामने उपस्थित किये गये १५ प्रश्नों में उन्होंने एक प्रश्न भाषा सम्बन्धी भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने अंग्रेजी का विरोध किया है और उसके स्थान पर हिन्दी को समूचे राष्ट्र की भाषा मानने का आग्रह किया है। देवनागरी लिपि को वे समान रूप से सारी भाषाओं की लिपि मानते थे।

भारत में शिक्षा–पद्धति का प्रश्न और भी विकट हो गया है। इस सम्बन्ध में भारतीय चिन्तकों ने अनेक बार प्रयास करके सुधार प्रस्तुत करना चाहा, किन्तु मूल प्रश्न का कोई संतोषजनक समाधान अब तक नहीं मिल पाया। महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा–प्रणाली का प्रचार किया, किन्तु धीरे–धीरे यह प्रणाली भी समाप्तप्राय हो चली है। जाकिर हुसेन–समिति द्वारा किये गये इस दिशा में प्रयास दोषपूर्ण होने के कारण सफल नहीं हो सके। सन् १९६७ में छागला–समिति द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा, शिक्षा–प्रणाली तथा इससे सम्बन्धित जो नीतियाँ प्रस्तुत की गईं, उनमें महन्त जी ने भाग लिया। छागला–समिमि की रिपोर्ट राष्ट्रीय शिक्षा के अनुकूल नहीं ज्ञात हुई। अतः पूज्य महन्त जी ने उस पर एक असहमत–टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए हस्ताक्षर किया। भारतीय शिक्षा नीति के सम्बन्ध में महन्त जी की यह टिप्पणी बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है। किसी ने भी इतने जोरदार ढंग से छागला–समिति की रिपोर्ट का विरोध करने का साहस नहीं किया। महंत जी द्वारा प्रस्तुत टिप्पणी उनके शिक्षा–सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट कर देती है। अतः इसका विस्तृत विवरण आवश्यक है।

१४ जुलाई के दिन श्री मुहम्मद करीम छागला ने भारत सरकार के शिक्षा मन्त्री होने के नाते, १७ सदस्यों का एक शिक्षा–आयोग नियुक्त किया था, जिसमें ६ विदेशी, २ मुसलमान तथा

शेष हिन्दी–विरोधी सदस्य रक्खे गये थे। उसका उद्देश्य यह निर्धारित किया गया था कि वह सरकार को देश में शिक्षा के राष्ट्रीय ढांचे के सम्बन्ध में अपना परामर्श दे तथा शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्तों तका नीतियों का निर्धारण करे। इस शिक्षा आयोग ने अपनी रिपार्ट २९ जून, सन् १९६६ को भारत सरकार को दे दी।

५ अप्रैल, १९६७ के दिन भारत सरकार ने संसद सदस्यों की एक समिति नियुक्त की, जिसके विचारार्थ निम्नलिखित विषय थे :–

(१) शिक्षा आयोग की रिपोर्ट पर विचार करना;

(२) भारत सरकार के विचांरार्थ राष्ट्रीय शिक्षा–नीति–सम्बन्धी विवरण का प्रारूप तैयार करना; और

(३) अविलम्ब कार्यवाही के लिए एक कार्यक्रम का निर्देश करना।

इस समिति ने अपनी एक उप–समिति बनाकर राष्ट्रीय शिक्षा–नीति संबन्धी विवरण का एक प्रारूप तैयार किया, जिस पर ही संसद की समिति ने विचार किया। शिक्षा–आयोग की रिपोर्ट पर विस्तार पूर्वक इस समिति ने कोई विचार नहीं किया।

संसद सदस्यों की इस समिति के सदस्यों में से हिन्दू महासभा के एक मात्र प्रतिनिधि श्री महन्त दिग्विजयनाथ जी भी एक थे। समिति की कार्यवाही चलते समय उन्होंने अनेक आपत्तियाँ उठाई, किन्तु इन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसलिए, विवश होकर श्री महन्त जी ने राष्ट्रीय शिक्षा–नीति संबन्धी विवरण के प्रारूप पर असहमति प्रकट करते हुए एक टिप्पणी प्रस्तुत की, जो इस समिति की रिपोर्ट के साथ ही प्रकाशित हुई है।

असहमति टिप्पणी

''मैने शिक्षा–रिपोर्ट का विस्तार पूर्वक अध्ययन किंया है। मैं २८, २९ तथा ३० अप्रैल सन् १९६७ को हुई राज्य शिक्षा–मन्त्रियों की बैठकों में भी सम्मिलित हुआ तथा मैंने शिक्षा–आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए नियुक्त संसद सदस्यों की समिति की भी प्रायः सभी बैठों में भाग लिया है। २९ जून, १९६७ को अंतिम रूप से तैयार किया गया राष्ट्रीय शिक्षा–नीति का प्रारूप भी मुझे प्राप्त हो गया है। अब इस रिपोर्ट पर केवल हस्ताक्षर होने ही शेष रह गए हैं। मैं इस पर निम्नलिखित असहमति टिप्पणी के साथ ही हस्ताक्षर कर रहा हूँ :–

(१) मुझे ऐसा लगता है कि प्रस्तावित राष्ट्रीय शिक्षा–नीति के प्रारूप के पहले पैरे में उल्लिखित शिक्षा के उद्देश्य की अभिव्यक्ति उचित शब्दों में नहीं की गई है। मेरे विचार से इसकी भाषा इस प्रकार होनी चाहिए :–

''शिक्षा, राष्ट्रीय विकास–सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक–का एक प्रबल साधन है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जो कि भारतवासियों में देश की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति पर आधारित एक राष्ट्रीय व्यक्तित्व का विकास करे।''

(२) मुझे खेद पूर्वक यह कहना पड़ता है कि मुझे शिक्षा–समस्या के सम्बन्ध में अधिक अस्वाभाविकता इस बात में दीखी कि स्वतंत्रता के २० वर्ष पश्चात् शिक्षा का पुनर्गठन तो किया

जाना है, किन्तु हमारे बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा के स्वरूप से सम्बन्धित मूल समस्या पर इस शिक्षा–आयोग ने विचार ही नहीं किया, जैसी कि इससे आशा थी। मुझे दुःख है कि शिक्षा–आयोग की इस रिपोर्ट पर इस समिति ने पूर्ण रूप से विचार ही नहीं किया, जिस उद्देश्य से इसकी नियुक्ति की गई थी। इस कारण सेवह लक्ष्य सिद्ध नहीं हुआ, जिसके लिये वह बनी थी।

(३) वर्तमान भारतीय शिक्षा–पद्धति का वास्तविक दोष यह है कि वह मेकाले के २ फरवरी १८३५ के कुख्यात मिनिट पर आधारित है, जिसका मुख्य उद्देश्य, उसी के शब्दों में, इस प्रकार था : "इस समय हमें एक ऐसा वर्ग बनाने का प्रयास करना चाहिए, जो हमारे शासनाधीन करोड़ों लोगों के बीच द्विभाषिए का काम करे। ऐसे व्यक्ति का वर्ग रक्त तथा रंग में तो भारतीय हो, किन्तु रूचियों, विचारों, नैतिकता तथा बुद्धि की दृष्टि से अंग्रेज हो।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि मेकाले का मुख्य उद्देश्य देश में केवल क्लर्कों को तैयार करना था, तथा भारत सरकार ७ मार्च १८३५ से लेकर आज तक इसी उद्देश्य की पूर्ति में लगी हुई है। लार्ड विलियम बैंटिग ने सरकारी रूप से यह प्रस्ताव स्वीकृत कराया था कि "ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य भारतवासियों में यूरोपियन साहित्य तथा विज्ञान को बढ़ावा देना होना चाहिए, और यह कि शिक्षा के लिए नियत सम्पूर्ण धनराशि का प्रयोग यथासंभव केवल अंग्रेजी शिक्षा पर ही किया जाय।"

(४) १२ अक्टूबर, १८३६ को मेकाले ने अपने माता पिता को जो पत्र लिखा था, उससे स्पष्ट हो जाता है कि मेकाले तथा बैंटिग दोनों का लक्ष्य सम्पूर्ण भारतवर्ष को ईसाई बनाना था। इस पत्र में मेकाले ने लिखा था : "हमारे अंग्रेजी स्कूल आश्चर्यजनक रूप से प्रगति कर रहे हैं। हिन्दुओं पर इस शिक्षा का विलक्षण प्रभाव पड़ रहा है। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाला कोइ भी हिन्दू अपने धर्म के प्रति आस्थावान नहीं रहता। कुछ तो ऐसे हैं जो केवल नीति के रूप में इसे स्वीकार करते हैं, किन्तु अधिकतर आस्तिक हैं और कुछ ईसाई बन रहे हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा सम्बन्धी हमारी योजनाओं के अनुसार कार्य चलता रहा, तो ३० वर्ष के पश्चात बंगाल के सम्भ्रांत वर्गों में एक भी मूर्तिपूजक शेष नहीं रह जायगा। इसके लिए धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की भी तनिक आवश्यकता नहीं होगी। वह तो ज्ञान तथा विचारशीलता की सहज प्रक्रियामात्र से स्वयं ही हो जायेगा। इस संभावना पर मैं अति आनन्दित हूँ।"

(५) मेकाले के इस पत्र पर २६ मार्च १९२८, के "यंग इंडिया" में टिप्पणी करते हुए महात्मा गान्धी ने लिखा था : "मैं नहीं जानता कि मेकाले का वह स्वप्न पूरा हुआ अथवा नहीं कि अंग्रेजी शिक्षा पाकर भारत अपना धार्मिक विश्वास छोड़ देगा, किन्तु हम यह जानते हैं की उसका एक सवप्न और था और वह यह कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारत तथा इसके अंग्रेजी शासकों को क्लर्क मिलते रहें। निःसन्देह यह स्वप्न आशाओं से भी कहीं अधिक सिद्ध हुआ है।

(६) भारत मं अंग्रेजी शिक्षा को आरंभ कराते समय मेकाले के मन में एक दूसरा लक्ष्य भी था–प्रत्येक भारतीय वस्तु को निकृष्ट ठहराना। उसी कुख्यात मिनिट के ६ वें पैरे में उसने लिखा था :– "मुझे उन (पूर्वी भाषाओं के समर्थकों) में से एक भी सदस्य ऐसा नहीं मिला जो इस बात से इन्कार करता हो कि किसी एक उच्च–स्तरीय यूरोपियन पुस्तकालय की एक आलमारी के एक खाने में जितना ज्ञान भरा होता है, उसकी तुलना में भारत तथा अरब का समूचा साहित्य कुछ भी नहीं होता।" पिछली सात पीढ़ियों में मेकाले की यह धारणा भारतवासियों के मस्तिष्क में निरन्तर

इस प्रकार घर कर गई है कि आज प्रत्येक भारतवासी भारतीय वस्तु को घटिया समझता तथा हर पाश्चात्य वस्तु को उच्च कोटि का समझता है।

(७) ऐसी परिस्थितियों में भारत में शिक्षा के पुनर्निमाण का आधारभूत लक्ष्य इस प्रक्रिया को नष्ट करना होना चाहिये और शिक्षा के माध्यम से हर सम्भव उपाय किया जाना चाहिये जिससे भारत की नयी पीढ़ियों के हृदय में से हीनता की भावना नष्ट हो सके तथा नव–युवको में हमारे महान देश की प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता पर आधारित एक राष्ट्रीय व्यक्तित्व का विकास हो सके।

(८) मुझे बड़ा हर्ष है कि हमारे वर्तमान शिक्षामंत्री, प्रधानमंत्री, उप–प्रधान–मंत्री शिक्षा सम्बन्धी सुधारों की इस महत्वपूर्ण आवंश्यकता के प्रति पूर्णरूपेण सजग है। २८ अप्रैल, १९६७ को नई दिल्ली में हुए राज्य शिक्षा मंत्रियों के १० वे स्मेलन के प्रारंभिक अधिवेशन के अवसर पर अपने भाषण में शिक्षा मन्त्री महोदय ने कहा था कि : "राष्ट्रीय जागरूकता में वृद्धि तथा राष्ट्रीय एकीकरण तथा एकता के दृढ़ीकरण का कार्यक्रम भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि स्वतंत्रता के पश्चात् सर्वप्रथम देशभक्ति का ही नाश हुआ है। अब आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय जागरूकता की वृद्धि तथा राष्ट्रीय एकीकरण एवं एकता के दृढ़ीकरण का उत्तदायित्व शिक्षासंस्थाएँ संभालें।" इस सम्मेलन का उदघाटन करते समय प्रधान मंत्री ने स्पष्ट रूप से कहा था कि "कुछ तो स्वयं प्रणाली के कारण और कुछ अन्य कारणों से, वर्तमान समय की स्थिति के फलस्वरूप शिक्षा–पद्धति ने एक बड़ी मात्रा में पृथकता तथा मूल तत्वों से शून्यता को जन्म दिया है। अनेक नवयुवक परम्परगत मूल्यों को तो खो बैठे हैं और साथ ही उनके स्थान पर उन्हें किसी प्रकार के आधुनिक रचनात.क मूल्यों का आश्रय प्राप्त नहीं हुआ है।" इस सम्मेलन के उदघाटन के अवसर पर अपने भाषण में उप प्रधानमंत्री महोदय एक पग और आगे बढ़ गये थे, जब उन्होंने कहा था कि "हमारी संस्कृति तथा सभ्यता बड़ी प्राचीन, संभवतः सबसे प्राचीन है। मैं समझता हूँ कि मानव को सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्ति तक ले जाने से सम्बन्धित विचार–जगत में, अन्य कोई देश हमें पछाड़ नहीं सकता। आज भी हमारे पास वे विचार तथा आर्दश बने हुए हैं, किन्तु व्यवहार की अपेक्षा नाममात्र को ही ऐसा अधिकांशतः हो रहा है। हमारे आदर्श तो सबसे ऊँचे हैं, किन्तु उन्हें क्रियान्वित करने में हम सम्भवतः सबसे नीचे हैं। मुझे अवश्य ही इस अभियोग से सहमत होना पड़ता है, किन्तु यदि हम इस अभियोग को सच्चे हृदय से स्वीकार कर लें, केवल आलोचना के रूप में नहीं, तो यह आज की उस वांस्तविक परिस्थिति का उचित चित्रण होगा, जिसमें हम आज जकड़े हुए हैं और हमें अपने विचार तथा व्यवहार के बीच के इस पारस्परिक खाई को पाटने के लिए शीघ्र ही कोई मार्ग अवश्य ही मिल जायेगा। हमें इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि हम अपने उच्च आदर्शों को नीचे गिराएँ। हमें तो अपने कृत्यों का स्तर ऊपर उठाना चाहिए, जिससे कि वह हमारे उन आदर्शों से मेल खाएँ, जिन्हें हमने अपनाया है अथवा जिनमें हमारी आस्था है। मेरा विश्वास है कि शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा हम इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकते है। अन्य कोई ऐसा मार्ग नहीं है, जिससे हम राष्ट्र को शक्तिशाली तथा वास्तविक मानव हितैषी बना सके।क्योंकि, शिक्षा का उद्देश्य ही यह होता है कि उचित तथा अनुचित के बीच भेद कर सकें और जो उचित हो उसे अपनाएँ तथा जो अनुचित हो उसे त्यागने की क्षमता प्राप्त

करें। इस दृष्टिकोंण से विचार करने से दुर्भाग्यवश यही सिद्व होता है कि कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर अन्य सभी प्रकार से हमारी शिक्षा–पद्धति पूर्णतया असफल रही है। इसका कारण यह है कि हमारे दासता के काल में हमारी शिक्षा–पद्धति ने अपना पृथक् मार्ग अपना लिया था। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि दासता के वे दिन अब नहीं रहे, किन्तु उन दिनों के प्रभाव अब भी बने हुए हैं। यद्यपि हम शारीरिक रूप से अवश्य ही स्वतंत्र हो गए हैं, किन्तु मुझे इसमें बहुत सन्देह है कि हम मानसिक रूप से भी स्वतन्त्र तथा स्वाधीन हो पायें हैं। हम आज भी उन्हीं विचारों के दास बने हुए हैं और वह भी बड़े भयंकर रूप से, जिनके कारण ही हमें दासता के जाल में फँसना पड़ा था और हमें उसमें पड़ा रहने दिया गया था"। शिक्षा के सम्बन्ध में देश के सर्वोच्च नेताओं के इन भावों से इस बात का तो सपष्ट संकेत मिलता है कि भविष्य के लिए हमारी शिक्षा–पद्धति का पुनर्गठन किस प्रकार किया जाना चाहिए।

(६) इसी आधार पर मैंने अपनी इस असहमति टिप्पणी के प्रारम्भ में ही कह दिया है कि शिक्षा–आयोग की रिपोर्ट तथा तत्सम्बन्धी अन्य सभी कार्यवाही मुझे अस्वाभाविक प्रतीत हुई है। शिक्षा–आयोग से मुझे ऐसी आशा थी कि वह स्पष्ट करता कि राष्ट्रीकरण की इस प्रक्रिया को बदलने का काम हमारी पुनर्गठित शिक्षा प्रणाली किस प्रकार से करेगी, जिससे भावी पीढियों में एक राष्ट्रीय व्यक्तित्व का उद्रय हो सके। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस शिक्षा–आयोग का निर्माण प्रारम्भ से ही दोषपूर्ण था। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस शिक्षा–आयोग के १७ सदस्यों में से ६ विदेशी थे, २ अंग्रेज, १ जापानी, १ अमरीकी, १ रूसी तथा १ फ्रांसीसी। शेष ११ में से २ मुस्लिम अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि थे। शेष ६ में से अध्यक्ष महोदय जो कि देश के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों तथा शिक्षाशास्त्रियों में से एक हैं तथा शिक्षा मंत्री जो कि एक प्रख्यात इन्जीनियर तथा शिक्षा शास्त्री हैं, इन दो को छोड़कर अधिकतर सदस्य इस योग्य नहीं थे कि वे ऐसे शिक्षा–आयोग के सदस्य बनाए जायँ, जिसका मूल उद्देश्य देश में शिक्षा के पुननिर्माण का स्वरूप निर्धारित करना था और जिसके आधार पर शिक्षा उच्चतम स्तर तक ले जाई जानी थी। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि शिक्षा मन्त्रालय को तथाकथित हिन्दी–क्षेत्र के इतने विश्वविद्यालयों में से एक भी उत्तर भारतीय ऐसा नहीं मिला, जिसे इस शिक्षा–आयोग का सदस्य बनाने योग्य समझा जाता। शिक्षा–आयोग की इस दोषपूर्ण रचना का ही परिणाम है कि हमारे सामने उसकी यह अनर्थकारी रिपोर्ट आई है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह जानबूझ कर इस देश के राष्ट्रीय सामाजिक संगठन को ही छिन्नभिन्न करने के अभिप्राय से बनाई गई थी। इस सारी रिपोर्ट में हमारी राष्ट्रीय अनेकता की बात पर अत्यधिक बल दिया गया है। उदाहरण के रूप में पैरा १.०७ में कहा गया है कि "हमारे राष्ट्र में विभिन्न धर्मावलम्बी हैं और जाति तथा अप्रजातन्त्रात्मक धारा के कारण स्थिति और भी जटिल हो गई है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह अप्रजातन्त्रात्मक धारा, ऐसा प्रतीत होता है, संविधान की अप्रजातन्त्रात्मक प्रक्रिया के ही अंतर्गत अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली हो गई है, जिससे राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक प्रगति दोनों के ही छिन्न–भिन्न होने का बड़ा भय है। शिक्षा के जनता की परम्पराओं पर आधारित न होने के फलस्वरूप, शिक्षित वर्ग अपनी ही संस्कृति से दूर होता जा रहा है। स्थानीय धार्मिक भाषाई तथा राज्य सम्बन्धी निष्ठाओं के अभाव से लोग भारत के समूचे रूप को ही भूल गये है। समाज को सूत्रबद्ध रखने वाले प्राचीन

मूल्य लुप्त हो रहे हैं और उनके स्थान पर सामाजिक उत्तरदायित्व सम्बन्धी कोई प्रभावकारी कार्यक्रम नहीं है। इससे सामाजिक विघटन के असंख्य लक्षण सर्वत्र दृष्टिगत हो रहे हैं और बढ़ते ही जा रहे हैं।'' भारतीय समाज के सम्बन्ध में यह कहना भ्रमपूर्ण है। संसार में कोई भी बड़ा देश ऐसा नहीं जिसमें अल्पसंख्यक न रहते हों, किन्तु इन अल्पसंख्यकों के कारण इन राष्ट्रों का स्वरूप नहीं बदला जाता। इसलिए आज का यह बहुचर्चित मत मूलतः असत्य है कि भारत एक बहुधर्मी तथा बहुभाषी प्रदेश है। इस सम्बन्ध में भी शिक्षा–आयोग ने धर्म–निरपेक्ष शब्द पर अनावश्यक बल दिया है। भ्रमपूर्ण अर्थों में प्रयुक्त यह शब्द बड़ा पवित्र माना जाने लगा है, जबकि वास्तव में इसका अर्थ बड़ा ही निम्न प्रकार का है। इससे केवल भौतिकता की ही गन्ध आती है। यही कारण है कि भारत के संविधान में इस शब्द को कोई स्थान प्राप्त नहीं है।

''न्यू इंगलिश डिक्सनरी'' के अनुसार 'सेक्युलर' या धर्म निरपेक्ष शब्द का अर्थ है–''धर्म से सम्बन्ध–हीनता।'' तथा एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार इसका अर्थ है कि ''जिनका धर्म अथवा अध्यात्म से किसी प्रकार का सम्बन्ध न होकर उसके सर्वथा विपरीत हो, आध्यात्मिक अथवा दैवी के विपरीत, भौतिक''। इन परिभाषाओं से सिद्ध हो जाता है कि भारत के संविधान में ऐसी कोई बात नहीं जिसके बल पर हमारे संविधान के अन्तर्गत राजनीति–तंत्र पर ''धर्मनिरपेक्षता'' की छाप लगायी जा सके। इसके विपरीत संविधान के अनुच्छेद २५ में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार की व्यवस्था इन शब्दों में स्पष्ट की गई है कि ''सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता तथा इसके अधीन अन्य बातों का ध्यान रखते हुए सभी लोंगो को स्वतंत्रता पूर्वक अपना धर्म मनाने 'तदनुसार आचरण करने तथा उसका प्रचार करने का अधिकार प्राप्त रहेगा।'' संविधान का अनुच्छेद २५ इस बात को और भी स्पष्ट कर देता है कि लोग अपने धार्मिक अधिकारों का किस प्रकार प्रयोग कर सकते हैं। संविधान के ये अनुच्छेद देश के राजनीतिक जीवन में धर्म को उसी प्रकार स्थान प्रदान-करते हैं जैसे कि अन्य कोई भी आधुनिक संविधान। इन सबका अर्थ यही है कि भारत ''धर्म निरपेक्ष'' राज्य नहीं है।

(१०) हमारे संविधान में 'धर्म–निरपेक्ष' शब्द का प्रयोग न होना किसी भूल–चूक की बात नहीं है, जब कि सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, विचार–अभिव्यक्ति, विश्वास, मत तथा धर्म की स्वतन्त्रता तथा स्थिति और अवसर की समानता, सभी का उल्लेख इसमें है। वास्तविकता तो यह है कि भारत के विज्ञ संविधान रचयिता, 'धर्म–निरपेक्ष' शब्द के अर्थों से भलीभांति परिचित थे तथा उन्होंने जान–बूझ कर 'धर्म–निरपेक्ष' शब्द को संविधान में नही आने दिया। यद्यपि कुछ सदस्यों ने इसे संविधान में सम्मिलित किए जाने का प्रयास किया था। मूल अधिकारों के अध्याय पर चर्चा करते समय प्रख्यात अर्थशास्त्री स्वर्गीय प्रो० के० टी० शाह ने एक संशोधन का प्रस्ताव किया था। जिसमें वे १८–क क्रमसंख्या के एक अतिरिक्त अनुच्छेद द्वारा संविधान के प्रारूप में इस शब्द को सम्मिलित करना चाहते थे, जो ''भारतीय संविधान के प्रारूप में संशोधन नोटिस खण्ड १' नामक पुस्तक में क्रम संख्या ५६६ पर मुद्रित हुआ था। यह इस प्रकार था ''निम्नलिखत नया अनुच्छेद, अनुच्छेद १८ के पश्चात् 'धर्म सम्बन्धी अधिकार' शीर्षक के निचे जोड़ा जाया।

१८–क भारत का राज्य धर्म–निरपेक्ष होने के नाते किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा धार्मिक विश्वास से सम्बन्ध नहीं रक्खेगा, और संघ किसी नागरिक, वर्ग अथवा व्यक्ति समूह के धार्मिक

मामलों में पूर्णरूप से तटस्थता का व्यवहार करेगा।

परन्तु हमारे संविधान–निर्माताओं ने इस संसोधन को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तथा यह अस्वीकार कर दिया गया। किन्तु बात इतने पर ही समाप्त नहीं हुई। इन्ही प्रो० के० टी० शाह ने संविधान के प्रारूप में प्रस्तावना में भी एक संशोधन का प्रस्ताव किया, जिसके अनुसार "प्रभुसत्ता–सम्पन्न' तथा 'प्रजातन्त्रात्मक गणतन्त्र' शब्दों के बीच 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जुड़वाना चाहते थे।" परन्तु संविधान सभा ने इसे अस्वीकार कर दिया। पुस्तकार मुद्रित संशोधनो की सूची में यह संशोधन सबसे पहला था। तत्पश्चात संशोधनों की सूची में मुद्रित संशोधन संख्या ६६ द्वारा श्री प्रो० के० टी० शाह तथा श्री मोहनलाल गौतम संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद १ में 'भारत एक राज्य संघ होगा' के स्थान पर 'भारत एक धर्मनिरपेक्ष, संघीय समाजवादी राज्य–संघ होगा' शब्द रखना चाहते थे, परन्तु इस संशोधन का भी वही फल हुआ और इसे भी अस्वीकार कर दिया गया। इन तथ्यों से स्पष्टतया प्रकट हो जाता है कि भारत के संविधान के विज्ञ रचयिता किसी भी रूप में भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य नहीं बनाना चाहते थे। ऐसी परिस्थिति में धर्मनिरपेक्षता पर अनुचित बल देना शिक्षा आयोग के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था, जैसा कि पारा १.७० में इसने किया है। इसमें इसने 'धार्मिक शिक्षा' तथा 'धर्मों के सम्बन्ध में शिक्षा', में भेद करने के लिए अनावश्यक कष्ट उठाया है इसने आगे कहा है कि बहुधर्मी धर्म निरपेक्ष राज्य के लिये किसी एक धर्म की शिक्षा की व्यवस्था करना व्यवहार्य न होगा।' जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, भारत को 'बहुधर्मी धर्म–निरपेक्ष राज्य' कहा ही नही जा सकता। देश की ६० प्रतिशत जनसंख्या किसी न किसी रूप में हिन्दू धर्म की अनुगामी है, शेष १० प्रतिशत अल्पसंख्यक हैं और इन्हें इस बात का अधिकार नहीं दिया सकता कि वे इस देश की ६० प्रतिशत जनता के अधिकारों के विरूद्ध 'वीटो' के रूप में अपने अधिकारों का प्रयोग करें। 'हिन्दू' की व्याख्या अनुच्छेद २५ (२) (ख) द्वारा संविधान में पूर्णतया स्पष्ट दी गई है, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि 'सिक्ख, जैन अथवा बौद्ध धर्म के प्रति सन्दर्भ का अर्थ हिन्दू धर्म से तथा हिन्दू धर्म की संस्थाओं का अर्थ भी इसी के अनुसार लिया जायेगा।' इस व्याख्या से पूर्णतया स्पष्ट है कि भारत की ६० प्रतिशत जनसंख्या विभिन्न रूपों में हिन्दू धर्म की ही अनुयायी है। अतः स्कूलों में धार्मिक शिक्षा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए। भारत के लिए यह कैसी दुःख की बात है कि देश में सभी ईसाई संस्थायें विद्यार्थियों को ईसाइयत पढ़ाने के लिए स्वतंत्र हैं और मुस्लिम संस्थायें अपने बच्चों को अपने धर्म की शिक्षा देती हैं, तो केवल हिन्दू विद्यार्थियों पर ही अपने धर्म की जानकारी प्राप्त करने पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है। स्वतंत्रता से पूर्व १०० वर्ष तक भारत में ब्रिटिश सरकार ने तथा स्वतंत्रता के पश्चात् पिछले २० वर्षों के काल में हमारी अपनी राष्ट्रीय सरकार के इस रवैये ने इस देश की जनता के जीवन में एक शून्य पैदा कर दिया है और विद्यार्थियों में वर्तमान अनुशासन–हीनता का कारण हिन्दु धर्म के िद्धान्तों की शिक्षा न देना ही है, मैं दृढ़ता पूर्वक मांग करता हूँ कि अब यह व्यवहार बदलना चाहिए। इस देश के ६० प्रतिशत राष्ट्रीयों को यह अधिकार है कि वे देश की धार्मिक परम्पराओं की शिक्षा अपने बच्चों को दिलायें। अतः मैं मांग करता हूँ कि शिक्षा के प्रारम्भिक चरणों में ही सभी विद्यार्थियों को वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता तथा अन्य धर्म ग्रन्थों की धार्मिक–शिक्षा दी जाय, जिससे बच्चे बड़े होकर जब नागरिक बनें तो उन्हें इस प्राचीन देश के भूतकाल की उच्च पृष्ठभूमि की पूरी–पूरी

जानकारी हो। इसी तरह मेकाले द्वारा प्रस्तुत राष्ट्र के विघटनात्मक काम का अन्त किया जाय और वह भी कड़ाई के साथ। जब तक ऐसा नहीं किया जाता हमारे स्कूलों तथा कालेजों में अपनाई जाने वाली शिक्षा–पद्धति इन नवयुवकों को प्रथम श्रेणी का नागरिक नहीं बना सकती, चाहे पाश्चात्य दृष्टिकोण से वे कितने ही वैज्ञानिक क्यों न समझे जाँय ?

(१२) इसी सन्दर्भ में एक और बात पर भी मैं बल देना चाहता हूँ कि शैक्षिक संस्थाओं में से धार्मिक पर्वों की छुट्टियाँ हटा देने के सम्बन्ध में शिक्षा–आयोग का प्रयास सर्वथा दोषपूर्ण है। पैरा २.३६ में कहा गया है कि "छुट्टियों की धारणा को धर्म–निरपेक्ष बनाया जाय तथा दीपावली, क्रिसमस अथवा पूजा आदि धार्मिक पर्वों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।" तथा पैरा २.३७ (१) में यह मत व्यक्त किया गया है कि "धार्मिक छुट्टी के दिन किसी शैक्षिक संस्था को बन्द करने की आवश्यकता नहीं। न ही उन्हें भारत के महान सपूतों के जन्म अथवा मरण दिवसों पर बन्द करने की आवश्यकता है। आयोग की रिपोर्ट के इन सन्दर्भों पर मुझे बड़ी आपत्ति है। संसार के सभी इसाई देशों में क्रिसमस तथा ईस्टर अत्यन्त ही धूमधाम से मनाये जाते हैं। उसी प्रकार सभी मुसलिम देशों में लोग ईदुलफितर तथा ईदल्जुहा और मोहर्रम बड़े समारोह के साथ मनाते हैं और इन सभी समारोहों में भाग लेने वाले मुख्य रूप से विद्यार्थी ही होते हैं। क्या भारत में हिन्दुओं के लिए हिन्दू होना अपराध है कि उन्हें अपने पर्व मनाने पर रोक लगा दी जाय ?

प्रायः कहा जाता है कि हिन्दुओं में पर्वों की संख्या अधिक है। इसका कारण खोजना कोई कठिन बात नहीं। अपने उप–प्रधानमंत्री श्री मुरार जी देसाई के पूर्वोद्धृत मत के अनुसार हमारी सभ्यता एवं संस्कृति बहुत प्राचीन है, संभवतः सबसे अधिक प्राचीन। अतः यह स्वाभाविक ही है कि सभ्यता जितनी प्राचीन होगी, उसे उतने ही महान् व्यक्तियों तथा उनके महान् कृत्यों के पर्व मनाने होंगे। अतः यह बात किसी भी प्रकार अनुचित नहीं है कि ऐसे हिन्दू पर्वों की संख्या अधिक है जिन्हें मनाया जाना चाहिए और इन पर्वों के समारोहों में भाग लेने के लिए विद्यार्थीयों को हर प्रकार की सुविधा मिलनी चाहिए। इस वर्ष भारत सरकार ने होली तथा शिवरात्रि जैसे महत्वपूर्ण त्योहारों पर भी छुट्टी नहीं की थी। और ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्यवाही शिक्षा आयोग की इस रिपोर्ट के आधार पर की गई थी। शिक्षा–आयोग को चाहिए तो यह था कि वह इस विधि को अपनाता कि केवल उन्हीं पर्वों के लिए पूरी छुट्टी घोषित की जायेगी जिसे ५० प्रतिशत से अधिक लोग मनायें और ५० प्रतिशत से कम संख्या वाले लोगों के पर्वों के लिए पूरे वेतन सहित प्रतिबन्धित छुट्टियाँ घोषित की जायँ और केवल उन सम्प्रदायों के अनुयायियों को ही दी जाँय जिनसे कि वे सम्बन्ध रखते हों। इस से कई अनावश्यक छुट्टियाँ बच सकेंगी, तथा बहुसंख्यक जनता के प्रति किसी प्रकार का अन्याय भी नहीं होगा।

(१२) इसी सम्बन्ध में मैं लोगों का ध्यान बुनियादी तालीम पर जाकिर हुसेन–समिति द्वारा किये गये प्रयत्न की ओर दिलाना चाहता हूँ। उसने सामान्य ान के नाम पर सात वर्ष के पाठ्यक्रम द्वारा समस्त भारत में पाँचवी कक्षा के छात्रों को 'भारत और विश्व में इस्लामी संस्कृति' का पाठ पढ़ाना चाहा था। साथ ही इस समिति ने सारे पाठ्यक्रम में विशेष रूप से वेद एवं उपनिषद रामायण, महाभारत, संस्कृत और हिन्दा तथा हिन्दू संस्कृति को कोई स्थान नहीं दिया। यह कार्य इस समिति द्वारा जानबूझ कर इस देश के लोगों में अराष्ट्रीयता की भावना जारी रखने

के लिए किया गया था। जो क्रिया १८३५ में मेकाले द्वारा आरम्भ की गई थी, यह रिपोर्ट भी उसी क्रिया को और आगे ले जाने वाली एक कड़ी है और मैं इसका घोर विरोध करता हूँ।

(१३) इसी कारण मैं पैरा ८.४८ और ८.४६ से भी असहमत हूँ, जिनमें संस्कृत भाषा के अध्ययन को हतोत्साहित करने का प्रत्येक प्रयत्न किया गया है। स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने एक बार कह था कि भारत के प्रत्येक राज्य में एक संस्कृत विश्वविद्यालय होना चाहिए। मुझे ऐसा लगता है कि श्री शास्त्री जी के इस सर्वथा आवश्यक सुझाव को नष्ट करने के अभिप्राय से ही शिक्षा–आयोग ने यह मत रखा है कि वह संस्कृत विश्वविद्यालयों की स्थापना के विचार का समर्थन नहीं करता। जैसा हम सभी जानते हैं, संस्कृत भाषा समस्त ज्ञान तथा विज्ञान का वृहत भण्डार है। इस देश के वासी तब तक प्रथम श्रेणी के वैज्ञानिक नहीं बन सकते जब तक वे संस्कृत में उपलब्ध प्राचीन भारतीय विज्ञानों का उचित अध्ययन नहीं कर लेते, चाहे वह गणित हो या खगोल विद्या, वह गणित ज्योतिष हो या फलित ज्योतिष हो, चाहे आयुर्वेद हो या शल्य चिकित्या, चाहे दर्शन शास्त्र हो या तर्क शास्त्र हो या कोई अन्य विज्ञान हो। मैं इस बात का घोर विरोध करता हूँ कि संस्कृत को ऐसी अन्य प्राचीन भाषाओं के समकक्ष ही रख दिया गया है, जिनका विज्ञान से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध ही नहीं है और जो भारत के लिए सदैव विदेशी भाषाएँ रहीं है, मैं समझता हूँ कि संस्कृत भारतीय भाषाओं और समस्त विज्ञानों की जननी है। अतः उसका अध्ययन आरम्भ से ही समस्त छात्रों के लिए अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए, जिससे कि जब बड़े हों तब इस भाषा के पंडित बन सकें और वे आधुनिक वैज्ञानिक खोज और आविष्कार को आसानी से समझ सकें। क्योंकि यह तो संस्कृत भाषा में विद्यमान विज्ञानों को आगे ले जाने वाली प्रगति मात्र है। इस क्षेत्र में भी मेकाले के कुकृत्य का अन्त किया जाना चाहिए।

(१४) भाषा नीति के सम्बन्ध में मैं समझता हूँ कि बड़े ही अनुचित ढंग से विचार किया गया है। तथ्य तो यह है कि शिशुओं का मष्तिष्क अनेक भाषाएँ सिखने योग्य होता है। और शिशु जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है, वैसे–वैसे उसकी यह क्षमता कम होती जाती है। बालक ज्यों–ज्यों बड़ा होता है त्यों–त्यों उसमें अन्य विषयों को सीखने की क्षमता बढ़ती जाती है। इसलिए यह कहना बड़ा अनुचित है कि आरम्भ में बालक को तीन–चार भाषाएँ नहीं सिखानी चाहिए। भाषा सीखने के लिए उच्च स्तर के मानसिक विकास की आवश्यकता नहीं होती, जब कि अन्य विषयों के लिए आवश्यकता होती है। इस कारण से प्रारम्भिक काल में बच्चों पर विज्ञान के शिक्षण के लिए अत्यधिक बल देना और एक से अधिक भाषाएँ सीखने को हतोत्साहित करना मूलतः अनुचित है। मेरे विचार से प्राथमिक कक्षाओं में छोटी–छोटी कहानियों के रूप में भाषाओं को तथा गणित के प्रारम्भिक सिद्धान्त और सामान्य ज्ञान के विषय ही पढ़ाये जाने चाहिए। जैसे–जैसे बालक की आयु बढ़ती जाये, वैसे–वैसे भाषाओं की पढ़ाई कम तथा वैज्ञानिक विषय की अधिक पढ़ाई होनी चाहिए। इस दृष्टि से मैं समझता हूँ राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी, एक प्रादेशिक भाषा और एक अन्य भारतीय भाषा के साथ ही साथ प्रारम्भ में संस्कृत भी पढ़ाई जानी चाहिए। इसके पश्चात् संस्कृत हिन्दी तथा एक भारतीय भाषा समस्त शैक्षिक जीवन काल में बनी रहनी चाहिए। इस प्रजातंत्र के युग में केवल ५१ प्रतिशत के बहुमत से कोई मत अथवा निर्णय सब पर लादे जा सकते हैं, जिनमें

वह सब भी सम्मिलित हैं जो ४६ प्रतिशत के सारपूर्ण अल्पमत में से होते हैं। केवल ७.४ प्रतिशत तमिलनाड के लोगों के न्यून अल्पमत के कारण अंग्रेजी को दिये गये अनुचित महत्व के द्वारा देश की प्रगति रोकी नहीं जानी चाहिए। यह केवल राष्ट्रभाषा तथा प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से ही सम्भव है। यह कहानी भी पूर्णतया सत्य नहीं है कि अंग्रेजी पाश्चात्य ज्ञान–प्राप्ति के लिए एक झरोखा है। केवल इंग्लैड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, संयुक्त राज्य अमेरिका और उन देशों को छोड़ कर जो अब तक अंग्रेजों के अधीन थे, अंग्रेजी शेष जगत में कहीं नहीं समझी जाती। आज यूरोप में पश्चिम से पूर्व की ओर चलते हुए चार प्रमुख भाषायें हैं। स्पेनी, फ्रांसीसी, जर्मन और रूसी। यदि छात्रों को पाश्चात्य ज्ञान के किसी ऐसे ही माध्यम की आवश्यकता हो तो उन्हें अंग्रेजी के स्थान पर इन यूरोपियन भाषाओं में से कोई एक सीखनी चाहिए। यह कहना असत्य है कि अंग्रेजी की जानकारी के बिना हम वैज्ञानिकों उन्नति कर ही नहीं सकते। जो रूसी आज विज्ञान में सबसे आगे बढ़े हुए हैं, उन्होंने सारा का सारा विज्ञान रूसी भाषा के माध्यम से ही सीखा है, यद्यपि ४० वर्ष पूर्व वे सबसे पिछड़े हुए थे और आधुनिक युग के विज्ञान को वे जानते ही नहीं थे। चीन ने भी सब विज्ञान चीनी भाषा के ही माध्यम से ही सीखा। इसी प्रकार जापान ने भी अपनी सारी प्रगति जापानी भाषा के द्वारा ही की। यूरोप में बलगेरिया जैसे छोटे देशों में भी सब विज्ञान बल्गेरियन भाषा के माध्यम से सिखाए जाते हैं। तब इस देश के लिए यह क्यों अनिवार्य है कि उन्हें विभिन्न कलाओं तथा विज्ञानों का पंडित बनने के लिए विदेशी भाषा सीखनी आवश्यक है। समस्या केवल वैज्ञानिक पुस्तकों के अपनी भाषाओं में अनुवाद कराने की है। यदि जम्मू कश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह धमार्थ ट्रस्ट में नियुक्त सौ पंडितों की सहायता से संस्कृत की सैकड़ों पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करा सकते थे और यदि हैदराबाद के निजाम स्वर्गीय उस्मान अली खाँ अपने उस्मानिया विश्वविद्यालय के लिए प्राथमिक कक्षाओं से लेकर स्नातकोत्तर कक्षाओं तक की समस्त पाठ्य पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद करा सकते थे, तो फिर कोई कारण नहीं है कि हमारी भारत सरकार अपने सब साधनों के होते हुए भी, संसार की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद नहीं करा सकती। यदि सरकार अरबों रूपया विभिन्न कार्यों पर व्यय कर सकती है, तो फिर इसका कोई कारण नहीं कि वह केवल अनुवाद के इस कार्य पर कुछ करोड़ रूपये नहीं लगा सकती, जिससे कि जहाँ तक सम्भव हो, हम कम से कम अपनी भाषाओं के माध्यम से राष्ट्र की अधिक से अधिक वैज्ञानिक उन्नति कर सकें। इन कारणों से मैं हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी को सहयोगी राजभाषा के रूप में बनाये रखने का घोर विरोधी हूँ, क्योंकि जब तक अंग्रेजी किसी रूप में भारत में शिक्षा का माध्यम बनी रहेगी, तब तक उस कुकृत्य का अन्त करना सम्भव नहीं है, जो मानसिक दृष्टि से भारतवासियों को अंग्रेजी का दास बनाये रखने के लिए मेकाले ने किया था। मुझे शिक्षा–आयोग की उस सिफारिश पर अत्यधिक आपत्ति है, जो उसने त्रिभाषा–सूत्र में परिवर्तन करने के लिए की है। वास्तव में ऐसी सिफारिस करना उसके विषय–क्षेत्र में ही सम्मिलित नहीं था। त्रिभाषा–सूत्र पर देश भर में बहुत सफलतापूर्वक कार्य चल रहा था। प्रादेशिक भाषा के विकल्प रूप में मातृभाषा को लाकर और सम्पर्क भाषा के लिए हिन्दी के विकल्प के रूप में अंग्रेजी की सिफारिश करके शिक्षा–आयोग ने बहुत बड़ा अपकार किया है, जिसका मैं अपनी पूरी शक्ति से विरोध करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि पुराना त्रिभाषा–सूत्र ही चलता रहे, जिसके अन्तर्गत हिन्दी

तथा प्रादेशिक भाषायें शिक्षा का माध्यम रहेंगी। त्रिभाषा–सूत्र के अनुसार विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा केवल प्रादेशिक भाषा के माध्यम से देने का प्रस्ताव है। इसका परिणाम यह होगा कि देश अलग–अलग टुकड़ों में बँट जायेगा, जैसा कि मेकाले के मित्र तथा हमारे देश के अन्य शत्रु चाहते हैं। अतः मैं इससे पूर्व अपनी पूर्ण असहमति प्रकट करता हूँ और इसे लागू किये जाने का मैं घोर विरोध करता हूँ।

(१५) मैं एक अन्य महत्वपूर्ण बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह भारत में बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में है। सारे यूरोप में इस समय यह प्रवृत्ति है कि उच्च कक्षाओं में सहशिक्षा न्यूनतम रखी जाय, क्योंकि इसका विद्यार्थियों के नैतिक जीवन–स्तर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत भारत में उल्टी गंगा बह रही है। वास्तव में यह बात कितनी हास्यास्पद है कि एक ओर तो हमारे यहाँ प्राथमिक स्कूल बालको तथा बालिकाओं के लिए पृथक्–पृथक् हैं और साथ ही अधिकाधिक संख्या में माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा–संस्थाएँ सहशिक्षा संस्थाओं में परिवर्तित की जा रही हैं। विश्वविद्यालयों में तो यह शिक्षा ऐसी अवस्था के युवकों तथा युवतियों के लिए अनिवार्य सी बनाई जा रही है, जो उनके जीवन की सबसे भयंकर अवस्था होती है। वास्तव में होना तो यह चाहिए कि सहशिक्षा दस वर्ष तक के लिए ही हो और इससे अधिक आयु के बच्चों के लिए सभी प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था बालकों तथा बालिकाओं के लिए पृथक–पृथक की जाय। खेद की बात है कि शिक्षा–आयोग ने इस विषय पर उचित ध्यान ही नहीं दिया है और मैं चाहता हूँ कि शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति के सम्बन्ध में जो भी व्क्तव्य तैयार किया जाय उसमें ये बाते अवश्य सम्मिलित की जायँ। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे समाज का आधर ही ब्रह्मचर्य है, और इसी के कारण हमारे देश ने ज्ञान तथा सामाजिक आचार के क्षेत्र में इतना ऊँचा स्थान बना रखा है। सहशिक्षा हमारे समाज के आधार को ही नष्ट कर रही हे और मेरे विचार में तो यह हम सभी का कर्तव्य है कि हम अपने सामाजिक आचार को उस उच्च शिखर तक ले जायँ, जिसने अब तक हमें शक्ति प्रदान की है। इस सम्बन्ध में यह भी अति आवश्यक है कि भारत में शिक्षा का उद्देश्य लोगों को अपने भावी जीवन के लिए प्रशिक्षण होना चहिएं। अतः माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर महिलाओं की शिक्षा के विषय ऐसे होने चाहिए, जो उनके अपने सारे जीवन काम आयें। जैसे चिकित्सा, अध्यापन, ललित कला तथा विभिन्न प्रकार के घरेलू कार्य। इसके साथ साथ यह भी आवश्यक है कि ललित कलाओं का अध्ययन करने के लिए लड़कों को प्रोत्साहन न दिया जाय। उनका अध्ययन अधिकांश पुरुषोचित विद्याओं तक ही सीमित होना चाहिए।

(१६) मुझे खेद है कि शिक्षा–आयोग ने सिनेमा और टेलीविजन की चर्चा नहीं की है, जो शिक्षा के सबसे उपयुक्त माध्यम है। प्रायः सभी देशों में इनका शिक्षा के लिए पूरा–पूरा उपयोग किया जाता है। परन्तु हमारे देश के युवकों और युवतियों के जीवन–स्तर पर हमारी गन्दी फिल्मों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। मैं यह माँग करता हूँ कि ऐसी फिल्में जो 'केवल प्रौढ़ के लिए' ही होती हैं, उन पर पूरी तरह से प्रतिबन्ध लगा दिया जाय और इस बात की व्यवस्था की जाय कि भारतीय फिल्मों में यौन सम्बन्धी तत्वों से भरे तथा गन्दे गीतों का समावेश न हो, जैसा कि इस समय वस्तुतः हो रहा है।

(१७) मुझे इस बात पर बड़ी आपत्ति है कि नाचने और गाने जैसी निकृष्टतम कलाओं को शिक्षा–आयोग की रिपोर्ट में संस्कृति का नाम दिया गया है। ये चीजें पाश्चात्य लोगों के लिए तो संस्कृति का भाग हो सकती हैं, जिनकी पहुँच अभी दार्शनिक जीवन की उच्चतर कल्पनाओं तक नहीं हो पाई है, किन्तु जहाँ तक भारत के लोगों का प्रश्न है, दार्शनिक चर्चाओं के उत्कृष्ट रूपों को ही संस्कृति के रूप में माना है। इन तथाकथित कलाओं को प्रोत्साहित करके सारी जनता को दुश्चरित्र बनाने का योजनाबद्ध प्रयत्न किया जा रहा है। मैं तो यह देखना चाहूँगा कि योग तथा आसनों आदि को बड़ी मात्रा में प्रोत्साहित किए जाये, जिससे देश के लोग स्वस्थ तथा सशक्त बनें। स्वस्थ मस्तिष्क के लिए स्वस्थ्य शरीर आवश्यक है। मुझे वास्तव में इस बात का बड़ा दुःख है कि शिक्षा–आयोग ने इस प्रश्न को उठाना तक अनुचित समझा, सिवाय इसके कि उसमे ड्रिल और नेशनल कैडेट कोर के सम्बन्ध में ही उसने अपने विचार रखे। इस सम्बन्ध में भी मैं समझ नहीं सकता कि हमारी बालिकाओं को राष्ट्रीय कैडेट कोर या इसी प्रकार के अन्य प्रशिक्षण क्यों दिये जा रहे हैं ? भारत में पुरूष शक्ति की तो कोई कमी है ही नहीं, जैसा की यूरोप के अधिकांश भागो में है। इसलिए हमारी बालिकाओं को किसी भी रूप में सैनिक प्रशिक्षण देने का प्रयत्न करना न केवल भूल है, वरन् वह निश्चित रूप से हानिकारक भी है। हाँ, उनको उपचर्या, प्राथमिक चिकित्सा, रोगियों और घायलों की सेवा–सुश्रूषा करने की शिक्षा अवश्य दी जा सकती है। मुझे आशा है कि भारत में कभी भी ऐसा दिन नही आयेगा जब देश की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए पुरूषों के न होने के कारण स्त्रियों को लड़ने के लिए युद्ध–भूमि में जाना पड़े। इसलिए नेशनल कैडेट कोर में लड़कियों को भी प्रशिक्षण दिया जा रहा है, वह सर्वथा राष्ट्र अहित में है। इस धन का बहुत अच्छा उपयोग हमारे नवयुवकों को सैनिक रूप में प्रशिक्षित करने के लिए किया जा सकता है।

(१८) शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति से सम्बन्धित वक्तव्य में कुछ सथानों पर भारत के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास पढ़ाए जाने का उल्लेख किया गया है। इस इतिहास में हमारे स्वतन्त्रता–संघर्ष के पिछले एक हजार वर्षों की सारी अवधि का समावेश किया जाना चाहिए, न कि केवल दो सौ वर्षों की अवधि का।

शिक्षा और धर्म

ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी ने शिक्षा में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान देने का निरन्तर आग्रह किया है। भारत जैसे राष्ट्र में, जहाँ धर्म और संस्कृति को सर्वत्र वरीयता दी जाती है, शिक्षा की प्रणाली धर्म और संस्कृति से अछूती हो, यह बात महन्त जी को सहय नहीं थी। इसी कारण उन्होंने धार्मिक संस्थानों को शिक्षा की व्यवस्था में प्रमुख रूप से सहयोग करने की बाते कही हैं। विद्यालयों के पाठ्क्रम में धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों एवं आध्यात्मिक आदर्शो को विशेष स्थान दिलाने का उन्होंने आग्रह किया था। सन् १९६१ में हिन्दू धर्मस्व आयोग को स्मृति पत्र देते हुए उन्होंने कुछ शिक्षा सम्बन्धी सुझाव भी प्रस्तुत किये थे। उन्होंने कहा था कि :–

"जहाँ तक युवकों को धार्मिक और आध्यात्मिक प्रशिक्षण देने के लिए व्यावहारिक कदम उठाने का प्रश्न है, मैं निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत करना चाहूँगा।"

(अ) प्रत्येक धार्मिक संस्था–हर एक मठ, मंदिर या जन–पूजा–गृह– में प्रतिदिन या सप्ताह में एक दिन उदार दृष्टिकोण एवं उच्च चरित्र वाले योग्य व्यक्तियों के प्रवचन की व्यवस्था होनी चाहिए। ये प्रवचन गीता, उपनिषद्, भागवत, योगवाशिष्ट, वेदान्त, योग–दर्शन, रामचरित मानस, दुर्गा सप्तसती या इसी कोटि के अन्य सर्वमान्य धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर दिए जाने चाहिए।

(बा) प्रत्येक स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय में प्रख्यात विद्वान और धार्मिक नेता, जो अपने साधु स्वभाव, उदार धार्मिक दृष्टिकोण एवं त्याग तथा निःस्वार्थ सेवा के लिए प्रसिद्ध हों, जितनी बार सम्भव हो, धर्म सम्बन्धी प्रवचन देने के लिए बुलाये जाने चाहिए। इस कोटि के विद्वान और धार्मिक नेता विद्यार्थियों के समक्ष मानव–जीवन के सच्चे आदर्श उपस्थित कर सकेंगे।

(स) स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों में धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों, मानव जीवन के अध्यात्मिक आदर्शों तथा विशेष रूप से भारतवर्ष के सभी धर्मों के सच्चे सन्तों–महात्माओं के जीवन और शिक्षाओं से सम्बद्ध पाठ समाविष्ट होने चाहिए।

(द) सभी स्तर की शैक्षणिक संस्थाओं में सभी प्रकार के विषयों का अध्यापन करने वाले शिक्षको को चाहिए कि वे कटिबद्व होकर अपने भाषणों के द्वारा विद्यार्थियों के मन और ह्रदय में यह भावना जागृत कर दें कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य उसके नैतिक और आध्यात्मिक विकास पर निर्भर है, न कि भौतिक वैभव की प्राप्ति एवं उसके लिए संघर्षरत होने पर।

(य) प्रत्येक नगर में कम से कम एक सार्वजनिक धर्म–केन्द्र होना चाहिए, जिसमें नैतिकता और धर्म के सिद्धान्तों पर नियमित रूप से प्रवचन और वाद–विवाद होना चाहिए।

(फ) भागवत कथा, भजन–कीर्तन, देवदर्शन, तीर्थस्नान तथा धार्मिक सम्मेलनों को हर प्रकार का प्रोत्साहन मिलना चाहिए, ताकि जनता के मन पर स्वस्थ, पवित्र और आध्यात्मिक प्रभाव पड़ सके।

(ज) इसके अतिरिक्त प्रत्येक साधन–सम्पन्न धार्मिक संस्था के अन्तर्गत एक संस्कृत पाठशाला होनी चाहिए, जिसमें सामान्यतः संस्कृत साहित्य और विशेष रूप से हिन्दू धार्मिक और दाशर्निक परम्पराओं के अध्ययन की व्यवस्था होनी चाहिए। सरकार को इन पाठशालाओं के लिए संस्कृत साहित्य के विद्वानों की व्यवसथा करनी चाहिए और उनकी उचित वेतन प्रदान करना चाहिए।

(ह) नगरों और गांवों में प्राचीन संस्कृत पाठशालाओं को लोकप्रिय बनाने एवं उन्हें पुर्नव्यवस्थित करने के लिए सरकार और सामाजिक नेताओं को व्यवहारिक कदम उठााना चाहिए। इसके लिए सरकार को चाहिए कि पाठशालाओं को पर्याप्त अनुदान दे और विद्यार्थिओं को अन्य तरीकों से प्रोत्साहित करे।

(र) प्रत्येक जिला–केन्द्र में एक संस्कृत कालेज होना चाहिए, जिसमें सांस्कृतिक महत्व के सर्वमान्य संस्कृत ग्रन्थों के और भिन्न–भिन्न धार्मिक दार्शनिक परम्पराओं के गहन अध्ययन की व्यवस्था के साथ ही धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन, भारतवर्ष के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास के इतिहास एवं अन्य सम्बद्ध विषयों के अध्ययन की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ल) सभी शिक्षा केन्द्रों में आर्दश चरित्र एवं आध्यात्मिक मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों के

निरीक्षण में क्षात्रगृहों का संगठन किया जाना चाहिए। इन गृहों में असाम्प्रदायिक एवं पूर्वाग्रह–रहित सर्वमान्य नैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा दी जानी चाहिए। यही नहीं, इस शिक्षा को कार्यान्वित कराया जाना चाहिए और सादा जीवन एवं उच्च विचार की भावना को आधार बनाकर कड़ा अनुशासन लागू किया जाना चाहिए। इन छात्र–गृहों में रहने वाले विद्यार्थियों को थोड़े में निर्वाह करने, सुविधा पूर्वक अध्ययन करने एवं आत्म–निर्भरता तथा आत्म–विश्वास की भावना जाग्रत करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

(व) सामान्यतः छात्रों को दलगत राजनीति के प्रभाव से अलग रखना चाहिए।''

भाषा के आधार पर प्रान्तों का विभाजन

ग्वालियर में आयोजित हिन्दू महासभा के ४६ वें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर सन् १९६१ में पूज्य महन्त ज़ी ने भारत की तत्कालीन भाषा समस्या पर भी प्रकाश डाला था। भाषा के आधार पर प्रान्तों का विभाजन देश के विघटन का स्वरूप लेकर आया। महन्त जी ने कहा–

''भारत में भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का कार्यक्रम जिस घृणित रूप से सम्पन्न किया गया है, उसका वीभत्स रूप हमारे समक्ष उपस्थित हो रहा है। सत्तारूढ़ कांग्रेस दल ने जानबूझकर भाषायी उन्माद को जागृत किया है, जिससे कि येन–केन–प्रकारेण उनका शासन देश पर बना रहे। १९४७ में जब पाकिस्तान की स्थापना हुई थी, उस समय यह कहा गया था कि हमारी पुण्यभूमि का विभाजन अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का परिणाम है। किन्तु आज हमें ऐसा लगता है कि उस दिन इस नीति का अंत नहीं, अपितु आरम्भ हुआ था। उस समय तो भारत दो ही उपनिवेशों के रूप में विभाजित हुआ था, किन्तु अब तो फूट और विभेद के बीज अपना रंग लाने लगे हैं और ऐसा लगता है कि वे इस खंडित भारत भूमि को २० और छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त करने की तैयारी में संलग्न है, जिनमें से कोई किसी के अधीन न होगा। देश को भाषा के आधार पर विभाजित करने की इतनी शीघ्र कोई आवश्यकता नहीं थी। इसके लिए कुछ दिनों रूका जा सकता था, क्योंकि देश के समक्ष अन्य कई महत्वपूर्ण समस्याएँ विद्यमान थीं, जिनका समाधान होना शेष था। किन्तु जब इस सम्बन्ध में कोई निर्णय कर ही लिया गया था, तब फिर यह आवश्यक था कि राज्य पुनर्गठन–आयोग की सब सिफारिशों को पूर्णतः लागू कर दिया जाता। इससे सम्भवतः भाषा के नाम पर उत्पन्न हुई हृदय–दग्ध करनेवाली पृथकतावादी वृत्तियों की अन्त्येष्टि हो जाती। किन्तु राज्य–पुनर्गठन–आयोग की शिफारिशों को लागू न करने का परिणाम यह हुआ कि गुजराती और मराठी, बंगाली और बिहारी, तमिल और तेलगू भाषी तो सभी दिखाई दे रहे हैं, किन्तु अपने आप को हिन्दू समझने की पावन विचारधारा प्रायः समाप्त हो रही है। इस विभिषिका ने सम्पूर्ण देश के एकत्व को ही चुनौती दे डाली है। कांग्रेसी शासकों का यह सबसे घृणित कारनामा है, जो उन्होंने मातृभूमि भारत के प्रति किया है।

पंजाब की समस्या

इस प्रकरण में पंजाब की भाषा समस्या पर प्रकाश डालना भा अप्रासंगिक न होगा। पंजाब में जो परिस्थिति आज है, वह वर्तमान कांग्रेसी शासकों द्वारा निर्मित की गई है। कांग्रेसी

दल पंजाब में निर्वाचकों पर अपना प्रभुत्व जमाये रखने के लिए बड़ी ही स्वेच्छापूर्ण नीति से जान–बूझकर भाषा–विवाद को खड़ाकर हिन्दू तथा सिक्खों के बीच कलह के विषैले बीज बो दिए हैं। सन् १६४७ में जब भारत का विभाजन हुआ तो पंजाब में हिन्दू तथा सिक्ख अपने को एक समझते थे। परन्तु कांग्रेस ने निर्वाचनों में विजय प्राप्त करने की लालसा से उनके बीच कलह के बीज आरोपित कर दिए। हिन्दू महासभा सिक्खों तथा हिन्दुओं में पूर्ण मधुर व्यवहार की अपेक्षा करती है। यह सिक्खों को हिन्दू राष्ट्र का अभिन्न अंग मानती है। हिन्दू महासभा का विचार है कि विवाद–ग्रस्त गुत्थियों को सुलझाने के लिए एक गोलमेज परिषद का आयोजन किया जाय। परन्तु इस प्रकार की गोलमेज परिषद के संयोजन के पूर्व कुछ आधारभूत सिद्धान्तों का निश्चय करना आवश्यक है।

सर्व प्रथम हिन्दू महासभा पंजाब तथा अन्य विभाजनों का तीव्र विरोध करती है तथा यदि ऐसा होता है तो वह अपनी पूर्ण शक्ति से इसका विरोध करेगी। श्री जवाहरलाल नेहरू ने भाववनगर में पंजाब–भाषा–समस्या पर भाषण देते हुए अपने विचार व्यक्त किये कि पंजाबी उस प्रदेश की सर्व–प्रमुख भाषा है ही। इसके विरोध में हिन्दू महासभा का सत्य एवं निश्चित आंकड़ो के आधार पर यह मत है कि पंजाब की प्रमुख भाषा हिन्दी है। हिन्दू महासभा का यह स्पष्ट मत संस्थागत भावना पर आधारित नहीं, वरन् इस तथ्य पर आधारित है कि पंजाब की जनता का लगभग ७० प्रतिशत अपने को हिन्दी भाषा–भाषी स्वीकार करता है तथा ३० प्रतिशत सिक्ख, गुरूमुखी लिपि में अंकित पंजाबी भाषा को अपनी मातृभाषा स्वीकार करते हैं।

हिन्दू महासभा पंजाब की भाषा समस्या पर भारतीय जनसंघ के निर्णय का भी विरोध करती है। भारतीय जनसंघ का मत है कि पूरा पंजाब एक द्विभाषी प्रदेश है। उसने इसके लिए मान्यता की उत्सुकता में हाल में ही जनगणना में अम्बाला डिवीजन में यह प्रचार किया कि जिन व्यक्तियों की मातृभाषा हिन्दी है वे भी पंजाबी को अपनी मातृभाषा लिखायें। यदि जनसंघ का यह विचार सार्थक सिद्ध हुआ तो परिणाम यह होगा कि बहुसंख्यक हिन्दी भाषी अल्प संख्यकों में परिवर्तित हो जायेंगे और अन्ततः श्री जवाहरलाल जी का यह निराधार कथन कि पंजाबी इस प्रदेश की प्रमुख भाषा है, सार्थक सिद्ध हो जायेगा।

इस स्वतःसिद्ध तथ्य को मान्यता प्राप्त हो जाने पर कि हिन्दी पंजाब की प्रमुख भाषा है, हिन्दू महासभा पंजाबी के संरक्षण, अध्ययन एवं वृद्धि के लिए सम्पूर्ण सुविधायें प्रदान करने के लिए सहमत है। इसका निष्कर्ष यही होगा कि प्रशासन की भाषा राज्य स्तर पर हिन्दी होगी और उन क्षेत्रों में जहां पंजाबी बोली जाती है, हिन्दी के साथ–साथ पंजाबी भी प्रशासन की भाषा होगी। हिन्दू महासभा राज्य–पुनर्रचना–आयोग के परिवृत में समाविष्ट उन निणयों को स्वीकार करती है, जो उसने ऐसे क्षेत्र–निर्धारण के लिए तथा एक सीमा तक प्रशासन में ऐसी क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग के लिए दिए हैं, और उन नियमों पर पंजाब की भाषा–नीति का आधारित होना स्वीकार करती है।

संस्कृत भाषा ही प्रेरणा का स्रोत

हमने भाषा के नाम पर राज्यों के गठन के समय पर्याप्त रक्तपात और उपद्रव होते हुए

देख लिया हैं। अब यदि छोट–छोटे समुदायों को आधार बिन्दु बनाकर देश का विभाजन किया गया तो हमारी यह भव्य भारत भूमि और भी क्षत–विक्षत एवं खंड–खंड हो जायेगी। जहाँ तक विभिन्न भाषाओं का सम्बन्ध है, यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है कि सभी भाषाओं का संस्कृत मूल स्रोत है। यही वह प्रेरणा स्रोत है जिसमें भारतीय संविधान में स्वीकृत सभी राष्ट्रीय भाषाओं का उद्भव हुआ, जो देश के विभिन्न प्रान्तों में बोली जाती हैं। सुदुर दक्षिण वाली तमिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ इत्यादि भाषायें भी संस्कृत की ऋणि हैं। हमारे लिए तो भारत की सारी भाषायें ही राष्ट्र भाषायें हैं और उनमें से प्रत्येक की श्री वृद्धि के लिए यथा सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए।

भारत की समस्त राज्य भाषाओं में हिन्दी का स्थान वरिष्ठा भगिनी के सदृश है। हमारे देश की जनता का अधिकांश भाग इसे पढ़ता और बोलता है। इसीलिए हिन्दी को सम्पूर्ण देश की समान राष्ट्रीय भाषा बनाया ही जाना चाहिए, किन्तु यह कार्य दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं का हनन करके नहीं किया जा सकता। हिन्दू महासभा किसी भाषा–भाषी पर दूसरी भाषा थोपने के विरूद्ध है। यह दुर्भाग्य की बात है कि एक समय देश में हिन्दी के प्रचाार के दिवाने होकर उसका समर्थन करने वाले श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य आज हिन्दी को सम्पूर्ण देश की राष्ट्र भाषा बनाये जाने के विरूद्ध आन्दोलन चला रहे हैं। वास्तव में उस विरोध का मूलाधार भारत सरकार द्वारा केन्द्रीय सेवाओं में नियुक्ति करने के लिए आयोजित की जाने वाली परीक्षाओ में अंग्रेजी भाषा का चलता रहना, जिससे दक्षिण भारत के लोग उत्तर भारतीयों की अपेक्षा अधिक लाभान्वित होते रहे हैं। अब यदि हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान प्राप्त हुआ तो उच्च राजकीय पदों पर उनकी नियुक्तियों में अपेक्षाकृत कमी आ जायेगी। इसका एकमात्र समाधान यह है कि केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में स्थान प्राप्त करने के निमित्त विभिन्न प्रान्तों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुसार कोटा निर्धारित कर दिया जाय और केन्द्रीय सरकार की सेवाओं के लिए आयोजित होने वाली परीक्षाओं का माध्यम क्षेत्रीय भाषाये और हिन्दी दोनों ही रखी जाएँ। किन्तु अंग्रेजी को तो विदा करना ही होगा। भारत में चल रहे हिन्दी–विरोधी अभियान के समाधान के लिए यही एकमात्र निदान है।

इसके साथ मै यह सुझाव देना भी आवश्यक मानता हूँ कि दक्षिण भारतीयों को हिन्दी सीखने का जो अतिरिक्त भार उठाना पड़ रहा है, उसके संतुलन के लिए उत्तर भारत के हिन्दी भाषा–भाषियों को भी एक दूसरी भाषा के लिए विशेष प्रबन्ध किया जाय एवं भारत की १३ अन्य भाषाओं में किसी एक को पढ़ना आवश्यक घोषित कर देने पर ही समस्या का निदान हो सकता है। इस प्रकार देश के विभिन्न भाषा–भाषियों में सद्भावना का उद्रेक होगा, क्योंकि सभी भाषाओं के मूल स्रोत संस्कृत है। इससे उनके भाषा–ज्ञान में वृद्धि होगी, साथ ही वह एक दूसरे के सन्निकट भी आ सकेंगे। इस प्रकार अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय भावनाओं का पुनरूद्धार होगा और राष्ट्रीय सामजस्य के अत्यन्तावश्यक वातावरण का सृजन हो सकेगा।

यदि भारत के राष्ट्रीय अस्तित्व का मूलाधार हिन्दू राष्ट्रीयता को स्वीकार कर लिया जाय तथा देश की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्थान प्रदान कर दिया जाय, तो हाल ही में भाषा के आधार पर निर्मित किये गये विभिन्न प्रान्तों के होने पर भी राष्ट्रीय एकता को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुंचेगी। यदि ऐसा न किया गया तो हिन्दुस्तान यूरोप के सदृश कई राष्ट्रों का एक उपद्वीप मात्र बनकर रह जायेगा, जैसा कि अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के हेतु अंग्रेज उसे

बनाना चाहते थे।

इतिहास का भ्रमपूर्ण पाठ्यक्रम समाप्त किया जाय

अंग्रेजों ने हमें जानबूझकर मिथ्या इतिहास पढ़ाया। उन्होंने उत्तर और दक्षिण में आर्य तथा द्रविड़ जातियों के नाम पर भेदभाव की प्राचीरें खड़ी की है। वास्तव में दोनों जातियाँ कभी भी पृथक नहीं रहीं। आर्य शब्द हृदय और मस्तिष्क के सर्वोत्तम गुणों के स्वामी होने वाले व्यक्ति के लिए व्यवहार किया जाता है। उसी भाँति सुदूर दक्षिण के ब्राह्मण अपने नाम के आगे द्रविड़ शब्द जोड़नें में गर्व का अनुभव करते रहे हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि द्रविड़ शब्द किसी अनार्य जाति के लिए प्रयुक्त नहीं किया गया। यह भेदभाव तो उत्तर–दक्षिण के हिन्दुओं के लिए जानबूझ कर अंग्रेजों ने खड़ा किया था। सभी हिन्दू आर्य हैं और भारत की सारी भाषाएँ उनकी भाषाएँ हैं। इस विषय पर अपना मत व्यक्त करते हुए योगिराज अरविन्द ने लिखा था कि तमिल और तेलगू सरीखी भाषाएँ भी संस्कृत के सन्निकट हैं, और उनका सम्बन्ध अन्य किसी भी दूसरे भाषा–परिवार से नहीं, जैसा कि अंग्रेजी के विद्वानों ने प्रचारित किया है। हिमालय की उपत्यकाओं से लेकर कन्या कुमारी तक निवास करने वाले हम सब ही आर्य अथवा हिन्दू हैं। हम कहीं बाहर से नहीं आये, अपितु युग–युग से इसी देश के स्वामी हैं। परम पिता परमात्मा ने हिमालय से लेकर सागर की उत्तल तरंगों तक फैली हुई इस शस्य श्यामल आर्यभूमि की रचना हिन्दुओं की मातृभूमि के रूप में ही की है।

हिन्दू महासभा इस बात के लिए सुनियोजित प्रयास करेगी कि मिथ्या इतिहास को भुला दिया जाय और देश की जनता में आर्य और द्रविड़ों के नाम पर भेदभाव की खड़ी की गयी भ्रान्त धारणाएँ समाप्त हो सकें और वह एक ही राष्ट्र के अविच्छिन्न घटक के रूप में संगठित हो सकें।

समान राष्ट्रीय लिपि देवनागरी हो

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक समान राष्ट्र लिपि का विकास नितांत आवश्यक है। देवनागरी ही वह लिपि है, जिसमें वेद और शास्त्रों की रचना हुई है। हिन्दी और मराठी भाषाओं की भी यही लिपि रही। इतना ही नही, अपितु गुजराती और बंगला तथा असमी एवं उड़िया भाषाओं की लिपियाँ भी देवनागरी लिपि से बहुत मिलती जुलती हैं। इसके साथ ही साथ यह उल्लेख करना भी अप्रसांगिक न होगा कि दक्षिण भारत की भाषाओं की लिपियों का गठन भी देवनागरी जैसा ही हुआ है। इस प्रकार देवनागरी वह लिपि है जो सम्पूर्ण राष्ट्र की समान राष्ट्रीय लिपि बन सकती है। हिन्दू महासभा को यह विश्वास है कि उसे अपनी इस योजना की पूर्ति के लिए सम्पूर्ण भारत के नागरिकों का सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा।

अराष्ट्रीयकरण के प्रयास

आज देश के विभिन्न भागों में ईसाई मिशनरियों द्वारा जो शिक्षण संस्थाएँ चलायी जा

रहीं है, उनमें हिन्दू–धर्म के अभिभावकों के बालकों को भी इसाई की बाइबिल आदि पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। इसके विपरीत राज्य–सरकार द्वारा सहायता प्राप्त विद्यालयों में हिन्दू–धार्मिक शिक्षा का प्रशिक्षण प्रतिबंधित कर दिया गया है। आज इन विद्यालयों में जों पुस्तकें पढ़ाई जा रही हैं, उनका आधार भी तथाकथित धर्म–निरपेक्ष विचारधारा है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारी आगामी पीढ़ी का विकास इस ढंग से हो रहा है कि वह अपने ही धर्म और संस्कृत की कट्टर शत्रु बनती जा रही है। इस प्रकार हिन्दू–राष्ट्रवाद की जड़ों पर ही कुठराघात का प्रयास चल रहा है। हमारे बालक जो इस देश के भावी शासक होंगे, आज अपने राम और कृष्ण सरीखे महापुरूषों के बारे में कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर रहें हैं, और ईसा और मुहम्मद के जीवन चरित्र से पूणरूपेण परिचित हैं। इसे ही आज धर्म–निरपेक्षवाद का नाम दिया जा रहा है। हिन्दू महासभा हिन्दू–राष्ट्र के अराष्ट्रीयकरण का घोर विरोध करती है और यह माँग करती है कि इस प्रकार के कुप्रयासों को अविलम्ब रोक दिया जाय। हिन्दू बालकों को शिक्षारम्भ के समय से रामायण और महाभारत सरीखे धर्म–ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाय, जिससे कि वे अपनी प्राचीन संस्कृति और गौरव का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि हिन्दू बालकों को दूसरे धर्म की पुस्तकों को पढ़ाया जाना अविलम्ब बन्द किया जाय।

किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं कि हमारे बच्चों की मनोवृत्ति को विषाक्त बनाये और उनमें अराष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करे। इसी भाँति हमारी यह भी माँग है कि इसाई मिशनरियों द्वारा पिछड़ी हुई जातियों के धर्म–परिवर्तन पर अविलम्ब प्रतिबंध लगा दिया जाय।

यों तो सात सौ वर्षो तक श.ासकों के रूप में मुस्लिम आक्रमणकारी भी इस देश में हिन्दुओं का धर्म–परिवर्तन करते रहे। किन्तु यह इतिहास में पहला ही अवसर है जब सरकारी प्रयास से राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लोगों को दूसरे धर्म में परिवर्तित किया जा रहा है। इसलिए यदि ईसाई मिशनरियों की वर्तमान गतिविधियाँ इसी प्रकार चलती रहीं तो वह दिन आ जाना असम्भव नहीं, जब अंग्रेज–अमरीकी साम्राज्यवादियों की मनोकामना पूर्ण हो जाय और सम्पूर्ण हिन्दुस्तान ईसाई देश बनकर रह जाय।"

राजनीतिक चिन्तन

पिछले पृष्ठों में अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि महन्त जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा को ही अपने जीवन का उद्देश्य माना था। 'हिन्दु राष्ट्रवाद' ही उनकी समस्त राजनीतिक, आर्थिक एवं शिक्षा सम्बन्धी विचार धारा का मूल स्रोत रहा है। सन् १९६१ में ग्वालियर में आयोजित अखिल भारत हिन्दू महासभा के ४६ वें अधिवेशन में अध्यक्ष पद से महन्त जी ने जो भाषण दिया था, उसका ऐतिहासिक महत्व है। यह भाषण उनके समस्त राजनीतिक सिद्धान्तों और विचारों को स्पष्ट कर देता है। अपने ऊपर लगाए गए आरोपों का उत्तर देते हुए उन्होंने तत्कालीन भारत की अन्तर्वाह्य स्थितियों पर पूरा प्रकाश डाला है, और राष्ट्र की सुरक्षा के लिए हिन्दू मात्र को अपना तन, मन, धन न्योछावर करने के लिए आहूत किया है।

अपने अध्यक्षीय भाषण में पूज्य महन्त जी ने सर्वप्रथम अपने राजनीति में आने का कारण

बताया। साधु होकर भी सक्रिय राजनीति में उन्हें कार्य करते देखकर अनेक दिशाओं से यह प्रश्न उठाया गया था कि महन्त जी के लिए क्या यह उचित है कि वे राजनीति में काम करें। पूज्य महन्त जी ने कहा "जब मैंने एक साधु के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ किया, उस समय मैं युवक था। मैंने १६२० में कांग्रेस द्वारा आरम्भ किए गये असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और मुझे एक गम्भीर आरोप में बन्दी बनाया गया और चौरीचौरा कांड में मुझे फाँसी पर लटकाने की भी तैयार की गई थी। मैं १६३१ तक इण्डियन नेशनल कांग्रेस में काम करता रहा, किन्तु जब मैंने देखा कि कम्युनल एवार्ड को कांग्रेस ने सामान्यतः स्वीकार कर लिया है और उसकी तुष्टीकरण की नीति के फलस्वरूप मुस्लिम लीग दिन प्रतिदिन शक्तिशाली होती जा रही है और उसने भारत की एकता और अखंडता को ही चुनौती देनी आरम्भ कर दी है, तो मैं कांग्रेस की नीतियों से विक्षुब्ध हो उठा और मैंनें अनुभव किया जब तक मैं हिन्दू महासभा से सहयोग न करूँगा, हिन्दू हितों की रक्षा न हो सकेगी। यद्यपि यह निश्चय करते समय मुझे किसी प्रसन्नता का आभास नहीं हुआ, किन्तु मेरे समक्ष अन्य कोई मार्ग नहीं रह गया था क्योंकि मैंने यह अनुभव किया था कि यदि हिन्दू समाज को विनाश से न बचाया गया तो हिन्दुओं की इस पूण्यभूमि में ही हिन्दू धर्म की रक्षा असम्भव है। यही वह महान कारण था जिसके लिए विद्यारण्य को विजय नगर के महान हिन्दू राज्य की स्थापना करनी पड़ी। उस समय भी भारत में मुस्लिम आक्रमणों का तांता लगा हुआ था। यही कारण था कि समर्थ गुरू रामदास को भी भारत में मुस्लिम राज्य को समाप्त कर हिन्दू पादशाही के स्थापनार्थ सक्रिय राजनीति में उतरना पड़ा था। उन्ही महान् विभूतियों से प्रेरणा प्राप्त कर मैंने भी सक्रिय राजनीति में भाग लेने का निश्चय किया। यद्यपि यह सत्य है कि जिन महान् विभूतियों का उल्लेख मैंने किया है, उनसे मैं किसी भांति भी अपनी तुलना नहीं कर सकता। मैं तो केवल उनके पद–चिन्हों पर चलने का प्रयास मात्र कर रहा हूँ।

सन् १६३७ में स्वातन्त्र वीर सावरकर जी हिन्दू महासभा में सम्मिलित हुए और उनके तपःपूत जीवन और नेतृत्व में मैंने भी उस समय ही हिन्दू महासभा में सम्मिलित होने का निश्चय किया और तबसे आज तक मैं अपनी क्षमता के अनुरूप हिन्दू राष्ट्र की सेवा करता रहा हूँ। कई बार मेरे मन में राजनीति को त्यागकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति धार्मिक कार्यो में लगाने का विचार भी उदित हुआ, जो मेरा वास्तविक कार्यक्षेत्र है। किन्तु मैंने यह भी देखा कि प्रतिदिन हिन्दू राष्ट्र के लिए भयानक परिस्थितियों का सृजन होता जा रहा है। इसलिए अपना स्वास्थ्य खराब होने पर भी मैंने अध्यक्षता के इस गुरूतर दायित्व को ग्रहण करना स्वीकार कर लिया और मुझे पूर्ण विश्वास है कि देश भर के हिन्दू महासभा के सब नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से इस महान् उत्तरदायित्व को अपने योग्यतानुसार निभाऊँगा।

महान् राजनीतिक संकट का समय

आज हम ग्वालियर के इस ऐतिहासिक नगर में महान् संकट की घड़ी में एकत्र हुए हैं। यह ऐसा समय है जैसा कि सम्भवतः इससे पूर्व हमारी मातृभूमि ने अपने इतिहास में कभी भी देखा नहीं था। जबकि उसके ही कुछ सपूत विदेशी नारों और अर्थहीन विचारों से प्रभावित होकर

उसका जाने–अनजाने मानमर्दन करने के लिए कृतसंकल्प दिखाई देते हैं। जहाँ एक ओर देश में पूर्ण विच्छिन्नता, भेदभाव और फूट के विनाशक पादप लहलहा उठे हैं, वहाँ आज देश की एकता और अखंडता के लिए ही अपूर्व संकट उपस्थित हो गया है।

हमारी इस पुनीततम और प्राचीनतम मातृभूमि को खण्ड–खण्ड करने का कार्य आरम्भ आज से ५० वर्ष पूर्व उस समय हुआ था, जब देश में ब्रिटिश शासकों ने भारत को छोटे–छोटे वर्गों में और टुकड़ों में बाँटनें का षड्यत्र आरम्भ किया, जिससे महान् हिन्दुस्तान कभी भी एकता के सूत्र में आबद्ध न हो सके और उनकी शक्ति और सत्ता को चुनौती देने का साहस न दिख सके। इसी हेतु उन्होंने १६११ में सर्वप्रथम साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन की प्रणाली को लागू कर विभेद की नींव डाली। इसके पश्चात् ही दुर्भाग्यपूर्ण लखनऊ–समझौते पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं ने हस्ताक्षर किये, जिसके अनुसार विभिन्न प्रान्तों में मुसलमानों को उनकी संख्या के अनुपात से अधिक स्थान दिए गए। इसके पश्चात् आज तक हिन्दू राष्ट्र के संख्या–बल में कमी करने के लिए सक्रिय प्रयास चलते रहे। उसी समय से देश के विभिन्न प्रान्तों में मुसलमानों की घुसपैठ प्रारम्भ हो गई। हिन्दू राष्ट्र के संख्या–बल को कम करने की दृष्टि से ही कांग्रेस में घुसे हृए मुस्लिम पंचमांगियों ने १६२१ और १६३१ में हुई जनगणना का कांग्रेस संगठन द्वारा बहिष्कार कराने की व्यवस्था की। वास्तव में हिन्दू राष्ट्र की संख्या में कमी कर उसको हानि पहुँचाना ही इस जन–गणना–बहिष्कार का मूल कारण था।

इच्छापूर्वक बिगाड़े गए इस जनगणना सम्बन्धी आँकड़ों के आधार पर ही साइमन आयोग प्रतिवेदन, कम्युनल एवार्ड और १६३५ का भारत सरकार अधिनियम प्रस्तुत किया गया था। इसके द्वारा ही हमारी मातृ–भूमि की एकता और अखण्डता को विनष्ट किया जा रहा हे और अन्ततः सन् १६४७ में अत्यन्त विनाशकारी परिणामों सहित पुण्यभूमि भारत का हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में विभाजन हो गया।

किन्तु इस षड्यंत्र की यहीं समाप्ति नहीं हुई। जब भारत माता को तीन टुकड़ों में विभाजित किया गया, तो हमें यह बताया गया कि हिन्दू–मुस्लिम भेदभाव की समस्या को सदैव के लिए समाप्त करने की दृष्टि से ही भारत माता का दुःखद विभाजन स्वीकार किया गया है, किन्तु आज तक ऐसा कुछ भी हुआ दिखाई नहीं देता। जहाँ एक ओर पश्चिम पाकिस्तान से प्रायः सभी हिन्दुओं को बाहर निकाल दिया गया है, वहाँ पूर्वी पाकिस्तान से भी हिन्दुओं को भारी संख्या में निष्क्रमण करने के लिए बाध्य किया गया है, किन्तु जिन मुसलमानों ने पाकिस्तान बनाने की माँग की थी वे भी भारत में डटे रहे। इतना ही नहीं, अपितु पाकिस्तान के दोनों भागों से भी मुसलमान भारत में प्रविष्ट हो रहे हैं। इस प्रकार हिन्दुस्तान के बचे–खुचे भागों के लोगों के समक्ष भी एक गम्भीर और भयानक समस्या खड़ी होती जा रही है। जब इन मुसलमानों को इसी भाँति भारत में रहना ही था, तो फिर एक पूर्णरूपेण मुस्लिम देश के रूप में पाकिस्तान स्वीकार ही क्यों किया गया था ?

हिन्दू महासभा प्रारम्भ से ही भारत–विभाजन का विरोध करती आयी है और जब यह स्पष्ट हो गया था कि कांग्रेसी नेता कभी सन्तुष्ट न होने वाले मुसलमानों के तुष्टीकरण के लिए भारत माँ का अंग–भंग करना स्वीकार कर लेंगे, तब हमने यह आशा की थी कि हिन्दुस्तान और

पाकिस्तान के मध्य राजकीय स्तर पर हिन्दू और मुस्लिम जनसंख्या का पूर्णतः विनिमय होगा। लूटमार, हत्या, बलात्कार और अपहरण के रूप में लोगों को भारत विभाजन के पश्चात् जो महान् यातनाएँ सहनी पड़ी हैं, उनको केवल सुनियोजित जनसंख्या विनिमय से ही रोका जा सकता था। किन्तु अंग्रेज नहीं चाहते थे कि भारत की हिन्दू–मुस्लिम समस्या का कोई समाधान हो। उनकी यही इच्छा थी कि भविष्य में भी भारत और पाकिस्तान में संघर्ष और झगड़े चलते रहें, जिनसे उनकी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षाएँ पूर्ण हो सके।

आज जहाँ एक ओर हिन्दुओं को पाकिस्तान से योजनाबद्ध–रूप से बहिष्कृत किया जा रहा है, वहाँ मुसलमान अभी भी भारत के लिए एक समस्या बनकर खड़े हैं।

धर्मनिरपेक्षतावाद बनाम राष्ट्र विरोधी स्वर

इस बात के लिए कांग्रेस सरकार द्वारा अंग्रेजों के मार्ग का अवलम्बन करने की नीति को ही धन्यवाद देना चाहिए कि भारत के मुसलमान एक बार पुनः कांग्रेस सरकार के लिए समस्या बनकर खड़े हो गये हैं। आज जिस स्थिति का उदभव हुआ है वह ठीक वैसा ही है जैसी भारत विभाजन के पूर्व उत्पन्न हुई थी। जो मुसलमान भारत–विभाजन के उपरान्त भी भारत में ही रह गये, उन्होंने अपने आपको एक साधारण अल्पसंख्यक न मानते हुए अपने आप में एक बृहत् राष्ट्र होने की घोषणा आरम्भ कर दी है। इस स्थिति के लिए वर्तमान कांग्रेसी शासक ही उत्तरदायी है। उन्होंने केरल के विधानानुकूल निर्वाचित वहाँ के शासन को अपदस्थ करने के लिए मुस्लिम लीग से हाथ मिलाया था। केरल में कांग्रेस द्वारा किये गये अपवित्र गठबंधन के कारण सारे देश में मुस्लिम–लीग का पुनः उदभव हो गया है और हमने देखा है कि समग्र भारत में मुसलमानों द्वारा हिन्दू–विरोधी और राष्ट्र–विरोधी गतिविधियाँ आरम्भ कर दी गई हैं। एक बार पुनः मुस्लिम सम्प्रदायवाद खुलकर खेलने लगा है, क्योंकि मुसलमान इस बात को भली–भाँति समझते हैं कि देश के महान निर्वाचन में कांग्रेस उनके समक्ष वोटों की भीख माँगने के लिए हाथ पसारेगी और इसके लिए वह जो चाहें कर सकते हैं। यही वह गम्भीर गतिविधि है, जो भारतीय एकता के मूल पर ही कुठाराघात कर रही है। हम नहीं जानते कि कांग्रेस द्वारा अपनाई गई यह मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति इस महान् राष्ट्र को कहाँ ले जाकर पटकेगी। अतएव हिन्दू महासभा का यह कर्तव्य है कि वह हिन्दुओं को इस संकट से सावधान कर दे जो समग्र हिन्दू–राष्ट्र को चुनौती दे रहा है। इसलिए हमें प्रतिज्ञा करनी होगी और व्रत ग्रहण करना पड़ेगा कि हम कांग्रेसी शासकों की इस विघटनात्मक एवं विघातक नीति को देश में और अधिक विस्तृत और प्रसारित नहीं होने देंगे। अतएव मैं भारत भर के हिन्दुओं का आह्वान करता हूँ कि वे अवसर रहते कांग्रेस के इस तथाकथित धर्म निरपेक्षवाद के विरूद्ध कठोर संघर्ष आरम्भ करे। वास्तव में कादोस का धर्म निरपेक्षवाद हिन्दू–विरोधी वाद और राष्ट्र–विरोधी वाद का तथा इस्लाम और ईसाई धर्म के समर्थन का ही दूसरा नाम है।

कांग्रेस की नीति : विभिन्न राष्ट्रीय समस्याएँ

केवल मात्र हिन्दू–मुस्लिम समस्या ही वह समस्या नही है, जिसका समाधान करने में

हमारे कांग्रेसी शासक बुरी तरह असफल रहे। वास्तव में मातृभूमि के विभाजन के समय उपस्थित समस्याओं में से एक भी समस्या का समाधान उनके द्वारा आज तक नहीं किया जा सका है।

कश्मीर

कश्मीर समस्या आज भी हम सबके लिए एक स्थायी समस्या बना हुई है। उसका सृजन स्वयं कांग्रेसी शासकों ने ही महाराजा कश्मीर द्वारा जम्मू और कश्मीर राज्य को बिना शर्त भारत में सम्मिलित करने का सुझाव ठुकरा कर किया था। कांग्रेसी शासकों ने लार्ड माउन्टबेटेन के परोक्ष प्रभाव के वशीभूत होकर यह शर्त लगा दी थी कि कश्मीर के भारत में मिलाने का निर्णय जनमत–संग्रह द्वारा किया जाये। उसी का भयानक परिणाम आज हमारे समक्ष उपस्थित है। जब हमारे वीर भारतीय सैनिक प्रायः सम्पूर्ण कश्मीर राज्य से पाकिस्तानियों को बाहर खदेड़ने में सफल होने वाले थे, ठीक उसी समय उन्हें एक बार पुनः ब्रिटिश दबाव के कारण नई दिल्ली से युद्ध विराम के आदेश प्रसारित कर दिए गए और इस प्रकार नन्दनबन कश्मीर का तृतीय अंश हमारे जन्म–जात शत्रुओं के हाथों में रह गया। इस तृतीयांश में ही सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण गिलगिट का वह क्षेत्र भी सम्मिलित है, जिसकी प्राप्ति के लिए राज्य के चार डोगरा महाराजाओं अर्थात् सर्वश्री गुलाब सिंह, रणवीर सिंह, प्रताप सिंह और महाराजा हरीसिंह के समय तक निरन्तर १०० वर्षों की सुदीर्घ अवधि में ब्रिटिश साम्राज्यवादी षड्यंत्र करते रहे। किन्तु इन चारों महाराजाओं में से प्रत्येक ने अपनी पूर्ण कुशलता से ब्रिटिश शासकों के इस घिनौने षड्यंत्र को धूल धूसरित करने का महान कार्य किया था। यह एक कटु सत्य है कि १६२६ में कश्मीर दरबार से गिलगिट की प्राप्ति हेतु अंग्रेजों ने अपने वेतन भोगी पिट्ठू के रूप में शेख अब्दुल्ला को खड़ा किया था और इसी के लिए उसने महाराजा हरीसिंह से भी संघर्ष किया। किन्तु हमारे वर्तमान कांग्रेसी शासको ने बिना किसी प्रकार का प्रविकार किये आज गिलगिट की वह महत्वपूर्ण भूमि पाकिस्तान के माध्यम से अमेरिकी साम्राज्यवादियों को भेट चढ़ा दी है। इतने पर भी साम्राज्यवादी राक्षसों की भूख शान्त नहीं हुई है। और यदि वे सम्पूर्ण जम्मू और कश्मीर राज्य नहीं तो कम से कम कश्मीर की घाटी तो हड़पना ही चाहते हैं। इस बात के पीछे उनकी एक ही इच्छा है कि वे कश्मीर का उपयोग अपने सैनिक अड्डे के लिए कर सकें, जिससे भारत को स्वाधीन राष्ट्र के रूप में अपना सिर उठाने का साहस न हो सके। इस प्रकार कश्मीर समस्या अब तक ज्यों की त्यों लटकी हुई है।

गोआ की समस्या

आज कांग्रेसी शासकों को सत्तारूढ़ हुए १४ वर्ष व्यतीत हो चुके हें। किन्तु गोवा अभी पुर्तगाली शासन के झगड़ों में पड़ा हुआ कराह रहा है। उसे मुक्त कराने के स्थान पर पुर्तगाल को ऐसी सुविधायें प्रदान कर दी गई हैं कि वह पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध स्थापित कर गोआ का उपभोग भारत के विरूद्ध एक प्रमुख केन्द्र के रूप में कर सके। यही नहीं, दादरा और हवेली नामक नगरों को भी आज तक भारत में विधवत् सम्मिलित नहीं किया गया, जिन पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने हमारे अधिकार को मान्यता प्रदान की है। इस प्रकार भारत में पुर्तगाली बस्तियों की वह समस्या आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है, जो आज से १४ वर्ष पूर्व बनी हुई थी।

फ्रान्सीसी बस्तियाँ

पांडीचेरी सहित भारत स्थित फ्रान्सीसी बस्तियाँ अबतक भी विधिवत् भारत सरकार को हस्तान्तरित नहीं की जा सकी हैं, हालांकि जिस समय देश स्वाधीन हुआ था, उस समय ही अप्रत्यक्ष रूप से ये बस्तियाँ भारत को हस्तान्तरित कर दी गई थी। समीवतः इसका यही कारण है कि फ्रँास सरकार यह समझती है कि भारत के कांग्रेसी शासक इतने सशक्त नहीं कि वे उन्हें इन बस्तियों को भारत में विधिवत् विलीन करने के लिए मजबूर कर सकें।

प्रवासी भारतीय

जहाँ एक ओर दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयों की समस्या का कोइ समाधान नहीं खोजा जा सका है, वहाँ हमारे कांग्रेसी शासकों ने विदेशें में रहने वाले हिन्दू नागरिकों के लिए भी नयी समस्यायें खड़ी कर दी है। आज भी केनिया, वर्मा, मलाया और सिंगापुर तथा हांगकांग में उन पर अत्याचार किए जाते हैं। क्योंकि इन सब देशों के शासक समझते हैं कि भारत की कांग्रेसी सरकार अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में सस्ती प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए उनके विरूद्ध कोई पग नहीं उठा सकती है। वे जिस ढंग से चाहें, भारतीयों के साथ व्यवहार कर सकते हैं।

आज लंका में तमिलों को जिस वीभत्स स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, वह वास्तव में कांग्रेसी शासकों की वर्तमान नीति का ही प्रत्यक्ष परिणाम है। १४ जनवरी १९५४ वह अभागा दिन था, जिस दिन भारत के प्रधानमंत्री के नाते श्री जवाहरलाल नेहरू ने लंका के प्रधानमंत्री सर जान कोटलेवाला के साथ सदियों से श्रीलंका में निवास करनेवाले भारतीय वंशजों से बिना कोई परामर्श किये एक समझौता किया था, जिसके द्वारा लाखों भारतीयों को श्रीलंका के शासकों की दया पर जीवित रहने के लिए अकेला छोड़ दिया गया था। आज उन लोगों को भारत की कांग्रेसी सरकार से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त किए बिना ही अपने सारे संघर्ष चलाने पड़ रहे हैं। हमने अपने इन असहाय बन्धुओं को स्वयं ही भेड़ियों के आगे फेंक दिया है। भारतीय स्वाधीनता के समय जहाँ अन्य समस्याएँ स्वमेव उदित हुई थीं, वहाँ यह समस्या स्वयं हमारी कांग्रेस सरकार द्वारा निर्मित की गई।

कांग्रेस सरकार अपने कूटनीतिक कार्यो में सर्वथा असफल रही है

आज के कांग्रेसी प्रशासक अपने आपको महान् कूटनीतिज्ञ कहने का दम्भ भरते हैं, किन्तु हमने कई महत्वपूर्ण मामलों में उनकी असफलताओं के दर्शन किए हैं। उन्होंने पाकिस्तान के साथ हाल ही में एक नहर द्वारा पानी देने का समझौता किया। इस समझौते के अन्तर्गत हमने केवल ८३.३ करोड़ रूपये ही पाकिस्तान को नहीं पूजे, अपितु बहुमूल्य पानी भी अर्पित कर दिया। इस प्रकार इन महान् कूटनीतिज्ञों ने पंजाब और राजस्थान के अन्चलों को सुखाकर पाकिस्तान को जल–दान् दिया है। सम्भवतः किसी देश ने ऐसा मूर्खतापूर्ण समझौता नहीं किया होगा। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि जब कोई व्यक्ति बाजार जाता है, तो वस्तु को खरीदने के लिए ही पैसा चुकाता है, किन्तु सम्भवतः विश्व में यह पहला ही उदाहरण है कि हमने अपनी ही नहरों का पानी पाकिस्तान को देकर उसको धन–राशि भी भेंट चढ़ाई है। क्या कूटनीति के दिवालियेपन का इससे

भी बड़ा उदाहरण मिल सकता है ?

हमने पाकिस्तान के साथ अपने सम्बन्धों के मामले में भी कूटनीति का एक रोचक प्रदर्शन देखा है। हमारे नेतागण पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी को मिलाकर एक करने के लिए अपनी पूर्ण शक्ति सहित चिल्लाते हैं। इतना ही नहीं, वे उत्तरी कोरिया और दक्षिणी कोरिया एवं वियतमान को मिलाकर एक और अखण्ड करने के लिए दिन–रात एक कर रहे हैं। किन्तु यही नेतागण अखण्ड हिन्दुस्तान की बात सुनते ही लाल–पीले हो उठते हैं। यही नहीं, ये कांग्रेसी नेता यह लिखकर देने तक में भी नहीं हिचकिचाते कि अखण्ड भारत की बात करना भी किसी भारतीय के लिए अवैधानिक है। उन्होंने यह बात १९५० के नेहरू–लियाकत पैक्ट के समय स्वीकार की थी। सम्भवतः इन नेताओं को इतने पर ही सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री फिरोज खाँ नून से एक और समझौता किया, जिसके अन्तर्गत बेरूवाड़ी का क्षेत्र पाकिस्तान को भेंट चढ़ाने का निर्णय किया गया। केवल बंगाल की जनता ही नहीं, अपितु समग्र भारत के लोगों ने इस भारतीय क्षेत्र के हस्तान्तरण का विरोध किया। उस समय कांग्रेसी शासकों ने अपनी तानाशाही मनोवृत्ति का परिचय देते हुए कहा कि वे लोग कोई भी कार्य कर सकते हैं, जो उनकी दृष्टि में उपयुक्त है। इसके पश्चात् यह समस्या उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई, जहाँ से जनता के पक्ष में निर्णय दिया गया और उसने अपने निर्णय में स्पष्ट शब्दों में लिखा कि प्रधान मंत्री का बेरूवाड़ी भूमि पाकिस्तान को देने का निर्णय संविधान के विपरीत है। होना यही चाहिए था कि उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय का ये लोग स्वागत करते और पाकिस्तान को स्पष्ट शब्दों में यह लिखते कि यह समझौता भूल से सम्पन्न हो गया है अैर इस कारण क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है। किन्तु कांग्रेसी तानाशाही के कारण अवैधानिक कार्य को भी कांग्रेसियों से ठसाठस भरी संसद ने वैधानिक स्वरूप दिया और संविधान में ही संशोधन कर डाला। इस प्रकार हमारा संविधान भी एक व्यक्ति विशेष की महत्वाकांक्षाओं के समक्ष उपेक्षित समझ लिया गया है। आज स्वयं संविधान के सम्बन्ध में भी जन–आस्थाएँ डगमगाने लगी हैं। यदि हमारे वर्तमान कांग्रेसी शासकों की यह मनोवृत्ति अबाध गति से बढ़ती रही और समय रहते इस पर प्रतिबन्ध और अवरोध न लगाया गया, तो हमारे देश में उसी प्रकार की तानाशाही का शासन स्थापित हो जायेगा, जिस प्रकार की तानाशाही के पंजों में जकड़ी हुई मिश्र और पाकिसतान की जनता आठ–आठ आँसू बहा रही है। मैं अपने देश की जनता को चेतावनी देता हूँ कि यदि हम चाहते हैं कि लोकतंत्र की रक्षा हो, तो हमें इस तानाशाही मनोवृति के विरूद्ध प्राण–पण से जूझना होगा, जिसे कांग्रेसी शासक पनपा रहे हैं।

आज कांग्रेसी शासकों की अराष्ट्रीय मनोवृति और गतिविधियों का कोई अन्त होता दिखाई नहीं देता। अब पाकिस्तान के दोनों भागों के मध्य सीधा रेल सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पाकिस्तान को रेल गलियारा देने की योजनायें भी हमारे शासकों के समक्ष विचाराधीन हैं। गलियारा देने की सुविधा का प्रत्यक्ष परिणाम यह होगा कि पाकिस्तानियों और भारत के मुसलमानों के मध्य सम्पर्क स्थापित हो जायेगा और दिन प्रतिदिन नय–नए षड्यन्त्र होते रहेंगे। भारत में रहने वाले मुसलमानों की देश की भूमि से बाहर की निष्ठा, जो स्पष्टतया पाकिस्तान के साथ है, किसी

से छिपी नहीं है। यातायात और आवागमन की इस सुविधा से भारत सरकार के लिए यह असम्भव हो जायेगा की वह भारत में रहने वाले मुसलमानों के राष्ट्र–द्रोही तत्वों की गतिविधियों पर किसी प्रकार का अंकुश लगा सके। मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि इस प्रकार की मूर्खता का अन्त किया जाना चाहिए।

हमारी विदेश नीति : तटस्थता अथवा जड़ता का द्योतक

हमारे कांग्रेसी शासकों ने जिस विनाशकारी विदेश–नीति का अनुसरण किया है, अब उसका अन्त किया जाना चाहिए, क्योंकि विगत १४ वर्षों की सुदीर्घ अवधि में उनके भयावह परिणाम हमारे समक्ष आ चुके हैं। हमारे शासकों की तथाकथित शानदार विदेश–नीति ने हमें विश्व के रंगमंच पर सर्वथा एकाकी बनाकर खड़ा कर दिया है। आज विश्व में एक भी ऐसा देश नहीं है, जो हमें अपना मित्र मानता हो। हमें आज चारों ओर से शत्रुओं ने घेर लिया है। आज विश्व का प्रत्येक देश अपने राष्ट्र की हित–चिंता को आधार–बिन्दु बनाकर ही अपनी विदेश–नीति का निर्धारण करता है। किन्तु हमारे भारत में हमारे शासकों ने अपनी विदेश–नीति का आधार सस्ती अन्र्तराष्ट्रीय–प्रसिद्धि को बनाया है और उस प्रसिद्धि की प्राप्ति हेतु उन्होंने राष्ट्रीय हितों को ही दाँव पर लगा दिया है। इसी भ्रामक विदेश–नीति का यह परिणाम हो रहा है कि हम सैनिक दृष्टि से नितांत दुर्बल हो गए हैं और हमारे पड़ोसी राष्ट्र निर्भयतापूर्वक हमारे देश की सीमाओं का अतिक्रमण कर रहें हैं। आज हमारे कांग्रेसी शासकों ने जिस विदेश–नीति का अनुगमन और क्रियान्वयन किया है, उसे सीधे शब्दों में आत्मघाती विदेश–नीति की संज्ञा दी जा सकती है। उसी विदेश–नीति को हमारे कांग्रेसी महापुरूषों द्वारा विभिन्न नामों का आवरण पहनाया जा रहा है। सर्वप्रथम इस नीति को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तटस्थता पर आधारित नीति का नाम दिया गया, किन्तु इस घोषित नीति के साथ ही साथ हमारे शासक चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान दिलाने के लिए भी दिन–रात अरण्य–रोदन कर रहे हैं। ऐसा करके हमने अनावश्यक रूप से ऐसे मामलों में टाँग ही नहीं अड़ायी, जिससे हमारा दूर का भी सम्बन्ध नहीं था, अपितु वास्तव में हमने राष्ट्रीय स्वार्थ को भी मर्मान्तक आघात लगाया है।

चीन और तिब्बत

तिब्बत अतीत में भारत का ही अविच्छिन्न अंग था। किन्तु कम्युनिस्ट चीन ने जब इस भूभाग पर आक्रमण किया तो हमने बौद्ध लामाओं की इस प्राचीन भूमि पर अत्याचार ही नहीं होने दिया, वरन् वास्तव में हमने कम्युनिस्ट चीन के साथ तथाकथित पंचशील की प्रण्य–पंजिका पर कुंकुम भी लगा दिया। इस प्रकार हमने उस धर्म–भूमि पर कम्युनिस्ट चीन को अधिकार करने की स्वीकृति मात्र ही प्रदान नहीं की, अपितु उस पर कम्युनिस्ट चरन के पूर्ण आधिपत्य को भी मान्यता प्रदान कर दी है। यह सब भी केवलचीन द्वारा तिब्बत की स्वायत्तता यथावत् बनाये रखने के मौखिक आश्वासन मात्र पर ही किया गया है। हम यह भलीभाँति देख चुके हैं कि कम्युनिस्ट चीन ने निर्दयता पूर्वक उस आश्वासन का उल्लंघन किया है। अब हम देख रहे हैं कि तिब्बत का यह

महत्वपूर्ण राज्य अस्तित्वविहीन हो गया है। इसी मूर्खता का यह सुविदित परिणाम है कि उसी कम्युनिस्ट चीन ने तिब्बत को निगल जाने के उपरान्त हमारे देश की उत्तरी सीमा पर केवल आक्रमण ही नहीं किया है, अपितु सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण १२ हजार वर्ग मील भूमि को भी हड़प लिया है, जो लद्दाख से नेपाल तक फैली हुई है। इतना ही नहीं अपितु बद्री–केदारनाथ और मानसरोवर पर भी चीन दावा कर रहा है। कम्युनिस्ट चीन के इस घातक और गम्भीर आक्रमण के बावजूद आज भी हमारे शासक नितान्त निर्लज्जतापूर्वक कम्युनिस्ट चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान दिलाने के लिए एड़ी–चोटी का जोर लगा रहे हैं। सम्भवतः उसकी पुरानी मैत्री की दर्दीली याद की मृग–मरीचिका ने हमारे शासकों की मति भ्रमित कर दी है। आज हमारे राष्ट्रीय हित की यह प्रबल माँग है कि हम कम्युनिस्ट चीन को इस विश्व–संगठन से बाहर रखने के लिए उन शक्तियों की सहायता करें जो विश्व शान्ति के लिए चुनौति देने वाले इस उपद्रवी राष्ट्र को दुर्बल बनाने के लिए सन्नद्ध हैं।

हिन्दू महासभा चाहती है कि कांग्रेसी शासकों ने अब तक जिस लचर अराष्ट्रीय परिपाटी का पालन किया है, उसका वे तत्काल परित्याग करें तथा कम्युनिष्ट चीन के सम्बन्ध में अपनी विदेश–नीति में अविलम्ब आमूल परिवर्तन भी करें। अब भविष्य में हमें चीन को संयुक्त राष्ट्र–संघ में स्थान देने का केवल विरोध मात्र ही करके शान्त नहीं बैठना चाहिए, अपितु उसके इस अभद्र व्यवहार को दृष्टि में रखते हुए उसके प्रवेश का प्रत्येक सम्भव उपाय द्वारा विरोध भी करना चाहिए।

हमें केवल इतना करके ही मौन नहीं धारण करना चाहिए, अपितु कम्युनिस्ट चीन द्वारा हड़पे गए भारतीय क्षेत्रों पर पुनः अधिकार करने के लिए भी पग उठाने चाहिए। इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए हमें चीन को एक निश्चित तिथि "अल्टीमेटम" के रूप में दे दनी चाहिए यदि अमुक निर्धारित तिथि तक कम्युनिस्ट चीन ने भारतीय क्षेत्रों से अपनी सेनाएँ हटाकर उसे मुक्त न किया तो हमें सैनिक कार्यवाही करके शत्रुओं को देश की सीमाओं से बाहर खदेड़ना होगा।

कोरिया और हिन्दचीन

हमारे कांग्रेसी शासकों की मूढ़ता केवल चीन तक ही सीमित नहीं है। उन्होंने कोरिया और हिन्दचीन के मामलों में भी अनावश्यक रूप से टाँग अड़ाई है, जिसका स्वभाविक परिणाम यह हुआ है कि सद्भावना तो दूर रही, उलटे हमने अपने लिए शत्रुओं को खड़ा कर लिया है।

विदेशी मामलों में असफल रहने का एक ज्वलन्त उदाहरण पाकिस्तान के साथ भारत सरकार द्वारा किया गया व्यवहार है। यह हमारे कांग्रेसी नेताओं की बुद्धि के दिवाले का ही एक जीता जागता उदाहरण है कि पाकिस्तान को संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थान देने का भी इन्होनें समर्थन किया। पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर खुल्लम–खुल्ला आक्रमण करने के वावजूद भी कांग्रेसी शासक इस शत्रु राष्ट्र से समानता के स्तर पर वार्ता करते रहे, तथा मैत्री के राग अलापते रहे। जिस समय अमेरिका ने हमारे साथ सैनिक–संधि का प्रस्ताव रखा तो हमने ठुकरा दिया। पाकिस्तान ने हमारी इस मूर्खता का तत्काल लाभ उठाया और उसने अमेरिका से पूर्णरूपेण सैनिक सहायता प्राप्त की। आज वही पाकिस्तान हमारे अस्तित्व के लिए भी संकट उत्पन्न कर रहा है। उसने हमारी पश्चिमी

सीमाओं के लिए एक नये स्थायी शत्रु का रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार हमारे देश का महत्वपूर्ण उत्तरी सीमान्त, पूर्व से पश्चिम तक आक्रान्त हो उठा है।

आज हम एक रोचक किन्तु भयावह चित्र अपने सामने देख रहें हैं कि कम्युनिस्ट चीन और पाकिस्तान हमारे भारत के ही सीमा–क्षेत्र का विभाजन करने के लिए परस्पर वार्ता कर रहे हैं और कांग्रेस दल का महानतम बुद्धिमान महापुरूष असहाय अवस्था में खड़ा हुआ यह देख रहा है कि क्या किया जाना चाहिए। अब इस "युगपुरूष" के लिए केवल एक ही मार्ग शेष रह गया है कि वह अलग हट जाए और दूसरों को इस राष्ट्र की मान–मर्यादा को नष्ट करने का अवसर प्रदान करे।

मुस्लिम राष्ट्र मंडल : एक नया संकट

इस सम्बन्ध में उस गम्भीर घटना का उल्लेख करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा, जो हाल ही में विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर घटित हुई है। यह घटना है पाकिस्तान के तानाशाह जनरल अयूब खाँ द्वारा मुस्लिम राष्ट्रों का एक राष्ट्रमण्डल स्थापित करने की घोषणा। भारत को यह तथ्य भी स्मरण रखना चाहिए कि संयुक्त अरब गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर मोरक्को से इण्डोनेशिया तक एक मुस्लिम–गुट के निर्माण का सक्रिय प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि इस सारे अंचल में मुस्लिम आधिपत्य स्थापित किया जायेगा। मुस्लिम–गुट के ये राष्ट्र भारत को चारो ओर से घेर लेंगे। इस प्रकार हमारे राष्ट्र के लिए चारों ओर से जो संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो गई है, उसका सामना करना नितान्त ही असम्भव हो जायेगा। हमारे देश के दक्षिण–पश्चिम में मालद्वीप है तथा सऊदी अरब, मिश्र, ईरान और पश्चिमी पाकिस्तान तथा अफ़गानिस्तान पश्चिम मे और पूर्वी पाकिस्तान, मलाया और इण्डोनेशिया हमारे देश के पूर्व और दक्षिण–पूर्व में स्थित हैं। इस प्रकार हम चारों ओर से मुस्लिम राष्ट्रों से घिर गये हैं। साथ ही यह भी स्वाभाविक ही है कि कम्युनिस्ट चीन भी भारत के विनाश के लिए इन मुस्लिम राष्ट्रों के मण्डल को सक्रिय सहयोग प्रदान करेगा। इस प्रकार वह सम्पूर्ण एशिया में अपने एक मात्र प्रतिद्वन्दी को समाप्त कर एशिया भर में अपना प्रभुत्व स्थापित करने की कामना से इस प्रकार का कोई पग उठाता है तो यह अप्रत्याशित नहीं होगा।

नेपाल के साथ संयुक्त मोर्चा

वर्तमान स्थिति में हमारे शासकों के लिए यही उचित है कि वे नेपाल के हिन्दू–राज्य के साथ संयुक्त मोर्चा सथापित करें। क्योंकि भारत और नेपाल के नागरिक एक ही धर्म के अनुयायी एवं एक ही जीवन–प्रणाली के आराधक है। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि हमारे कांग्रेसी शासक नेपाल के साथ जिस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं, वह पूर्णतः अव्यावहारिक है। हिन्दू महासभा हिन्दू संस्कृति के संरक्षण और संबर्धन के लिए कटिवद्ध है और उसे विश्व के किसी भी कोने में रहने वाले हिन्दू के प्रति ममता है। इसलिए विश्व के एकमात्र हिन्दू राज्य नेपाल के प्रति भी उसका ममत्व स्वाभाविक ही है। इसके साथ ही साथ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि महाराजाधिराज नेपाल ने अपने राज्य के संविधान में नेपाल को स्पष्ट शब्दों में हिन्दू राष्ट्र घोषित

किया है, जो आर्य संस्कृति एवं हिन्दू-राज्य की स्थापना के लिए कटिबद्ध है।

परन्तु यदि हम नेपाल के साथ अपने धार्मिक और सांस्कृतिक बंधनों को छोड़ भी दें, तो भी अपनी सुरक्षा की दृष्टि से यह अनिवार्य है कि हम नेपाल के साथ मैत्रीपूर्ण तथा सौहाद्रपूर्ण संबन्ध स्थापित करें, क्योकि विश्व में नेपाल ही वह एक मात्र राज्य है, जो विदेशी आक्रमण के समय हमारी सहायतार्थ आगे आ सकता है। किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे कांग्रेसी शासक महाराज नेपाल और नेपाल की जनता को अपने गलत कर्मो और रीति-नीति से क्षुब्ध बना रहे हैं। यह सब कुछ लोकतन्त्र के नाम की आड़ में किया जा रहा है।

आज हमारे शासक जो नेपाल में लोकतंत्र की हत्या हो जाने का करूण विलाप कर रहे हैं, उनमें यह साहस नहीं है कि वे पाकिस्तान में लोकतंत्र का जनाजा निकाल देने वाले अयूब खाँ की अधिनायकता के विरूद्ध अपने श्रीमुख से एक भी शब्द निकालें। ये लोग पाकिस्तान में स्थापित तानाशाही के विरूद्ध तो मुँह नहीं खोल पाते, किन्तु स्वयं तथा अन्य कई राजनीतिक दलों के स्वर में स्वर मिलाकर देश में नेपाल-विरोधी प्रचार करने में बड़ी तत्परता से लगे हैं। हिन्दू महासभा इस व्यवहार का कड़ा विरोध करती है और मैं भी इस मंच से कांग्रेसी शासकों की मनोवृत्ति का घोर विरोघ करता हूँ।

हमें हिन्दू महासभा की ओर से नेपाल के महाराजाधिराज और नेपाल की हिन्दू जनता के समक्ष यह स्पष्ट करने के लिए एक सद्भावना मण्डल भेजना चाहिए कि भारत के ह्रदय में उनके प्रति पूर्ण सद्भावना है और वे नेपाल राज्य के आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझते। नेपाल की सुदृढ़ता तथा मैत्री-भावना एवं श्रीवृद्धि ही भारत के हित में है, क्योंकि उत्तरी सीमाओं पर यह ही हमारा एकमात्र शुभेच्छु और सहयोगी है।

कांगो में हस्तक्षेप

अन्तर्राष्टीय मामलों में हमारे कांग्रेसी शासकों ने एक के पश्चात् एक जो भूलें की हैं, उन्हें देखकर मैं आश्चर्यचकित हूँ। चीन, कोरिया, हिन्दचीन तथा मिश्र में अनावश्यक रूप से अपनी टांगे अड़ाने का पुराना क्रम हमें त्याग ही देना चाहिए, क्योंकि हमने उसके विनाशक परिणामों को भलीभाँति देख लिया है। परन्तु हमारे इन शासकों ने पुरानी भूलों से किसी प्रकार की भी शिक्षा ग्रहण न करने का ध्रुव निश्चय कर लिया है, और वे प्रतिदिन अनावश्यक रूप से कांगो सरीखे देशों की समस्याओं में अपनी टांग अड़ाते जा रहे हैं। मैं इस तथ्य को बड़े खुले ह्रदय से स्वीकार करता हूँ कि कांगो में बेलजियम, राष्ट्रसंघ तथा उसके महासचिव ने जो कुछ किया है, वह उनके लिए शोभा की बात नहीं इसके विपरीत हमारी पूर्णसहानुभूति कांगो की पीड़ित प्रताड़ित एवं अभिशात जनता के प्रति है। हमारे ह्रदय में श्री पौट्रंसलुमुम्वा की सहादत के प्रति भी आदर-भावना है, जिनकी हत्या विश्व इतिहास में उपनिवेशवादियों के क्रूर कारनामों का एक ज्वलन्त उदाहरण है। इन उपनिवेशवादियों को इस घोर अपराध के लिए कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता।

किन्तु यह अभिमंत व्यक्त करने के साथ-साथ मुझे यह कहने में भी तनिक संकोच नहीं हेकि कांग्रेस सरकार ने बिना सोचे-समझे अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक कांगो में अपने ३ हजार सशस्त्र

सैनिकों को रवाना कर देने का जो पग उठाया है, वह नितांत मूर्खतापूर्ण है। वहाँ इन सैनिकों के जाने से भारत के प्रति कटुता की भावना में और अधिक वृद्धि हुई है और इसके बदले में भारत को मिला कुछ भी नहीं। हाँ, यदि हमारे हाथ कुछ लगा है तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारे प्रति दुर्भावना का सृजन ही है। हम सब यंह भलीभाँति जानते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यवाहियों में भारत को कोई उल्लेखनीय स्थान प्राप्त नहीं है, चाहे इस सम्बन्ध में श्री वी० के० कृष्ण मेनन के अपने सम्बन्ध में कुछ भी विचार क्यों न हों अथवा श्री नेहरू को अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अपनी चुस्ती दिखाने के अवसर ही क्यों न हाथ लगे हों। आज हमारे देश की जनता भी इस सत्य को, विलम्ब से ही सही, स्वीकार करने लगी है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि हम एक सम्मानित राष्ट्र के रूप में जीवित रहना चाहते हैं तो हमें अपनी विदेश नीति में आमूल परिवर्तन करना होगा और हमें भविष्य में निर्धारित अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर ही अपनी विदेश नीति की पुनर्रचना करनी होगी, जिसका आधार होगा विस्तृत स्वराष्ट्र हित और केवल स्वराष्ट्र हित। हमें छोड़नी होगी सस्ती प्रसिद्धि की थोथी भावना, जिसने हमें सबकी दृष्टि में दुर्बल और हेय बनाकर खड़ा कर दिया है।

हमें इस सत्य को भलीभाँति हृदयंगम करना होगा कि विश्व के किसी भी संकटग्रस्त क्षेत्र में अपने प्रतिनिधि भेजने मात्र से ही भारत महान् राष्ट्र के रूप में खड़ा नहीं हो जाता। यदि वह ऐसा करता है तो उसे कोरिया, हिन्दचीन, लाओस और कांगो के समान ही पग–पग पर अपमान और निन्दा ही मिलेगी। आज सभी राष्ट्र यह अनुभव करने लगे हैं कि भारत हमारे विवादों में मध्यस्थ बनकर कोई समस्या इसलिए नहीं सुलझा सकता, कि सैनिक शक्ति की दृष्टि से वह दुर्बल है। इसलिए उसके हाथों हमारी स्थिति और सम्मान की रक्षा की कल्पना मृगमरीचिका ही है। इस प्रकार प्रत्येक मामले में टांग अड़ाने की इस नीति ने भारत की स्थिति सम्पूर्ण विश्व के समक्ष हास्यास्पद बनाकर रख दी है। हमें तत्काल इस मूर्खतापूर्ण नीति का परित्याग कर देना चाहिए।

हमारी विदेश नीति की सफलता के केवल दो ही उपाय हो सकते हैं। प्रथम यह कि हम दूसरों के साथ चल रहे अपने विवादों में सबल मित्र–संघ बना सके, तथा दूसरा यह कि हममें यह योग्यता हो कि हम अपने देश की सीमाओं को विदेशी आक्रमण से सुरक्षित रख सकें। इन दोनों दृष्टियों से जब हम विचार करते हैं तो एक नितांत ही करूण चित्र हमारे मानस–चक्षुओं के समक्ष आ खड़ा होता है। जहाँ हम विश्व–भर के देशों के समक्ष भीख की झोली लिए "भिक्षाम् देहि" का नारा लगाते हुए विश्व के बाजारों में घूम रहे हैं, वहाँ हमारे शासक यदि शूरवीर बने हैं तो केवल इसी बात में कि जिनकी कृपा से इनकी योजनाओं के पहिए घूम रहे हैं, ये उन्हें ही द्रात दिखाने का महान् शौर्य दिखा रहे हैं। यह भाग्य की महान विडम्बना है।

जहाँ तक विदेशियों के आक्रमणों से अपने देश की सीमाओं की रक्षा करने और आक्रमण का प्रतिकार करने का सम्बन्ध है, हमारे कांग्रेसी शासक निशस्त्रीकरण पर लम्बे–चौड़े भषण देकर अपनी वाग्यशूरता का दिग्दर्शन कर रहे हैं। आज की दुनिया में केवल शक्तिशाली और सशस्त्र राष्ट्रों को ही निशस्त्रीकरण की बात कहने का अधिकार है। वैसे तो निशस्त्रीकरण की बात कहकर केवल

अपनी दुर्बलता का ही प्रर्दशन मात्र करना है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भारत के वीर सैनिकों का रण–कौशल विगत दो महायुद्धों में सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्यचकित करता रहा है। प्रत्येक राष्ट्र इस बात की कामना करता है कि भारत दुर्बल ही बना रहे। इसलिए हमारे कांग्रेसी शासकों के द्वारा जब निशस्त्रीकरण का आल्हा गाया जाता है, तब बिदेशी राष्ट्र भी उस पर ताल और थाप देते हैं। इसके पीछे उनका एकमात्र लक्ष्य यही है कि सस्ती प्रसिद्धि से फूले हुए भारतीय नेता अपने राष्ट्र कौ शक्ति–सम्पन्न बनाने के लिए कदापि अग्रसर न हों।

आज यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति अपने देश की प्रतिरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने में लगा दें। किन्तु यदि हम अपने हाल के बजट पर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें ऐसा कोई आभास भी प्रतीत नहीं होता कि हमारे शासकों को इस बात का पता है कि हमारी सीमाओं का अतिक्रमण हुआ है, अथवा हमें अपने शक्तिशाली पड़ोसियों से भी लड़ना भी पड़ेगा। आज उसी हिमालय की प्राचीरों को लाँघकर शत्रु शैन्यन हमें ललकारा है, जिसे हम कोटि–कोटि वर्षों से अजेय तो मानते ही आए हैं, अपना रक्षक भी समझते आए है। जब हम अपने बजट में प्रतिरक्षा साधनों पर दिए जाने वाले व्यय के आंकड़ो पर दृष्टिपात करते हैं, तो हमारे मन में सहसा यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि क्या हमारे इन कांग्रेसी शासकों ने अपनी सामान्य बुद्धि को भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि की आलमारी में बन्द कर भविष्य के लिए सुरक्षित रख छोड़ा है ?

हिन्दू महासभा इस भयानक स्थिति में परिवर्तन चाहती है और उस परिवर्तन के लाने के लिए वह अपनी शक्ति भर प्रयास करेगी।

भारत आज भी ब्रिटेन का गुलाम है

भारत आज भी ब्रिटिश कामनवेल्थ के सदस्य के रूप में अवशिष्ट ब्रिटिश साम्राज्य के शासन–चक्र से बधाँ हुआ है। सत्तारूढ़ कांग्रेसी शासकों द्वारा हमारे राष्ट्र के साथ उस समय भी विश्वासघात किया गया, जब उन्होंने स्वतंत्र भारत को ब्रिटिश कामनवेल्थ का, जो ब्रिटिश साम्राज्य का ही दूसरा नाम है, सदस्य बने रहने की अनुमति प्रदान कर दी। यद्यपि हमारी मातृभूमि हमारे संविधान के अनुसार स्वतंत्र गणराज्य है, परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सम्राट हमारा सांकेतिक प्रमुख बना हुआ है तथा भारतवर्ष के समस्त नागरिक अद्यावधि इंगलिश नागरिक विधान के अनुसार ''ब्रिटिस प्रजा'' बने हुए हैं।

अभी–अभी साम्राज्ञी की भारत–यात्रा के समय हमने अपनी मान–मर्यादा भंग होने के साक्षात् दर्शन किये हैं, जिसने हमारे स्वाभिमान तथा दर्प को चूर–चूर कर डाला। हमारे लिए इससे अधिक लज्जास्पद एवं दुख का विषय और क्या होगा कि सामाज्ञी एलिजाबेथ भारत–यात्रा पर संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका के अध्यक्ष आइजनहावर तथा सोवियत यूनियन के अध्यक्ष वोरोशिलोव की भाँति ब्रिटिश शासन की साम्रज्ञी के रूप में नहीं आई, वरन् ब्रिटिश कामनवेल्थ के प्रमुख के रूप में आई। इसके पीछे हमारे राष्ट्र के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाने के लिए एक इच्छापूर्ण अभिप्राय निहित था। उनकी भारत–यात्रा के समय एक विशेष कामनवेल्थ के झंण्डे का प्रयोग किया गया और यह झंण्डा उनकी मोटर के अग्र भाग पर समस्त भारत–यात्रा में शान के साथ

लहराता रहा। ब्रिटिश सम्राज्ञी का स्वयं अपना एक ध्वज है जों कि लंदन में बकिंघम राज–प्रसाद के ऊपर लहराता है और जब कभी भी इंगलैंडकी साम्राज्ञी ब्रिटेन के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भ्रमण के लिए जाती हैं तो वह सर्वदा ही राज–प्रसाद पर फहराने वाले ध्वज का प्रयोग करती है। परन्तु उन्होंने भारत–आगमन पर ऐसा नहीं किया। इसका एकमात्र यही अभिप्राय हो सकता है कि उन्होंने अपनी यात्रा के समय यही व्यक्त किया कि भारत के निवासी अवैध रूप से ब्रिटेन के दास हैं तथा गणराज्य–दिवस–समारोह पर भारत के राष्ट्रपति की सवारी में निकलकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि उनका पद यदि भारत के राष्ट्रपति से उच्चतर नहीं, तो समान अवश्य है। इस प्रकार की राष्ट्र की मान–हानि आज के कांग्रेस शासन में ही सम्भव है। भारत में कांग्रेस को छोड़कर अन्य किसी दल ने स्वतंत्र भारत को ब्रिटिश साम्राज्य में, जों कि अब ब्रिटिश कामनवेल्थ के रूप में अवशिष्ट है, बनाये रखना अंगीकार नहीं किया किया है। हिन्दू महासभा ब्रिटिश शासन से किसी भी प्रकार के सम्बन्ध बनाये रखने के विरूद्ध है और इन सम्बन्धों का आमूलोन्मूलन चाहती है, तथा वह इस दासता की श्रृंखलाओं को विच्छिन्न करने के लिए भरसक प्रयास करेगी।

अखण्ड भारत ही हमारा अन्तिम लक्ष्य है

हमारी स्वतंत्रता अन्य विषयों में अपूर्ण है। हिन्दू महासभा सिन्धु से सागर पर्यन्त समग्र प्रदेश को पूर्ण भारतवर्ष का क्षेत्र मानती है। जब तक गिलगिट सहित समस्त जम्मू तथा काश्मीर प्रदेश, सिंध, पंजाब, पूर्वी बंगाल तथा सिलहट जो आज पाकिस्तान के आधिपत्य में हैं, गोआ तथा फ्रेंच बस्तियाँ आदि इस देश में सम्मिलित नहीं हो जातीं, तब तक अखंड भारतवर्ष का स्वराज्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता। भारतवर्ष स्वतंत्रता के स्वच्छन्द वायुमंडल में तभी श्वाँस ले सकेगा जब कि ये समस्त प्रदेश उसमें पुनः मिल जायें और हम उसे अखंड भारतवर्ष बनाने के लिए, जेसा कि वह शताब्दियों से अपने प्राचीन एवं अर्वाचीन युग में रहा है, सतत् एवं यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे।

नागा समस्या

भारत की पूर्वी सीमा पर नागालैण्ड के रूप में ईसाई राज्य की स्थापना एक विस्फोटक स्थिति की परिचायिका है। यह स्थिति हमारे इन्हीं कांग्रेसी शासकों की नीति का परिणाम है जो अपने आप को दैवयोग से भारत–पुत्र मानते हैं। इसी भाँति अण्डमान और नीकोबार द्वीपों में ईसाईकरण बड़ी तीव्र गति से चल रहा है। मैं हिन्दुओं को चेतावनी देता हूँ कि समय रहते इस ओर से सचेत हो जायँ।

फीजो सरीखे व्यक्तिय के नेतृत्व में नागाओं ने जो विद्रोह आरम्भ किया था, वह भी अभी तक कुचला नहीं जा सका और हमारे बहुत से सैनिकों का रक्त स्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए बहाया गया है। किन्तु अभी तक इन कांग्रेसी शासकों ने वहाँ चल रही ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों को रोकने के लिए कोई सक्रिय पग नहीं उठाया है। मुझे आश्चर्य होता है कि क्या कांग्रेसी शासकों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के स्वप्न को पूर्ण करने के लिए देश की सत्ता विदेशी मिशनरियों को हस्तान्तरित करने का निश्चय कर लिया है ?

केरल में ईसाइयत

केरल राज्य की रचना त्रावणकोर–कोचीन तथा मालाबार के कुछ अंचलों को मिलाकर की गई है। इसके गठन से पूर्व त्रावणकोर के हिन्दू शासकों और रोमन कैथोलिक ईसाइयों में एक गम्भीर संघर्ष चलता रहा। यह संघर्ष इस बात के लिए था कि दोनों में से किसका अस्तित्व बना रहे, क्योंकि त्रावणकोर का समुद्री तट वह स्थान हैं, जहाँ सर्व प्रथम विदेशी ईसाई मिशनरिया ने अपने पाँव गड़ाये थे। तब से अब तक यह क्षेत्र उनका एक सुदृढ़ किला सा बन गया प्रतीत होता है। आज वहाँ की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ईसाई–धर्म ग्रहण कर चुका है। त्रावणकोर के महाराजा सुदीर्घकाल से कट्टर हिन्दू रहे हैं। इसलिए उन्होंने इन ईसाई मिशनरियों के विरूद्ध संघर्ष करने का प्रयास किया, किन्तु जिस समय सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर त्रावणकोर राज्य के दिवान बने, उस समय तो उन्होंने ईसाइयत के विरूद्ध एक प्रकार का युद्ध ही आरम्भ कर दिया था। हो सकता था कि ईसाई पराजित हो जाते किन्तु कांग्रेसी शासकों ने सत्तारूढ़ होते ही पहला कार्य यह किया कि उन्होंने श्री अय्यर को दीवान पद से हटा दिया। इसके पश्चात् राज्य में कांग्रेसी शासन की स्थापना हुई जिसे दूसरे शब्दां में एक ऐसा भ्रष्ट प्रशासन कहा जा सकता है, जैसा उस राज्य में पहले कभी देखा भी नहीं गया था। सन् १९५६ में केरल राज्य बनने के बाद जब १९५७ में वहाँ प्रथम चुनाव हुआ तो कम्युनिस्टों ने चुनाव लड़ा। केरल की जनता ने कांग्रेस के भ्रष्ट शासन की अपेक्षा केरल में कम्युनिस्ट राज्य की स्थापना को अधिक पसन्द किया। मैं कम्युनिस्टों का समर्थन नहीं करता, किन्तु मैं यह कह देना भी आवश्यक मानता हूँ कि कांग्रेसी शासन कम्युनिस्टों की अपेक्षा अधिक निकृष्ट और हिन्दू–विरोधी है। इसलिए मेरा आह्वान है कि वहाँ इन दोनों के विकल्प के रूप में एक सशक्त हिन्दू–संगठन की स्थापना होनी चाहिए। क्योंकि कम्युनिस्ट किसी रूप में धर्म के विरोधी हैं, इसलिए उन्होंने सत्तारूढ़ होते ही केरल में रोमन कैथोलिक के आधिपत्य को समाप्त करने का संकल्प किया। इस हेतु उन्होंने शिक्षा विधेयक लागू किया, जिसका उद्देश्य राज्य के शिक्षा–क्षेत्र से ईसाईयों के आधिपत्य को समाप्त करना था। किन्तु कांग्रेसियों ने ईसाईयों और मुस्लिम लीगियों के साथ गठबन्धन करके केरल के कम्युनिस्ट शासन को पदच्युत करा दिया। आज केरल में प्रत्यक्षतः रोमन कैथोलिक सरकार है, जिसकी छत्र–छाया में वहाँ ईसाई मिशनरियाँ और भी संगठित रूप से हिन्दूओं को ईसाई बनाने में जुट गयी हैं।

जबलपुर काण्ड

आज भारतवर्ष में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि जबलपुर में दिन दहाड़े एक हिन्दू बालिका के साथ मुसलमान गुण्डों ने बलात्कार किया। इस घटना को भारत और पाकिस्तान दोनों में मुसलमानों द्वारा विकृत रूप से पेश किया गया। कुमारी उषा ने अपने बलिदान द्वारा जो महान् आदर्श उपस्थित किया उसके प्रतिक्रिया–स्वरूप जबलपुर और दूसरे स्थानों पर कुछ घटनाएँ भी घटी हैं। कुमारी उषा ने हिन्दुत्व के उस महामंत्र को हृदयंगम कर ही अपना आत्म–बलिदान किया था कि अपमानित जीवन से मृत्यु श्रेयस्कर है। किन्तु हमने यह भी देखा कि मुस्लिम गुण्डों के इस विभत्स अत्याचार का विरोध करने का प्रयत्न भारत के एक भी मुस्लिम नेता ने नहीं किया है।

इसके विपरीत वे अपनी पूर्ण शक्ति से जबलपुर काण्ड के पश्चात् घटित घटनाओं के सम्बन्ध मे चीख पुकार मचाते रहे और हमारे कांग्रेसी नेता आगामी निर्वाचन में मुसलमानो के वोट प्राप्त करने हेतु निरपराध हिन्दुओं को ही कारावास की क्रूर यातनाएँ देकर अपनी देशभक्ति की पताका फहराते रहे। इसके विपरीत उन्होंने मुस्लिम गुण्डों को उनके अमानवीय कृत्यों के लिए किसी प्रकार का भी दण्ड देने का साहस नहीं किया है। हिन्दुओं के समक्ष यह भयानक स्थित कांग्रेस शासकों ने ही प्रस्तुत की है कि उनकी मां बहनों का सम्मान और जीवन उन्हीं की पुण्य भूमि हिन्दस्तान में ही असुरक्षित हो कर रह जाय और ऐसी गतिविधियाँ अभी भी जारी हैं।

आसाम के हिन्दू विरोधी दंगे

गत जुलाई मास में आसाम में भी जो कुछ घटित हुआ, वह इसी दुर्भाग्यपूर्ण कहानी की एक कड़ी मात्र है। हमें बताया जाता है कि आसाम राज्य में भाषा के आधार पर दंगे हुए। किन्तु इन दंगों से भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं था। वास्तव में आसाम में विगत जनगणना में हिन्दुओं की जनसंख्या कम कराने के लिए ईसाई और मुसलमानों ने संगठित षड्यंत्र किया था, जिससे आसाम के अवशिष्ट भाग को भी मुस्लिम बहुसंख्यक बनाकर पाकिस्तान का ही अंग बनाया जा सके। ऐसा उन्होंने देश के विभाजन के समय भी सिलहट को पाकिस्तान के साथ मिलाने के लिए किया था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु तथाकथित भाषायी उपद्रव के समय बंगाली हिन्दुओं को अपना लक्ष्य बनाया गया और उनमें से हजारों को असहाय होकर भाग जाने के लिए बाध्य किया गया। यही नहीं, अपितु तीन हिन्दू मंदिरों को भी इस दंगे के समय नष्ट–भ्रष्ट कर दिया गया। आज के कांग्रेसी शासकों ने मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति को अपनाते हुए इन दुखद काण्डों की न्यायिक जाँच कराने तक का साहस नहीं दिखाया। आज तक इस उपद्रव में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले व्यक्तियों को किसी प्रकार का दंड नहीं दिया गया है। क्या राष्ट्र के पतन की इससे भी अधिक पराकाष्ठा हो सकती है? मैं हिन्दुओं को चेतावनी देता हूँ कि यदि वे अब भी जागृत न हुए तो उनके इस पुरातन राष्ट्र का उल्लेख केवल इतिहास के पन्नों में ही सुरक्षित रह जाएगा।

धर्म–निरपेक्षतावाद के कारण राष्ट्र का पतन

धर्म निरपेक्षतावाद की आड़ में हमारे कांग्रेसी शासकों ने अधार्मिकता का खुला प्रचार किया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीय जीवन की नैतिक मान्यताएँ ही लड़खड़ा उठी हैं, जिन्हें सदा ही विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। हमारी ये उच्च नैतिक मान्यताएँ धार्मिक विश्वासों की पूर्ति पर ही आधारित हैं। इन मान्यताओं में पुनर्जन्म का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इस जन्म के पापों का परिणाम भावी जीवन में भुगतना पड़ता है। इस मान्यता को भुलाने का ही यह परिणाम है कि चारों ओर भ्रष्टाचार, अनाचार और अत्याचारों का जाल फैला जा रहा है। तथाकथित धर्म–निरपेक्षता के सिद्धांत हमारे राष्ट्रीय जीवन को ही जर्जरित करते जा रहे हैं। राष्ट्र के जीवन के सम्मुख उपस्थित इस चुनौती का सामना हमें प्रत्येक सम्भव उपाय द्वारा करना होगा।

प्रतिरक्षा की व्यवस्था

राष्ट्र की स्वाधीनता की रक्षा के लिए अत्यावश्यक है कि हम अपनी प्रतिरक्षा को सुदृढ़ करें। यह एक सामान्य कथन है कि स्वतंत्रता प्राप्त कर लेना तो सरल है, किन्तु उसकी रक्षा अत्यधिक कठिन है। यही वह समस्या है जिसका आज हमें सामना करना पड़ रहा है। आज यह तथ्य हमारे समक्ष कठोर सत्य बनकर उपस्थित हुआ है कि जम्मू और कश्मीर प्रदेश में हमारे देश का बहुत बड़ा अंचल अभी पाकिस्तान के पंजों में पड़ा कराह रहा है और दूसरी ओर हमारी मातृभूमि के १२ हजार वर्गमील के विस्तृत क्षेत्र पर कम्युनिस्ट चीन ने अपने फौलादी बूट जमा दिये हैं। इन सबका एकमात्र कारण है कि हमारे पास सुदृढ़ सैनिक शक्ति और सैन्य साधनों का अभाव है। वास्तविकता तो यह है कि हमारे कांग्रेसी शासकों ने देश की प्रतिरक्षा को उस समय से भी अधिक दुर्बल बना दिया है, जैसा कि सन् १९४७ ई० में हमारे इन शासकों के सत्ता ग्रहण करते समय थी। हमारे शस्त्रास्त्र निर्माण के वे कारखाने जो द्वितीय महायुद्ध के समय अंग्रेजी सेनाओं के लिए विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रों का निर्माण कर रहे थे, प्रायः बन्द कर दिये गये हैं। इसका उदाहरण शस्त्रास्त्र निमार्ण करने का कानपुर का कारखाना है। अन्य जो कारखाने हें उनमें ट्रक, मशीनों के पुर्जे और मोटारें आदि तो सभी कुछ बनती हैं, यदि कुछ नहीं बन पाता तो वह है शस्त्रास्त्र। आज हम विदेशों से घिसे–पिटे जहाज और हथियार खरीद रहें हैं।

इन सब गतिविधियों से एक ही भयानक चित्र हमार`समक्ष उपस्थित हो रहा है कि हमारा राष्ट्र विनाश की ओर बढ़ रहा है। यदि युद्धोन्माद से ग्रसित विश्व में हम एक राष्ट्र के रूप में जीवित रहना चाहते हैं तो हमें आधारभूत सिद्धान्तों को अपनाना होगा, जिन्हें स्वातंत्र्यवीर सावरकर जी ने स्पस्ट रूप से देश के समक्ष प्रस्तुत किया है। वे सिद्धान्त हैं 'राजनीति का हिन्दूकरण' और "हिन्दूओं का सैनिकीकरण"। यदि हमने इन सिद्वान्तों का अनुगमन किया तो हमारा राष्ट्र एक महान राष्ट्र के रूप में जीवित रह सकेगा। इसका अनुसरण करने से ही हमें वह उचित स्थान प्राप्त हो सकेगा, जो गत महायुद्धों में अपनी रण –कुशलता का प्रदर्शन करने वाले भारतीय सैनिक को प्राप्त हुआ था। आज सोवियत रूस तथा अमरीका युद्ध को रोकने की बात इसलिए कर पाते हैं कि वे सशक्त हैं। वास्तव में दुर्बलों को ऐसा कुछ कहने का कोई अधिकार ही नहीं। यदि हम इस बात के इच्छुक हैं कि तृतीय महायुद्ध न हो, तो पहले हमें सशक्त बनना होगा। यदि हम सैनिक दृष्टि से दुर्बल बने रहे, तो हम स्वयं ही विदेशियों को अपने ऊपर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित करेंगे। इसलिए हमारे शासकों के लिए यह उचित है कि पहले वे देश की प्रतिरक्षा–शक्ति सुदृढ़ करने का प्रयत्न करें। इससे देश में व्याप्त असन्तोष का भी अन्त हो जायेगा।

मैं सभी हिन्दुओं से अनुरोध करूँगा की राष्ट्र के सैनिकीरण के सम्बन्ध में उन्हें अपने दायित्व को पूर्ण करना चाहिए। प्रत्येक हिन्दू भाई को कॉलिज में शिक्षा ग्रहण करने वाले अपने पुत्र को राष्ट्रीय सैन्य–विद्यार्थी–दल में भर्ती कराना चाहिए। इतना ही नहीं, अपितु जो स्वयं युवक हैं, उन्हें स्वयं सेना में प्रविष्ट होना चाहिए और यदि इतना सम्भव न हो तो कम से कम एक परिवार के एक व्यक्ति को तो सेना में भर्ती किया ही जाना चाहिए।

देश के विभिन्न राजनीतिक दल

देश मे विद्यमान विभिन्न राजनीतिक दलों तथा उनकी विचारधारा और कार्यक्रम का संक्षिप्त उल्लेख करना भी मैं आवश्यक समझता हूँ, जिससे हम हिन्दू राष्ट्र के भविष्य के सम्बन्ध में किसी ठोस निश्चय पर पहुँच सकें।

हम सभी इस तथ्य को भली–भाँति जानते हैं कि अंग्रेजों ने अपने द्वारा निर्मित संगठन अर्थात कांग्रेस को उस समय अपना पूर्ण समर्थन दिया था, जिस समय उन्होंने भारतीय हाथों में सत्ता हस्तान्तरित की। जब उन्होंने नेताजी सुभाष के महान् अभियान को देखा, भारतीय नौ–सेना और वायु–सेना के वीर देशभक्त सैनिकों को स्वाधीनता की अंगड़ाई लेकर सन्नद्ध होते हुए पाया तथा द्वितीय महायुद्ध में अपनी शक्ति के पराभव का अनुभव कर लिया, तो उन्होंने १९४६ में ही कांग्रेसियों को इसका भावी शासक बना दिया। क्योंकि वे भलीभाँति जानते थे कि उनके हाथ में ही ब्रिटेन के हित सुरक्षित रह सकते हैं और वे इस देश मे अपने आर्थिक स्वार्थो की पूर्ति करते रहने मे समक्षम सिद्ध हो सकते है। इसी कारण देश की स्वाधीनता से पूर्व जिस समय वार्ता का अन्तिम दौर चल रहा था, उस समय हिन्दू महासभा को अकारण उससे पृथक् रख गया। क्योंकि अंग्रेज भलीभाँति जानते थे कि हिन्दू महासभा राष्ट्र के साथ विश्वासघात करने के लिए किसी भी भाँति तैयार न होगी और हिन्दू महासभा के हाथों में सत्ता दी गई तो वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के नाम पर छद्मभेष में देश पर लादी गई ब्रिटिश दासता के पाखण्ड को दूर कर देगी।

स्वाभाविक रूप से जब अंग्रेजों की सहायता से कांग्रेस देश की सबसे बड़ी और सशक्त राजनीतिक पार्टी बन गई, तो उसने अपने आपको सत्तारूढ़ बनाये रखने के लिए सभी प्रकार के वैधानिक और असंवैधानिक प्रयास किए। यहीं तक नहीं, उसने प्रचार के प्रत्येक साधन अर्थात रेडियों, चलचित्र, उद्योग और सरकारी विज्ञापनों तथा समाचारपत्रों तक पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली। इस प्रकार उन्होंने अब एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि देश का जनसाधारण उसके मिथ्या प्रचार के वशीभूत हो यह समझने लगा है कि देश की स्वाधीनता का श्रेय एकमात्र अंग्रेजो की मानसपुत्री कांग्रेस को ही प्राप्त है। इस कांग्रेस की स्थापना १८८५ ई० में श्री ए० ओ० हयूम नामक एक अंग्रेज अधिकारी ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए की थी। कांग्रेस ने अपने संस्थापक के उन अपवित्र उद्देश्यों को पूरा कर दिखाया और हम आज देख रहे हैं कि स्वाधीन भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य बनकर अंग्रेजी साम्राज्यवाद का एक चाटुकार सदस्य मात्र रह गया है।

इन सब वास्तविकताओं के बावजूद भी हमारे देश का एक प्रचंड बहुमत इस भ्रम से ग्रसित है कि कांग्रेस ही देश की स्वाधीनता के लिए संग्राम करती रही। वास्तव में कांग्रेस की प्रचार–मशीनरी बड़ी ही प्रौढ़ है। इसलिए आज भी मतदाता कांग्रेस को भ्रम के वशीभूत होकर अत्यधिक सहयोग देते हैं। हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि आज मतदाताओं की यह भ्रान्त धारणाएँ शनैः शनैः दूर होती जा रही हैं। आज कांग्रेसियों द्वारा सत्ता के नशे में चूर होकर ऊटपटांग कार्य किए जा रहें है उनके कारण लोगों का कांग्रेस पर से विश्वास हटता जा रहा है। जहाँ १९५२ के महा निर्वाचन में कांग्रेस को प्रायः शत प्रतिशत स्थान प्राप्त हुए थे, वहाँ १९५७ के निर्वाचन में वह

विधान सभाओं में ७५ प्रतिशत स्थान प्राप्त करने में भी असफल रही है। हमारी यह भी आशा है कि इसी क्रम के अनुरूप इस बार के महानिर्वाचन में कांग्रेस को विधान सभाओं में ५० प्रतिशत भी स्थान प्राप्त नहीं हो सकेंगे। इतने पर भी कांग्रेस अभी देश की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी बनी हुई है। यद्यपि उसे भारतीय मतदाताओं के पूर्ण बहुमत का कभी समर्थन प्राप्त नहीं हो सका है।

कम्युनिस्ट

इन निर्वाचनों में यदि किसी दल ने किसी सीमा तक सत्तारूढ़ दल को चुनौती दी है तो वह कम्युनिस्ट पार्टी है। पश्चिम बंगाल और केरल में उसे पर्याप्त समर्थन मिला है। यही नही, महाराष्ट्र में भी संयुक्त महाराष्ट्र समिति के सहारे बात आगे बढ़ी है। नगरों और श्रमिक बस्तियों में इसने अपनी स्थिति पर्याप्त सुदृढ़ कर ली है। इसी भाँति मध्यप्रदेश में भी ग्वालियर, इंदौर और भूपाल में से प्रत्येक में इसे एक–एक स्थान प्राप्त हुआ है। इन स्थानों को दक्षिण–पंथी दलों का दृढ़ दुर्ग समझा जाता है।

किन्तु कम्युनिस्ट पार्टी के सम्बन्ध में हमें एक बात नितांत स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि यह दल अपनी स्थापना के समय से ही राष्ट्रद्रोह पूर्ण कार्यों में संलग्न रहा। इसकी स्थापना १६१६ में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भारत में हुई थी। इसके साथ ही इस दल को राष्ट्र–विरोधी मुसलमानों का भी आरम्भ से ही सहयोग मिलता रहा है, जो राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से सदैव ही दूर रहते आये हैं।

इन भारतीय कम्युनिस्टों ने निर्धन और श्रमिक जनता के जीवन की विवशताओं और दुरूहताओं का लाभ उठाया है तथा उसी आधार पर अपने भड़कीले कार्यक्रमों का प्रलोभन देकर उन्होंने कार्यकर्ताओं का भी एक बड़ा वर्ग तैयार कर रख है जो अपना सम्पूर्ण समय पार्टी के कार्यों में लगाते हें।

इसके साथ ही वह अप्रत्यक्ष रूप से आज श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री वी० के० कृष्ण मेनन का भी जोरदार समर्थन कर रहे हैं, क्योंकि वास्तव में ये दोनों ही उस प्रणाली को अपनाते रहे हैं जिसके लिए भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी खड़ी है।

भारतीय सीमाओं का चीन द्वारा अतिक्रमण किए जाने के उपरान्त देश में सामान्यतः यह धारणा व्याप्त हो गई थी कि भारत में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति कमजोर हो गई है, किन्तु बंगाल के उपनिर्वाचन तथा बम्बई नगर निगम के निर्वाचनो के जो परिणाम हमारे समक्ष आये हैं उससे यह स्पष्ट हो गया है कि उन्होंने अपनी स्थिति को और भी सँभाल लिया है। इतना ही नहीं, गत वर्ष केरल के निर्वाचल में भी कम्युनिस्टों को १६५७ के महानिर्वाचन की तुलना में अधिक प्रतिशत मत प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार यह तथ्य स्पष्ट रूप से जनता जनार्दन के समक्ष आ जाता है कि कम्युनिस्ट चीन के अतिक्रमण से भी कम्युनिस्टों की स्थिति कमजोर नहीं हुई है।

प्रजासमाजवादी दल

देश के निर्वाचनों में कम्युनिस्टों की अपेक्षा प्रजासमाजवादी दल को अधिक स्थन प्राप्त हुए हैं। किन्तु प्रजासमाजवादी दल तथा कांग्रेस नीति में भिन्नता ढूंढ़ना अत्यन्त कठिन है। इन दोनों में अन्तर दिखाई देता है कि समाजवादी अपने आपको कांग्रेसियों से भी श्रेष्ठ गाँधीवादी समझते हैं। वे हमें समाजवादी समाज रचना के प्रति अधिक सच्चे और अपेक्षाकृत कांग्रेसियों से कम भ्रष्ट नजर आते हैं। इस का कारण सम्भवतः यही है कि वे अभी सत्तारूढ़ नहीं हुए हैं। मतदान के समय कांग्रेस की विचारधारा से समानता उन्हें कई अर्थों में लाभ पहुँचाती है, परन्तु कभी–कभी उनके लिए हानिकारक भी सिद्ध होती है। मतदाता उनसे ये प्रश्न करते हैं कि यदि कांग्रेस और प्रजासमाजवादी दल एक ही हैं तो असली के स्थान पर बनावटी को समर्थन क्यों दिया जाय ?

अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर प्रजासमाजवादी दल की नीति कांग्रेस से पृथक नहीं है, जिसका प्रमाण हमें उनकी चीन और तिब्बत सम्बन्धी नीति से मिलता है। किन्तु वे अपने उन्माद में इस तरह आगे बढ़ गए हैं कि उन्होंने भारत औरं पाकिस्तान की संयुक्त प्रतिरक्षा–संधि तक का समर्थन कर डाला है। इसके कारण आज लोगों को यह सन्देह होने लगा है कि प्रजासमाजवादी अमरीकी दलाल हैं, यद्यपि मेरे लिए ऐसा सन्देह करने का कोई स्थान दिखाई नहीं देता। इसका परिणाम यह हो रहा है कि उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा है। वास्तव में प्रजासमाजवादी दल का नेतृत्व कांग्रेस की दया का ही आश्रित है, क्योंकि यह एक अकाट्य सत्य है कि संसद में आर्चाय कृपलानी और श्री आशोक मेहता दोनों को ही कांग्रेस की दया के कारण स्थान प्राप्त हो सका है। इतना ही नहीं, केरल और बम्बई नगर निगम में भी प्रजासमाजवादियों ने कांग्रेस के साथ गठबन्धन किया है।

इन सब बातों का एक ही परिणाम हो रहा है कि आज जन–मानस में यह भावना दृढ़ और बलवती होती जा रही है कि प्रजासमाजवादी दल एक विरोधी दल का रूप ग्रहण करने में पूर्णतः असमर्थ है और इस दल का कोई भविष्य नहीं। न तो यह विचारधारा की दृष्टि से ही ठहर पाता है और न यह संगठन–मशीनरी द्वारा अपना भविष्य बनाने में समर्थ है। वास्तव में सत्य तो यह है कि प्रजासमाजवादी दल कांग्रेस का ही एक विकृत और बनावटी रूप है और इसका नेतृत्व कांग्रेस की 'बी' टीम का काम करा रहा है।

लोहिया समाजवादी

अपनी कट्टरता और गतिविधियों के कारण डाक्टर राममनोहर लोहिया की तुलना हम अपने श्री करतार सिंह थत्ते से कर सकते हैं। आज समाजवादी दल अपनी मातृवत् संस्था प्रजासमाजवादी दल की अपेक्षा कांग्रेस का उग्र विरोधी है। किन्तु उत्तर प्रदेश में जनता का पर्याप्त समर्थन प्राप्त करने के अपरान्त भी यह कहना अत्यधिक दुष्कर है कि इस दल का विस्तार एक अखिल भारतीय दल के रूप में हो सकेगा।

भारतीय जनसंघ

अब हमारे समक्ष उपस्थित होता है भारतीय जनसंघ। यह दल हिन्दू महासभा के उपाध्यक्ष डाक्टर केशवराव बलिराम हेडगेवार द्वारा १६२५ ई० में में संस्थापित ३६ वर्षीय पुराने

'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' का ही राजनीतिक पक्ष है। 'राष्ट्रीय स्वयं संवक संघ' आज भी हिन्दू राष्ट्रवाद की उसी विचारधारा का विश्वासी है, जो हिन्दू महासभा की मौलिक विचारधारा है। हिन्दूमहासभा राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दू राष्ट्रवाद की उसी पुनीत और विज्ञान सम्मत विचारधारा को लेकर कार्य करती आई है। किन्तु उस दिन एक अत्यंन्त ही दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई, जिस दिन हिन्दू राष्ट्र की हित–चिन्ता करने वाले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने हिन्दू राष्ट्रवाद से विमुख होकर राजनीतिक क्षेत्र में अहिन्दू दृष्टिकोण और धर्म निरपेक्षवाद को अपना लिया तथा भारतीय जनसंघ की स्थापना कर दी। उन्होंने यह पथ श्री जवाहरलाल नेहरू के राष्ट्र विरोधी दृष्टिकोण से अपने बचाव के लिए उठाया था। क्योंकि वे हिन्दू दलों को आये दिन साम्प्रदायिक दल कह कर उन पर प्रतिबन्ध लगाकर उनके कार्य करने को असम्भव करने की धमकियाँ देते रहते है। इसका परिणाम यह है कि जहाँ 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' आज भी हिन्दू महासभा के सदृश हिन्दू राष्ट्रवाद की पावन विचारधारा पर अडिग है, वहाँ उसका राजनीतिक शिशु अर्थात भारतीय जनसंघ धर्म निरपेक्षवाद में कांग्रेस को भी मात करने लगा है।

आज भारतीय जनसंघ में कई राज्यों में पुरानी मुस्लिम लीगी भी सम्मिलित हो गए हैं। इतना ही नहीं अपितु उनमें से कई एक को तो महत्वपूर्ण पदों पर भी अधिष्ठित कर दिया गया है। बंगाल में भारतीय जनसंघ की प्रदेश शाखा के उपाध्यक्ष प्रोफेसर अब्दुल हलीम हैं तथा उसके एक भूतपूर्व मंत्री मौलाना आफताबुल इस्लाम रह चुके हैं। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश जनसंघ में भी मौलाना तनवीर साहब को उच्च सथन प्राप्त है। जहाँ कोटा जनसंघ के मंत्री अब्दुल जब्बार साहब हैं, वहाँ आजमगढ़ जिला जन संघ के उपाध्यक्ष भी एक मुस्लिम सज्जन हैं। अब तो भारतीय जनसंघ के वरिष्ठ नेता बड़े गर्व सहित यह घोषणा करने लगे हैं कि भारतीय जनसंघ में भी मुसलमान, ईसाई और पारसी बहुत बड़ी संख्या में सम्मिलित हो रहे हैं। अब आप विचार कीजिये कि भारतीय जनसंघ और इण्डियन नेशनल कांग्रेस में क्या अन्तर है ?

मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि भारतीय जनसंघ अपने आपको एक प्रभावी कांग्रेस–विरोधी दल के रूप में खड़ा करने में पूर्ण रूपेण असफल सिद्ध हुआ है। गत दो महानिर्वाचनों में उसे कठिनाई से तीन प्रतिशत मत ही प्राप्त हो सके हैं। अतः जनसंघ का प्रभाव केवल राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की तरह ही सीमित होकर रह गया है और वे भी उसमें अहिन्दुओं के प्रवेश से क्षुब्ध होने लगे हैं।

स्वतंत्र पार्टी

हाल ही में भारत के राजनीतिक क्षितिज पर 'स्वतंत्र पाटी' के नाम से एक नया दल उदित हुआ है। यद्यपि उसका प्रचार बड़ी टीप–टाप के साथ हो रहा है, किन्तु मेरा विश्वास है कि इस दल का हमारे देश में कोई स्थान नहीं। इस दल के साथ श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, श्री क० मा० मुन्शी, श्री एम० आर० मसानी, श्री एन० जी० रंगा और मोदी तथा अन्य कई आकर्षक नाम ग्रंथित है। ये सब राजनीतिज्ञ अथवा आन्दोलनकर्ता के रूप में असफल सिद्ध हो चुके हैं। इतना ही नहीं देश के समक्ष विद्यमान आर्थिक और राजनीतिक समस्यायों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण उलझा हुआ और प्रतिक्रियावादी है। यह पार्टी अपने आपको अनुदार दल का संज्ञा भी

नहीं दे सकती। क्योंकि इसका देश की प्राचीन संस्कृति और गौरव पर भी कोई विश्वास नहीं। क्या इसने हिन्दू राष्ट्रवाद को अपना आदर्श स्वीकार कर लिया है ? यद्यपि वह अपने आपको एक अनुदार दल कहती है किन्तु वास्तविकता यह है कि स्वतंत्र पार्टी एक पूर्णतः प्रतिक्रियावादी दल है, जो किसी भी प्रकार के प्रभावशाली कार्य और योजना का विरोध करने के लिए आतुर रहती है।

इस दल के साथ केवल मात्र एक अच्छाई है कि इसके संस्थापक श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य बड़े–बड़े शब्दों में तथा रोचक तर्कों के साथ कांग्रेस की असफलताओं और भ्रष्टाचारों की निन्दा करते हैं। क्योंकि उन्हें कांग्रेसजनों के मस्तिष्क और उनकी कार्य–प्रणाली को उनके भीतर रहकर देखने का अवसर मिला है।

बिहार और राजस्थान के कुछ पिछड़े हुए क्षेत्रों में इस दल को महारानी और महाराजाओं के बल पर कुछ स्थान भले ही मिल जायँ, किन्तु एक राजनीतिक दल के रूप में स्वतंत्र पार्टी का कोई भविष्य नहीं।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह तथ्य भली–भाँति स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू महासभा के अतिरिक्त देश में दो ही प्रभावशाली संस्थायें हैं, एक कांग्रेस और दूसरी कम्युनिस्ट पार्टी।

आज कांग्रेस की विचार–धारा का आकर्षण और जादू समाप्त होता जा रहा है। इस प्रकार एक संगठन के रूप में उसका अस्तित्व ही समाप्त होता जा रहा है क्योंकि कांग्रेसियों का उद्देश्य एक मात्र यही रह गया है कि वे येन–केन–प्रकारेण सत्तारूढ़ होकर अधिकाधिक सुख–वैभव प्राप्त करें।

इतने पर भी कांग्रेस आजतक इसलिए बनी हुई है कि वह विभिन्न प्रचार–साधनों द्वारा देश के जन–मानस में यह धारणा गहराई से बैठ चुकी है कि उसीने देश की स्वाधीनता का संग्राम लड़ा है और स्वाधीनता प्राप्त की है। यद्यपि आज देश भर में कांग्रेस के विरूद्ध असंतोष की तीव्र दावाग्नि प्रचण्ड हो उठी है, किन्तु वह अपनी स्टीम रोलर के सदृश संगठन–मशीनरी के बल पर निर्वाचन में सत्तारूढ़ होने में सफल होती आ रही है।

कम्युनिस्ट पार्टी सोवियत रूस से प्रेरणा ग्रहण कर देश में एक हिसात्मक विद्रोह कराना चाहती है। यदि उसकी योजना सफल हो गई तो भारत भी लाल चीन का दूसरा रूप अथवा उससे भी कुछ अधिक निकृष्ट बन जायेगा।

हमें इस तथ्य को नहीं भुलाना चाहिए कि कांग्रेस का लड़खड़ाता हुआ संगठन आज केवल श्री जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व के कारण टिका हुआ है। जब उनका सशक्त हाथ इस पर से हट जायेगा तो कांग्रेस के नष्ट–भ्रष्ट होने में कुछ भी क्षण नहीं लगेंगे।उस समय शताब्दियों से चली आ रही भारत की प्रवाहमान और गतिशील संस्कृति और आध्यात्मिक सभ्यता के आधार पर खड़े होने वाले हिन्दू–समाज और राष्ट्र की हित–चिन्ता में संलग्न हिन्दू महासभा और भौतिकता को ही सर्वस्व मानकर चलने वाले कम्युनिस्ट दल में अन्तिम संघर्ष होगा, जिसकी विचारधारा का आधार पशुवत् पेट भरने की भावना को ही सर्वाधिक महत्व प्रदान करना मात्र है, और जिनकी दृष्टि में धार्मिक और सांस्कृतिक अनुभूतियाँ विष के तुल्य हैं।

एतदर्थ मैं अपने देशवासियों को यह चेतावनी देना अपना कर्तव्य मानता हूँ कि वे समय

रहते हुए चेत जायँ, जागृत हों, खड़े हों, तथा हिन्दू–राष्ट्र की रक्षा हेतु ही नहीं, अपितु अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए भी हिन्दू महासभा को शक्तिशाली बनायें।

हिन्दू महासभा अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहेगी

यह सत्य है कि हिन्दू महासभा को निर्वाचन क्षेत्र में एक महान् शक्ति के रूप में खड़े होने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। फिर भी मेरा विश्वास है कि ज्यों–ज्यों देश की जनता अधिकाधिक प्रबुद्ध एवं जागृत होती जायेगी, इस स्थित में सुधार की मंगलमय बेला निकट आती जायेगी। इसके साथ ही साथ मैं यह बात भी सपष्ट कर देना चाहता हूँ कि हिन्दू महासभा अपने वर्तमान रूप को तिलांजलि नहीं देगी, चाहे हमारे मार्ग में कितने ही विरोध और अवरोध क्यों न खड़े हो जायँ। हम अब पूर्णतः समझ गये हैं कि देश में भारतीय जनसंघ सहित सभी दल ध र्म–निरपेक्षवाद को उद्देश्य बनाकर राष्ट्र–विरोधी स्वरूप ग्रहण कर चुके हैं। इसलिए यह सभी हिन्दू राष्ट्रवाद के लिए हानिकारक हैं। अतः हमारा दृढ़ निश्चय है कि हम संगठन को सशक्त और प्रचंड बनायेंगे, जिससे उपयुक्त समय आने पर सत्तारूढ़ कांग्रेस दल का स्थान ग्रहण कर सके।

जहाँ तक हिन्दू महासभा के गठन का प्रश्न है, मैं इस बात को गर्वपूर्वक स्वीकार करता हूँ कि यह स्पष्ट रूप से हिन्दू राष्ट्रजनों का एक सामुदायिक संगठन है। क्योंकि इसकी सदस्यता हिन्दुओं के लिए खुली है। हमारे संविधान के अनुसार वह प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है, जो भारतवर्ष अथवा हिन्दुस्तान को अपनी मातृभूमि पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता हैं, यदि संकीर्ण दृष्टि से विचार ने वाले लोग हम पर साम्प्रदायिक दल होने का आरोप लगाते हैं तो हम इस आरोप का पूर्ण रूपेण खण्डन करते हैं। हिन्दू उसी प्रकार भारत के राष्ट्रीय हैं और भारत हिन्दू राष्ट्र है, जिस प्रकार ब्रिटेन में ब्रिटिश वहाँ के राष्ट्रजन हैं, फ्रांस फ्रेंच लोगों का राष्ट्र है, अथवा जर्मनी में केवल जर्मन ही वहाँ के राष्ट्रीय स्वीकार किय जाते हैं। इस प्रकार राष्ट्रव्यापी दल होने के कारण यही हिन्दुओं का अपना राष्ट्रीय संगठन है। यह सामप्रदायिक संगठन नहीं। इसलिए हम यह तथ्य स्पष्ट कर देना अपना धर्म मानते हैं कि हिन्दू महासभा किसी स्थिति में भी इस विशुद्ध हिन्दू स्वरूप को तिलांजलि नहीं देगी, फिर चाहे उसके मार्ग में कितने ही विरोध तथा बाधाएँ क्यों न खड़ी कर दी जायँ।

हमें चुनौती स्वीकार है

विगत दिनों से साम्प्रदायिक दलों को चुनावों में भाग लेनें पर प्रतिबंध लगाने की बात बड़े जोर–शोर से चलाई जा रही है। मैं नही जानता कि इस बात के पीछे कोई गम्भीरता भी है। जब–जब कांग्रेस यह अनुभव करती है कि हिन्दू महासभा उसे चुनावों में पराजित कर देगी, तब–तब आज के कांग्रेसी शासक इस प्रकार की बातें करते दिखाई देते हैं। एक प्रकार से यह धमकी मतदाताओं को हिन्दू महासभा का साथ छोड़ देने से रोकने के लिए ही दी जाती है।

इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि हिन्दू महासभा हिन्दुस्तान के हिन्दुओं का एक राष्ट्रीय संगठन है और यह कभी भी साम्प्रदायिक संगठन की क्षेणी में नहीं

आ सकती। क्योंकि इस देशकी जनसंख्या का ९० प्रतिशत भाग हिन्दू ही है। इतना ही नहीं यह सुझाव स्वमेव लोकतंत्र की आधारभूत मान्यताओं के विरूद्ध भी खुला विद्रोह है। लोकतंत्र का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सत्तारूढ़ दल को यह अधिकार प्राप्त नहीं होता है कि वह अन्य राजनीतिक दलों पर इस प्रकार का प्रतिबन्ध लगाये जब तक कि वह शान्तिपूर्ण माँगों द्वारा मतदाताओं को अपनी ओर आकृष्ट कर अपने उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहते हैं। किसी राजनीतिक दल पर प्रतिबन्ध लगाने का एकमात्र अधिकार मतदाताओं को प्राप्त है, किसी सत्तारूढ़ दल को नहीं, फिर चाहे वह कोई भी दल क्यों न हो।

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने जब कांग्रेस द्वारा साम्प्रदायिक दलों पर प्रतिबन्ध लगाने के कांग्रेसी प्रयास की आलोचना की तो उन्होंने एक बहुत चिचित्र और उल्टा तर्क प्रस्तुत किया। उनका कथन है कि अल्पमत के लोगों द्वारा बनाए गए मुस्लिम लीग और रोमन कैथोलिक एसोसियेशन सरीखे साम्प्रदायिक दलों पर प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता। यह वास्तव में एक पूर्णतः गलत स्थिति है जो उन्होंने ग्रहण की है। वस्तुतः ऐसा कोई भी दल जो पाकिस्तान अथवा दूसरे देश से प्रेरणा ग्रहण करता हैं अथवा उसका लगाव देश से बाहर किसी विदेशी राष्ट्र से है, ग्राह्य नहीं है। ऐसे देशद्रोही तत्वों के प्रति सजग होकर उनका कड़ाई के साथ दमन किया ही जाना चाहिए। उनको प्रतिबन्धित कर देना ही एकमात्र लोकतान्त्रिक निदान होगा।

इसके बावजूद मुझे भय है कि साम्प्रदायिक संगठनों का दमन करने के नाम पर देश में हिन्दुओं के एक मात्र राष्ट्रीय संगठन 'हिन्दू महासभा' पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है, क्योकि यही एकमात्र ऐसा दल है जो कांग्रेस को अपनी सुस्पष्ट विचारधारा के आधार पर पदच्युत कर सकता है।

अतएव इन परिस्थितियों में अभी से संगठन का निर्वाचित प्रमुख होने के नाते यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि 'हिन्दू महासभा' कांग्रेस की चुनौती स्वीकार करने के लिए तैयार है। उसकी घोषणा है कि वह प्रतिबन्ध लगाने पर भी हिन्दू–दल के रूप में ही खड़ी रहेगी और हम अन्तिम श्वास तक इस प्रकार के प्रतिबन्ध के विरूद्ध संघर्ष करेंगे। हमारा विश्वास है कि हमारी भावना और विचारचाारा सत्य पर आधारित है। हमें आशा है कि अन्तोगत्वा विजय हमारी ही होगी।

राष्ट्रवादी दलों का संयुक्त मोर्चा

मैं देशवासियों से यह अनुरोध करना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि देश में विभिन्न राष्ट्रवादी शक्तियों का एक संयुक्त मोर्चा गठित किया जाय। कुछ समय के लिए अपने छोटे–मोटे राजनीतिक मतभेदों को तिलांजलि दे दी जाय और कांग्रेस को सत्ता से उखाड़ फेंकने के लिए देश के राष्ट्रवादी दल एक हों तथा संगठित हों, क्योंकि आज कांग्रेस द्वारा देश देश की मौलिक एकता नीलाम पर चढ़ाई जा रही है। उसके द्वारा राष्ट्र की अखण्डता एवं ऐक्य–भावना के मूल रूप पर ही कुठराघात किया जा रहा है। इसलिए कांग्रेस को अपना प्रथम श्रेणी का शत्रु समझकर उसे सत्ता से च्युत कर देना ही युग की मांग है। क्योंकि यदि वह और अधिक दिनों तक सत्तारूढ़ रही तो उससे हमारे देश की एकता और अखंडता समाप्त हो जायेगी और यह पुण्यभूमि हिन्दुस्तान के लिए अत्यन्त दुखदायी बात होगी।

नक्सलवाद, नागालैंड और मीजोरम

लोक सभा के अपने अल्पकालीन जीवन में भी महन्त जी ने अपने ओजस्वी भाषणों और सुलझे हुए विचारों से समस्त प्रबुद्ध सदस्यों को प्रभावित किया। उनके भाषणों में देश की रक्षा और उन्नति के लिए चिन्ता का भाव स्पष्ट लक्षित होता है। नक्सलवाद, मीजोरम, नागालैण्ड आदि की समस्यायें देश के लिए कितनी घातक हैं, इसका आभास उनके भाषणों से होता है। ६ जुलाई सन् १९६७ को लोकसभा में दिए गए अपने भाषण में पूज्य महन्त जी ने इन समस्याओं को उपस्थित करते हुए कहा कि प्रान्तीयता के आधार पर देश का विभाजन ठीक नहीं है। अभी यह कहा गया है कि उत्तर प्रदेश के लोग देश में विभाजन कराना चाहते हैं। मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि प्रान्तीयता की भावना सब प्रान्तों में है, लेकिन केवल उत्तर प्रदेश में नहीं है। उसका कारण यह है कि भगवान राम और कृष्ण यहाँ पैदा हुए थे और राम और कृष्ण सबके भगवान हैं, केवल उत्तर प्रदेश के ही नहीं।

मैं बतला देना चाहता हूँ कि उत्तर प्रदेश के मुसलमानों ने देश के विभाजन की माँग की थी। मैं उस समय प्रान्तीय हिन्दूसभ का अध्यक्ष था और मैंने उस समय इसका विरोध किया था और कहा था कि ये हमारे भाई हैं, देश का विभाजन न किया जाय। आज जो ये समस्यायें देश में उत्पन्न हो रही हैं वे केवल विभाजन को स्वीकार करने की गलती के ही कारण हें। महात्मा गांधी ने कहा था कि मेरे शरीर के टुकड़े भले ही हो जायँ, किन्तु मैं इस देश के टुकड़े नहीं होने दूँगा। लेकिन हमारे नेताओं ने उसपर ध्यान नहीं दिया और इसके फलस्वरूप भारत के टुकड़े हुए और तभी उसे तथाकथित स्वतंत्रा मिली। इसका नतीजा आज नक्सलवाड़ी, वेरूवाड़ी, असम और कश्मीर में भोगना पड़ रहा है।

मैंने यहाँ नक्सलवाड़ी की काफी चर्चा सुनी। नक्सलवाड़ी के बारे में चर्चा करते हुए कामरेड डाँगे ने एक युक्ति दी की भुखमरी की समस्या विषम होने के कारण ही वहाँ पर बगावत हुई है। मैं पूछना चाहता हूँ कि यह बगावत बिहार और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में क्यों नहीं हुई ? वहाँ पर भी तो भूख की समस्या थी ? वहाँ पर भी तो लोग खाने की कमी से तड़प रहे हैं ? वहाँ पर हालत यह है कि जब तक वहाँ के लोग क्रास नहीं पहन लेते तब तक ईसाई पादरियों द्वारा उनको भोजन नहीं दिया जाता। लोगों की भूख और बेकारी का अनुचित लाभ उठाकर उनका धर्म परिवर्तन किया जा रहा है, इसका किसी ने जिक्र तक नहीं किया।

धर्मान्तरण से राष्ट्रान्तरण हो जाता है। इस देश में जिस तरीके से हिन्दुओं का धर्मान्तरण हो रहा है उससे लगता है कि कालान्तर में बहुसंख्यक सम्प्रदाय वाले अल्पसंख्यक हो जावेंगे। इस अवसर पर मैं अपनी सरकार को सावधान करना चाहता हूँ कि वह समय रहते सक्रिय पग उठाये। आप देख रहे हैं कि नागालैण्ड और मीजोरम की समस्या किस तरह से हमारे सामने समाधान के लिए मुँह बाए खड़ी है ? ईसाईयों द्वारा यहाँ पर कितने जोरों से धर्मान्तरण हो रहे हैं। इस पर भी मिस्टर स्काट को बुलाकर आप समझौता करना चाहते हैं। आप ऐसा करके

पादरियों को आपत्तिजनक कार्यवाहियों के लिए और भी बढ़ावा दे रहे हैं। इसे आपको रोकना पड़ेगा।*

सामाजिक विचार

पूज्य महन्त जी को सामाजिक नीतियों के मूल में भी उनकी धर्म–भावना ही सक्रिय दिखाई देती है। वस्तुतः सारे समाज को उन्होंने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों के परिवेश में देखने का प्रयास किया है। अतः उनकी धर्म–नीति और समाज–नीति को अलग–अलग करना कठिन है।

महंत जी ने लोकसभा के अपने अल्पकालीन जीवन में ही समाज–सुधार सम्बन्धी अनेक बातों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कभी 'गाय' की उपयोगिता और गोरक्षा की आवश्यकता पर बल दिया, कभी परिवार नियोजन के सम्भावित दुष्परिणमों पर प्रकाश डाला। रेलवे ऐक्ट पर भाषण देते समय उत्तर प्रदेश के पूर्वी अंचल में रेलवे की अधिकाधिक सुविधाओं की माँग की। लोक सभा के बाहर भी कभी उन्होंने शिक्षा–नीति तथा शिक्षा–पद्धति पर प्रकाश डाला और कभी हिन्दू–विवाह–पद्धति के गुण–दोषों की व्याख्या प्रस्तुत की। पंचवर्षीय योजनाओं की मूलभूत त्रुटियों के कारण उन्हें हार्दिक कष्ट होता था। देश की विपन्नता को देखकर उन्होंने हिन्दू अर्थनीति के सिद्धान्तों को अपनाने के लिए बार–बार आग्रह किया।

सामाजिक विपन्नता

पूज्य महंत जी ने समाज की व्यवस्था का चित्र उपस्थित करते हुए कहा कि "हमारे देशी शासकों ने संयुक्त हिन्दू परिवार प्रणाली को समाप्त करके रख दिया है। किन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता की उस माँग को भी पूर्ण करने में असफल रहे हैं जिसके अन्तर्गत प्रत्येक नर–नारी को कार्य दिया जाता है। आज इन कांग्रेसी शासकों ने हिन्दू नारी से घर की सम्पूर्ण स्वामिनी होने का उसका जन्म–सिद्ध अधिकार छीन लिया है और साथ ही उसे जीविकोपार्जन के लिए कोई मार्ग भी सुझाने में ये शासक पूर्णरूपेण असफल रहे हैं। इस भाँति उन्होंने हमारे परिवारों के सुखद और सहयोगपूर्ण वातावरण का बलिदान चढ़ाकर बेरोजगारों की सेना में और भी बढ़ोत्तरी करने का महान् कार्य सम्पन्न कर दिखाया है। उन्होंने विवाह के पावन बन्धनों को टूक–टूक करने के हेतु हिन्दू कानून में तलाक की विभीषका को प्रविष्ट करा दिया है। समाज पर यह विभीषिका केंवल पाश्चात्य शिक्षा एवं सभ्यता के रंग–ढंग में डूबी हुई कुछ तितलियों की प्रसन्नता हेतु लादी गई है, जो प्रगति की आढ़ में अपने इच्छानुसार दुर्व्यवहार और आचरण करने का प्रमाण पत्र चाहती थी। किन्तु उसका परिणाम यह हो रहा है कि इस नवीन तलाक कानून का अधिक से अधिक पुरुष लाभ उठा रहे हैं और हिन्दु महिलाओं का जीवन नष्ट हो रहा है। आज हिन्दू समाज में पिता की सम्पत्ति में पुत्रियों को भाग देने का कानून बना कर जहाँ उन बड़े पूंजीपतियों की इच्छा की पूर्ति कर दी गई हैं, जिनके यहाँ पुत्र नहीं थे; वहीं भाई और बहिन के

* ६ जुलाई १९६७ को लोकसभा में दिए गए भाषण से उद्धृत।

पावन सम्बन्ध पर कुठाराघात भी कर दिया गया है। इससे हिन्दू महिलाओं को किसी प्रकार का लाभ नहीं मिला। हिन्दू महिलाओं को यदि किसी प्रकार की राहत देनी थी, तो उचित यह था कि हिन्दू विधवा को अपने पति की सम्पत्ति का प्रथम अधिकारी घोषित कर दिया जाता। इसके साथ इन शासकों ने परिवार नियोजन की कृत्रिम प्रणाली को भी समाज पर लादने का कुप्रयास किया है, जिससे राष्ट्रव्यापी स्तर पर अनैतिकता की महामारी द्रुतगति से बढ़ती जा रही है। आज शासकगण हमारे देश पर सहशिक्षा लादने का भी प्रयास कर रहे हैं, प्राचीन शिक्षा प्रणाली जो सिद्धान्तों पर आधारित थी और जिस प्रणाली के समक्ष आज भी समस्त विश्व नतमस्तक होता है उसे तिलाजलि दे दी गई है। यह सब मेकाले की इच्छापूर्ति हेतु हिन्दू–समाज को नष्ट–भ्रष्ट करने के सुनियोजित प्रयास ही चल रहे हैं।

आर्थिक आत्मनिर्भरता

हमारे देश की मौलिक एकता तभी स्थायी रूप ग्रहण कर सकती है जब हमारी अपनी दृढ़ आर्थिक नीति हो, जिसके आधार पर यह देश आत्मनिर्भर हो सके। कांग्रेस द्वारा लगाया गया समाजवादी समाज का नारा भारतीय जनता के साथ किया गया एक भयानक धोखा है। इसका परिणाम केवल मात्र यही हुआ है कि धनी और अधिक धनवान तथा निर्धन और अधिक निर्धन होते जा रहे हैं। इसलिए हमें अपनी अर्थ–नीति का गठन करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमता के अनुसार कार्य लिया जाय और उसे उसकी आवश्यकता के अनुसार प्राप्ति हो। युग–युग से यही हिन्दू अर्थ–नीति का मूल सिद्धान्त रहा है और इसे ही आज समाजवाद का नाम दिया जा रहा है। वास्तव में कम्युनिस्ट जो कुछ प्राप्त करना चाहते हैं वह हमारे प्राचीन आर्थिक सिद्धान्तों की केवल विकृत प्रतिलिपि मात्र ही है। हमने इस सिद्धान्त को केवल पुस्तकों में ही सँजोकर नहीं रखा था, अपितु अपने दैनिक जीवन में भी स्थान दिया था। इसलिए अब हमें हिन्दू समाज के सम्मुख उपस्थित आर्थिक स्थितियों का अध्ययन करना होगा और अपने उपर्युक्त सिद्धान्त को ही आधार बनाकर इन समस्याओं का निदान खोजना होगा।

हिन्दू महासभा नेशनल पैटर्न आफ सोसाइटी में विश्वास करती है, जिसका आधार वर्तमान बदली हुई स्थिति में वर्णाश्रम प्रणाली है। इस प्रकार हम समाजवादियों के समान वर्गविहीन समाज के विश्वासी नहीं और न ही विशेष रूप से किसी अन्य वाद में हमारा विश्वास है; अपितु विभिन्न वर्गों का राष्ट्रीय सामंजस्य ही हमारी अर्थनीति का ध्येय है।

वास्तव में हिन्दू महासभा १६४४ के दिसम्बर मास में विलासपुर में आयोजित अपने अखिल भारतीय अधिवेशन के समय से ही अपना सुनियोजित आर्थिक कार्यक्रम अपनाये हुए है, जिसे हमने १६५२ के सार्वजनिक निर्वाचन के समय अपने चुनाव घोषणा पत्र द्वारा जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया था। हमें यह कहते गर्व का वोध होता है कि हिन्दू महासभा की यह आर्थिक नीति देश के किसी भी राजनीतिक दल से अधिक व्यवहारिक और प्रगतिशील है।" *

* अखिल भारत हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन (१६६१) के अध्यक्षीय भाषण से पृ० ३६–३७

भारतीय योजनाएँ सफल नहीं हो सकी

"हमारे जीवन के पतित होने का ही यह स्वाभाविक परिणाम है कि हमारी योजनाएँ पूर्णतः असफल होकर रह गई। जहाँ हमारे शासक इन योजनाओं द्वारा स्वयं अत्यधिक ऋणी होते जा रहे हैं, वहाँ राष्ट्र का जनसाधारण और भी अधिक निर्धनता का शिकार होता जा रहा है। आज सम्पूर्ण देश ही विदेशों के समक्ष गिरवी–सा रख दिया गया है। फलतः आर्थिक दृष्टि से हम अब भी पश्चिमी देशों के गुलाम हैं।

हिन्दू महासभा यद्यपि राष्ट्र के सुनियोजित विकास–क्रम की विरोधी नहीं हैं किन्तु उसकी मान्यता है जिस प्रकार योजना–आयोग का गठन किया गया है, उससे देश का कोई भला नहीं हो सकता। क्योंकि योजन–आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य या तो मंत्रीगण है अथवा अनभिज्ञ जन और उनके पास आर्थिक नियोजन के प्रश्नों पर विचार करने के लिए समय नहीं है। आज उनको जो कार्य सौंपा गया है, उन्हें उसके सम्बन्ध में कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं है। इसे हम नियोजन का नाम नहीं दे सकते। अन्य सब देशों में जहाँ नियोजन–कार्य चलाया गया है, वहाँ उसका दायित्व विभिन्न विषयों के चुने गए विशेषज्ञों के हाथो में है। इन विशेषज्ञों को ही योजना–आयोग का सदस्य बनाया जाता है और उनके पास अन्य कोई कार्य नहीं रहता, जिससे वे अपना सम्पूर्ण समय इस एक ही कार्य के प्रति लगा सकते हैं। भारत के योजना–आयोग के गठन में इसी मूलभूत दोष के कारण दो पंचवर्षीय योजनाएँ असफल हो चुकी हैं। जहाँ हम विदेशी ऋण के भार से लद गए हैं, वहाँ हमारे राष्ट्रीय स्रोत बुरी तरह से विक्षत तो हुए ही हैं, देश की समस्त जनता को विभिन्न योजनाओं से कोई भी लाभ नहीं हुआ है।

आज करों की बड़ी तीव्रता से वृद्धि हो रही है और इन बढ़े हुए करों के भार ने राष्ट्र के सामान्य जन को कुचल देने का ही निश्चय कर लिया है, ऐसा विदित होता है। ग्रामीण जीवन भी दिन–प्रतिदिन अत्यधिक दूभर होता जा रहा है। निर्धन करदाताओं के कठोर परिश्रम द्वारा अर्जित धन को ऊँचे–ऊँचे भवनों को खड़ा करने पर व्यय किया जा रहा है, जिन पर करोड़ों रूपये लुटाये जा रहे हैं। केन्द्र और राज्यों की राजधानियों को निर्धन कर–दाताओं द्वारा अर्जित धनराशि से इन्द्रपुरियों का रूप दिया जा रहा है। क्या यह कार्य उस समय तक के लिए रोका नहीं जा सकता था जब कि हमारे सुदिन का उदय होता। इन भवनों के निमार्ण सम्बन्धी कार्यो को अभी स्थगित रखा जा सकता था। १९३१ के कराची कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेसी नेताओं ने घोषणा की थी कि स्वाधीन भारत में कांग्रेस मंत्री ५०० रू० से अधिक वेतन नहीं लेंगे। परन्तु आज तो विभिन्न कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के मंत्री, उपमंत्री और संसदीय सचिव, राजाओं और महाराजाओं के तुल्य वैभव का जीवन यापन करते हैं। उनके जीवन में और पुराने शासकों के विलासमय जीवन में किसी प्रकार का कोई भी अन्तर नहीं होता।

ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यधिक बढ़ी हुई दरों पर विदेशों से ऋण लेकर जो योजनाएँ

चलाई जा रही हैं, वे इस देश में एक बार परोक्ष रूप से पुनः विदेशी शक्तियों को लाकर बैठा देने का सुनियोजित जन–विरोधी षड्यन्त्र हैं। यदि हम नियोजन की इस प्रणाली का अध्ययन करें, जो एक जाल सा बन गया प्रतीत होता है तो हमें दिखाई देगा कि सर्वप्रथम सोवियत रूस में आर्थिक नियोजन का कार्य १६२६ में आरम्भ हुआ था। किन्तु रूस ने अपने पहले १२ वर्षों में राज्य को सैनिक दृष्टि से सुदृढ़ किया था, क्योंकि रूस इस तथ्य को भली–भाँति जानते थे कि बिना शक्तिशाली सैन्य संगठन के आज के युग में किसी राष्ट्र का अस्तित्व खतरे से खाली नहीं। आज हम अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के सम्बन्ध में तो रूस का अन्धनुकरण करने के लिए उतावले प्रतीत होते हैं, किन्तु हमने इस तथ्य का विस्मरण कर दिया है कि रूस ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में अपने राष्ट्र के सैनिकीकरण को प्राथमिकता प्रदान की थी।

इसलिय यदि भारत को भी अपने राष्ट्र को सुनियोजित ढंग पर विकसित करना है, तो उसे किसी पर आक्रमण करने के लिए नहीं, अपितु आत्मरक्षार्थ तो अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ करना ही होगा। इस मिथ्या आशा के कल्पना–लोक में विहार करते रहना मूर्खों के स्वर्ग में रहने के तुल्य ही होगा कि भविष्य में कोई युद्ध नहीं होगा तथा कोई भी हम पर आक्रमण कर हमारे कारखानों को नष्ट–भ्रष्ट करने का प्रयास नहीं करेगा।" *

परिवार नियोजन : एक राष्ट्रीय भूल

कोई भी देश जनसंख्या के आधार पर संसार में प्रसिद्धि तथा ख्याति पाता है। संसार में चीन इस समय जनसंख्या के आधार पर सबसे बड़ा और पहला देश माना जाता है और हमारे देश को भी संसार में दूसरा स्थान मिला हुआ है। मैं परिवार नियोजन का विरोध करते हुए बड़ा दुःख प्रकट करता हूँ और इसके विरोध में अपना तर्क आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ कि फैमिली प्लानिंग केवल हिन्दुओं के लिए है, आज हिन्दू दिन प्रतिदिन संख्या में घटता जा रहा है।

आज हमारे सामने ऐसी योजनायें उपस्थित की जा रही हैं, जिनके परिणामस्वरूप संसार में हमारा अस्तित्व ही मिट जायेगा। पश्चिमी देशों की हम नकल कर रहे हैं, लेकिन आज ससार में कहीं भी परिवार नियोजन नहीं हो रहा है, केवल हिन्दुस्तान में ही हो रहा है और कहा यह जाता है कि अन्न की समस्या के कारण ऐसा हो रहा है। मैं इस तर्क से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। अभी हाल में डॉ० कोठारी रूस से वापस आये हैं, और उन्होंने यह बताया है कि जनसंख्या संसार में एक बरदान सिद्ध हुई है और रूस आज अपनी जनसंख्या को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा है तथा चीन भी उसे बढ़ा रहा है। दुनिया भर के सब देश जनसंख्या बढ़ा रहे हैं, किन्तु हमारे यहाँ जनसंख्या घटाने की बात की जा रही है। मैं नहीं समझता यह बात कहाँ तक उचित तथा तर्कपूर्ण है।

संसार में आज जो युद्ध हो रहे हैं, वे केवल शक्ति के आधार पर हो रहे हैं, भूख के आधार पर नहीं। क्योंकि भूख की समस्या उनके सामने नहीं है।

---

* अखिल भारतिय हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन (१६६१) के अध्यक्षीय भाषण से– पृ० ३०–३१

आज हम अपनी भोजन की समस्या को सुंलझा नहीं पा रहे हैं, तो इसका कारण यह है कि जिससे भोजन का उत्पादन होता है, जिससे हम जीवित हैं, उसी गौ तथा गोवंश को हम अधिकाधिक नष्ट करते चले जा रहे हैं। दूसरे देशों से पाउडर मंगाकर हम बच्चों को दूध पिला रहे हैं, किन्तु अपनी गायों को कटा रहे हैं। कृषि के लिए हमारे पारा बैल नहीं हैं, और फिर कहा जाता है कि हमारे यहाँ भूख की समस्या बढ़ती जा रही है। इस पर किसी ने प्रकाश नहीं डाला कि आखिर यह देश कैसे जीवित रहेगा ? ये छोटे–छोटे ट्रैक्टर्स, जिन्हें बनाने की बात आप कर रहे हैं, पता नहीं कितने वर्षों में बन सकेंगे और फिर सन्देह इस बात का है कि आप छोटे छोटे किसानों को इन्हें सस्ती कीमतों पर दे सकेंगें या नहीं ? इस पर आप ने कभी विचार तक नहीं किया। इसलिए मेरा आप से अनुरोध है कि जल्दी करके आप देश को दूसरी ओर न ले जायँ और देश को सबल बनायें। यदि देश शक्तिशाली होगा, तभी हम संसार में जीवित रह सकेंगे, अन्यथा दूसरे लोग हम पर आक्रमण करके हम पर विजय पाकर हमें पुनः दासता की बेड़ियों में जकड़ देंगे।

एक ओर मिशनरी लोग आंकर हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करते चले जा रहे हैं, इस तरह से हमारी जनसंख्या में कमी हो रही है। और दूसरी ओर परिवार नियोजन का प्रयोग करा कर हिन्दुओं की संख्या को कम करते जा रहे हैं। दूसरे वर्ग के लोगों में, अर्थात मुसलमानों तथा इसाइयों में, कोई फैमिली प्लानिंग नहीं हो रही है। यहाँ तक कि धर्म के आधार पर मुसलमान यहाँ चार शादियाँ कर सकता है, और उनसे साल में चार बच्चे पैदा हो सकते हैं, किन्तु हिन्दुओं के लिए एक से अधिक विवाह करना कानूनन् प्रतिबन्ध है, और उस पर परिवार नियोजन पर ज़ोर दिया जा रहा है। इस तरह से तो संसार में हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

पंचवर्शीय योजना में आप ने ६३ करोड़ रूपया फैमिली प्लानिंग के लिए निर्धारित किया है। इस सम्बन्ध में मेरा सुझाव है कि यह ६३ करोड़ रूपया किसानों में अन्न उत्पादन के लिए बाँटा जाय, उनके लिए सिंचाई तथा जुताई के लिए व्यवस्था की जाय। बजाय इसके कि यह रूपया फैमिली प्लानिंग पर व्यय हो, इसको किसानों को दिया जाय, जिससे वे अधिक अनाज पैदा कर सकें।

अब मुझे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ कहना है। आपने स्वास्थ्य के लिए ५३ करोड़ रूपया रखा है, जिसमें से आयुर्वेद तथा यूनानी के लिए केवल ३५ लाख रूपये की व्यवस्था की गई है, शेष सभी धनराशि आपने एलोपैथी के लिए रक्खी है। यह धनराशि बहुत कम है, आयुर्वेद के लिए कहीं अधिक धनराशि रखने की आवश्यकता है।

एक सुझाव मैं यह देना चाहता हूँ कि आयुर्वेद और यूनानी के लिए आपने इन्टीग्रेटेड सिस्टम को स्वीकार किया है, इससे हमारे देश की आयुर्वेद तथा यूनानी पद्धतियों को बहुत हानि पहुँच रही है। आयुर्वेद को ठीक प्रकार से वही पढ़ सकता है, जो संस्कृत जानता है। जो संस्कृत

जानने वाला नहीं है अर्थात जो अंग्रेजी इन्टरमीडिएट पास करने के बाद आयुर्वेद पढ़ना प्रारम्भ कर देता है, वह आयुर्वेद के अध्ययन में उन्नति कैसे कर सकता है, इस पर आपको विचार करना चाहिए। इस पद्धति को समाप्त करना चाहिए, तथा आयुर्वेद के लिए अधिक से अधिक रूपया देना चाहिए।

हिन्दू विवाह पद्धति

वर्तमान युग में प्रचलित हिन्दू विवाह–पद्धति की विभिन्न असंगतियों को देखकर पूज्य महंत जी ने प्राचीन विवाह–पद्धति के सैद्धान्तिक स्वरूप की स्पष्ट और सरल व्याख्या प्रस्तुत की। आध्यात्मिक गरिमा से युक्त हमारी विवाह–पद्धतियों क्रा रूप लोक मंगल का सृजन करता है। उन्होंने कहा –

"हिन्दूजातिमें द्विजातिमें षोडश संस्कारों की परम्परा चिरन्तन काल से चली आ रही है उन संस्कारों में विवाह–संस्कार एक महत्वपूर्ण संस्कार है। पृथ्वी की अन्यान्य जातियों में विवाह केवल इन्द्रियों की तृप्ति एवं भोगका साधन समझा जाता है; किन्तु हिन्दू संस्कृति में विवाह एक मंगलमय धार्मिक संस्कार है। भूमिपर जन्म लेते ही हम ऋषि–ऋण और पितृ–ऋणके बन्धनमें आ जाते हैं। उनसे उद्धार पाने के लिए और गृहस्थ–धर्मकी मर्यादाको सुरक्षित रखने के लिए हिंदू–संस्कृति में विवाह एक महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य माना जाता है। मनुने कहा है–

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निचेश्येत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवामानो व्रजत्यधः।।
अधीत्य विधिवद् वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्।।

(मनु० ६ ।३५ ।३५)

उक्त ऋणत्रय से मुक्त होने के बाद ही गृहस्थ को मोक्ष–मार्ग का आश्रय लेना चाहिए। ऐसा न करने से उसका अधःपात होता है। वेद–वेदांगों के स्वाध्याय से ऋषि–ऋण, यज्ञों के अनुष्ठान से देव–ऋण और धर्मानुकूल पुत्रोत्पादन से पितृ–ऋण से उऋण होने के बाद मोक्ष मार्ग का आश्रय ले।

विवाह–संस्कार के कारण ही गृहस्थाश्रम की शास्त्रों में बड़ी महिमा है। जिस प्रकार नदी–नदादि अपनी सुस्थिरता के लिए समुद्र का आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार अन्य आश्रमी भी अपने भरण–पोषणादि के लिए गृहस्थ का आश्रय लेते हैं। इसलिए गृहस्थ को ज्येष्ठाश्रमी कहा गया हैं; क्योंकि वह अन्य तीनों आश्रमियोंका पोषक है–

यथा नदीनदाः सव समुद्रे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।। (मनु० ६ । ६०)

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।। (मनु० ३ । ७८)

पुरूषजाति का कर्तव्य है कि वह सर्वतोभावेन नारी की रक्षा करे। जिस गृह में, समाज में स्त्रियोंका आदर होता है, वहीं देवों का निवास है। जहाँ उनका अपमान है, वहाँ सभी कार्य निष्फल हैं।

जिस गृह में पति पत्नीसे संतृष्ठ है और पत्नी पति से संतुष्ठ है, निस्संदेह उस कुल में सर्वदा कल्याण की वृद्धि होती है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।
संतुष्टो भार्यया भर्ता भत्रा भर्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।

(मनु० ३ । ५३, ६०)

पति को चाहिए यदि वह अपनी संतान की, अपने चरित्र और कुल की, स्वयं अपनी ओर अपने कर्म की रक्षा चाहता है, तो सर्वदा स्त्री की रक्षा करे। स्त्री के संरक्षण में ही इन सबकी वास्तविक रक्षा होती है–

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति।।

(मनु० ६ । ७)

पत्नी पातिव्रत्य–धर्म के बल पर ही पति को दीर्घायु प्रदान करती हुई एकमात्र पतिकी परिचर्या द्वारा ही पतिमयी बनकर कैवल्यकी अधिकारिणी बनती है।

स्त्रीधारा पुंधारामयी कैवल्याधिकारिणी।

(कर्ममीमांसादर्शन, धर्मपाद, सूत्र ५६)

पति भी एकपत्नीव्रत के पालने से जीवन को नियन्त्रित करता हुआ मर्यादित रखने में समर्थ होता है। पति के लिए उसकी पत्नी धर्ममयी है, वाम्रांगी है, अर्द्धांगिनी है।

स्वेच्छामयः स्वेच्छायं द्विधारूपो बभूव ह।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः।।

पुरूष का कर्तव्य है कि वह स्त्री की अनुमती से धर्मादि कार्योंका अनुष्ठान करे। पत्नी भी पतिकी आज्ञा से ही सत्कार्यों का सेवन करे। इस प्रकार परस्पर एक सूत्र में बँधकर दोनों अपने मन, वाणी और कर्मो द्वारा एकता का अनुभव करते हुए सर्वतोभावेन लौकिक और पारलौकिक सुखका अनुभव कर पुत्र पौत्रादि ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होते हैं। पति–पत्नी के कर्तव्य का यही मंगलमय सारांश है।'' *

---

* 'हिन्दू विवाह का पवित्र स्वरूप तथा महत्व' (गीता प्रेस) से साभार। पृ० ६८ से ७० तक

गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित किया जाय

इतिहास की ज्ञान–राशियाँ जहाँ तक अतीत को प्रकाशित कर सकी हैं, उसके साक्ष्य पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि गाय हमारे राष्ट्रीय चिन्तन का प्रतीक है और हमारी राष्ट्रीय विचारधारा की मूल प्रेरणा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हम क्रमशः धर्म निरपेक्षता की मिथ्या धारणा के नाम पर अपने राष्ट्रीय प्रतीकों को छोड़ते जा रहे हैं। कहना न होगा कि परम्परा और इतिहास की भावना से हीन जन–समुदाय एक प्रकार की नई मानसिक दासता को आमंत्रित करता है।

हमारे धर्म ग्रन्थों में बार बार आर्यावर्त को पुण्यभूमि और कर्मभूमि कहा गया है। धर्म निरपेक्षता के वर्तमान संदर्भ में ये ऐतिहासिक विशेषण उपहासास्पद लगते हैं। धर्म निरपेक्ष होने के पहले भारत आर्यावर्त्त था और धर्म–निरपेक्षता की व्याख्या करने वाले तथाकथित पंडितों के प्रयत्नों के बावजूद जब तक सौर मंडल में एक भी मनुष्य की छाया विद्यमान रहेगी, यह आर्यावर्त ही रहेगा।

आर्य वह है जो आगे देखता है और परम्परागत मूल्यों से समझौता किये बिना परिवर्तन के क्रम को स्वीकार करता है। इसलिए कुछ लोगों का यह कहना कि गोबध विरोधी रूढ़िवादी हैं, तोते के टें टें के समान है, उनकी बात पर ध्यान देना हास्यास्पद और व्यर्थ है। सत्य तो यह है कि जो लोग हमारे राष्ट्रीय पशु गााय के बध का समर्थन करते हैं, वे स्वयं शताब्दियों से चली आ रही हमारी संस्कृति के विरोधी हैं, प्रतिक्रियावादी है।

वर्तमान संदर्भ में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि धर्मनिरपेक्षता क्या है ? धर्म निरपेक्षता का सीधा अर्थ है राष्ट्र की सीमा के भीतर प्रचलित सभी धार्मिक दृष्टिकोणों के प्रति स्वस्थ आदर भाव रखना। धर्मनिरपेक्षता का यह अर्थ नहीं होता कि हम उन तत्वों के सामने निरन्तर झुकते जायँ और उन्हें निरन्तर तुष्ट करने की चेष्टा करें, जो हमारे राष्ट्रीय मूल्यों एवं प्रतीकों के मूल पर ही आघात करने वाले हैं।

जब हम अपने अतीत के इतिहास में झाँक कर देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि हमारे समस्त ऐतिहासिक प्रतीकों में गाय सर्वाधिक श्रद्धास्पद रही है। हमारे देश की संस्कृति एवं ज्ञानधारा में विदेशी तत्व भी घुल मिल गये हैं। जहा–तहाँ उनके बीज भी मिल जाते हैं। यह तर्क दिया जाता है कि वैदिक यज्ञों में गायों की भी बलि दी जाती थी। वैदिक युग में यह पद स्पष्ट प्रयुक्त हुआ है कि 'गोनोहन्तव्य'। अर्थात गायों का बध नहीं होगा। उपर्युक्त पद को उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ से अलग कर के तोड़–मरोड़ कर अर्थ लेना उन्हीं ऐतिहासिक प्रतिक्रियावादियों का कार्य है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गाय हमारे इतिहास की महत्तम विभूति भगवान

श्रीकृष्ण के जीवन का अभिन्न अंग रही है। हमारा सांस्कृतिक इतिहास गाय के चारों ओर केन्द्रित है। राजा जनक की राज–सभा में दार्शनिक वाद–विवाद होते थे। इनमें भाग लेने के लिए समस्त पूर्वी देशों से पंडित लोग आया करते थे। इन दासर्शनिक शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त करने वाले पंडितों को रत्न जड़ित स्वर्णपत्रों से मंडित सींगो वाली गायें उपहार–स्वरूप भेंट की जाती थीं। भगवान के सभी प्रमुख अवतार पृथ्वी, ब्राह्मण और गाय की रक्षा के निमित्त हुए हैं। मध्यकाल में भी गुरू तेग बहादुर ने मुगल अत्याचा।रियों से गायों और ब्राह्मणों की रक्षा के निमित्त घोर युद्ध कर प्राणोत्सर्ग किया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिनके हाथों में शासनसूत्र आया है, वे इतिहास का अनुसंधान करने में विफल हुए हैं। गाय हमारे लिए राष्ट्रीय पशु है। यदि हम अपनी स्वतंत्रता को एक नया आयाम और अपने ऐतिहासिक अस्तित्व को एक नया आधार देना चाहते हैं तो हमें यह घोषित करना होगा कि भारतीय गणतंत्र में गाय राष्ट्रीय पशु है और उसकी हत्या एक जघन्य अपराध हैं। मोर को राष्ट्रीय पक्षी घोषित किया जा चुका है और उसका बध वर्जित है।

नेपाल का संविधान घोषित करता है कि गाय राष्ट्रीय पशु है और गोबध एक गम्भीर अपराध है। अपने इतिहास, संस्कृति, परम्परा तथा भावना के नाम पर मैं अपनी सरकार और अपने देश वासियों से अपील करता हूँ कि वे अथक उत्साह और आन्तरिक भावावेग से प्रेरित हो कर गाय की रक्षा करें। गाय हमारी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है तथा आन्तरिक विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों और बाहरी धमकियों के विरूद्ध अभेद्य कवच है।

गो–रक्षा के बिना खेती पनप नहीं सकती

"खाद्य और कृषि अनुदानों पर विचार करने से पहले हमको यह देखना चाहिए कि समाजवाद का नारा लगाने से हमारा काम चलने वाला नहीं है। हमारे देश में छोटी–छोटी जोत के किसान अधिक हैं। उनके पास इतने साधन नहीं है कि वे खेतों को ठिकाने से जोत सकें। जबसे हमने पश्चिमी देशों की नकल करना सीखा है, तबसे हमारा अन्न का उत्पादन कम होता चला जा रहा है। राष्ट्र की सम्पत्ति, गाय, के सम्बन्ध में हमने कभी विचार ही नहीं किया है। गाय को हम धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से चाहते हैं कि वह नष्ट न की जाय, क्योंकि वह राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति है। इस देश में ४२ करोड़ एकड़ भूमि कृषि योग्य है। प्रति ८ एकड़ भूमि के लिए एक जोड़ा बैल की जरूरत होती है। यदि साढ़े दस करोड़ बैल हमारे पास हों, तब हम पूरी भूमि को जोत सकते हैं, अन्यथा नहीं। ऐसी अवस्था में खाद्यान्नों की समस्या कैसे हल हो सकेगी ? आप चाहे जैसे और जितने ट्रैक्टर ले आवें, किन्तु छोटे–छोटे किसान का काम इनसे चलने वाला नहीं है। जब तक आप उनको सस्ते मूल्यों में बैल नहीं दे सकेंगे, तब तक उनका काम नहीं चल सकता।

आज डालर तथा विदेशी मुद्रा कमाने के लिए गौवों की खाल विदेशों में भेजी जा रही है। गत वर्ष गोरक्षा अभियान चल रहा था, उस समय अमेरिका ने बहुत बड़ा आर्डर चमड़े और जूतों का हमें दिया था। वह इसलिए दिया था कि जिससे गाएँ और अधिक काटी जा सकें। यह इसलिए किया गया था कि देश की और राष्ट्र की जो सम्पत्ति है, उसे नष्ट किया जा सके और देश भीख माँगता फिरता रहे। सत्यता तो यह है कि गाय की जब तक रक्षा नहीं होगी, तब तक बैल नहीं होंगे और जबतक सस्ते बैल किसानों को नहीं दिये जावेंगे, तबतक वे खेत जोत नहीं सकेंगे। ट्रैक्टरों की सहायता से खेती उतनी सफल नही हो सकती। मैं समझता हूँ कि जब तक गौ–हत्या बन्द नहीं होगी तबतक देश का कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए गौ–हत्या पर अविलम्ब पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिए।

आज हमें अच्छे बीजों की आवश्यकता है। जब तक आप कृषकों को अच्छे बीज नहीं देंगे तब तक पैदावार बढ़ नही सकती। आपने हर तहसील में बीज–गोदाम खोल रक्खें हैं। ये बीज–गोदाम बहुत दूर पड़ते हैं। जरूरत इस बात की है कि हर दो तीन मील के फासले पर बीज–गोदाम खोले जायँ, ताकि किसाानों को आसानी से बीज मिल सके। आज–कल होता यह है कि जब बुआई का मौसम निकल जाता है, तब किसानों को बीज मिलता है और वह भी रिश्वत देने पर। समय पर बीज देने की सरकार की ओर से उचित व्यवस्था की जाय। सिंचाई के साधनं भी सरकार को किसानों के लिए शीघ्र उपलब्ध कराने चाहिए। सिंचाई के लिए जो बिजली दी जाती है, वह महँगी दी जाती है। उद्योगपतियों को तो चार–पाँच पैसे यूनिट के हिसाब से बिजली दी जाती है, लेकिन किसानों को बीस पच्चीस पैसे के हिसाब से दी जाती है। क्या यही आपका समाजवाद है ? क्या इस तरह से आप समझते हैं कि उपज बढ़ सकती है ? किसान को तो सस्ती और कम से कम दरों पर बिजली देनी चाहिए।

सरकार किसान से लेवी माँगती है। सरकार अस्सी रूपये से लेकर सौ रूपये क्विन्टल के भाव पर उससे गेहूँ लेवी में ले रही है। किन्तु यदि वह गेहूँ बाजार में बेचता है तो उसको एक सौ पचास और एक सौ साठ रूपयें प्रति क्विन्टल के हिसाब से मिलता है। सरकार उसकी लगान माफ करने के बजाय ठीक पैसे दे, सुविधायें उपलब्ध करे, खाद दे, बिजली सस्ती दे, सिंचाई के लिए समय पर पानी दे, ताकि वह अपनी खेती का उत्पादन बढ़ा सके।'' *

*** १५ जुलई १६६७ को लोकसभा में दिए गए श्री महन्त जी के भाषण से**

गो रक्षकों पर अत्याचार

गोरक्षा आंदोलन में भाग लेने वाले हिन्दू स्वयंसेवकों को तिहाड़ जेल में बन्द किया गया था। वहाँ उनके ऊपर भयंकर अत्याचार किये गये, उन्हें लाठियों से पीटा गया। इस सम्बन्ध में लोकसभा में भाषण देते हुए पूज्य महन्त जी ने पारस्परिक आचार–व्यवहार पर भी पूरा प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि "मैं तिहाड़ जेल में ब्रह्मानन्द जी के साथ गया था, मेरे साथ और भी दो एक व्यक्ति थे। जो मैंने वहाँ देखा वह बड़ा ही हृदय–विदारक है। ऐसे लोगों को पीटा गया है, जिनके दोनों हाथ नहीं हैं। एक व्यक्ति तो ऐसा है जिसके एक हाथ नहीं है और एक पाँव नहीं है। एक व्यक्ति ऐसा है जिसके दोनों हाथ नहीं हैं और कम से कम २० लाठियाँ उसकी पीठ पर पड़ी है। मुझे दुःख इस बात का है कि हम लोग इस विषय को पार्टी लाइन पर सोचते हैं। यहाँ पर जो भाषण हुए, उनमें कुछ मानवता का भी जिक्र हुआ है। हमारे सेठ गोविन्द दास जी ने यहाँ पर मानवता की बात कही है। चाहे वह किसी भी पार्टी के आदमी हैं, लेकिन मनुष्य हैं। घर में कई प्रकार के लोग होते हैं, कोई सनातनी होता है, कोई आर्य समाजी होता है, कोई आस्तिक है, कोई नास्तिक है, लेकिन परिवार एक ही होता है। उसी तरह से हमें इस सदन में भी उसी भाव से देखना चाहिए, यह न देखें कि कौन किस पार्टी का है। मैंने जो प्रवृत्ति यहाँ पर एक दूसरे पर आक्षेप करने की देखी, वह उचित नहीं है। इस सदन में 'काम रोको प्रस्ताव' आने पर पार्टीबाजी की बातें चलती हैं, मान–प्रतिष्ठा की बातें चलती हैं। कांग्रेस के लोग यह समझते हैं कि अब तो हम को इनकी माँग माननी पड़ेगी, ये सब चीजें उस उद्देश्य की पूर्ति में बाधा उपस्थित करती है जिसके लिए हम लोग यहाँ पर इकट्ठे बैठ कर जिक्र कर रहे हैं। मेरे बहुत से कांग्रेसी साथियों ने बीसों वर्ष जेल में बिताये हैं, उसका जिक्र करके अपनी तारीफें की हैं, मैं नहीं चाहता था कि उसका मैं भी जिक्र करूँ कि मैंने भी अपना जीवन काफी समय तक कांग्रेस में बिताया है, लेकिन यहाँ जेल जाने के अनुभव की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर तो यह पूछा जा रहा है कि हमें करना क्या है ? जिस तरह से साधुओं पर यह आक्रमण हुआ, उसमें केवल साधू ही नहीं हैं, गृहस्थ भी हैं, बच्चे भी हैं, स्त्रियाँ भी हैं, आप की मातायें और बहनें भी हैं। साधू निकम्मे हो सकते हैं, कुछ लोग यह कह सकते हैं। लेकिन साधू कहाँ से आते हैं ? आप में ही से तो आते हैं। आप गलत आदमियों को क्यों साधू बनाते हैं ? आप अच्छे आदमियों को साधू बनाइये, जो उपदेश दें। यह चीज हम लोग नहीं सोचते कि हमारा कर्त्तव्य क्या है ? आज हम एक दूसरे पर आक्षेप करते हैं, इसी कारण हमारे समाज का स्तर गिरता जा रहा है।

गृहमन्त्री जी पर यह आक्षेप लगाया गया कि इन्होंने कल बयान क्यों नहीं दिया। कल वे यहाँ पर उपस्थित ही नहीं थे। बयान कहाँ से देते ? आज आये हैं और आज मेरी उन से इस बारे में बातें हुई हैं। वे इतने प्रभावित हैं कि सोच रहे हैं कि वास्तव में इसमें कोई षड्यन्त्र है, जिस की वजह से गवर्नमेंट को दोषी ठहराया गया है। साथ ही साथ मैं उनसे यह भी प्रार्थना करूँगा कि इस मामले पर पार्टी लाइन पर विचार न करके वह ऐसा वक्तव्य दें, जिससे सबको सन्तोष हो और इसकी न्यायिक जाँच करने के बाद उन लोगों को दण्ड दिया जाय, जो इस षड्यन्त्र में रहे हों।

यह मेरी इस सदन से प्रार्थना है और गृहमन्त्री जी से यह कहना है कि इस मामले में वह दूर तक जाँय। हम तो समझते हैं कि आप के पास उन सारी बातों को लाया ही नहीं गया। ७ नवम्बर की घटना पर मैं भी यहाँ था। कैसे वह घटना घटी? पुलिस द्वारा आंदोलन दबाने में आप कामयाब हुए, लेकिन उसके पीछे कौन है? लड़कों के आंदोलन को दबाया जाता है, लेकिन फिर भी उनका मन बढ़ता जाता है। इन सब बातों को देखते हुए आप इन पर गम्भीरता से विचार करें। आज देश में अलग–अलग जगहों पर उपद्रव हो रहे हैं। नक्सलवाड़ी की बातें हो रही हैं। दूसरी तरफ चीन और पाकिस्तान आँखें लगाये देख रहे हैं। इन सब बातों से हमारा देश कमजोर होता चला जा रहा है। इसलिए आज आवश्यकता यह है कि निष्पक्ष भाव से हाईकोर्ट के किसी जज की नियुक्ति की जाय। साथ ही साथ उन अफसरों को तत्काल हटाया जाय, क्योंकि कल जब मैं जेल गया, तो तत्काल मेरे सामने सिफारिश शुरू हो गयी। जो डिप्टी जेलर मेरे साथ थे, उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि महन्त जी, कोई ऐसी बात न कीजियेगा, मेरा तो इसमें कोई दोष नहीं है, बल्कि मैंने तो इन लोगों को बचाने का प्रयत्न किया।

जिस वक्त मैं उन माताओं के पास गया, मैंने वहाँ पर दीवार पर खून के असंख्य छींटे देखे। ये उन आदमियों के खून के छींटे थे जो वहाँ उनको बचा रहे थे, उन माताओं की इज्जत आबरू को बचा रहे थे, जिनको मारा गया था। ऐसी सूरत में आप समझ सकते हैं कि कितना अन्याय हुआ है, आज तक कभी इतना अन्याय देखने में या सुनने में नहीं आया। मैं आशा करता हूँ कि गृह मन्त्री जी अपना वक्तव्य देकर हम सदन के लोगों को सन्तोष देंगे और अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे"*

रेलों में सुधार की आवश्यकता

मुझको रेलवे बजट पर आप से विशेष प्रार्थना करनी है। तीसरे दर्जे के यात्रियों का किराया जो बढ़ाया गया है वह बिल्कुल उचित नहीं है। इसलिए कि रेलों की सबसे ज्यादा आमदनी तीसरे दर्जे के सामान्य यात्रियों से ही होती है। अतः किराया बढ़ाने से उनको ही ज्यादा परेशानी उठानी पड़ेगी। रेलवे की आय में से १०० करोड़ रूपये से अधिक केन्द्रीय वित्तीय विभाग को मिलता है। आप वित्तीय पूर्ति किसी दूसरे तरीके से कर सकते हैं। अभी अभी हम लोगों ने देखा है कि बहुत सी रेलों में सी.टी.सी. सिस्टम प्रारम्भ हो रहा है, जिससे करोड़ों डालर हम अमेरिका भेज रहे हैं। यदि यह तरीका अभी रोक दिया जाय तो रेलवे को जो घाटा हो रहा है, उसकी पूर्ति हो जावेगी।

नये प्रकार के इंजन जो कारखानों से निकला करते हैं, उनकी रक्षा करने में रक्षा पुलिस असावधानी बरतती है। उसमें से ताँबा, पीतल, अथवा दूसरी कीमती चीजें निकाल कर बाजार में बिका करती हैं। उसका पैसा बहुत कम मिलता है, क्योंकि वह वजन के हिसाब से बिकती हैं, जब कि यह पुर्जे बहुत कीमती होते हैं। अतः रेलवे विभाग को इस मामले में सतर्कता बरतनी

* १५ जुलाई १९६७ को लोकसभा में दिए गए श्री महन्त जी के भाषण से।

चाहिए। मैं तो यहाँ तक कहने के लिए तैयार हूँ कि रेल कर्मचारियों की साँठगाँठ से ही यह राष्ट्रीय क्षति हो रही है, क्योंकि रक्षक सही तरीके से अपना फर्ज अदा नहीं करते। जब कम्पनी की रेलों की रक्षा जी.आर.पी. करती थी, उस समय चोरियाँ बहुत कम मात्रा में हुआ करती थी, इसलिए रक्षा के उपायों में परिवर्तन करना पड़ेगा, ताकि हमारे यहाँ चोरियाँ न हो सकें।

श्रमिक वर्ग और यूनियनें

हम यह देख रहे हैं कि हर जगह यूनियनों की वजह से बहुत सी नवीन दिक्कतें पैदा हो रही हैं। मैं यूनियनों के खिलाफ नहीं हूँ, वे जरूर हों, लेकिन यूनियन का जो कर्त्तव्य है, जिससे देश को लाभ पहुँच सकता था, उसकी जगह पर आज हानि हो रही है। जिस समय जिनेवा कान्फ्रेन्स हुई थी, उसमें तमाम देशों की यूनियनों में यह निश्चय किया गया था कि आठ घन्टे से अधिक किसी भी देश के श्रमिकों को काम नहीं करना चाहिए। किन्तु जापान के श्रमिक नेता जब अपने देश में वापस गए और इस निश्चय के बारे में बताया, तब वहाँ के कर्मचारियों ने कहा कि हम लोग अपने देश में दस घण्टें काम करेंगे। यही कारण है कि वहाँ पर उत्पादन बड़े जोर से हो रहा है। पर भारतीय यूनियनें इसके विपरीत दिशा में जा रही हैं। दूसरे देशों में उत्पादन के आधार पर ही ज्यादा या कम पैसा मिला करता है, किन्तु हमारे देश में यूनियनें उल्टे श्रमिकों को कार्य नहीं करने देतीं, बल्कि घेराव करती हैं। जो विशेष रेलें जनरल मैनेजर आदि को लेकर कार्यवश चलती हैं, उनको रोका जाता है कि जब तक हमारी माँगे मान नहीं लोगे, तब तक हम ट्रेन को जाने नहीं देंगे। इस तरह के विरोधों एवं घेरावों से बड़ी गड़बड़ी पैदा हो रही है।

मैं समझता हूँ कि भारतीय श्रमिक विध्वंसात्मक कार्यों की ओर अधिक जा रहे हैं तथा रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इस सम्बन्ध में मेरा सुझाव है कि जैसे क्लास १ और क्लास २ की नौकरियों में हमारे यहाँ तबादले हुआ करते हैं, वैसे ही क्लास ३ और क्लास ४ में भी तबादले होने चाहिएं अगर ऐसा हो जाय तो यूनियनों की तरफ से जो बहुत सी नई–नई समस्याऐं पैदा की जाती हैं, उनको आप सरलता से हल कर लेंगे, क्योंकि जो सुविधायें उनको मिलती हैं, उनका वे अनुचित लाभ उठाती हैं।

श्रमिक नेता राजनीति में भाग लेना अधिक उचित समझते हैं, बनिस्बत अपना कर्त्तव्य पालन करने के। मैं समझता हूँ कि यदि नेता लोग यूनियनों में दखल न दें तो देश का अधिक लाभ हो सकता है। यदि क्लास ३ और ४ के कर्मचारियों का भी तबादला हुआ करे तो यूनियनों में अधिक सुधार हो सकता है।

नैतिक शिक्षा आवश्यक है

आज रेलवे विभाग में नैतिक शिक्षा का अभाव है। यही ज्ञात नहीं कि क्या बुरा है और क्या भला है। अंग्रेजों के समय में कम्पनी की रेलगाड़ियों में पादरी लोग हुआ करते थे। मैं जानता हूँ कि वे कार्यकर्त्ताओं को भले बुरे की पहिचान, चोरी और ईमानदारी के बारे में बताते थे। आज चोरी करना आम तौर पर बुरा या पाप नहीं समझा जाता। इसलिए जब तक देश में नैतिक शिक्षा

और धार्मिक शिक्षा कर्मचारियों को नहीं मिलेगी, तब तक रेलवे विभाग का सिर ऊँचा नहीं हो सकता। मुझे आशा है कि इस धर्मनिरपेक्ष सरकार में, जहाँ धर्म को कोई स्थान नहीं है, राष्ट्र हित में तो ये बातें मान्य हो जावेंगी। दूसरे देशों में यह कहा जाता है कि ''किंग इज़ दि डिफैण्डर आफ दि फेथ,'' अथवा राजा धर्म का रक्षक होता है, लेकिन यहाँ पर कोई 'फेथ' है ही नहीं।

यह सुझाव दिया गया है कि अधिकारीगण एवं संसद सदस्य थर्ड क्लास में चला करें। किन्तु वास्तविकता यह है कि हम ठंडे घरों के बगैर बैठ ही नहीं सकते। अगर थोड़ी देर के लिए इस सदन की मशीन बन्द हो जाय, तो हम सबको बाहर निकलना पड़ता है। यह कोई नहीं सोचता कि जो अफसर २४ घन्टे काम करते हैं, उन्हें भी आवश्यक सुविधाएँ देनी पड़ेंगी।

अधिकारी और श्रमिक

हम देखते हैं कि आज सब जगह भ्रष्टाचार व्याप्त है। अधिकारियों में भी इतना भ्रष्टाचार आ गया है कि अस्थायी श्रमिक रखे जाते हैं और उनको अकारण ही निकाल दिया जाता है। जो लेबर रक्खा जाय, उसके साथ सद्व्यवहार होना चाहिए। पर आज तो महीने दो महीने बाद ही से कैजुअल लेबर को बाहर निकाल दिया जाता है और उनके स्थान पर दूसरे नये लोग रख लिए जाते हैं। यह उचित नहीं है। साथ ही, जो अफसर काम करते हैं, उनकी टाँग हम खींचें और उनके बारे में कहें कि ये तो बिल्कुल निकम्मे हैं, ठीक नहीं है। इस तरह की बात बन्द होनी चाहिए। उनकी जगह पर अगर दूसरे लोग रक्खे जावेंगे, तो वे कहाँ से आवेंगे? अपने ही आदमियों में से तो वे भी आवेंगे। आप के पास कोई थर्मामीटर तो है नहीं कि जिसको लगाकर आप कह सकें कि यह अच्छा है और यह बुरा है। यदि ये काम न करते होते तो आप रेलों पर चलते कैसे? उन पर इतनी बड़ी जिम्मेदारी है कि कभी-कभी उनसे गलती भी हो सकती है। उस गलती का सुधार करना उनका कर्त्तव्य है और उसका ज्ञान उनको कराया जाना चाहिए। केवल आलोचना ही करना और यह कहना कि वे सभी निकम्मे हैं, उचित नहीं है। ऐसा कहने से तो यही अच्छा होगा कि चीन और रूस के लोगों को आप बुलालें और उनसे कहें कि इस देश को वे संभालें, हम लोगों की यहाँ कोई जरूरत नहीं है।

सुधार के सुझाव

रेलों में बहुत भारी भीड़ होती है, तीसरे दर्जे में यात्रियों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसका अनुभव आप और हम उसी वक्त कर सकते हैं, जब उनके साथ सफर करें। मैंनें यहाँ तक देखा है कि लोग रेल की छतों पर चढ़कर सैकड़ों की संख्या में सफर करते हैं, चाहे वह कुम्भ का मेला हो, चाहे कोई और पर्व हो। आपने भी लोगों को छतों पर और पायदानों पर चढ़कर सफर करते हुए देखा होगा। संसार के किसी भी देश में ऐसी दुर्व्यवस्था नहीं होती, जैसी हमारे देश में है। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप सप्लीमेंट्री ट्रेनें चलाएँ। सभी लोग रेलों से सफर करना पसन्द करते हैं, बनिस्बत पैदल जाने के। इसलिए आवश्यक है कि जब बहुत भीड़भाड़ हो, तब आल्टरनेट ट्रेनें चलाई जावें। अगर आपने ऐसा प्रबन्ध किया, तो रेलों

में जो विशेष भीड़ होती है, वह कम हो जावेगी और यात्रियों को बड़ी सुविधा होगी।

अब मैं कुछ सुझाव पूर्वोत्तर रेलवे के सम्बन्ध में देना चाहता हूँ। हमारे यहाँ गोरखपुर में फर्टिलाइजर का कारखाना स्थापित हुआ है। गोरखपुर दिनों दिन तरक्की कर रहा है। मैं सुझाव देना चाहता हूँ कि समस्तीपुर से गोरखपुर तक ब्राड गेज लाइन होनी चाहिये बरौनी से नेपथा गोरखपुर आता है। वह पहले ब्राड गेज मे लादा जाता है। और बाद में मीटर गेज में और इस प्रकार लोडिंग और अनलोडिंग का व्यर्थ खर्चा पड़ता है। अतः यदि समस्तीपुर से गोरखपुर तक ब्राड गेज लाइन कर दी जाय, तो पूर्वी उत्तर प्रदेश की काफी उन्नति हो सकती है।

गोरखपुर में दो तीन और लाइनों की आवश्यकता है, क्योंकि यह बार्डरलैंड का जिला है और बाम्बर स्टेशन भी है। यहाँ पर गरीब तपके के लोग अधिक बसते हैं। साथ ही बाढ़ भी यहाँ हर साल आती है, जिससे यहाँ की बाँसगाँव और महराजगंज तथा अन्य तहसीलें बड़ी पिछड़ी हुई हैं। कोई वहाँ उद्योग भी नहीं है और न कोई रेलवे लाइन ही है। यह क्षेत्र गोरखपुर से कटे रहते हैं। सिर्फ एक सड़क है, जो इनको मिलाती है और उसी पर रोडवेज की सर्विस चलती है। इसके सिवाय वहाँ पर अन्य कोई साधन नहीं हैं। इसलिए यदि दोहरी घाट से सहजनवाँ तक रेलवे लाइन डाल दी जाये, तो लोगों को बड़ी सुविधा हो जाय।

दूसरे, लूप लाइन जो नेपाल बार्डर तक जाती है, वह बड़ी महत्वपूर्ण लाइन है। पीलीभीत से लेकर कटिहार तक तो बार्डर रोड बन रही है, किन्तु महराजगंज जाने के लिए रेलवे लाइन नहीं है। जो लूप लाइन नेपाल की तरफ जाती है और जिसका नाम छितौनी–गोरखपुर है, वहाँ बड़ी गण्डक की बाढ़ के कारण आज से तीस वर्ष पहले एक पुल छितौनी के आगे बह गया था, जिसको आज तक बनाया नहीं गया है। मैं चाहता हूँ कि छितौनी को महराजगंज होते हुए आनन्दनगर जंक्शन से मिला दिया जाय, इससे नौतनवाँ और बलरामपुर की तरफ से सेना को आने जाने में बहुत सुविधा हो जावेगी और सामान्य यातायात भी सुविधाजनक हो जावेगा।

एक स्टेशन तुलसीपुर है। वहाँ पर देवी जी का बहुत बड़ा मेला प्रतिवर्ष चैत्रमास की नवरात्रि में लगता है, जैसे नौचण्डी का मेला मेरठ में लगता है। इसमें लगभग दस लाख लोग भाग लेते हैं। १५ दिनों तक यह मेला चलता है। वहाँ पर केवल एक ही प्लेटफार्म है। कोई ओवरब्रिज नहीं है। मेरा सुझाव है कि वहाँ पर ओवरब्रिज और दो प्लेटफार्म तुरन्त बना दिए जाँय, एक इनकमिंग ट्रेनों के लिए और दूसरा आउटगोइंग ट्रेन के लिए। यदि ऐसा किया गया, तो यात्रियों को बड़ी सुविधा हो सकती है। वहाँ दिल्ली मुरादाबाद तक का माल आता है। साथ ही गायें, घोड़े, बैलों का बहुत बड़ा मेला लगता है, किन्तु स्टेशन पर एक छोटा सा वेटिंग रूम है, जिसका प्रयोग अधिकांशतः रेल कर्मचारी ही करते हैं। मैं सुझाव देना चाहता हूँ कि वहाँ पर एक लेडीज और एक जेन्ट्स वेंटिंगरूम अलग अलग बनाए जायें।

जहाँ पर फर्टिलाइजर प्लांट लगाया गया है, वहाँ मानीराम और पीपीगंज स्टेशनों के बीच में एक नवीन स्टेशन बना दिया जाना चाहिए। वहाँ पर बाढ़ भी बहुत आती है और तब उन क्षेत्रों से लोगों को निकालना कठिन हो जाता है। अगर वहाँ एक स्टेशन बना दिया जावे तो बाढ़ आने

पर क्षेत्रीय लोगों को निकालने में बड़ी सुविधा हो जावेगी।

अस्पृश्यता हिन्दू समाज का अभिशाप

अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों के सम्बन्ध में बहुधा यह भ्रम उत्पन्न कर दिया गया था कि ये हिन्दुओं से अलग हैं। ईसाई मिशनरियों के द्वारा उन्हें ईसाई बनाने का प्रयास किया जा रहा था। हिन्दू महासभा के माध्यम से पूज्य महंत दिग्विजय नाथ जी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि अस्पृश्य जातियों के लोग हिन्दू हैं। लोक सभा के अध्यक्ष के नाम लिखे गये एक पत्र में उन्होंने कहा कि "अस्पृश्यता के सम्बन्ध में मेरे और हिन्दू महासभा के विचार स्पष्ट हैं। इस सम्बन्ध में किसी को भी भ्रम में नहीं रहना चाहिए। हम लोगों ने सदैव इसे सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया है और व्यवहार में तथा कार्य रूप में परिणत करने का प्रयास भी किया है कि हरिजन भी हिन्दू समाज के उसी भाँति अभिन्न अंग हैं जिस प्रकार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, जैन, बौद्ध, सिख, आर्यसमाजी अथवा सनातनी लोग हैं। उनका मूल भारतीय है। उनके प्रति समाज में उत्पन्न भेदभाव की भावना, चाहे वह धार्मिक हो या सामाजिक, राजनीतिक हो अथवा आर्थिक, समाप्त कर दी जानी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति इन विचारों के विपरीत कोई अन्य विचार प्रकट करता है तो वे उसके निजी विचार हो सकते हैं, हिन्दू महासभा के नहीं। हमारा दृढ़ विश्वास हे कि जीवन में मनुष्य का सामाजिक स्तर, उसके जन्म के आधार पर नहीं, अपितु जीवन में उसके द्वारा किये गये कार्यों के द्वारा आँका जाता हैं खेद है कि कुछ समय पूर्व से अस्पृश्यता का यह अभिशाप हमारे समाज में बहुत व्याप्त हो गया है। शास्त्रों में इसके लिए कोई स्थान नहीं है। भूत काल में इस कारण काफी क्षति उठानी पड़ी है। अब हम इसे भविष्य में कदापि चालू रहने की आज्ञा नहीं दे सकते हैं। यह हिन्दू समाज के लिए पूर्ण आत्महत्या सदृश ही है। समाज के इस कृत्रिम विभाजन से हिन्दुओं का वास्तविक जीवन–दर्शन काफी पीछे पड़ गया है।

महामना पं० मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में सन् १६२५ ई० में हरिद्वार में आयोजित हिन्दू महासभा के उद्घाटन सम्मेलन में यह निर्णय किया गया था कि हिन्दू समाज में फूट डालने वाली सभी बाधाओं को रास्ते से तत्काल हटा दिया जाय। उसी समय से हिन्दू महासभा इस ओर पूर्णशक्ति के साथ प्रयत्नशील रही है कि अस्पृश्यता का निवारण किया जाय। उसके पश्चात् हिन्दू महासभा के अन्य प्रमुख नेता श्री लाला लाजपत राय, श्री रामानन्द चटर्जी, स्वामी श्रद्धानन्द और महान् क्रान्तिकारी नेता देवता स्वरूप भाई परमानन्द एवं स्वातंत्र्य वीर सावरकर अस्पृश्यता मिटाने के कार्य को पूर्ण तन्मयता एवं सक्रियता से करते रहे। भाई परमानन्द ने 'जाति–पाँति तोड़क मण्डल' की स्थापना की थी और वीर सावरकर जी ने भारतवर्ष में सर्वप्रथम हरिजनों के लिए मन्दिर के द्वार खोले। अपने नजरबन्दी काल में अण्डमान तथा रत्नागिरि दोनों ही स्थानों पर वे इस हेतु प्रयत्नशील रहे। रत्नागिरि में उन्होंने एक पतित पावन मन्दिर की स्थापना की थी, जिसमें सभी अन्य जातियों के साथ हरिजन भी मन्दिर में जा सकता था। मन्दिर में जाने के पूर्व हर भक्त को एक रजिस्टर में हस्ताक्षर करके प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह अस्पृश्यता और जाति–पाँति को मिटायेगा। इससे युगों पुरानी अस्पृश्यता की परिपाटी का अन्त

हुआ।

गाँधी जी के समाज के सामने आने से वर्षो पूर्व वीर सावरकर जी ने ऐसे बहुत से कार्य किये। बहुत से हरिजन भाई हिन्दू महासभा के सदस्य हैं, बहुत से पदाधिकारी रहे हैं। कई हरिजन प्रत्याशी हिन्दू महासभा के टिकट पर स्थानीय निकायों, विधान सभाओं तथा संसद के निर्वाचनों में खड़े हुए हैं और विजयी भी हुए हैं। १९६७ में आयोजित हिन्दू महासभा सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का पद हरिजन ने सुशोभित किया। कानपुर अधिवेशन में भी स्वागताध्यक्ष का कार्य वही करने जा रहा है।

सदस्यों को यह विदित ही है कि श्री जगजीवन राम, देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी के साथ जो कुछ समय तक हिन्दू महासभा के मंत्री थे, हिन्दू महासभा के सदस्य रह चुके हैं। ये दोनों हिन्दू महासभा की गतिविधियों में बहुत सक्रिय रहे हैं।

अस्पृश्यता निवारण से सम्बन्धित सभी कार्यों का समर्थन करते हुए, सरकार का ध्यान इस ओर अवश्य आकृष्ट करना चाहूँगा कि वह ईसाई मिशनरियों से सावधान अवश्य रहे। हरिजन बन्धुओं को जो हिन्दू समाज के अविच्छिन्न अंग हैं, ईसाई बनाने और स्थिति से अनुचित लाभ उठाने का उन्हें प्रयास न करने दें।卐

संदर्भ सूची

महन्त दिग्विजय नाथ जी महराज द्वारा लिखित पुस्तकें

१. हिन्दू राष्ट्र क्यों ?

२. विश्व शान्ति (सम्वत् २०१०)

३. अखिल भारत हिन्दू युवक सभा का उद्‌घाटन भाषण, कलकत्ता, १९३६ ई०।

४. हिन्दू जाति से १५ प्रश्न, सन् १९४६ ई०।

५. अखिल भारत हिन्दू सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष पद से भाषण ६ अक्टूबर १९६९ ई०

६. अखिल भारत हिन्दू महासभा के ४६वें वार्षिक अधिवेशन में ग्वालियर में अध्यक्ष पद से भाषण, २३ अप्रैल १९६१ ई०।

७. क्या हिन्दुस्तान में हिन्दू होना अपराध है ? राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर असहमति टिप्पणी वर्ष १९६७–६८ ई०)

८. राष्ट्र रक्षा के उपाय (संसद में श्री महराज जी द्वारा दिये गये भाषण) (वर्ष १९६७ से १९६९ तक)

९. गौ और हिन्दू धर्म

१०. हिन्दू समाज में अस्पृश्यता को कोई स्थान नहीं।

卐

पंचम अध्याय

संस्कृति एवं दर्शन

नाथ सिद्धों की परम्परा

पं० परशुराम चतुर्वेदी

नाथ सिद्ध कौन थे?

"नाथ सिद्ध" शब्द "नाथ" एवं "सिद्ध" जैसे दो शब्दों के संयोग से बना है और यह एक विशिष्ट धार्मिक वर्गवाले लोगों के लिये प्रयुक्त है। इसके अंग बन गये उक्त दोनों में प्रथम अर्थात "नाथ" कदाचित् अधिक पुराना कहला सकता है, क्योंकि इसके कुछ प्रयोग वैदिक साहित्य तक में मिलते है। "ऋग्वेद" के एक प्रसिद्ध सूक्त के अंतर्गत यह "समर्थ" वा "सक्षम' के अर्थ में प्रयुक्त जान पड़ता है,[1] परन्तु "अथर्ववेद" के एक स्थल पर इसका प्रयोग वस्तुतः "आश्रय ग्रहण करने योग्य स्थान" के लिए किया गया प्रतीत होता है[2] तथा वहीं अन्यत्र इसे "स्वामी" अथवा "रक्षक" के अर्थ में भी प्रयुक्त समझा जा सकता है[3]। इसी प्रकार, बौद्धों के प्रसिद्धमान्य ग्रन्थ "ब्रम्मपद" के अन्तर्गत भी, हम इसे "स्वामी" अथवा "मालिक" वाले अर्थ में ही व्यवहृत होता देखते हैं[4]। इसके सिवाय, जेन धर्म वाले दिगम्बर संप्रदाय के साहित्य में भगवान महावीर के कुल का नाम तक "नाथवंश" के रूप में दिया गया पाया जाता है[५]। कहा तो यहाँ तक भी गया है कि आर्येतर जातियों की विभिन्न आदिम भाषाओं के अन्तर्गत यह शब्द प्रायः "नत", "नात", "नाट" वा "नाथ" जैसे अनेक रूपों में मिलता है, जिसके आधार पर ऐसा अनुमान कर लेना भी असंगत न होगा कि 'समग्र इन्दोचीन जाति का कोई सुप्राचीन लौकिक देवता भी किसी "नात" जैसे नाम का ही रहा होगा[६]। उधर भाषा–विज्ञान के नियमानुसार "नाथ" शब्द की व्युत्पत्ति, इसके मूल "नाथृ" में "अ" प्रत्यय लगाकर, सिद्ध की जाती है, जिसके प्रसंग में हमें यह भी पता चलता है कि इस 'नाथृ' से ही मिलता जुलता एक अन्य "नाधृ" भी है, तथा लगभग एक ही प्रकार से इन दोनों के आधार पर बने रूपों का व्यवहार याचना, उपताप, ऐश्वर्य एवं आशीर्वाद जैसे चार भिन्न–भिन्न अर्थों में किया जाता है[७]। फिर भी कोशग्रन्थों में "नाथ" का अर्थ साधारणतः प्रभु, अधिपति, भर्त्ता, रक्षक एवं नाथने की रस्सी के रूपों में ही दिया गया मिलता है। इस प्रकार इतना तो स्पष्ट है कि जहाँ तक "नाथ सिद्ध" वाले "नाथ" के लिए कहा जा सकता है, इसका कोई प्रत्यंक्ष सम्बन्ध न तो किसी वंश विशेष के साथ जोड़ा जा सकता है और न इसे उक्त प्रकार से लौकिक देववाची ही कहा जा सकता है, प्रत्युत, अधिक से अधिक इसे हम किसी स्वामित्व जैसे अभिप्राय का सूचक तक ही ठहरा सकते हैं।

इधर बौद्धधर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ "लंकावतार सूत्र" में आये हुए एक वाक्य[८] के आधार पर ऐसा अनुमान किया गया है कि उसके रचनाकाल, अर्थात् सम्भवतः ईवी सन् की दूसरी से लेकर उसकी पाँचवीं शती के भीतर "नाथ" शब्द एक सम्मान्य नाम जैसा व्यवहृत होने लगा था[९]। इस शब्द का "बुद्ध", "शास्ता" अथवा "तथागत" का पर्यायवाची होना भी पालिग्रन्थ "अभिधानप्पदीपिका" से सिद्ध है[१०]। तथा इसका एक प्रयोग, किसी "ज्ञानोपलब्ध भिक्खु" के लिए भी किया गया पाया जा सकता है[११]। वास्तव में जिन "बुद्ध" एवं "नाथ" शब्दों को, उक्त ग्रन्थों के अन्तर्गत समानार्थवाची समझा गया है, उनकी यह एक विशेषता भी जान पड़ती है कि

उनके द्वारा सूचित किये जाने वाले महापुरूष वस्तुतः "स्वानुभूतिवेद्य सत्य" के प्रति आस्था रखने वाले थे तथा उनके लिए किसी "शास्त्रानुमोदित सत्य" का उतना महत्व नहीं था। जैनधर्म के २४ तीर्थकरों में सर्वप्रथम अर्थात् ऋषभदेव को वहाँ "आदिनाथ" कहा जाता है तथा इसी प्रकार उनमें से २२वें और २३वें भी क्रमशः नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ कहे गये हैं, जिसके आधार पर भी ऐसा ही कुछ अनुमान किया जा सकता है। निष्कर्ष यह कि "नाथ" शब्द पहले कभी चाहे अधिकतर "प्रभु" "स्वामी" जैसे कतिपय अर्थों का ही सूचक क्यों न समझा जाता रहा हो, पीछे इसे कुछ विशिष्टता भी मिल गई और यह क्रमशः ऐसे महापुरूषों का भी बोधक बन गया, जिन्हें अतिमानवत्व अथवा देवत्व तक भी प्रदान किया जा सकता था। फलतः सहजयानी बौद्ध सिद्धों के समय तक आकर, इसके प्रयोग दोनों प्रकार से होने लग गये। एक ओर जहाँ "नाथ" (णाह) को काय, वाक् एवं चित्त के प्रभु अथवा बज्रधर (वाजिर) का बोधक समझा जाने लगा[१२]तथा अन्यत्र इसे सद्गुरू का सूचक भी मान लिया गया,[१३] वहाँ दूसरी ओर, इसे सहजतत्व का परिचायक तक भी स्वीकार कर लिया गया,[१४] जिसकी एक परम्परा ही चल पड़ी। इस बात का पता हमें नाथ सिद्धों के एक साम्प्रदायिक संग्रह–ग्रंथ से भी चलता है, जहाँ कहा गया है कि इस मार्ग के मतानुसार "अद्वैतो परिवर्ती" नाथ ही देवता है – निराकार ज्योति का अवलम्बन करके उसका ध्यान किया जाता है तथा वही साकार नाथ यहाँ पर उपास्य भी समझा जाता है – वस्तुतः वही आदि गुरू भी है[१५]। यहाँ पर आगे चलकर संप्रदाय के प्रमुख चार गुरूओं का नाम निर्देश करते हुए यह भी बतला दिया गया है कि ये मत्स्येन्द्र, ईश्वर, (शिव आदि नाथ) चतुरंगी और गोरक्ष हैं[१६]। इसी प्रकार "गोरखवाणी" में भी यह शब्द कहीं गुरू गोरखनाथ का सूचक जान पड़ता है[१७]। तो अन्यत्र यह परमतत्व वा ब्रह्म की ओर भी इंगित करता प्रतीत होता है[१८]।

जहाँ तक उपर्युक्त "नाथ सिद्ध" शब्द वाले द्वितीय अंश अर्थात् "सिद्ध" के लिए कहा जा सकता है, इसका प्रयोग भी बहुत पहले से होता आया है और इसका अर्थ भी सदा एक ही प्रकार से किया गया नहीं दीख पड़ता है। "अमरकोश" के अन्तर्गत इसे किसी ऐसी देवयोनि का वाचक बतलाया गया है, जिसकी गणना यहाँ किन्नर, गंधर्व एवं गुह्यक आदि के साथ की जाती है[१९] और हमें ऐसा लगता है कि किसी ऐसी ही सिद्ध जाति की स्त्रियों की ओर संकेत करते हुए, कवि कालिदास ने उनका वायु वेग से अग्रसर होते मेघ को चकित होकर देखना भी कहा है[२०]। कहते हैं कि ये लोग अमर हुआ करते हैं तथा गंधर्वों एवं किन्नरों की भाँति, हिमालय पर्वत के ऊपर निवास करते हैं[२१]। इसी प्रकार "सिद्ध" शब्द का एक अन्य प्रयोग ऐसे लोगों के लिए भी किया गया मिलता है, जो तप अथवा योगादि के द्वारा सिद्धि प्राप्त करके मुक्त दशा को पहुँच जाते हैं। "श्रीमद्भगवद्गीता" के अन्तर्गत ऐसे ही सिद्धों एवं महर्षियों के समूह का विराट के प्रति स्वस्तिवादन करना और उसके स्तुतिगान में प्रवृत्त होना कहा गया है[२२] तथा अन्यत्र श्रीकृष्ण ने बतलाया है कि विभूतिमान् सिद्धों में मैं कपिलमुनि–स्वरूप हूँ[२३]। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार भी सम्भवतः ये ही वे सिद्ध लोग हैं, जो भवानी एवं शंकर जैसे क्रमशः श्रद्धा एवं विश्वास की सहायता द्वारा अपने भीतर ब्रह्म का साक्षात् कर लेते हैं[२४]। वे इनकी गणना उन विरक्तों, महामुनियों एवं जोगियों के साथ भी करते हैं जिनका "कामवश" हो जाना प्रायः असंभव कहा

जा सकता है[२६]। ऐसे लोगों के लिए समझा जाता है कि इन्हें अपने अलौकिक साधनों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ उपलब्ध रहा करती थीं तथा उनके बल पर ये अनेक अतिमानवीय कार्य तक कर डालने में समर्थ बन जाते थे। ये अन्य बातों के अतिरिक्त, भविष्यवाणी भी कर दिया करते थे, जिसमें विश्वास कर लेना स्वाभाविक था और कदाचित् किसी ऐसे ही प्रसंग में, संभवतः ईसवी सन् की पांचवी शती में निर्मित किये गये "मृच्छकटिक" के अन्तर्गत भी "सिद्धादेश" की चर्चा की गई पायी जाती है[२६]। पातंजल योगदर्शन में ऐसे सिद्धों द्वारा प्राप्त कर ली गई शक्ति (सिद्धि) का जन्मौषधि, मंत्र, तप, समाधि आदि से उत्पन्न होना बतलाया गया है[२७]। तथा भारतेन्दू हरिश्चन्द्र ने अपने एक पात्र के मुख से इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य ऐसे साधनों की भी चर्चा कराई है[२८] जिनसे प्रायः तांत्रिक लोग काम लिया करते थे।

सिद्धि प्राप्त् करने के उद्देश्य से किये जाने वाले उपर्युक्त दोनों प्रकार के प्रयोगों को गोपनीय अथवा "परमगोप्य" तक समझा जाता था और इनके लिए, किन्हीं अनुभवी सिद्ध पुरूषों के यहाँ प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना भी आवश्यक माना जाता था। परन्तु योग–साधना से सम्बन्धित प्रक्रियाओं का परिणाम जहाँ "अष्टैश्वर्य" अथवा "अणिमादिक" अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति के रूप में देखा जा सकता था, वहाँ उक्त द्वितीय प्रकार के साधनों में से कुछ के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति तक की भी आशा की जा सकती थी। योग–साधना सम्बन्धी प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक दुष्कर थे, जहाँ तांत्रिक साधनों के लिए कहा जा सकता था कि ये केवल अपनी उपभोग्य वस्तुओं पर ही आधारित एवं सुकर हैं[२६]। तदनुसार कोई योगी साधक जहाँ अपनी विविध मुद्राओं, बन्धों, आदि पर आश्रित रहना अपना कर्त्तव्य समझा करता था, वहाँ तांत्रिक साधकों का विश्वास था कि यदि "प्रज्ञापारमिता" को "ललना रूप" देकर उसका सेवन, जोगिनी महामुद्रा की भाँति किया जाय तथा इसके लिए डोम वा चाण्डाल जैसे जुगुप्सित कुल की कन्या के साथ रमा जाय तो सिद्धि और भी शीघ्र मिल सकती है[३०]। बौद्ध धर्म के अनुयायी बज्रयानी तथा सहजयानी सिद्धों में इस प्रकार की बातों का विशेष प्रचार था और उनमें से कई का तो यह स्पष्ट शब्दों में कहना था कि जो ऐसे "उजूवाट" वा सीधे मार्ग के पथिक हैं, उन्हें अष्टसिद्धियाँ आपसे आप प्राप्त हो जाया करती हैं[३१] अथवा जिस किसी ने अपने चित को निज गृहिणी के साथ रह कर निश्चल बना लिया, वस्तुतः वही "नाथ" वा "वज्रधर" कहलाने योग्य है[३२]। ऐसे "उजूवाट्" अर्थात ऋजु वा सरल मार्ग के ही कारण इन लोगों को "सहजयानी" कहने की भी प्रवृत्ति पायी जाती थी। इसी प्रकार तांत्रिको में से ही कुछ ऐसे साधक भी थे, जो अपनी साधना, श्मशान जैसे साधारणतः भयोत्पादक स्थानों में रहकर तथा घृणित पदार्थों को अपनाते हुए भी किया करते थे और कोई अपना निराला वेश भी बना लिया करते थे तथा ये "कपाली सिद्ध" कहला कर प्रसिद्ध थे। इसके सिवाय बहुत से ऐसे लोग भी थे, जिन्हें रसों की सिद्धि में पूर्ण आस्था रहा करती थी और वे तदनुसार अपनी "रसायन–क्रिया" के द्वारा पूर्ण अमरत्व का लाभ कर पाना तक भी संभव मान लेते थे तथा इसमें सफलता पा चुकने वाले तांत्रिकों को रसेश्वर सिद्ध" कहने की परिपाटी चल पड़ी थी। जैन मुनि रामसिंह का तो यहाँ तक भी कहना था कि जिन लोगों में वेद पुराणादि के कारण उत्पन्न भ्रान्ति न रह जाय और जो आनन्द में मग्न रहें, वे ही बड़े सिद्ध[३३] हैं।

इस प्रकार के सिद्धों को हिन्दू तंत्रों के अंतर्गत प्राय "दिव्यौघ" 'मानवौघ' एवं "सिद्धौघ" नामक तीन वर्गों में विभाजित किया गया भी मिलता है[३४] तथा "ताराराहस्य", "कौलावली तंत्र" एवं "श्यामारहस्य" जैसे ग्रन्थों में इसमें से कुछ के नाम भी दिये गए पाये जाते हैं[३५]। इसी प्रकार कुछ लोगों का अनुमान है कि इन सिद्धों की नव पृथक्–पृथक् परम्पराएँ रहीं और उनमें "नवकोटि सिद्धों" का पाया जाना तक भी स्वीकार किया जाता है। परन्तु इसके साथ कभी–कभी यह भी कहा जाता है कि ऐसे "नवकोटि सिद्ध" वस्तुतः उस प्रसिद्ध ताओ–धर्मों भोग द्वारा प्रभावित रहे, जो यहाँ ईसा के पूर्व वाली किसी शती में यात्री बन कर आया था तथा जिसने दक्षिण भारत वाले शैवागम तथा शाक्तागम के अनुयायियों को "शुद्ध मार्ग" की शिक्षा दी थी, जिसका अनुसरण करने वालों में पीछे प्रसिद्ध तमिल शैव भक्त मणिवाचक, ज्ञान सम्बन्ध–बागीश सुन्दर आदि हुए। इस प्रकार के सिद्धों को 'ज्ञान सिद्ध' वा 'माहेश्वर सिद्ध" जैसा नाम दिया जाता है और इनके अनुसार पूर्ण सिद्ध वही कहला सकता है, जो अपने शरीर को काया–साधना द्वारा पूर्णतः वश में किये रहता है तथा जो इस प्रकार अदृश्य रूप में सदा अमर भी बना रहा करता है[३६]। सिद्धों की प्रायः कोई न कोई सूची दी गई भी मिलती है और उनमें सम्मिलित किए गए नामों की संख्या अधिकतर ८४ तक पहुँचाई जाती भी दीख पड़ती है। परन्तु ये नाम सर्वत्र ठीक एक ही रूप में नहीं मिलते और यदि उनकी छानबीन सम्यक् प्रकार से की जा सके, तो उनमें उपर्युक्त भिन्न–भिन्न प्रकार के सिद्धों में से कई के नाम एक साथ ला दिये गए भी जान पड़ते हैं, जिसके आधार पर ऐसा अनुमान कर लेना भी स्वाभाविक है कि उनका संग्रह मूलतः केवल किसी एक ही साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के अनुसार नहीं किया गया होगा। फिर भी कभी–कभी, ऐसी उपलब्ध सूचियों की सहायता से इन सिद्धों की कोई न कोई "वंशावली" या "गुरू–परम्परा" तक भी निर्मित की जाने लगती है, जिससे भ्रम को प्रश्रय मिलता है और हम यहाँ तक भी बताने लग जाते हैं कि ऐसा अमुक सिद्ध अमुक वर्गविशेष अथवा अमुक समय तक का रहा होगा[३७]। वास्तव में "सिद्ध" कहलाने योग्य वे ही महापुरूष होते आये थे, जिन्होंने अपनी साधना में प्राप्त सफलता के फलस्वरूप, पूर्णतः किसी स्थिति विशेष तक का अनुभंव पा लिया था तथा जिन्हें आजकल प्रयुक्त हिन्दी मुहावरे के अनुसार "पहुँचा हुआ"– भी कह सकते है। गुरू गोरखनाथ ने भी, संभवतः इसीलिए सिद्धों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि 'ऐसे लोगों ने गगन मण्डल तक पहुँच कर अपनी अनूभूति उपलब्ध की थी' जिसे विभिन्न ग्रन्थों ने निहित किया गया तथा जिससे इसी कारण पंडित वर्ग केवल बाह्यरूप में ही परिचित हो सका। उसके सारतत्व को तो केवल उक्त अनुभवी सिद्धों ने ही ग्रहण किया था[३८]।

अतएव, यदि "नाथ" एवं "सिद्ध" इन दोनों शब्दों के विषय में किये गए उपर्युक्त विवेचन की ओर ध्यान देते हुए, "नाथ सिद्ध" शब्द पर कुछ विचार किया जाय तो यह स्वभावतः अनुमान किया जा सकता है कि यह किसी ऐसे व्यक्ति का ही वाचक होगा, जिसमें उन दोनों द्वारा सूचित किए गए विशिष्ट गुणों का समावेश किया जा सकता है तथा जो इस प्रकार किसी न किसी रूप में, दूसरों से कुछ भिन्न भी मान लिया जा सकता हो। तदनुसार हम कह सकते हैं कि "नाथ सिद्ध" शब्द उन लोगों का बोध कराता है, जिन्होंने न केवल परमात्मतत्व का अपनी साधना द्वारा

प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया हो, प्रत्युत जो इस प्रकार पूर्ण सफल बन कर उसके तद्रूप तक भी हो चुके हों और जो दूसरों के लिए आदर्श कहे जा सकते हों। इसके सिवाय, "नाथ सिद्ध" कहलाते हुए ये लोग उन अन्य प्रकार के सिद्ध पुरूषों से किंचित् भिन्न भी ठहराये जा सकते हैं जिन्हें उपर्युक्त ढंग से, बज्रयानी सिद्ध, सहजयानी सिद्ध, रमेश्वर सिद्ध, कापाली सिद्ध आदि जैसे विभिन्न नामों द्वारा अभिहित किया जा चुका है। यह वास्तव में, एक विशिष्ट प्रकार की साधना द्वारा पूर्ण सिद्धि–लाभ करने वाले तथा एक विशिष्ट स्थिति में आ जाने वाले व्यक्तियों के वर्ग की ही ओर संकेत करता है। यदि इसके साथ बहुत मिलते–जुलते तथा लगभग इसी प्रकार के किसी अन्य सिद्ध–वर्ग की चर्चा की जाय, तो वह "ज्ञान सिद्ध" अथवा "माहेश्वर सिद्ध" कहे जाने वाले लोगों का हो सकता है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है तथा जिसके साथ संभवतः इसका कोई पूर्व संबंध भी हो सकता है। "नाथ सिद्ध" शब्द का एक पर्यायवाची शब्द "नाथ योगी" भी है, जिसमें जुड़े हुए "योगी" को भी तत्वतः "सिद्ध" से अधिक भिन्न नहीं कहा जा सकता। इन दोनों में से किसका प्रयोग, सर्वप्रथम किया गया होगा तथा ये कब से प्रयुक्त होते आये हैं, इस बात का निर्णय करने के लिए यथेष्ट साधन उपलब्ध नहीं है। इस सम्बन्ध में, अभी तक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ये कदाचित् बहुत पुराने नहीं ठहराये जा सकते। हो सकता है "नाथ सिद्ध" शब्द का प्रयोग पहले पहल बौद्ध धर्मावलम्बी सहजयानी या वज्रयानी सिद्धों से भिन्नता दिखलानें के ही लिए किया गया हो तथा नाथपंथियों के मूलतः योगी भी होने के कारण, अधिकतर "नाथ योगी" शब्द का ही व्यवहार स्वभावतः होता आ रहा हो। इसमें संदेह नहीं कि "नाथ सिद्ध" के स्थान पर केवल "नाथ" शब्द का प्रयोग कहीं अधिक प्रचलित रहता आया है और तदनुसार ही, नाथों के मत को "नाथमत" और उसके अनुयायियों को "नाथपंथी" कहने की परम्परा है, तथा इसी कारण उनका साहित्य तक भी "नाथ साहित्य" ही कहा जाता है। परन्तु साम्प्रदायिक दृष्टि के अनुसार लिखे गये ग्रन्थों में, किसी "नाथ" को "सिद्ध" अथवा "अवधूत"[३९] कहने, तथा इसी प्रकार "नाथमत" को भी "सिद्धमत" अथवा "अवधूतमत"[४०] कह देने और मत्स्येन्द्रनाथ के लिए "सिद्धनाथ" शब्द तक का प्रयोग करने के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं[४१]। इसके सिवाय "नाथ सिद्ध" अथवा "नाथ" आदि के स्थान पर सिद्ध योगी, अवधूत योगी या केवल योगी या जोगी शब्द का व्यवहार भी कोई आश्चर्य की बात नहीं[४२]।

नाथ सिद्धों की परम्परा का उद्‌भव और विकास

नाथ सिद्धों की परम्परा के लिए नाथ–योगी–संप्रदाय, नाथ–संप्रदाय, नाथ–पंथ अथवा अन्य अनेक ऐसे शब्दों का भी प्रयोग होता आया है, किन्तु उसके उदयकाल की ओर संकेत करने वाले किन्हीं ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों का ठीक पता नहीं चलता। इस सम्बन्ध में विचार करते समय हमारा ध्यान स्वभावतः इसकी उन अनेक शाखाओं–प्रशाखाओं की ओर भी चला जाता है जो भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक भाग में बिखरी पड़ी है, किन्तु उनमें से भी किसी के इतिहास द्वारा इस विषय में कोई प्रत्यक्ष सहायता नहीं मिल पाती। कहते हैं कि उनका प्रारम्भिक संघटन, सर्वप्रथम १२ पृथक–पृथक संस्थाओं के रूप में हुआ था, किन्तु ऐसा कब और किन परिस्थितियों में तथा किस रूप में हुआ था इसका कोई सर्व स्वीकृत विवरण उपलब्ध नहीं हो

पाता, प्रत्युत, इनं "द्वादश–पंथों" का परिचय कराने वाली लगभग २० प्राप्त सूचियों के कारण, हमारी कठिनाई और बढ़ जाती है और हम यह निश्चय नहीं कर पाते कि इनमें से किस एक को प्राचीनतम अथवा पूर्णतः विश्वसनीय ठहराया जाय। इसके सिवाय हमें इस बात का भी कोई स्पष्ट समाधान मिलता नहीं दीखता कि ऐसे पंथों की स्थापना सर्वप्रथम १२ विभिन्न रूपों में क्यों की गई होगी। प्रो० ब्रिग्स का यह कथन कि, "गोरखटिल्ला" वाली परम्परा के अनुसार गुरू गोरखनाथ ने अपने समय में प्रचलित १८ शैव संप्रदायों में से ६ को तथा स्वयं प्रवर्तित १२ योगी–संप्रदायों में से भी उसी प्रकार ६ को चुनकर, इन १२ की स्थापना की थी,[४३] हमें संतोषप्रद नहीं जान पड़ता इसके द्वारा तो एक और भी जिज्ञासा को प्रश्रय मिलने लगता है कि फिर उक्त ३० विभिन्न संप्रदाय कौन–कौन से रहे होंगे तथा स्वयं उनकी ही स्थापना कब की गई रही होगी। यदि उक्त १२ पंथों का, किन्हीं गोरख–शिष्यों द्वारा प्रवर्तित किया जाना अनुमान किया जाय, उस दशा में भी हमारे लिए यह निश्चित कर पाना सरल नहीं दीखता कि फिर ऐसे लोग ही कौन–कौन रहे होंगे तथा कब कब अथवा किस क्रमानुसार, उन्होंने ऐसा संघटन किया होगा। अतएव, केवल उपर्युक्त "द्वादशपंथ" विषयक अनुसंधान मात्र के द्वारा हमारी समस्या का कोई हल निकलता सम्भव नहीं जान पड़ता। इसके आधार पर हमें अपने इस अनुमान को अवश्य बल मिलता है कि ऐसे १२ पन्थों की स्थापना का कार्य, सम्भवतः नाथसिद्धों की परम्परा का प्रवर्त्तन हो जाने के कुछ काल पीछे ही किया गया होगा तथा यह विभिन्न पिछले व्यक्तियों के ही द्वारा सम्पन्न भी हुआ होगा। फिर भी हम देखते हैं कि इस प्रकार की धारणा, नाथ–पन्थियों के भीतर बहुत दिनों से बद्धमूल बनी रहती आई है और प्रायः प्रत्येक वर्तमान शाखा या प्रशाखा ने अपने को किसी न किसी द्वादश पन्थी संस्था के साथ सम्बन्धित बतलाने की चेष्टा की है, जिस कारण इसका महत्त्व कम नहीं है और इसका प्रश्न, हमारा ध्यान उपर्युक्त उदयकाल का निर्णय करते समय उसे अधिक से अधिकपहले ले जाने की ओर ही आकृष्ट करता है।

नाथसिद्धों की परम्परा के उद्भव एवं विकास पर विचार करते समय हमें स्वभावतः नव नाथो से सम्बद्ध उस कल्पना का भी स्मरण हो आता है जिसका परिचय प्रायः उनके नामों की विभिन्न तालिकाओं के द्वारा किया गया मिलता है। ऐसी सूचियों की भी संख्या कदाचित् ३० से अधिक होगी और उनमें या तो किन्हीं विशिष्ट नवनाथों का नाम निर्देश कर दिया गया मिलेगा, अथवा उनके अन्नर्गत इन्हें विभिन्न रूपों में प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई पायी जायगी, जिसके आधार पर हमें बोध हो सके कि वे प्रमुख प्रवर्त्तक रह चुके होंगे। इसलिए, यदि उनके द्वारा हमें ऐसे नवनाथों के विषय में कुछ ठीक–ठीक पता चल सके, तो हमारे लिए उनका महत्व भी कुछ कम नहीं हो सकता। परन्तु यदि हम ऐसी समस्त उपलब्ध सूचियों पर भी विचार करते हैं तो हमें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ जाता है। सर्वप्रथम हमें ऐसा लगता है कि उक्त सूचियों में से कुछ तो साम्प्रदायिक मानी जा सकती हैं, कुछ अन्य संप्रदायों द्वारा प्रभावित हो सकती हैं तथा शेष इस प्रकार की हैं, जो अधिकतर विभिन्न तंत्र–ग्रंथों में पायी जाती है तथा जिनमें नव नाथों का कोई स्पष्टीकरण तक नहीं मिलता। इसके सिवाय जिन सारे स्रोतों के अनुसार ऐसी सूचियाँ दी गई दीख पड़ती हैं, उन सभी के स्वयं अपने निर्माण–काल का ही

कुछ पता नही है इनमे से "कदली मञ्जुनाथ माहात्म्य" नामक एक ग्रन्थ का लेखन काल १६५२ कलि संवत्सर दिया गया दीख पड़ता है[४४]। जिसके आधार पर गणना करके वह समय सन् ई० पू० १४४८–४६ ठहरता है, जो इतने प्राचीन काल की ओर इंगित करता है जिसके अनुसार हमें उसमें आये हुए नामों में से कम से कम गोरखनाथ, भीमनाथ, कथड़िनाथ, चौरंगीनाथ एवं जालंधरनाथ को प्रायः प्रागैतिहासिक पुरूष जैसे मान लेने की प्रवृत्ति होने लगती है, जो ठेठ ऐतिहासिक दृष्टि के अनुसार कभी तर्क–संगत नहीं हो सकती। शेष में से कोई भी ग्रन्थ १६वीं ईस्वी शती के उधर का नहीं है। ऐसी दशा में, यदि हम कम से कम "नवनाथ" विषयक धारणा का भी सही काल–निर्णय नहीं कर पाते, तो उनके द्वारा सूचित किये गये नवनाथों का समुचित परिचय किस प्रकार दे सकते हैं। पता चलता है कि महानुभाव कवि दामोदर (सन् १२७२ ई०) ने "नव नाथ कहे सो नाथ पन्थी" जैसा कथन किया था[४५] तथा गोरखबानी में संगृहीत रचनाओं में से भी एक में 'नौ नाथ चौरासी सिद्ध' जैसा कोई वाक्यांश मिलता है[४६] जिनसे इस विषय पर कुछ प्रकाश पड़ता है। किन्तु केवल इतना ही यथेष्ट नहीं कहला सकता। सारांश यह कि नव नाथों की कल्पना भी, पहले पहल सम्भवतः चौरासी सिद्धों की जैसी ही की गई जान पड़ती है। हो सकता है कि इस प्रकार की धारणा सर्वप्रथम तांत्रिक ग्रन्थों के अन्तर्गत विभिन्न शक्तियों अथवा भौतिक पदार्थों के रूप में बना ली गई हो और फिर उनसे प्रेरणा ग्रहण कर इन्हें नवनाथों में परिणत करना तथा इस प्रकार समय–समय पर ऐसे नामों में परिवर्तन का होता जाना भी आरम्भ हो गया हो। हमारे लिये ऐसी सूचियाँ भी सहायक नहीं सिद्ध होतीं।

इस सम्बन्ध में यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि नाथसिद्धों में से गुरू गोरखनाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ के नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं तथा इनमें से प्रथम को द्वितीय के शिष्य रूप में, एक निर्विवाद तथ्य की भाँति, स्वीकार कर लिया जाता है। इस कारण, यदि इनमें से किसी भी एक का समय निर्धारित किया जा सके, तो हमें अपने उक्त प्रकार के निर्णय पर पहुँचने में बहुत सहायता मिलने की आशा की जा सकती है। तदनुसार हम इन दोनों नाथसिद्धों के आविर्भाव काल पर भी संक्षेप में विचार कर सकते हैं। जहाँ तक मत्स्येन्द्रनाथ के उत्पन्न होने की बात है उनका, विभिन्न पुराणों में दी गई कथाओं के आधार पर, "पद्मकल्प" के समय अस्तित्व में आना अनुमान किया गया है[४७] जो प्रत्यक्षतः प्रागैतिहासिक तथ्य–स लगता है, तथा इसी प्रकार, गुरू गोरखनाथ का जो जन्म–काल कार्तिक शुक्ला १३ के रूप में और बिना किसी संवत् विशेष की ओर लक्ष्य करते हुए दिया गया मिलता है,[४८] वह अधूरा सा भी लगता है। "योगिसम्प्रदाय विष्कृति" में आया हुआ यह प्रसंग भी कि मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शिष्य गोरखनाथ को युधिष्ठिर सं० १६३६ (अर्थात् लगभग ११६२ ई० पू०) में अपना कार्यभार सौंपा था और वे तत्पश्चात् गिरनार पर्वत जाकर समाधिलीन हो गए थे,[४९] किन्हीं अन्य प्रमाणों के अभाव में उतना महत्व नहीं रखता। इसके विपरीत जहाँ तक साहित्यिक प्रसंगों तथा ऐतिहासिक उल्लेखों और संकेतों के आधार पर कहा जा सकता है, उनमें केवल इतना ही परिणाम निकल पाता है कि, ऐसे समय तक ये लोग अवश्य रह चुके होंगे अर्थात् इनका "आविर्भाव काल" १०वीं अथवा ६वीं शती तक ही जा सकता है और अन्त में केवल ऐसी सामग्रियाँ ही शेष रह जाती हैं जो अधिकतर जनश्रुतियों, दन्तकथाओं

या लोक गाथाओं पर अवलम्बित हैं तथा इनके आधार पर उनका ८वीं अथवा ७वीं से लेकर ५वीं शती तक के भीतर कभी वर्तमान रहना कहला सकता है। परन्तु ऐसी दशा में यह भी स्मरण रखने योग्य है कि ५वीं से लेकर ८वीं के भीतर गुरू गोरखनाथ को लाने पर अनेक पूर्व प्रचलित मान्यताओं के प्रति हमें न्यूनाधिक अनास्था भी प्रकट करनी पड़ सकती है। उदाहरण के लिए इनकी जिन संस्कृत रचनाओं के ऊपर हम स्वामी शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव मानते हैं, उनके सम्बन्ध में हमें अपनी धारणा बदलनी पड़ सकती है, तथा इनकी विचार धारा के विषय में कुछ अन्य प्रकार की कल्पना करनी पड़ सकती है और इसी प्रकार, जिन हिन्दी रचनाओं के लिए हम इन्हें बराबर श्रेय देते आये हैं उनकी भाषादि के रूपों पर भी नये ढंग से विचार करना पड़ सकता है अथवा उनके गोरख–रचित होने में पूरा संदेह तक भी किया जा सकता है। अतएव ऐसी किसी भी दशा में हमें उपर्युक्त उद्‌भवकाल का निर्णय करते समय, यथेष्ट सहायता नहीं मिल सकती।

गुरू गोरखनाथ के लिए कहा जाता है (और इसमें कोई संदेह करने की हमें आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती) कि वे एक बहुत बड़े सुधारवादी थे तथा उन्होंने अपने आविर्भाव–काल में प्रचलित अनेक दोषों का निराकरण करने के उद्देश्य से अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयत्न किये थे। तदनुसार ऐसा समझा जाता है कि न केवल उन्होंने बौद्ध धर्मावलम्बी बज्रयानी सिद्धों द्वारा अनुमोदित साधनाओं के बदले अपने काया–साधना–प्रधान संयत जीवन के आदर्श को ही प्रतिष्ठित किया, अपितु विविध तांत्रिक शैव सम्प्रदायों के भीतर लक्षित होने वाली अनेक विडम्बनाओं की निःसारता सिद्ध करते हुए उनमें अपने ढंग की कोई समन्वयात्मक चेतना जागृत करने में भी कमी नहीं आने दी। बहुत सी वैसी त्रुटियाँ तो दो–चार शतियों पूर्व से भी दीखती आ रही थीं, किन्तु संभवतः छठीं से लेकर ८वीं शती तक उनका रूप और भी विकृत बनने लग गया था, जिस बात की ओर सिद्ध सरहपा जैसे सहजयानियों तक का ध्यान आकृष्ट हो चुका था और तदनुसार इसी अवसर पर इन्होंने एक संगठन की नींव डाली, जिसने तत्कालीन धार्मिक समाज के भीतर कायापलट सा ला दिया तथा उसके द्वारा प्रायः न्यूनाधिक प्रभावित होते जान पड़ने लगे। एक ओर जहाँ इन्होंने विविध वामाचारी साधनाओं को निर्मूल कर देने में अपना हाथ लगाया, वहाँ दूसरी ओर भारतीय धार्मिक जीवन के शुद्धिकरण को भी अपना लक्ष्य बना लिया[५०]। जिस प्रकार की योग–साधना–प्रणाली को इन्होंने अपनी ओर से प्रश्रय प्रदान किया, वह यहाँ के लिए कुछ नवीन न थी। वास्तव में इन्होंने एक ऐसी पुरानी परम्परा को ही किंचित् नया रूप दे डाला, जो कदाचित् कभी द्वितीय शती में भी प्रचलित रह चुकी थी।[५१] कहा तो यहाँ तक जाता है कि इस प्रकार का शैव धर्म, जिसके अनुयायियों के भीतर कठोर साधना एवं संयत जीवन के प्रति आकर्षण रहा हो, ईसा पूर्व की द्वितीय शती वाले महर्षि पंतजलि के पूर्ववर्ती युग में भी वर्तमान था,[५२] जिस कारण इन्होंने वस्तुतः एक प्राचीन किन्तु सुप्त–प्राय विज्ञान को ही पुनर्जीवित किया[५३]। इन्होंने उसे अपने प्रयासों द्वारा अधिक से अधिक लोकप्रिय बना दिया जिसका एक परिणाम इस रूप में भी देखा गया कि इसकी ओर क्रमशः कौल, कापालिक, रसेश्वर, पाशुपत जैसे विभिन्न शैवसम्प्रदायों के लोग उन्मुख होते चले गये। इस प्रकार हमें तो

ऐसा लगता है कि यदि नाथसिद्धों की परम्परा वाले प्रमुख लोगों तक के विषय में अनुसंधान किया जाय, तो संभवतः यह स्पष्ट हो जाते अधिक देर न लगे कि उनमें से कई की साधना–पद्धति का रूप मूलतः वैसी ही साम्प्रदायिक साधनाओं जैसा रह चुका था, किन्तु वे पीछे गुरू गोरखनाथ के प्रभाव में आ गये। सारांश यह है कि नाथ सिद्धों की साधना–पद्धति बहुत कुछ प्राचीन थी और तदनुसार उनकी परम्परा का उदय भी गुरू गोरखनाथ से कहीं पहले ही हो चुका होगा, किन्तु इन्होंने ही कदाचित् इसे सर्वप्रथम सुव्यवस्थित रूप दिया तथा इनके ही द्वारा इसका विशेष प्रचार भी हुआ।

गुरू गोरखनाथ को 'सिद्ध योगी' अथवा "परमयोगी" कहने पर कभी कोई मतभेद प्रकट किया जाता नहीं दीख पड़ता, किन्तु इस बात के विषय में कि वे मूलतः बौद्ध धर्म के अनुयायी रहे होंगे अथवा उनका सम्बन्ध किसी न किसी शैव सम्प्रदाय के साथ रहा होगा, प्रायः एक मत नहीं हो पाता। बौद्धों की तिब्बती परम्परा के अनुसार वे पहले एक बौद्ध तांत्रिक रहे और पीछे शैव हो गए तथा इसी के अनुसार उनका कोई पूर्व नाम भी "अनंगबज्र" जैसा बतलाया जाता है और इस प्रकार की बातों के ही आधार पर 'नाथपन्थ चौरासी सिद्धों से ही निकला है' जैसा स्पष्ट कथन तक भी कर दिया जाता है[५४]। उनके गुरू मत्स्येन्द्रनाथ के लिए यह अवश्य स्वीकार किया जाता है कि उनका सम्बन्ध शैव सम्प्रदाय की 'कौल' शाखा के साथ रहा और वे उसके प्रमुख आचार्यों तक में भी गिने जाते हैं, किन्तु जब उन्हें सिद्ध लुईपा से अभिन्न माना जाने लगता है[५५] तो वहाँ उनके मूलतः बौद्ध होने की ही सम्भावना बढ़ जाती है। नेपाल देश के अन्तर्गत तो उनके स्वयं अवलोकितेश्वर तक के रूप में स्वीकार कर लिये जाने की एक जनश्रुति प्रसिद्ध रहती आई है। परन्तु फिर भी उनके जन्म का एक विशिष्ट प्रकार से होना तथा उनके प्रति प्रसिद्ध शैवागमाचार्य अभिन्नवगुप्त द्वारा 'मछन्दविभु' के रूप में वन्द्य होना भी बहुत स्पष्ट है[५६]। इसके सिवाय, जहाँ तक अभी पता चल सका है, इन दोनों अर्थात् मत्स्येन्द्र नाथ एवं गोरखनाथ द्वारा रचे गये किसी बौद्ध साहित्य का भी अस्तितव नहीं है। ऐसी दशा में अधिक संभावना हमें इस बात की ही जान पड़ती है कि ये दोनों ही, किसी न किसी रूप में, बराबर शैव रहे होंगे। ये दोनों महापुरूष आज तक अनेक स्थानों पर स्वयं शिव के रूप में पूजे जाते हैं तथा गुरू गोरखनाथ की गणना तो पाशुपत सम्प्रदाय के 'पंचायतन' की चर्चा करते समय भी की जाती है[५७]। जिस कारण इस सम्बन्ध में कोई सन्देह करना आवश्यक नहीं रह जाता। इस विषय में उपर्युक्त मतभेद वाले प्रश्न के उठने का यदि कोई कारण ढूँढ़ा जाय तो वह कदाचित् इस बात से अधिक भिन्न न होगा कि जिस युग की परिस्थितियों पर हम विचार कर रहें हैं वह प्रधानतः किसी विचित्र तांत्रिक वातावरण का था, जिसके द्वारा सभी प्रचलित धर्म या सम्प्रदाय प्रभावित जान पड़ते थे तथा उन सबके भीतर स्वभावतः ऐसी अनेक सामान्य बातें भी आ जाती थीं, जिनके कारण किसी एक को दूसरे से पृथक करके देख पाना सरल नहीं था, फलतः बहुत से भ्रम, अधिकतर इन्हीं बातों पर सजग होकर विचार न करने के कारण, उत्पन्न हो जाते रहे होंगे। अनुभवी गुरू गोरखनाथ की पैनी दृष्टि को इस प्रकार की गौण बातों को परखने तथा उनका त्याग करने और इसके साथ ही मुख्य बातों को स्वीकार कर उनके अनुसार निर्णय कर डालने

में सम्भवतः अधिक विलम्ब नहीं लगा होगा तथा इसी के आधार पर उन्होंने अपना उपर्युक्त सुधार कार्य भी किया होगा।

गुरू गोरखनाथ ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करना कब आरम्भ किया तथा किस समय वे इसमें सफल हुए इसका कोई ऐतिहासिक विवरण हमें उपलब्ध नहीं है, न आज तक ऐसी कोई प्रामाणिक सामग्री ही मिल सकी है जिसके आधार पर इस सम्बन्ध में निश्चित अनुमान किया जा सके। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि इसके लिए उन्होंने न केवल अपने वरिष्ठ समसामयिक महापुरूषों से ही, अपितु अपने पूर्ववर्ती लोगों की कतिपय कृतियों से भी कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य ग्रहण की होगी तथा इसमें उन्हें अपने अन्य सहधर्मियों का न्यूनाधिक सहयोग भी मिला होगा। इस सम्बन्ध में हमारे सामने कुछ ऐसे नाथसिद्धों के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं तथा स्वयं इनके द्वारा किये गये कतिपय चमत्कारपूर्ण प्रयत्नों का पौराणिक वर्णन भी मिल सकता है, किन्तु उन्हें ठीक उसी रूप में स्वीकार कर लेना हमारे लिए सम्भव नहीं प्रतीत होता। फिर भी इतना स्पष्ट है कि पन्थ के प्रचार एवं विस्तार वाले क्षेत्र की वर्तमान सीमा, उसके भीतर प्रतिष्ठित की गई विभिन्न संस्थाएँ, नाथसिद्धों की परंपरा वाले प्रमुख महात्माओं की बड़ी संख्या, उनके द्वारा रचे गये विविध ग्रन्थों में निहित सद्विचार एवं सदुपदेश तथा उनसे प्रभावित साहित्य एवं समाज की विशालता, आदि ऐसी बातें हैं, जिनके आधार पर इनके लिए कभी किये गए दीर्घकालीन और अनवरत श्रम की ही कल्पना की जा सकती है। इसके सिवाय, जैसा इसके पहले भी कहा जा चुका है, इस परम्परा का उद्भव, सर्व प्रथम प्राचीन सामाजिक आदर्शों को सामने रखते हुए उनके प्रकाश में अपनी जीवन–पद्धति का पुनः संस्कार करने और उसे नया रूप देकर आगे बढ़ाने के ढंग का ही हुआ था, जिसे गुरू गोरखनाथ तथा उनके समसामयिकों ने अस्तित्व में लाया था और उनके अनेक परवर्ती शिष्य प्रशिष्यों ने उसे बहुत कुछ उसी प्रकार सँभाला था। परन्तु जब आगे चलकर यहाँ पर भक्ति आन्दोलन का वातावरण बन गया, तब इसके साथ कुछ न कुछ भक्ति–साधना को भी महत्व दिया जाने लगा तथा अन्त में जब गुरू गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ जैसे कई नाथसिद्धों को अतिमानवत्व अथवा देवत्व तक भी प्रदान कर दिया गया, इस पन्थ के अनुयायियों तथा साधारण हिन्दू जनता के बीच कोई स्पष्ट अन्तर नहीं रह गया और सभी कोई प्रायः एक ही विशाल जनसमाज के अंगवत् प्रतीत होने लग गये। यदि इसके लिए हम कोई समय निर्धारित करना चाहें अथवा इसके विकास–क्रमानुसार किन्हीं युगों की कल्पना भी कर ले सकें, तो स्थूल रूप में कह सकते हैं कि आरम्भ काल से लेकर ईसा की १२वीं शती तक इसका प्रारम्भिक युग रहा होगा, १३वीं से लेकर सम्भवतः १७वीं तक इसका कोई द्वितीय युग अथवा मध्ययुग चला होगा जबकि इसके भीतर क्रमशः भक्ति साधना को भी स्थान मिलता गया होगा तथा १८वीं शती से इसके उपर्युक्त तृतीय युग का आरम्भ हो गया होगा, जब से उसकी प्रमुख विशेषताएँ उतनी महत्वपूर्ण न जान पड़ने लगी होगी तथा इसमें साम्प्रदायिकता तक भी आने लगी होगी। इस प्रकार, वास्तव में, इसके प्रथम युग को ही इसके 'स्वर्ण युग' का भी नाम दिया जा सकता है तथा शेष दोनों को उसके न्यूनाधिक प्रभावानुसार ही स्मरण किया जा सकता है।

प्रारम्भिक युगीन कतिपय प्रमुख नाथ सिद्ध

जिस प्रकार नाथ सिद्धों की परम्परा के उदयकाल का ठीक–ठीक परिचय नहीं दिया जा सकता उसी प्रकार यह भी बतलाना कठिन है कि उसके अन्तर्गत किस निश्चिय समय के भीतर उनमें से किस का आविर्भाव हुआ होगा। इस संबंध में केवल इतना मात्र एक निर्विवाद सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है कि इसके सर्वप्रमुख प्रवर्त्तक गुरू गोरखनाथ के गुरू मत्स्येन्द्रनाथ रहे जिनके एक अन्य शिष्य चौरंगीनाथ भी थे और उनके एक समसामयिक जालंधरनाथ भी थे। इसी प्रकार इस जालंधर नाथ के भी एक शिष्य कानिफनाथ एवं दूसरे गोपीचन्द बतलाये जाते हैं। जिनके मामा भर्तृहरि थे और इसी प्रसंग में इनकी माता मयनावती का भी नाम लिया जाता है। तदनुसार ये सभी गुरू गोरखनाथ के न्यूनाधिक समकालीन जैसे लगते हैं और यदि इस बात का भी संभव होना मान लिया जाय (जिस विषय में मतभेद भी अधिक नहीं दीख पड़ता) कि उनके एक प्रसिद्ध शिष्य चर्पटनाथ रहे तथा इसी प्रकार उनके एक अन्य समकालीन पुरूष कंथड़िनाथ थे तथा एक दूसरे नागार्जुन भी थे जिनके शिष्य कणेरी थे, तो ऐसे लोगों की संख्या (जो इस प्रकार लगभग दो–ढाई सौ वर्षों के ही भीतर हो चुके होंगे तथा जिनके नाम पुराने नाथ सिद्धों में भी गिने जाते हैं) एक दर्जन तक भी पहुँच जाती है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि यदि हम इस परम्परा वाले प्रसिद्ध नवनाथों की अभी तक उपलब्ध लगभग बीस सूचियों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो उसके फलस्वरूप भी, हमारे सामने इनमें से कम से कम मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालंधरनाथ, चौरंगीनाथ, कानिफनाथ, कणेरीनाथ, चर्पटीनाथ कंथड़िनाथ एवं गोपीचन्द के ही नामों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया गया मिलता है। इसके सिवाय यदि हम कम से कम इन नव नाथों के भी अपने–अपने प्रारम्भिक मतों पर एक साथ दृष्टिपात करते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि इनमें नाथसिद्ध हो जाने के पूर्व कुछ न कुछ पारस्परिक भिन्नता अवश्य रह चुकी थी, जो पीछे सम्भवतः बहुत कुछ दूर भी हो गई। उदाहरण के लिए इनमें से मत्स्येन्द्रनाथ मूलतः कौल थे, जालंधरनाथ कापाली वा कापालिक थे, चर्पटीनाथ का संबंध रसेश्वर सम्प्रदाय के साथ रहा, कंथड़िनाथ किसी वैराग्य प्रधान मत के अनुयायी थे, गोरखनाथ पाशुपत सम्प्रदाय वालों के अधिक निकट थे। परन्तु जिस आदर्श एवं साधना–पद्धति की रूपरेखा गोरखनाथ की ओर से प्रस्तुत की गई उसका समर्थन और अनुमोदन किसी न किसी रूप में अन्य सभी की ओर से प्रायः एक समान होता चला गया, जिस कारण उसके प्रचार में यथेष्ट बल मिला तथा उसका आगे भी स्वागत किया गया।

गुरू गोरखनाथ ने श्री मत्स्येन्द्रनाथ को अपना गुरू स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है जिनके गुरू आदिनाथ अथवा स्वयं शिव समझे जाते हैं। इस मत्स्येन्द्रनाथ के सिद्धनाथ, मंजुनाथ आदि अनेक नाम भी बतलाये जाते हैं और इन्हें अधिकतर मीननाथ से अभिन्न तक मान लिया जाता है। कुछ पौराणिक उल्लेखों के अनुसार इनके 'गंडांत योग' में जन्मग्रहण करने के कारण इनके पिता ने पुष्कर द्वीप के समुद्र में फेंक दिया था, जहाँ इन्हें कोई मत्स्य निगल गया और अंत में उसके पेट से निकल कर ये शिव–पार्वती द्वारा पुत्रवत् लालित–पालित हुए। इनका फिर शिव

से दीक्षित होकर साधना करना तथा विभिन्न स्थलों में भ्रमण करना और नेपाल की यात्रा करना भी प्रसिद्ध है[५८]। नेपाल में इनका पूर्व की ओर (संभवतः कामरूप) से आना बतलाया जाता है जहाँ पर इन्होंने अपने योगिनी कौल मार्ग का प्रवर्त्तन एवं प्रचार किया था। वहीं पर कहीं इनके कदलीबन में रह कर वहाँ की सुन्दरियों के साथ विलास में निरत हो जाने तथा वहाँ से अन्त में अपने शिष्य गोरखनाथ द्वारा सचेत करके हटा लिये जाने की कथा भी प्रसिद्ध है, जिसकी चर्चा अनेक स्थलों पर की गई मिलती है। परन्तु, कदाचित् इस कदलीबन का प्रसंग अन्यत्र इस प्रकार आता है जिससे उसका दक्षिण भारत वाले सह्याद्रि पर्वत के अधःस्थल में स्थित होना भी जान पड़ता है[५९]। वहाँ मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरखनाथ के अतिरिक्त चौरंगीनाथ एवं जालंधरनाथ आदि के भी जाने का पता चलता है। इसके सिवाय मत्स्येन्द्रनाथ की स्मरण–शक्ति के उक्त प्रकार खो जाने तथा उसके गोरखनाथ द्वारा संकेत पाकर पुनः उद्दीप्त हो उठने की कथा का संबंध कभी–कभी लंका के साथ भी जोड़ा गया मिलता है, जिसका उल्लेख करते हुए एक विदेशी विद्वान ने ऐसी घटना का हो जाना मनोविज्ञान के अनुसार प्रमाणित किया जाना भी दिखलाया है[६०]। इन मत्स्येन्द्रनाथ के ही लिए कहा गया है कि इन्होंने "कौलज्ञान निर्णय" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की थी तथा इसके संपादक डॉ० बागची ने यह भी अनुमान किया है कि ये संभवतः सिद्ध लुईपा से अभिन्न भी रहे होंगे। "अकुलबीर तंत्र" जैसे इनके समझे जाने वाले एक अन्य ग्रन्थ से तो इनका "सिद्धनाथ" एवं "मीननाथ" कहलाना भी प्रमाणित किया जा सकता है[६१]। फिर भी किसी "रत्नाकर जोयम कथा" नामक रचना में इन्हें मीननाथ का पुत्र एवं जाति से मछुआ भी कहा गया है और इनके गुरू का नाम चर्पटीनाथ बतलाया गया है[६२]। इस प्रकार का मतभेद केवल यह सूचित करता है कि इनका हमें आज तक कोई ऐतिहासिक परिचय नहीं मिल पाया है जो सर्वसम्मत माना जा सके। ऐसी दशा में इनको कौल संप्रदाय का एक महान् पुरुष तथा उसकी "योगिनी कौल" शाखा का एक प्रवर्तक मात्र मान लेना ही पर्याप्त हो सकता है।

जालंधरनाथ को, उनके समझे जानेवाले किसी "विमुक्त मंजरी" नामक ग्रन्थ के भोटिया अनुवाद के आधार पर "आदि नाथ" कहा गया है तथा इससे यहाँ तक भी परिणाम निकाल लिया गया दीखता है कि नाथपन्थ की परम्परा में आदि नाथ से इन्हीं से मतलब है[६३]। परन्तु ऐसे कथन के लिए, अन्य अधिक पुष्ट एवं विश्वसनीय प्रमाणों की भी आवश्यकता जान पड़ती है क्योंकि वहाँ पर प्रायः सर्वत्र आदिनाथ शिव ही स्वीकृत दीखता है। "भारद्वाज संहिता" वाले अंश 'श्री कदली मंजुनाथ माहात्म्य' के अनुसार तो इस प्रकार कहा गया मिलता है कि महाप्रलय के अन्त में स्वयं 'कदलीश्वर' ने समस्त विश्व को अपने भीतर विलीन करके अनन्त जलराशि में शयन किया था, जिस कारण वे जालन्धर कहलाकर प्रसिद्ध हुए। वे स्वयं मंजुनाथ महादेव थे[६४]। जिन्हें ही अन्यत्र मत्स्येन्द्रनाथ भी मान लिया गया प्रतीत होता है[६५]। कहते हैं कि ये जलन्धरनाथ ही वे बालनाथ अथवा बालपाद भी हैं जिनकी चर्चा तिब्बती साहित्य में पायी जाती है। ये मूलतः जाति के शूद्र एवं धर्म से बौद्ध बतलाये गये हैं और इनके लिए यह भी कहा गया है कि बंगाल के अन्तर्गत ये ही "हाड़ीपा" कहला कर भी प्रसिद्ध थे। "निरंजन पुराण" में इनका कुछ वृत्तान्त दिया गया

मिलता है और इनके लिए यह भी कहा जाता है कि इनका व्यक्तित्व गुरू गोरखनाथ से भी अधिक प्रभावशाली रहा। इनके अनेक शिष्यों के भी नाम लिए जाते हैं जिनमें राजा गोपीचंद, राजाभर्तृहरि, गोगा चौहान, चर्पटनाथ एवं रानी मयनावती की चर्चा की जाती है। इनके प्रसिद्ध शिष्य कण्ह वा कानिफनाथ के लिए कहते हैं कि वह जन्म से ही "मूक" वा गूँगा रहा, किन्तु इनकी कृपा से वह एक प्रतिभाशाली कवि तक बन गया और उनकी अनेक रचनाएँ कण्हपा के नाम से प्रकाशित भी हो चुकी है। कण्हपाने इनके अपना गुरू होने की ओर एक स्थल पर संकेत किया है[६६] तथा स्वयं अपना "कपाली योगी" वा कापालिक होना भी स्वीकार किया है[६७]। जालंधरनाथ का भी मूल सम्बन्ध कापालिकों के ही सम्प्रदाय के साथ जोड़ा जाता है, जो इस बात का सूचक हो सकता है कि इन्होंने नाथ मत पीछे स्वीकार किया होगा। राजस्थान एव पश्चिमी भारत के धार्मिक इतिहास से हमें ऐसा लगता है कि इनका प्रभाव उधर गोरखनाथ से कम न रहा होगा। संभवतः इन्हीं के नाम पर जालंधरनाथ, जालंधरपीठ एवं जलंधर जैसे नगर आदि प्रचलित हुए हैं। कहते हैं कि हाड़ीपा के रूप में इन्होंने राजा गोपीचन्द की माता मयनावती को प्रभावित किया था, जिन्होंने अंत में अपने पुत्र द्वारा भी इनका शिष्यत्व स्वीकार कराया। इनकी एक रचना का उदाहरण राहुल जी ने दिया है,[६८] किन्तु उससे इनके नाथमत–वादी होने का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। इनकी एक सबदी अन्यत्र भी संग्रहीत है जिसमें गोपीचंद की ओर से इन्हें स्वामी वा सद्गुरू भी कहा गया दीख पड़ता है।[६९]

यहाँ पर इसके अतिरिक्त स्वयं गोपीचन्द के नाम से भी रचनाएँ संगृहीत हैं, जिनमें से प्रथम के अन्तर्गत 'गुरू हमारे गोरख बोलिये चरपट है गुरू भाई' जैसा कथन भी पाया जाता है और इसके अंत में 'जलंध्रीपाद हाथि दे डीवी गोपीचन्द षंदाया जी' मिलता है, जिससे इस संबंध में कुछ भ्रम भी उत्पन्न हो सकता है।[७०]

चौरंगीनाथ का मूल नाम 'पूरन भगत' बतलाया जाता है और इनके अन्य नामों में 'ग्यानसरूप' 'पुरखसिंह', 'सिंगारी' आदि भी प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि ये किसी सालिवाहन नामक राजा के लड़के थे और इनके एक भाई का नाम रसालू भी था। इन्हें स्यालकोट से संबद्ध किया जाता है, किन्तु कुछ लेखकों ने इनका किसी पूर्वीय प्रांत वाले क्षेत्र का होना भी अनुमान किया है। तिब्बती परंपरानुसार ये मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य एवं गोरखनाथ के गुरू भाई समझे जाते हैं और कहा जाता है कि इनकी विमाता के कहने पर इनके हाथ पैर काट लिये गए थे। इनकी रचना समझी जाने वाली 'प्राण संगली' में भी इस बात की स्पष्ट चर्चा की गई दीख पड़ती है[७१]। गोरखनाथ के ग्रन्थ 'अमरोधप्रबोध' से पता चलता है कि ये इनसे बड़े अथवा कम से कम उनके लिए नमस्कार योग्य तो अवश्य रहे होंगे, क्योंकि उक्त रचना के प्रारंभ में ही, आदिनाथ एवं मीननाथ (संभवतः मत्स्येन्द्रनाथ) को नमस्कार करके फिर इन 'सिद्ध बुद्ध एवं धीमान' को भी प्रमाण किया गया है[७२]। इनके जीवन की कहानी भी राजा गोपीचंद एवं भरथरी (भर्तृहरि) आदि संबंधी कथाओं की भाँति लोक गाथा का रूप ग्रहण कर चुकी है, जिस कारण इनका ऐतिहासिक परिचय देते समय बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इनके किन्ही ऐसे शिष्य प्रशिष्यादि का भी पता नहीं चलता, जिसके सहारे इनके विषय में कुछ ठोस तथ्यों के संकलन का प्रयास

किया जा सके। परन्तु इतना प्रायः निश्चित सा जान पड़ता है कि नाथसिद्धों की परम्परा में इन्हें एक उच्च स्थान प्राप्त है। ये उनके उन चार गुरूओं में से एक माने जाते हैं,जिनमें जालन्धर नाथ का नाम नहीं आता और गोरखनाथ को भी वहाँ चौथे स्थान पर स्मरण किया गया दीख पड़ता है।[७३] नाथसिद्धों की बानियों में इनकी एक सबदी[७४] संगृहीत है, जिसमें इनके नाथ पंथी सिद्धान्त का परिचय मिलता है, किन्तु श्री 'नाथाष्टंक' के इनकी रचना होने में संदेह भी प्रकट किया जा सकता है।[७५]

गुरू गोरखनाथ को, नाथसिद्धों की परंपरा में, सर्वाधिक महत्व प्रदान किया जाता है। इन्होंने, सिवाय इसके कि मैं मत्स्येन्द्रनाथ का शिष्य हूँ एवं आदिनाथ का प्रशिष्य हूँ तथा उनकी कृपा से ही अपने निजी अनुभव की बातें कह रहा हूँ, कदाचित् अन्य कुछ भी अपने विषय में नहीं कहा है और इनको सारी तथाकथित रचनाओं को असंदिग्ध रूप से स्वीकार कर लेना भी अभी तक संभव नहीं कहला सकता है। परन्तु, जिस प्रकार इनके विलक्षण व्यक्तित्व एवं विचारधारा के प्रभाव की चर्चा की जाती है, तथा इन्हें अमर मानते हुए इनके संभवतः पांचवी–छठी शताब्दी से लेकर आधुनिक युग वाले अनेक साधकों तक को प्रत्यक्ष दर्शन देने की कथाएँ प्रचलित हैं, उससे यह परिणाम बड़ी सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है कि ये अवश्य एक अत्यन्त असाधारण महापुरूष रहे होंगे और कदाचित् इसी कारण, इनको उच्चकोटि के मानवत्व वाले स्तर से भी ऊपर उठाकर, क्रमशः देवत्व तक पहुँचा दिया जाना कभी किसी को असंभव नहीं प्रतीत हो सका होगा।

इसमें संदेह नहीं कि इनके आविर्भावकाल का धार्मिक समाज विचित्र परिस्थितियों का शिकार बन चुका था। तांत्रिक साधना प्रणाली के प्रतीकात्मक रूप को भलीभाँति न समझ कर, भूल कर बैठने वालों तथा कोरे बाह्याचार मात्र को ही सब कुछ समझ लेने वालों की संख्या उन दिनों अधिक रही, जिस के कारण अनर्थ का होता रहना अवश्यंभावी था और अनैतिकता बढ़ती जा रही थी। गुरू गोरखनाथ ने उनकी जगह इंद्रिय–निग्रह एवं योगसाधना के आदर्श को सामने लाकर उनके महत्व की ओर सब किसी के ध्यान को आकृष्ट करना चाहा। इन्हें इतना आत्मविश्वास रहा तथा अपने संकलप में इतनी दृढ़ता थी कि इन्होंने उसकी ओर स्वयं अपने गुरू तक को उन्मुख कर डालने में संकोच नहीं किया तथा इनके द्वारा सुझाये गये मार्ग को अपनाना उन लोगों को भी स्वाभाविक जान पड़ा, जो विभिन्न पंथो के अनुयायी रह चुके थे।

फिर भी इनके जीवन की कदाचित् किसी भी घटना का हमें कोई ऐतिहासिक परिचय आज तक उपलब्ध नहीं है। जो कुछ भी इनके विषय में कहा जाता है, उसके ऊपर अधिकतर कल्पना का रंग चढ़ाया गया जान पड़ता है।, जिससे उसका रूप हमें पौराणिक सा लगने लगता है। इनके अतिमानव अथवा देवरूप के सामने इनके मानवीय चरित्र की किसी साधारण सी रूप रेखा का भी उभर पाना आज असम्भव–सा बन गया है और हम अभी तक अपने को इसके लिए असमर्थ पा रहे हैं कि इनका संबंध किसी निश्चित काल वा स्थान के साथ जोड़ सकें। जैसा इसके पहले भी कहा जा चुका है कि इन के आविर्भवकाल को एक बड़ी लम्बी अवधि के भीतर किसी न किसी समय ढूँढ़ पाने की प्रवृत्ति देखी जाती हे और इसी प्रकार, इनके जन्म–स्थान

के लिए भी पंजाब से लेकर बंगाल तथा नेपाल की ओर से लेकर दक्षिण में प्रवाहित नर्वदा नदी के तटवर्ती किसी क्षेत्र विशेष तक का पता लगाने का प्रयास किया गया है। इनकी जाति, इनके मूल पुरूष अथवा इनके किसी परिवार आदि के विषय में भी कभी–कभी अनुमान किये गए हैं तथा इनके रूपरंग एवं स्वभाव तक की कुछ न कुछ झलक प्रस्तुत कर देने की चेष्टा की गई है,[७६] किन्तु ऐसी बातें कभी यथेष्ट नहीं कहला सकतीं और न इनके आधार पर हमें कभी पूरा संतोष हो सकता है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी इनका परिचय हमें उपलब्ध हो सका है, उसका अधिकांश या तो विभिन्न चमत्कारों से भरा है अथवा अतिशयोक्ति पूर्ण तक भी कहला सकता है, जिस पर किसी वैज्ञानिक ढंग से विचार कर पाना साधारणतः सरल नहीं है। जहाँ तक इनकी उपलब्ध रचनाओं के संबंध में कहा जा सकता है, उनका प्रायः संस्कृत एवं पुरानी हिन्दी में होना अनुमान किया गया है, परन्तु जिन–जिन ग्रन्थों वा फुटकर कृतियों के इस विषय में नाम लिये जाते हैं, उनमें से अनेक की प्रामाणिकता में संदेह भी किया जा सकता है। इनका देहान्त कब और कहाँ पर हुआ, हमें इस बात का भी कोई पता नहीं है। प्रत्युत ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि वे अमर पुरूष है जो सदा वर्तमान रह सकते हैं और वेसर्वत्र विचरण करते रहते हैं, जिस कारण कई व्यक्तियों ने समय समय पर उन्हें प्रत्यक्ष तक भी किया है।

निष्कर्ष यह है कि गुरू गोरखनाथ को नाथसिद्धों में सर्वाधिक प्रधानता देते हुए भी, हम, उनके विषय में, किसी अन्य की अपेक्षा अधिक ऐतिहासिक तथ्य उपस्थित नहीं कर पाते और साधारणतः बहुत सी काल्पनिक बातों पर ही संतोष करके रह जाते हैं। ऐसी दशा में यदि हमें, सारी बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ कहने की इस समय आवश्यकता पड़े तो केवल इतना ही बतला सकते हैं कि न्यूनाधिक विश्वसनीय सामग्रियों के आधार पर इनका आविर्भाव काल ईसा की ८वीं, ६वीं शती से पहले नहीं जाता दीखता। ये मूलतः भारत के किसी पश्चिमी प्रान्त के निवासी जान पड़ते हैं और शैवधर्म वाले पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयायी भी हो सकते हैं। इनका प्राचीन योगविद्या से परिचित रहना तथा उसकी साधना के महत्व में पूर्णरूप से विश्वास करना इनकी एक विशेषता स्वीकार कर ली जा सकती है तथा इसके साथ यह भी अनुमान कर लिया जा सकता है कि संभवतः अपने वैसे दृष्टिकोण के हीकारण इन्हें अपने समय में प्रचलित अनेक मतों की अधिकांश बातें कोरी निरर्थक एवं अग्राह्य तक भी समझ पड़ी होंगी। तदनुसार, अपनी विशिष्ट स्वीकृतियों के आधार पर, इन्होंने अपने मत की कोई रूपरेखा कल्पित की होगी और उसके प्रचार में प्रवृत्त भी हुए होंगे। हमें ऐसा लगता है कि उस काल के सभी साधकों का प्रमुख लक्ष्य किसी न किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर लेने की ही ओर थी, जिसके लिए विभिन्न सम्प्रदायों अथवा उनकी शाखाओं तक का प्रवर्तन किया जाता रहा और उन्हीं में से किसी 'योगिनी कौमत' की भी एक परम्परा चल पड़ी थी जिसके प्रमुख पथ–प्रदर्शक मत्स्येन्द्रनाथ कहे गये हैं। गुरू गोरखनाथ को, संभवतः इन्हीं से सर्वप्रथम प्रेरणा मिली थी, किन्तु ये इनसे कब एवं किस रूप में प्रभावित हुए, इसका कोई ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं है। उनके प्रति इनकी गहरी श्रद्धा प्रदर्शित करने के आधार पर इतना मान लिया जा सकता है कि इन दोनों के उद्देश्यों में इतना मौलिक अन्तर न रहा होगा, अधिक से अधिक साधना–प्रणालियों में भेद रहा होगा।

मत्स्येन्द्रनाथ शाक्त–साधना की ओर उन्मुख जान पड़ते हैं तो गोरखनाथ शैव–साधना से प्रभावित लगते हैं।

प्रारम्भिक युगवाले उपर्युक्त नाथ सिद्धों में से इन चार के अतिरिक्त भर्तृहरि एवं चर्पटीनाथ के नाम विशेष रूप से लिये जाते हैं। इन दोनों की कुछ न कुछ हिन्दी रचनाएँ भी मिलती है, जिन्हें सर्वथा प्रमाणिक मानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। 'नाथ सिद्धों की बानियाँ के अन्तर्गत भर्तृहरि की समझी जानेवाली ५ कृतियाँ मिलती हैं [७७] जिनमें से 'सपत संष' ग्रन्थ के द्वारा सात शंखों का परिचय दिया गया है और उसी के व्याज से 'पंक्षीय साधना एवं रहनी' के सम्बन्ध में कुछ किया गया है जिसका इनकी दृष्टि से बहुब बड़ा महत्व जान पड़ता है। इसके अनन्तर दिये गए पद में इन्होंने गुरू गोरख का दास तक बतलाया है। इसमें नारीनिन्दा, वैराग्य प्रशंसा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है तथा इसकी भाषा भी कहीं–कहीं विकृत संस्कृत है। इसी प्रकार इनके श्लोक नाम की रचना में भी संवादों के माध्यम से अनेक बातें प्रायः वैसी ही भाषा के द्वारा कही गई है इनके अंतिम पद से भी पता चलता हे कि इन्हें गुरू गोरखनाथ की ही कृपा से ज्ञान प्राप्त हुआ था तथा इन्होंने हरिपद को स्पर्श करने मे सफलता भी पायी थी उधर चर्पटीनाथ की कही गई और यहाँ पर संगृहीत सबदी की अधिकतर बातें या तो आलोचनात्मक दीख पड़ती है अथवा उनका कुछ न कुछ त्यागमूलक परिचय भी दे देती हैं। यहाँ पर प्रसंगवश यह भी कह दिया गया मिलता है कि भरथ, चरपद और गोपीचंद ने अपनी विलासिता का त्याग करके परमानन्द प्राप्त किया था[७८]। काणेरीपाद जी वाले पद के अन्तर्गत इनके द्वारा नागाअरजंद (नागार्जुन) के प्रति प्रश्न कराया गया है, जिससे दोनों का शिष्य–गुरू सम्बन्ध माना जा सकता है[७१]। स्वयं नागा अरजन के नाम से उपलब्ध सबदी में केवल योग साध ाना का एक संक्षिप्त संकेत किया गया पाया जाता है[८०]। उक्त संग्रह के अन्तर्गत किसी सती काणेरी जी के नाम से भी एक रचना मिलती है, जिसमें अपने को 'आदिनाथ नाती मछिंद्रनाथ पूता'[८१] कहा गया है, जिस कारण यह संभव है कि काणेरीपाद तथा सती काणेरी एक और अभिन्न व्यक्ति रहे हों। एक नाम से उन दिनों कई व्यक्ति प्रसिद्ध थे जिस कारण उनके सम्बन्ध में प्रायः भ्रम उत्पन्न हो जाया करता है और इस प्रकार की कोई बात अन्तिम रूप में कहते नहीं बनती। उस काल के एकाध नाथ सिद्ध तो ऐसे भी हैं जिनके केवल नाम मात्र मिल पाते हैं अथवा जिनके विषय में केवल उनके निवास स्थान आदि का भी संदिग्ध–सा परिचय मिलता है, किन्तु फिर भी उन्हें प्रारम्भिक युग के अन्तिम चरण तक के ही मान लेने की प्रवृत्ति होती है। उदाहरण के लिए लुहारी पाव, सत्यनाथ, बाबा रतन नाथ तथा धर्मनाथ के नाम लिये जा सकते हैं जिनमें से अंतिम दो क्रहमशः पेशावर और कच्छ के बतलाये जाते हैं। इनके कुछ चमत्कारपूर्ण वर्णन भी मिल जाते हैं, किन्तु वे इनका तथ्यवत् परिचय नहीं दे पाते। इसके सिवाय, हम इस सम्बन्ध में, इतना और भी कह सकते हैं कि गुरू गोरखनाथ ने सर्वप्रथम कदाचित् उन्हीं कतिपय मौलिक सिद्धान्तों की समुचित व्याख्या भी आरम्भ की होगी, जो प्रायः सभी तत्कालीन शैव सम्प्रदायों के लिए सामान्य समझे जाते रहे होंगे तथा उन्हीं के अनुकूल इन्होंने अपनी साधना को भी कोई विकास प्रदान किया होगा। फलतः उनमें से कई का झुकाव इस ओर स्वाभाविक रूप में होता चला गया और

कुछ ने इनके मार्ग को एकांत रूप तक में, अपना लिया इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि इनके द्वारा अग्रसर किये गये नाथमत वाले मूल स्रोतों का उद्‌गम प्राचीन अवश्य रहा होगा, तथा जिन लोगों ने उसे स्वीकार किया उनके प्रारम्भिक सम्प्रदायों वाले उनसे किसी न किसी रूप में परिचित एवं प्रभावित भी रह चुके होंगे।

परवर्ती नाथ सिद्ध

प्रारम्भिक युग वाले उपर्युक्त नाथसिद्धों के अतिरिक्त अन्य की संख्या भी सम्भवतः एक दर्जन से कहीं अधिक ही रही होगी, किन्तु उनमें से कई के हमें या तो केवल नाम मात्र ही विदित हैं अथवा जो उनके संक्षिप्त परिचय मिल पाते हैं उन पर भी पौराणिकता या काल्पनिकता का रंग चढ़ा प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए इस प्रसंग में हम लुहारी पाव, सत्यनाथ आदि के नाम ले सकते हैं, जिन्हें उत्तर युगीन अन्तिम दिनों में वर्तमान मान लेने की प्रवृत्ति होती है, किन्तु जिनका हमें प्रायः कुछ भी पता नहीं चल पाता और केवल नामोल्लेख मात्र कर दिया जाता है। इसी प्रकार बाबा रतननाथ एवं धर्मनाथ जैसे कुछ अन्य लोगों के नाम लिये जा सकते हैं, जिनको क्रमशः पेशावर और कच्छ जैसे प्रदेशों के निवासी के रूप में परिचित कराया जाता है तथा जिनके कुछ चमत्कारपूर्ण वर्णन तक भी कर दिये जाते हैं और ये भी किसी वैसे ही समय के ठहराये भी जाते हैं। इनके अनन्तर अर्थात् ईस्वी सन् की १६वीं शती के किसी समय से कुछ ऐसे नाथ सिद्धों का भी आविर्भाव होने लगता है, जो अपनी योगसाधना से पूरक रूप में भक्ति साधना को भी स्वीकार कर लेते दीख पड़ते हैं तथा जिनके अपने पृथक् संप्रदाय तक भी रहा करते हैं। इसके सिवाय, लगभग इसी समय से हम अनेक ऐसे अन्य नाथसिद्धों को भी पाने लगते हैं, जिन पर अपनी नाथ पंथी साम्प्रदायिकता की छाप लगी हुई सी जान पड़ती है। वास्तव में इस काल तक पुराने नाथ सिद्धों और विशेषकर गुरू गोरखनाथ को अतिमानवत्व अथवा देवत्व तक भी प्रदान किया जाना आरम्भ हो गया रहता है, यहाँ तक कि वे लोग भगवान् शिव अथवा स्वयं परमात्मा के स्वरूप तक भी मान लिये जाते हैं, जिसका प्रभाव उनके प्रति दिव्यत्व की भावना उत्पन्न कर देना है। यहाँ पर इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि प्रारम्भिक युग वाले नाथसिद्धों में हमें अधिकतर ऐसे त्याग और तपस्या का बल दीख पड़ता है, जिसके समक्ष बड़े बड़े राजाओं तक का झुक जाना बहुत स्वाभाविक हो जाता है। किन्तु उसके परवर्ती काल में कुछ भिन्नता भी आ जाती है। इधर हमें राजा भर्तृहरि, गोपीचन्द एवं पूरन भगत के जैसे उदाहरण उतने नहीं मिलते जितने वैसे लोगों के प्राप्त होते हैं, जो उपर्युक्त नाथसिद्धों में से कुछ के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं तथा उनकी कृपा द्वारा लाभान्वित होने का प्रयत्न किया करते हैं।

इनमें से प्रथम वर्ग वाले नाथसिद्धों में हमारे सामने सर्वप्रथम नाम निवृत्ति नाथ (सन् १२७३–६७ ई०) का आता है, जिन्हें उन गाहिनी या गैनीनाथ (मृ० सन् १२८८ ई०) ने दीक्षित किया था जिनके द्वारा निर्मित 'गोरक्षगीता' नामक मराठी ग्रन्थ बड़ी श्रद्धा से देखा जाता है कहते हैं कि गहनीनाथ को स्वयं गुरू 'गोरखनाथ ने दीक्षा दी थी, जिस कारण उनके जीवनकाल के

विषय में कभी कभी भ्रम भी हो जाता है। निवृत्तिनाथ ने इस बात को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि गयनी ने मेरे ऊपर पूर्ण कृपा करके और मेरे अपने ध्येय के रूप में श्रीकृष्णनाम का वरदान दे दिया, जिससे मेरा कुल पवित्र हो गया [८२]। इन निवृत्तिनाथ के ही अनुज प्रसिद्ध ज्ञानेश्वरनाथ या ज्ञानदेव थे जिन्होंने "श्रीमद्भगवद्गीता" की ज्ञानार्थ दीपिका नाम की टीका लिखी है, जो ज्ञानेश्वरी नाम से विख्यात है तथा जिसमें उन्होंने अपनी गुरू परम्परा देते हुए, आदिनाथ से क्रमशः आरम्भ करके अपने अग्रज निवृत्तिनाथ को गुरू रूप में भी स्वीकार किया है। इन दोनों भाइयों द्वारा प्रचारित संप्रदाय प्रत्यक्षः "बारकरी संप्रदाय नाम से चला, किन्तु उस पर नाथपंथ की छाप सदैव पड़ी रहती आई। इसके सिवाय, महाराष्ट्र प्रांत के ही अन्तर्गत हमें एक अन्य ऐसी परम्परा का भी पता चलता है जिसके प्रवर्तक हरिनाथ (सन् ११५६–८६ ई०) कहला सकते हैं, जिनके प्रशिष्य मुकुन्दराज को मराठी का आदि कवि समझा जाता है और वे ही उसके प्रमुख प्रचारक रूप में भी प्रसिद्ध हैं। इन मुकुन्दराज द्वारा निर्मित ग्रन्थ 'विवेक सिंधू' के आधार पर कहा जाता है कि इन्होंने ही मराठी साहित्य के अन्तर्गत सर्वप्रथम तत्वज्ञान का भी समावेश किया था[८३]।

इस प्रकार, ईस्वी सन् की १५वीं–१६वीं शती के भीतर भी, ऐसे एक से अधिक नाथसिद्ध राजस्थान प्रान्त के अन्तर्गत हुए, जिन्होंने अपनी योगसाधना के साथ–साथ भक्तिसाधना को भी न्यूनाधिक प्रश्रय प्रदान करना उचित समझा। इनमें से विश्वनोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक जंभनाथ या जंभो जी, निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हरिदास निरंजनी तथा जसनाथी सम्प्रदाय के प्रवर्तक जसनाथ के नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय समझे जा सकते हैं। जंभनाथ (सन् १४५१–१५६३ ई०) के लिए प्रसिद्ध है कि उन्हें स्वयं गुरू गोरखनाथ ने स्वप्न देकर दीक्षित किया था, जिन्हें कभी कभी बाला गोरखयतीन्द्र भी कह दिया जाता है[८४]। इनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के २६ नियमों में अधिकतर विष्णु को महत्व दिया जाता दीख पड़ता है, किन्तु उन पर नाथपन्थ का प्रभाव भी कुछ कम नहीं जान पड़ता और उसके अनुयायी आज तक इस बात को स्वीकार करते भी देखे जाते हैं। इसी प्रकार हरिदास जी निरंजनी (सन् १४५५–१५३८ ई०) के लिए भी कहा गया मिलता है कि इन्हें लूटपाट का काम त्याग कर आध्यात्मिक चिन्तन की ओर उन्मुख करने वाले भी गुरू गोरखनाथ ही थे जिनसे इनकी भेंट, सर्वप्रथम किसी जंगल में हो गई थी। इन्होंने इस बात को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि गुरू गोरखनाथ मेरे गुरू थे, मैं उनका "बालक" हूँ तथा मेरे ऊपर उनका हाथ रहा करता है[८५]। इसके सिवास इन्होंने अपने उपास्य परमतत्व का नाम भी "निरंजन" ही रखा है, जिसके अनुसार इनके सम्प्रदाय का नामकरण हुआ है। जसनाथ जी (सन् १४८२–१५०६ ई०) के विषय में तो कहा जाता है कि इनके साथ गुरू गोरखनाथ का और भी अधिक लगाव रहा होगा। प्रसिद्ध है कि जब ये केवल १२ वर्ष के थें और इन्हें ऊँटनियों के चराने का काम सौंपा गया था, इनकी भेंट गुरू गोरखनाथ से हो गई। वह दिन सं० १५५१ की आश्विन शुक्ल सप्तमी का था, जब उन्होंने इन्हें अपना साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया और प्रभात की बेला में इनके कान में 'सत्य शब्द' फूँक दिया तथा उनकी आज्ञा पाकर इन्होंने अपनी छड़ी वहीं पर गाड़ दी और अपना आसन भी जमा लिया।[८६] वह स्थान आज तक

"गोरखमालिया" कहलाकर प्रसिद्ध है और इनके सम्प्रदाय वालों का एक तीर्थ स्थान भी समझा जाता है। जसनाथ जी ने जोग की परिभाषा देते हुए उसके कुछ लक्षण भी बतलाये हैं और कहा है कि "सत्य के अनुसार ही संयम के साथ रहना चाहिए और किसी के साथ मिथ्यालाप से अपने को बचाना चाहिये। हे प्राणी तुम अपने शरीर रूपी पुस्तक पर मन रूपी लेखनी से भगवान् के गुण लिखते चलो अमृत जैसे शब्द बोलो और गुरू का उपदेश मानो।"[८७] इन्होंने अपने को दरवेश निरंजन जोगी तक भी कहा है[८८]। जिससे इनकी नाथपंथ के प्रति निष्ठा कम नहीं प्रकट होती।

जहाँ तक उपर्युक्त द्वितीय वर्ग वाले नाथ सिद्धों के उदाहरण में कहा जा सकता है उनमें से केवल कुछ के ही संक्षिप्त परिचय मिलते हैं। शेष के या तो केवल नाम मात्र लिये जाते हैं, अथवा उन्हें किन्हीं अन्य के साथ जोड़कर एक साधारण-सा संकेत कर दिया जाता है। ऐसी दशा में इन दूसरे प्रकार के नाथ सिद्धों के विषय में किसी शती-विशेष का अनुमान कर पाना भी युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। जिन ऐसे नाथ सिद्धों के सम्बन्ध में कुछ चर्चा की गई दीख पड़ती है, उनमें से हमें अजयपाल, बालानाथ वा लक्ष्मण प्राचीनतर जान पड़ते हैं और इनके आविर्भावकाल ईसा की १३वीं शती में भी होना सम्भव है। इनमें से अजयपाल के लिए यह अनुमान किया गया है कि ये गढ़वाल के राजा रहे होंगे [८६] किन्तु इसकी पुष्टि किन्हीं ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर नहीं हो पाती। इनकी एक सबदी प्रकाशित की गई दीख पड़ती है, जिसमें इन्हें 'बाबा अजैपाल' कहा गया है और ऐसा किसी "लक्षमण" द्वारा कहलाया गया है जो इसी कारण सम्भवतः इनका शिष्य तक भी समझ लिया जा सकता है। इसकी रचना-शैली गोरखबाणी का अनुसरण करती जान पड़ती है। ये लक्षमण यदि वे ही हैं जिन्हें लक्षणनाथ अथवा बालानाथ भी कहा जाता है तो इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है। लक्षमण के नाम से एक पद संग्रहीत है, जिसमें लक्षमण बाला शब्द का व्यवहार किया गया है[६०]। परन्तु बालनाथ के नाम से जो रचनाएँ प्रकाशित हैं[६१] वहाँ इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दीख पड़ता, जिसके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि "बालानाथ" एवं "बालनाथ" दो भिन्न-भिन्न नाथ सिद्ध रहे होंगे तथा उन दोनों के आविर्भाव काल में भी अन्तर हो सकता है। यह कहा जा चुका है कि बालानाथ नाम कदाचित् जलन्धरनाथ का भी रहा होगा, किन्तु उक्त रचनाओं का भी उनका होना सिद्ध नहीं होता। घूंघली मल के लिए कहा गया है कि ये गरीबनाथ के गुरू थे और वे घीणोद वाले अजयसर पर्बत के ऊपर साधना करते थे। इनके आशीर्वाद से किसी भीम का कच्छ का राजा हो जाना भी कहा गया है जिसका समय सं० १४४२ अथवा ई० सन् १३८५ समझा जाता है। घूंघली मल की एक सबदी प्रकाशित है, जिसमें योगसाधना के द्वारा अमरत्व की सिद्धि की ओर संकेत किया गया पाया जाता है[६२]। गरीबनाथ ने अपने को एक रचना के अन्तर्गत "सिंघगरीब" जैसा कहा है और वहाँ पर ये योगसाधना का वर्णन करते समय उलटवासी का प्रयोग करते भी दीखते हैं।[६३] परन्तु उसके आधार पर ही वहाँ इनका घूंघलीमल का शिष्य तक भी होना सिद्ध नहीं है।

इसी प्रकार एक अन्य नाथ सिद्ध जिनकी रचनायें प्रायः दत्त जी के नाम से मिलती हैं, प्रत्यक्षतः प्रसिद्ध दत्तात्रेय जी से अभिन्न नहीं जान पड़ते किन्तु इनके आविर्भावकाल का ईस्वी सन्

की १५वीं शती तक होना अनुमान किया गया है। इनकी भी दो सबदियाँ प्रकाशित की गई हैं, जिनमें से दूसरी की भाषा विशेषकर कृत्रिम संस्कृत के रूप में पायी जाती है[६४]। इनकी कोई अपनी विशेषता नहीं लक्षित होती। इसके विपरीत पृथ्वीनाथ या प्रिथीनाथ जी की ४ रचनाएँ मिलती हैं। इनका कुछ न कुछ अपना महत्व अवश्य हो सकता है। इनके ग्रंथ 'साथ प्रष्ण साध परीष्याग्रन्थ' के अन्तर्गत बतलाया गया है कि किसी 'जोगी' की स्थिति कितनी उच्च कोटि की हुआ करती है तथा इसके प्रमाण में यहाँ पर न केवल गुरू गोरखनाथ अपितु संत नामदेव एवं सन्त कबीर तक के नाम उपस्थित किये गये हैं। इसी प्रकार इनके "श्री निरंजननिखान" ग्रन्थ में योग–साधना–सम्बन्धी पन्थों एवं क्रियाओं आदि की चर्चा की गई है तथा "श्री भक्ति वैकुण्ठ जोग" ग्रन्थ और सबदी के अन्तर्गत भक्ति की व्याख्या पायी जाती है[६५]। इधर की खोज द्वारा पृथ्वीनाथ की अन्य २५ रचनाएँ भी मिली हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि ये एक उच्च कोटि के साधक एवं सफल साहित्यकार भी रहे होंगे। उनसे सिद्धानाथों के मत पर भी प्रकाश पड़ता है। इनके 'जुक्ति स्वरूप सिंघ संकेत जोग' ग्रंथ से पता चलता है कि ये किसी पूर्वी क्षेत्र में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने मुल्तान में रहकर साधना की थी तथा ये राजस्थान के अन्तर्गत बहुत दिनों तक रहकर वृद्धावस्था में दक्षिण की ओर चले गये थे। इन्होंने सन्त कबीर का नाम लिया है और सम्भवतः जंभनाथ की भी चर्चा एक समसायिक के रूप में की है जिससे इन्हें १६वीं ईस्वी शती का समझा जा सकता है[६६]। नाथसिद्धों की बानियाँ में अन्य अनेक नाथसिद्धों के अतिरिक्त, पारवती जी, महादेव जी, रामचन्द्र जी, हणवंत जी, सतवंती जी, मींडकी पावजी, सुकुल हंस जी, तथा परबतसिद्ध जैसे कुछ नाम वालों की भी रचनाएँ संगृहीत हैं, जिनका पता नहीं चलता। इन्हें देखने से हमें ऐसा भी लगता है कि ऐसे नाम कदाचित् जानबूझकर, योंही रख दिये गए होंगे। नाथसिद्धों की परम्परा में इस प्रकार की प्रवृत्ति बराबर देखी जाती है और हम देखते हैं कि इसका आरम्भ धोड़ा चोली, चर्पटी आदि से ही हो चुका था और वह पीछे १६वीं शती के भानीनाथ, चिड़ियानाथ एवं लाडूनाथ जैसे नामों के प्रयोगों में भी पायी जाती है। इधर के नाथ सिद्धों में जसनाथी या सिद्ध सम्प्रदाय वाले लालनाथ का नाम भी उल्लेखनीय है जो राजस्थान प्रान्त के किसी लाल मदेसर गाँव के थे। इनकी अनेक रचनाओं के नाम सुनने में आते हैं, जिनमें से जीव सम झोत्तरी ही अभी तक प्रकाशित हुई है। इन्होंने उसमें किसी योगी की वास्तविक योगसाधना के केवल चार अंग बतलाये हैं जिन्हें जत (संयत् जीवन) रैणी (रहनी) गुरू ग्याण (सद्गुरू के प्रति एकांत निष्ठा) एवं विचार (विवेकपूर्ण आदर्श) कहा गया मिलता है और इन्हीं के लिए इन्होंने विशेष आग्रह भी किया है[६७]। इसी प्रकार, इस संबन्ध में भानीनाथ का भी नाम लिया जा सकता है, जिनका आविर्भावकाल १६वीं शती समझा जाता है। इनके गुरू कोई गुलाबनाथ कहे जाते हैं[६८] जिन्होंने इन्हें भेड़ चराते समय, दर्शन दिये थे और जो चिड़ियानाथ के शिष्य एवं भर्तृहरि की परम्परा के नाथपन्थी रहे। इनके भी कुछ फुटकल पद उपलब्ध हैं, जिनमें इनकी विचारधारा बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई दीख पड़ती है।

परम्परा का साम्प्रदायिक रूप

नाथ सिद्धों की परम्परा के क्रमिक विकास का इस प्रकार अध्ययन करने पर हमें ऐसा लगता है कि इसका जो रूप, अपने प्रारम्भिक युग में रहा उनमें समय पाकर कुछ न कुछ

परिवर्तन भी होता गया है। इसके प्रवर्त्तकों अथवा प्रमुख प्रचारकों की साधना अत्यन्त गहरी रही, उन्होंने गम्भीर आत्मचिन्तन किया था, अपने महान् व्यक्तित्व के बल पर उन्होंने इसे सर्वप्रथम आगे बढ़ाया था। परन्तु आगे चल कर उनके शिष्य प्रशिष्यों में बहुत कम ऐसे महापुरूष हुए, जो इनके उच्च आदर्शों के अनुरूप, एक समान कार्य कर सकें। इनमें कदाचित् उतनी मौलिकता नहीं आ सकी, प्रत्युत इन्होंने अधिकतर अपने उन पथ प्रदर्शकों के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए, उनके अनुकरण को ही विशेष महत्व दिया। फलतः प्रारम्भिक युगीन सिद्ध पुरूषों का सर्वप्रथम उद्देश्य भी इनकी आँखों के सामने से क्रमशः ओझल होता चला गया और सम्भवतः देश में भक्ति–आन्दोलन का प्रचार बढ़ते जाने के कारण, उसका स्थान बहुत कुछ उनके कल्पित शिव रूप के प्रति भक्तिभाव–प्रदर्शन मात्र ने ले लिया। इसके सिवाय, इस परम्परा के क्रमिक विकास की ओर ध्यान देने पर हमें ऐसा अनुमान करने का भी आधार मिल जाता है कि विशिष्ट नाथसिद्ध को उपास्यवत् स्वीकार कर, उनके प्रति पृथक–पृथक रूप में देवत्व भाव प्रदर्शित करने लगने पर ही, किसी समय पर परम्परा के अन्तर्गत विभिन्न पंथों की भी सृष्टि आरम्भ हुई होगी तथा इनकी पृथक–पृथक संस्थाएँ निर्मित की गई होंगी। तदनुसार अनेक मठों की स्थापना होती चली गई होगी, अनेक साधना वा समाधि वाले स्थल पवित्र तीर्थों का रूप ग्रहण करते चले गये होंगे तथा विविध अनुश्रुतियों का विस्तार भी होता चला गया होगा, जिससे वास्तविक तथ्य के अधिकाधिक आच्छादित होते जाने का अवसर आता गया होगा और अन्त में वर्तमान स्थिति भी आ गई होगी, जिसका प्रत्येक जिज्ञासु को आज़ सामना करना पड़ रहा है। परन्तु इस प्रकार की प्रवृत्ति किस निश्चित समय में सर्वप्रथम जागृत हुई होगी, इस काल में कुछ भी पता नहीं। यदि नाथसिद्धों की बानियाँ के अन्तर्गत संगृहीत "धौड़ाचौली जी की सब्दी" को हम उनकी कोई प्रामाणिक रचना मान लें तथा उनके नाम का अमरवत् उल्लेख हठ योगप्रदीपिका में किये गये होने के कारण, उनके आविर्भव काल को उसके रचनाकाल अर्थात् संभवतः १४वीं शती से पहले स्वीकार कर लें तो यह कहा जा सकता है कि उनके समय तक कम से कम रावल, पागल, बनखंड़ी, अगमागम, आई पंथी, पंक पन्थ, धजे एवं गोपाल जैसे ६८ विभिन्न पन्थों का संगठन हो चुका होगा तथा इन सभी का समावेश भी श्री गोरखनाथ पंथ के अन्तर्गत किया जाता होगा।[९९] इस रचना के कवि धोड़ाचोली ने अपने को मच्छिन्द्र का दास बतलाया है, जिसके वह उपर्युक्त प्रारम्भिक युग का भी हो सकता है। किन्तु उसके द्वारा किये गये "गोरखनाथ पन्थ" जैसे प्रयोग से इस बात में कुछ संदेह भी होने लग जाता है। उस समय ऐसा कोई पंथ नहीं रहा होगा।

नाथसिद्धों वाली परम्परा के द्वादशपंथ की चर्चा हम इसके पहले ही कर आये हैं, जहाँ पर हमने यह भी संकेत कर दिया है कि इस प्रकार की साम्प्रदायिक शाखाओं की विभिन्न सूचियाँ भी मिलती हैं जिनके सभी १२ नामों में कभी–कभी महान् अन्तर दीख पड़ता है।[१००] वास्तव में ऐसी संस्थाओं के विभिन्न केन्द्र देश के प्रायः सभी प्रान्तों में वर्तमान हैं और उनमें से कोई २ का पारस्परिक संबन्ध भी चला करता है। फिर भी कहा जाता है कि श्री गोरक्षनाथ जी के भारत कें चार प्रधान मठ उत्तर में गोरक्षटिल्ला, पूर्व में गोरक्षपुर, दक्षिण में कदलीबन (बंगलौर) एवं पश्चिम में गोरखमण्डी[१०१] हैं और इन्हें कदाचित् उसी प्रकार महत्व दिया जाता है जैसे दशनामी सन्यासियों की ओर से अपने चार अर्थात् श्रृंगेरीमठ (दक्षिण) गोबर्द्धनमठ (पूर्व) जोशीमठ (उत्तर)

एवं शारदामठ (पश्चिम) के लिए कहा जा सकता है। परन्तु यह भी कहा जाता है कि वहाँ पर जितना सुव्यवस्थित संगठन है उतना यहाँ पर नहीं पाया जाता। केवल इतना प्रसिद्ध है कि उनका संबंध भी किसी 'भेक बारह पंथ' नामक संस्था द्वारा परिचालित हुआ करता है, जिसका प्रधान केन्द्र हरिद्वार में वर्तमान है। इसकी प्रबन्ध समिति के सदस्य वहाँ के कुम्भ मेले के अवसर पर, बारह वर्षों पर द्वादशपंथों में से चुनकर ले लिये जाते हैं तथा उक्त संस्था का अध्यक्ष महन्त प्रत्येक पन्थ की ओर से बारी–बारी से नियुक्त किया जाता है और वह १२ वर्षों तक उस पद पर आसीन रहा करता है। उसे इसके लिए १२००) देने पड़ते हैं और उक्त विधि के सम्पन्न हो जाने पर उसे जोगेश्वर के नाम से अभिहित किया जाने भी लगता है। इस प्रकार दशनामी की भाँति इसका भी प्रभाव क्षेत्र अखिल भारतीय ही कहा जा सकता है। सारांश यह कि नाथसिद्धों की जिस परम्परा में पहले व्यक्तिगत साधना, आध्यात्मिक जीवनादर्श एवं नैतिक प्रचारादि को विशेष महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था, उसमें काल क्रमानुसार बहुत कुछ परिवर्तन हो गए दीख पड़ते हैं और उनके स्थानों पर क्रमशः सामाजिक संगठन, पारस्परिक सम्बन्ध व्यवस्था तथा विविध सुधार विषयक प्रश्नों की ओर ध्यान दिया जाना अधिक आवश्यक समझा जाने लगा है। जहाँ कभी निवृत्ति को प्रधानता देते हुए ही, प्रवृत्ति पर कोई विचार किया जाता रहा, वहाँ उसे अब केवल गौण महत्व दिया जाने लगा है और प्रधानता प्रवृत्ति को प्राप्त हो गई है तथा युग–धर्मानुसार इसी के द्वारा प्रभावित दृष्टिकोण से, सारी बातों का पुनर्मूल्यांकन भी आरम्भ हो गया है। जिस कारण इसके मौलिक आदर्श एवं उद्देश्य में भी बहुत कुछ अन्तर का आ जाना असम्भव नहीं कहला सकता। वास्तव में इस प्रकार का परिवर्तन केवल नाथ सिद्धों की परम्परा की ही विशेषता नहीं, प्रत्युत यह ऐसे अन्य धार्मि.क वर्गों में भी इस समय पूर्ण रूप से लक्षित होता है। तदनुसार इसका आधुनिक रूप हमें उन अन्य सभी से अधिक भिन्न नहीं ठहराया जा सकता, जो आज हिन्दू समाज के अंग बने पाये जाते हैं और जिनकी अपेक्षा उसके प्रति इसकी कम देन भी स्वीकार नहीं की जाती।

---

१. "अर्था देवा अस्थ विसर्जने नाथाः" (अ० ६०, सू० १२६, पं० ६)।
२. "भूमि यो मन्यते नाथ तं पिशाचं प्रदर्शय" (कां० ४ सू० २०ए मं० ६)।
३. "विश्वेदेवा मम नाथं भवन्तु" (कां० ६, सू० २, मं० ७)।
४. "अत्ताहि अत्तवो नाथो, कोहि नाथो परों सिया।
अत नाव सुदनतेन, नाथं लगति दुल्लभं" (१२–४)।
५. नाथूराम प्रेमी : "जैन साहित्य और इतिहास" (बम्बई १६५६ ई०) पृ० ५०२ – ३।
६. "गोरख विजय" (परिचय) – सं० री पंचानन मण्डल, कलिकाता, बंगाब्द १३५३।
७. "नाथृ नाधृ याञ्चोपतापैश्वर्याशीःषु"–वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (बम्बई, १६०४ ई०, पृ१६३)
८. "यं देशयन्ति वै नाथा : प्रत्यात्मगति गोचरम्," पृ० ५४–५।
९. डॉ० भरत सिंह उपाध्याय "ध्यान सम्प्रदाय" (ने०प०हा० दिल्ली), पृ० १४५।
१०. दे० "बुद्धो दसवलो सत्था, सव्वन्च दियदुत्तमो।
मुनिन्दो भगवा नाथो, भक्खुयो अंगीरसो मुनि। इत्यादि।
११. दे० दीघनिकाय (हिं० अ०) पृ० ३०० तथा ३१२)।

१२. "जे किअ णिच्चल मण-रअण, णिअघरिणी लइ एत्थ।
सोह वाजिर णाहु रे, मयि बुत्तो परमत्थ" – (काण्हपा दोहा कोश, ३१)।
१३. "आगे नाव न भेला दीसइ, भन्ति न पुच्छसि नाहा" – शांतिपा चर्या, १५।
१४. "जत्तवि चित्तहि विस्फुरइ,तत्तवि णाह सरूआ" – (सरहपा दोहा कोश, ७२)
१५. "अस्मिन्मार्गे अद्वेतो परिवर्त्ती नाथो देवता प्राप्य निराकार ज्योति नाथो ध्येयः साकार नाथः उपास्योऽथच आदि गुरू।" पृ० ५१ (गो०सि०सं०)।
१६. "चत्वारो गुरवः मत्स्येन्द्र, ईश्वर, चतुरंगी, गोरक्ष इति स्वरूपा" पृ० ५१ (गो०सि०सं०)।
१७. "नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू" (सवदी २६, पृ० १६)।
१८. "हंसै षेलै न करै मनभंग। ते निस्चल सदा नाथ के संग" (सबदी ८, पृ० ४) तथा माता पिता की मेटो घात। ऐसा होई बुलावै नाथ" (सवदी १८०, पृ० ६६)।
१९. "विद्याधराप्सरायक्षरक्षो गंधर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमीदेवयोनयः।।" (१-११)
२०. "अद्रे शृंग हरति पवनः किस्विदित्युन्मुखीभिः।
दृश्टोत्साहश्चकित चकितं मुग्धसिद्धांगनाभिः।। "पूर्व मेघदूतम् (१३)।
२१. चिन्तामणि विनायक वैद्य : "दि रिडिल आफ रामायण" (पृ० ६४)।
२२. "स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसैधाः स्तुवन्ति, त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः" (११-२१)
२३. "सिद्धानां कपिलो मुनिः" – वही (१०-२६)।
२४. "भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।। (मानस बा०कां०)।
२५. "सिद्ध विरक्त महामुनि योगी। तेपि कामवश भए वियोगी। वही, बा० कां०।
२६. "आर्यक नामा गोपालदारकः सिद्धादेशेन समादिष्टो राजा भविष्यति (अं० २)।
तथा "चन्दनं भोःस्मरिष्यामि सिद्धादेशस्तथा हि यः।
२७. "जन्मौषधिमंत्रतपःसमाधिजाः सिद्धय" (कैवलयपाद १)।
२८. अंजन गुटिका पादुका, वातुभेद बेताल।
बज्र रसायन जोगिनी, मोंहि सिद्ध यदि काल।। – सत्यहरिश्चन्द्र (नाटक) अं० ४।
२९. 'पुष्करैर्नियमैस्तीव्रै : सेव्यमानो न सिद्धच्यति।
सर्वकामोपभोगैस्तु,सेवयंश्चाशु सिद्धयति। "गुह्य समाज तंत्र" (७-८७)
३०. "प्राापारमिता सेव्या सर्वदा मुक्तिकांक्षिभिः" ।।२२।।
"ललनारूपमास्थाय, सर्वत्रैव व्यवस्थिता।।२३।। प्रज्ञोपायाविनिश्चय सिद्धि" (पृ० २२)
"चाण्डाल कुल सम्भूतां डोम्बिकां व विशेषतः।
जुगुप्सित कुलोत्पन्नां, सेवयन् सिद्धिमाप्नुयात्" शान्तिपा।
३१. "एषा अष्ट महासिद्धि सिञ्झह, उजूवाट जायन्ते।" शान्तिपा।
३२. "जे कि णिञ्चल मणरयण, णिअधरिणी लइ एत्थ।
सोह वाजिर णाहुरे मयिं वुत्तो परमत्थ" ।।३१।। कण्हपा (दोहा कोष)।

३३. "सिद्धंत पुराणहि वेय बढ़ बुज्झंतह णउ भंति।
आणंदेण जाम गउ, ता बड़ सिद्ध महंति"।।१२६। पाहुड़दोहा।

३४. "दिव्यौघाश्चं मानवौधाश्च सिद्धौघाश्च समागता" – ललितासहस्रनाम।

३५. दे० उनके क्रमशः पृ० ११५, पृ० ७६ एवं पृ० २४।

३६. ज्योतिर्भूषण वी०वी०रमण शास्त्री "दि डाक्ट्रिनल कल्चर ऐंड ट्रेडीशन आफ दि सिद्धाज" (कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया, भा० ४, १९५६ ई०, पृ० ३०५–६)।

३७. उदाहरण के लिए दे० राहुल सांकृत्यायन – "पुरातत्व निबन्धावली" (किताब महल, प्रयाग, १९५८ ई०) पृ० १३२–३४।

३८. "गिगनि मंडल मैं गाय बियाई, कागद दही जमाया।
छाछि छांड़ि पिंडता पीवीं, सिधां माषण षाया।।१९६।।
–गोरख–बानी (हि० सा०सं०) प्रयाग, सं० १९९६), पृ० ६६

३९. दे० सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, षष्ठोपदेश (३–२०)।

४०. "गोरक्षा सिद्धान्त संग्रह" पृ० १८।

४१. "श्री सिद्धनाथसंहिता, विवेक सागर" (भूमिका पृ० ४) एवं मूल पृ० ३५, ४३ आदि।

४२. "सिद्धसिद्धान्त पद्धति" षष्ठोपदेश, श्लोक ६७, पृ० ३४

४३. "जी० डब्लू० व्रिग्सः "गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज" (कलकत्ता १९३८ ई.), पृ. ६३

४४. "गोरक्ष ग्रन्थमाला" (५५) – गोरक्षटिल्ला वाराणसी, १९५६ ई.। (ग्रन्थपरिचयः पृ. २)।

४५. "महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका" (सेप्टे बर, १९५३ ई०) पृ० २६।

४६. पद ३८ पृ० १३३।

४७. "श्री सिद्धनाथ संहिता" (भूमिका पृ० ४)

४८. रा० चिं ढेरे : "श्री गुरू गोरक्षनाथ चरित्र आणि परम्परा" के पृ० १०१ पर "नाथ–लीलामृत" ग्रन्थ से उद्धृत।

४९. पृ० १६२, १६३ व २८८ (दे० डा० कल्याणी मल्लिकः नाथ संप्रदायेर इतिहास आदि कलिकाता, १९५० ई०, पृ० ३६)।

५०. रा० चि० ढेरे : "श्री गुरू गोरक्षनाथ "चरित्र आणि परम्परा", पृ० २५।

५१. ए०पी० करमरकरः "दि व्रात्य आर द्रावीडियन सिस्टम्स" (लोन वाला १९५० ई०) पृ० २४८

५२. शशिभूषण दास गुप्त "आब्सक्योर रेलिजस कल्ट्स" (कलकत्ता, १९४६ ई० पृ० २२३।

५३. गोपीनाथ कविराज "सरस्वती भवन स्टडीज" भा ६ (बनारस १९२७ ई०) पृ० ३०।

५४. राहुल सांकृत्यायन : "(पुरातत्व निबन्धावली" पृ० १३२।

५५. "कौलज्ञान निर्णय" (इंट्रोडक्शन, पृ० २७–२८)।

५६. वही, पृ० ६ पर उद्धृत "तंत्रालोक" (भा० १ पृ० २५) से।

५७. वी०एस० पाठक : "शैव कल्ट्स" इ० (वाराणसी, १९६० ई०) पृ० ५६ पर उद्धृत "एपिग्राफिका इंडिका (१ पृ० ३८४) से।

५८. दे०"वृहन्नारदीय पुराण" (उत्तर भाग) अ० ६६ के उद्धरण (सिद्धानाथ संहिता), पृ० १४–५७

५९. "तत्र सह्याचलस्याधः प्रदेशे दशयोजने।

प्रख्यातं मामकं धाय कदली यत्र तिष्ठति।।" २४।। (कंदली मंजुनाथ माहात्म्य पृ० ३३)।

६०. "माइथालोजीज आफ मेमरी ऐंड फारगेटिंग नामक मर्सिया, इलिएड का निबन्ध हिस्ट्री ऑफ रेलिजनस–भा०२ नं० २ (शिकागो, १६६३ ई०)।

६१. दे० श्लोक २ व ८६। ६२–दे० राहुल सांकृत्यायन "पुरातत्व निबन्धावली", पृ० १३४।

६३. वही, पृ० १५१। ६४–दे० अ० ५६ श्लो० २–५। ६४–सरस्वती भवन स्टडीज, भाग ६।

६६. "साखि करिब जालन्धरि पाए"। च० २४। ६७–"काण्ह कापाली योगी पइठ आचारे" वही च १६। निघिण काण्ह कापाली योग लांग वही च १८।

६८. "पुरातत्व निबन्धावली पृ० १५२। ६६ – "नाथ सिद्धों की बानियाँ" पृ० ५२–४।

७०. नाथ सिद्धों की बानियां पृ० १३–५। ७१–दे० नाथसिद्धों की बानियां, पृ० ३६–४७।

७२. ओम् नमो सत्वादिनाथाय, मीननाथाय वै नमः। नमश्चौरंगिनाथाम् सिद्ध बुद्धाय धीमते।।१।। डॉ० कल्याणी मल्लिक, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, पूना संस्करण पृ० ४८।

७३. चत्वारो गुरूवः मत्स्येन्द्र ईश्वर चतुरंगी गोरक्ष इति स्वरूपाः (गो०सि०सं०पृ० ५१)।

७४. दे०पृ० ४८। ७५ – वही, पृ० ४६। ७६ – दे० डॉ० रागेय राघव, गोरखनाथ और उनका युग : पृ० ४५–५७। ७७–पृ० ६७–११३। ७८–पृ० २५–३५ं ७६–पृ० १०.१२। ८०–पृ० ६७। ८१–पृ० ६–१०।

८२. दे० रा० चि० ढेरे द्वारा रचित श्री गुरू गोरक्षनाथ आदि के पृ० १४०–१ पर उद्धृत अंश

८३. रा०चि० ढेरे : श्री गुरू गोरक्षनाथ आदि पृ० १४७।

८४. स्वामी ब्रह्मानन्द : जभदेव चरित्र भानु पृ० ३६।

८५. दे० गोरष हमारा गुरू बोलिये (४) जन हरदिास नाथ का बालक (६) तथा सिद्धि गोरख का हाथ (५) वाणीं पृ० ३५६–७।

८६. यशोनाथ पुराण पृ० ३३ं ८७–सिद्ध चरित्र पृ० ६७ ८८–दे० हम दरवेश निरंजन जोगी, जुग जुगरा अगवाणी। आदि, वही, पृ० ६६। ८६–बड़थ्वाल, योगप्रवाह, पृ० २०३ं ६०.– बूझि कहते लषमण वाला (नाथसिद्धों की बानियां, पृ० ११६) ६६–दे० वही, पृ० १८ (पृ०६१–२) ६२–वही, पृ० ६४–६। ६३–वही पृ० १२–३। ६४–नाथसिद्धों की बानियाँ, पृ० ५५–६२। ६५–वही पृ० ७०–६७।

६६. डा० हीरालाल माहेश्वरी अध्ययन और अन्वेषण, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, पृ० १२३–३८

६७. जीव मसझोतरी (पारीक सदन रतनगढ़ सं० २००५) पद्य ५७, पृ० १७।

६८. दीनदयाल ओझा – जनपदीय संत और उनकी वाणी (मूमल प्रकाशन, जेसलमेर), पृ० २२

६६. नाथसिद्धों की बानियां पृ० २–४। १००–सिद्ध संहिता–विवेक सागर (बीकानेर सं० २०२१) पृ० ३३०। १०१–सिद्ध संहिता–विवेक सागर (बीकानेर सं २२०१) पृ० ३३०।

शैव मत में अमरत्व

डॉ० राजबली पाण्डेय

धर्म अपने आप में एक स्वायत्त विधा है जिसे प्रमाणित करने के लिए धर्मेतर किसी अन्य क्षेत्र का समर्थन आवश्यक नहीं। धर्म के प्रामाण्य में साक्षात् अनुभूति से ही काम लिया जाता है। प्रत्यक्ष जगत् के बाहर की वस्तुओं की प्रामाणिकता के लिए भी हमें किसी इन्द्रियातीत माध्यम का ही सहारा लेना पड़ता है। भौतिक विषयों का क्षेत्र स्वयं में संकीर्ण होता है, जिसे इन्द्रियानुभव अथवा तर्क के सहारे समझा जा सकता है। परन्तु अभौतिक या पारमार्थिक क्षेत्रों में इन सीमित साधनों से सफलता नहीं मिलती। अध्यात्म का क्षेत्र भौतिक क्षेत्रों से भिन्न तथा परे है। भौतिक विज्ञान प्राकृतिक नियमों से नियंत्रित होता है। मनोविज्ञान तथा तर्क–शास्त्र जैसे विज्ञान भी अध्यात्म के केन्द्र में नहीं पहुँच पाते, वे केवल परिधि स्पर्श कर रह जाते हैं। पारमार्थिक विषयों के अभिप्राय को जानने के लिए आवश्यक है कि हम इन्द्रियानुभव से ऊपर उठकर अतीन्द्रिय ज्ञान का सहारा लें। अमरत्व भी एक ऐसा विषय है जिसके बारे में ज्ञान इन्द्रियानुभव–तर्क से नहीं, अपितु इन्द्रियातीत बोध से प्राप्त होता है।

तर्कप्राण अथवा अज्ञेयवादी बौद्धों तथा चार्वाकों के अतिरिक्त भारत के सभी धर्म–दर्शनों में आत्मा के अमृतत्व का सिद्धान्त मान्य है। चार्वाक भी अन्त में जड़ प्रकृति तथा चैतन्य में अविच्छिन्नता मानते हैं तथा बौद्ध दर्शन में क्षणभंगवाद के होते हुए भी योगाचारों अथवा विज्ञानवादियों ने आलय विज्ञान तथा माध्यमिकों ने शून्य (सदसद्विलक्षण) की सत्ता में विश्वास किया। शैव मत वैदिक तथा ईश्वरवादी परम्परा के अन्तर्गत आता है, जिसमें शिव को परमानन्द स्वरूप परम सत्ता तथा जीव को शिव से अभिन्न तथा अमृतरूप माना गया है।

अमृतत्व विषयक विचारों के स्रोत उपनिषदों में मिलते हैं। उपनिषदों में जैसे समस्त हिन्दूधर्म दर्शन का प्रारम्भ मिलता है, उसी प्रकार शैवमत के अमृतत्व विचार का प्रारम्भ भी उपलब्ध है। जबसे मनुष्य ने इस सृष्टि के स्वरूप तथा कार्यों के बारे में चिन्तन प्रारम्भ किया, तभी से उसे ज्ञात होने लगा कि इस प्रतिक्षण परिवर्तनशील जगत् के पीछे कोई एक अपरिणामी सत्ता अवश्य होनी चाहिए जो सारे परिवर्तनों तथा प्रवाहों का आधार तथा नियंत्ता है। इसी नियन्ता (ऋत) के कारण जगत् में भौतिक तथा नैतिक नियमन संभव है। ईशावास्य उपनिषद् का प्रथम श्लोक उद्घोष करता है :

"सम्पूर्ण विश्व ईश्वर से ओत प्रोत है। संसार में जो कुछ भी है वह चलायमान है। अतः इस जगत् का त्याग पूर्वक भोग करो। लोभ न करो, यह धन किसका है (अर्थात् किसी का नहीं)?"[१]

उपर्युक्त सत्य का उद्घाटन स्वयं परमब्रह्म परमेश्वर जीव के सम्मुख करते हैं, जो भौतिक सुखों का भोक्ता है। यह श्लोक परमात्मा व जीवात्मा के बीच संवाद है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि जहाँ एक तरफ भौतिक जगत् के विषय परिणामी क्षणिक व नश्वर हैं, वहाँ दूसरी ओर इनका भोक्ता जीवात्मा अपरिणामी व अमृत है। जीवात्मा भौतिक विषयों को प्राप्त कर सुखी होता है, दुःख भोगता है, उनके बन्धन में पड़ता है तथा सम्यक् ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त उनसे मुक्त

भी हो जाता है। ज्ञान से यहाँ तात्पर्य हे जीव और जगत् का परमात्मा से एकत्व का ज्ञान। उपनिषद् में कथन है कि

"परमात्मा का निरन्तर साक्षात्कार करने वाले योगी के लिए कौन सा मोह या शोक रह जाता है ?"[२]

केनोपनिषद् में मर्त्य जगत् से उठकर अमृतत्व प्राप्ति की इच्छा का स्पष्ट रूप से उल्लेख है :

'किसके द्वारा प्रेरित हुआ यह मन विषयों में गिरता है ? किसके द्वारा नियोजित हुआ प्राण चलता है ? किसके द्वारा प्रेरित की हुई वाणी को बोलते हैं ? कौन सा प्रसिद्ध देवता नेत्रों और कानों को नियुक्त करता है ?[३] प्रश्न का सार है :

प्राणी का वास्तविक नियन्ता कौन है ? क्या शरीर तथा इन्द्रियों का समूह इसका नियंत्रक है ? अथवा इन समूहों से परे कोई स्वतंत्र सत्ता है जो मन इत्यादि के माध्यम से इनका नियंत्रण करती है ? और इसका उत्तर है :

"जो मन का मन है, प्राण का प्राण है, वाक्–इन्द्रिय की वाणी है, कर्णेन्द्रिय का श्रोत्र है और चक्षु का चक्षु है, धीर ज्ञानी पुरूष उसी का ज्ञान प्राप्त कर तथा इस लोक से ऊपर होते हुए मुक्त और अमर हो जाते हैं।"[४]

कठोपनिषद् में यमराज से नचिकेता आत्मा की अमरता के विषय में अत्यन्त साहसपूर्ण प्रश्न करता है :

"मृतकों के सम्बन्ध में जो यह संशय है कोई कहता है कि मरने के पश्चात् आत्मा जीवित रहता है, कोई कहता है कि आत्मा जीवित नहीं रहता. मैं आप की कृपा से इस तथ्य को भली भाँति जान लूँ, यही मेरा तृतीय वर है।"[५]

यमराज इस प्रश्न का उत्तर देने में हिचकिचाते हैं और नचिकेता को इससे विरत करने के लिए अनेक प्रलोभन देते हैं, परन्तु अंत में विवश होकर उत्तर देते हैं :

"आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, वह तो नित्य है। वह स्वयं न किसी द्वारा उत्पन्न हुआ है और न इसके द्वारा कोई भी उत्पन्न हुआ है। वह अजन्मा, नित्य तथा सनातन शाश्वत है, शरीर के नष्ट होने पर भी यह नहीं मरता।"[६]

"जो प्राणी इस जीव के हृदय–गव्हर में स्थित सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं महान् से भी महान् परमात्मा को तथा उसकी महिमा को देख पाता है, उस कामना और शोक रहित व्यक्ति पर परमेश्वर की कृपा ही समझिये।"[७]

श्वेताश्वेतर उपनिषद् के निम्नलिखित श्लोकों में आत्मा के अमृतत्व का उल्लेख मिलता है। "सबके निर्वाह हेतु, सबके आश्रय–स्थान इस विस्तृत ब्रह्म–चक्र में आत्मा भ्रमण करता है। वह स्वयं को परमात्मा से भिन्न मानता है, परन्तु उस परमेश्वर द्वारा अपनाए जाने पर अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।"[८]

"प्रकृति नाशवान् है, इसका भोक्ता आत्मा अविनाशी है। इन दोनों को परमेश्वर अपने वश में रखता है। उस परमेश्वर में चित्त को अनुरक्त करने से जीव उसी में मिल जाता है, तदुपरान्त उसे मायावृत्ति नहीं होती।"[६]

इसी उपनिषद् में आत्मा के अमरत्व की एक सुन्दर उपमा के सहारे स्पष्ट किया गया है :

"मित्र भाव से युक्त तथा सदैव साथ रहने वाले दो पक्षी रूप आत्मा और परमात्मा एक ही वृक्ष पर निवास करते हैं, उनमें से एक (आत्मा) तो वृक्ष के फलों का स्वाद लेता है दूसरा (परमात्मा) उन फलों का त्याग कर देता है।"[१०]

उपर्युक्त श्लोकों में जीव के आध्यात्मिक अमरत्व का उल्लेख है। जीव के शरीर की अमरता का यहाँ कोई संकेत नहीं है। यहाँ शरीर की नश्वरता ही स्पष्ट होती है। शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। आत्मा इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह चाहे तो सम्यक् ज्ञान अथवा ईश्वर प्रसाद से जगत् के कारण परब्रह्म में लीन होकर एकाकार हो जाय अथवा अज्ञान पाश में फँसकर जन्म–जन्मान्तर के चक्र में भ्रमित होता रहे। आत्मा वास्तव में अमृत स्वरूप ही है, कुछ समय के लिए वह भले ही बंधन में रहे उसे मुक्ति अवश्य मिलती है, क्योंकि मुक्ति उसका स्वभाव है। उपनिषदों में पुनर्जन्म के जो विवरण मिलते हैं उनसे स्पष्ट होता है कि एक ही आत्मा अनेक शरीरों में जन्म लेता है। अतः आत्मा शरीर से भिन्न तथा स्वतंत्र सत्ता है, शरीर पर आश्रित नहीं है।

कालान्तर में उपनिषदों की पृष्ठभूमि में निम्नलिखित शैव संप्रदायों का विकास हुआ। (१) महापाशुपत (२) शैव सिद्धान्त (३) वीर शैव मत तथा (४) कश्मीर शैव मत। इन चार मतों के अतिरिक्त कापालिक व कालमुख जैसे अवैदिक या नास्तिक मतों का भी प्रारम्भ व प्रचलन हुआ। ये मत आत्मा और उसके अमृततव के विषय में अपने स्वतंत्र विचार रखते हैं। यहाँ हम शैव परम्परा के उपर्युक्त चार संप्रदायों में आत्मा के अमृतत्व–सम्बन्धी चिनतन का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

महापाशुपत

'सर्वदर्शन संग्रह' में माधवाचार्य (१४वीं शती) ने इस सम्प्रदाय पर विचार किया है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह मत १४वीं शती के पूर्व पर्याप्त समय से प्रचलित रहा होगा। इस मत के अनुसार समस्त सत्ता व व्यवहार को पंच कोटियों में विभाजित किया जा सकता है।

१. कारण (ईश्वर)
२. कार्य (जगत्)
३. योग (ईश्वर प्रणिधान)
४. विधि और
५. दुःखान्त।

आत्मविषयक विचार यहाँ दूसरी कोटि (कार्य) के अंतर्गत आते हैं। चराचर वस्तुओं से युक्त यह सम्पूर्ण जगत् पति (ईश्वर) का कार्य है। कार्य रूप जगत् ईश्वर पर आधारित है। कार्य के तीन विभाग हैं – विद्या (पशुत्व का ज्ञान) कला (पंच महाभूतों की उत्पत्ति तथा अवयवों में चेतना का संचार) एवं पशु (अज्ञान के कारण जन्ममरण के चक्र में पड़ा शरीरधारी जीव)। पति या शिव के दृष्टिकोण से सृष्टि के समस्त पदार्थ पशु हैं।

जीव अथवा पशु का परम लक्ष्य योग और विधि द्वारा अपनी शुद्धावस्था तथा ईश्वर के साथ पुनः संयोग प्राप्त करना है। यह अवस्था दुःखान्त की स्थिति है, जहाँ सम्पूर्ण दुःखों का निषेध हो जाता है। दुःखान्त की अवस्था के दो भेद हैं – अनात्मक तथा सात्मक। प्रथम प्रकार के दुःखान्त में दुःख का नाश तो हो जाता है परन्तु यह अवस्था केवल अभावात्मक या निषेधात्मक होने के कारण बहुत महत्व की नहीं प्रतीत होती। दूसरी अवस्था में आत्मा न केवल समस्त परिच्छिन्नताओं व दुःखों से मुक्त हो जाता, वरन् द्रव्य व क्रिया से मुक्त पूर्ण ऐश्वर्य को पुनः प्राप्त कर लेता है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जीव को लम्बी यात्रा करनी पड़ती है, तथापि इसका स्वरूप अस्थायी या क्षणिक नहीं है। आत्मा मलोंस आवृत अवश्य हो जाता है परन्तु उससे मुक्त होकर यह अपने नित्य व अमृत स्वरूप को निश्चित रूप से प्राप्त हो जाता है।

शैव सिद्धान्त

शैव सिद्धान्त का प्रचार दक्षिण भारत में विशेषतः तमिलनाडु में है। इस मत के आधार २८ आगम हैं। इस मत के भीतर भी अनेक विचारकों में आत्मा के स्वरूप को लेकर मतभेद है। कुछ एक सत्तावादी हैं तो कुछ अन्य् अनेक सत्तावाद में विश्वास करते हैं। इन सबमें जो सर्वाधिक प्रसिद्ध मत है उसकी मान्यता है कि ईश्वर, जीव तथा जगत् की अनादि काल से पृथक सत्ता रही है। धार्मिक साधना का उद्देश्य जीव को जगत् से विरक्त कर ईश्वर की ओर उन्मुख करना है। इन तीन तत्वों को शैव सिद्धान्त पति, पशु तथा पाश नामों से अभिहित करता है। प्रत्येक जीव मोह माया के पाश में बँधा पशु है, इस बन्धन के कारण ही जीव दुःख भोगता है। दुःख की उत्पत्ति अज्ञान व मलों से होती है तथा इन तीनों तत्वों के ज्ञान से जीव मुक्त हो जाता है। यह तत्वज्ञान पशुपति भगवान् शिव की कृपा से (अरूल्) से प्राप्त होता है। प्राश से मुक्त होने पर पशु अपने वास्तविक और शुद्ध रूप को प्राप्त कर आनन्द मग्न हो जाता है।

शिव महापुराण की वायवीय संहिता में पशु को सर्वात्मा अथवा विश्वात्मा का रूप बताया गया है। इसमें उल्लेख है कि बुद्धि अथवा तर्क के सहारे विश्वात्मा की सत्ता सिद्ध करना कठिन है। परन्तु व्यवहार–जगत् का अनुभव हमें एक ऐसी विश्वव्यापी सत्ता में विश्वास के लिए बाध्य करता है जो शरीर, बुद्धि तथा इन्द्रियों से भिन्न तथा परे हो। यह सत्ता शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होती। अनुभव–जगत् के सारे पदार्थ इसी सार्वभौम सत्ता की तरफ संकेत करते हैं। यह सत्ता अन्तर्यामी है तथा परिवर्तनशील जगत् के मध्य रहकर भी स्वयं अपरिवर्तनशील या अपरिणामी है। यह स्वयं अदृष्ट है परन्तु सबका द्रष्टा है। शरीर के साथ इसका सम्पर्क होने से इसमें मलों व क्लेशों का समावेश होता है तथा जन्म–मृत्यु के बन्धन में पड़ जाती है। यह सत्ता

अनेक रूपों में प्रकट या प्रकाशित होती है। तथा आश्रयानुसार विभिन्न मात्राओं में व्यक्त होती है। अंततः सभी जीव इस विश्वात्मा से अभिन्न होने के कारण नित्य तथा अमर हैं।

वीर शैव मत

इस सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रन्थ 'सिद्धान्त शिक्षामिणि' के अनुसार ब्रह्म सच्चिदानन्द रूप है। यह अभेदात्मक, अग्राह्य तथा अनंत है। जड़–चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् बीज रूप में इसी सर्वव्यापी सत्ता में समाहित है तथा बिना किसी बाहय उपकरण के जगत की उत्पत्ति इसी ब्रह्म से होती है। जगत्, ब्रह्म अथवा शिव में अव्यक्त अवस्था में रहता है तथा शक्ति के सहयोग से स्फुट होता है। 'षट्स्थल–सिद्धान्त' के अनुसार वीर शैव मत का प्रमुख लक्ष्य इस बात को स्पष्ट करना हैं कि जीव व जगत् का आधार शिव है। तथा ये दोनों शिव से भिन्न नहीं हैं। इस प्रकार सिद्धान्त वेदान्त के भेदाभेदवादियों में भी मिलता है। धर्म में इस भेदाभेद सिद्धान्त का तात्पर्य है कि ब्रह्म स्वेच्छया दृष्य जगत् तथा जीवात्माओं के रूप में प्रकाशित होता है। यदि जीवात्मा अनादि तथा अनन्त परम सत्ता का अंग अथवा अंश है तो निश्चय रूप से यह कहा जा सकता है कि वह स्वभावतः अमृत है।

काश्मीर शैव मत

कश्मीर में शैव मत पर उपलब्ध साहित्य के आधार पर इसके तीन (त्रिक) विभाग किये जाते हैं–आगम, स्पंद तथा प्रत्यभिज्ञा। आगम शास्त्र का उपदेश स्वयं भगवान् शिव ने दिया था, ऐसी मान्यता है। यों कश्मीर में शैव मत का आधार ग्रन्थ 'शिव सूत्र' है, जिसकी रचना नवीं शताब्दी में वसुगुप्त ने की थी। वसुगुप्त के शिष्य कल्लट ने स्पंदशास्त्र का विकास किया। प्रत्यभिज्ञा मत का प्रारम्भ सोमानन्द रचित 'शिव दृष्टि' से होता है। उत्पलदेव तथा अभिनव गुप्त ने प्रत्यभिज्ञा को विकसित रूप दिया।

कश्मीर शैव मत अद्वैतवादी है। इसके अनुसार शिव ही एकमात्र परम सत्ता है, समस्त सृष्टि उसी का आभास या प्रकाश है। ईश्वरवादी परिवेश में यह मत ऐसे दर्शन का प्रणयन करता है जो निषेधात्मक न होकर भावात्मक है। शिव समस्त जीवों तथा जगत का कारण तथा आत्मा है। शिव अपने को तीन रूपों में प्रकाशित करता है। पति, पशु तथा पाश। इसके प्रकटीकरण की निम्नलिखित पाँच कोटियाँ हैं : सृष्टि, स्थिति, सहृति, विलय तथा अनुग्रह। बिना किसी बाह्य निमित्त या उत्पादन के अपनी इच्छा शक्ति से शिव ये पाँचों कार्यो करता है। इन कार्यों के सम्पादन करने की शक्ति को 'शिव–शक्ति' या 'पराशक्ति' कहते हैं। जीव शिव का प्रकाश होने के कारण नित्य व अमृत है। सृजन के अन्तर्गत जीव जब शरीर से युक्त होता है तब सुख–दुख का अनुभव करता है। अंत में शिव की कृपा से ही वह अपने स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान करता है। प्रत्यभिज्ञा के पश्चात् वह शुद्ध बुद्ध तथा मुक्त हो जाता है। मृत्यु का यहाँ प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता, क्योंकि चेतन आत्मा सदा शिवरूप सार्वभौम चैतन्य में स्थित रहता है।

भारत के अन्य मतों की भाँति शैव मत का अमरत्व विषयक सिद्धान्त भी साक्षात् अनुभूति

पर ही आधारित है। जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है, यह विश्वास की वस्तु है, तर्क का विषय नहीं। सांसारिक उलझनोंतथा निराशाओं में फँसे मनुष्य के लिए अमृतत्व एक ऐसी आशा है, जिसके सहारे वह इन कष्टों और विपत्तियों को झेल सकता है। अमृतत्व के विचार को पिछड़े लोगों का अन्धविश्वास अथवा भ्रम कहना अपने ही अज्ञान का परिचय देना है। यह एक ऐसी मान्यता है जो अनादि काल से ऋषि–मुनियों, संतों और दार्शनिकों की अनुभूति से प्रमाणित है।

卐

---

१. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन मुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

२. तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।।ईश, ७।।

३. केनेषितं पतति प्रेरितं मनः केन प्राणः प्रथमं प्रैतियुक्तः।
केनेषितां बाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति। केन, १।।

४. श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुः अतिमुच्य धीराः प्रेत्याऽस्माल्लोकाद् अमृता भवन्ति।। केन–उप०–२।।

५. येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके नायंमस्तीति चैके। एतद् विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः।। कठ, १–१–२०।।

६. न जायते म्रियते वा विपश्चिन् नायं कुतश्चिन् न बूभव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। कठ, १–२–१८।।

७. अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्ममास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्
तमक्रतुः पश्चति वीतशीको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।। कठ, १–२–२०।।

८. सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो म्राम्यते बह्मचके।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततः तेनामृतत्वमेति।। श्वे० ६।

९. क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद् योजनात्तत्वभावाद् भूयश्चाते विश्वमायानिवृत्तिः।। श्वेताश्वतर, १०।।

१०. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः टिप्पल स्वाद्वति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।। श्वे० ४ए ६।।

गोरखपंथी योगियों की वेशभूषा

डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्ता

गोरखपंथ का साहित्य अभी तक सम्यक् रूप से प्रकाश में नहीं आया है और न उस साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन ही किसी ने प्रस्तुत किया है। इस कारण गोरखपन्थी योगियों की वेशभूषा के सम्बन्ध में इस साधन से कोई प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। "गोरखनाथ और उनका युग" नामक पुस्तक में रांगेय राघव ने "अभैमात्रा योग" नामक किसी गोरखपन्थी ग्रन्थ के आधार पर, जिसका उन्होंने सन्दर्भात्मक कोई परिचय नहीं दिया है, योगियों के वेश के प्रसंग में एक सूची प्रस्तुत की है, जिसमें निम्नलिखित वस्तुओं का उल्लेख है :

कोपीन, मेखली, जगौटा, मुद्रा, कन्था, अकुलपन्थ, अकुलमार्ग, सहज आस, आसन, संयम, पवन, युक्ति, सत्य, क्षमा, जरणां, अधारी, अन्तर्गति, झोली, धीरज, डण्डा, फाहुडी, चक्र, तप, कमण्डल, भोजन, रहस्य–विचार, दया, पुस्तक, विचार, रसायण, सरबंगी, कला, विद्या, नगरी, निर्भयता, बनखण्ड, मढ़ी, देवता (जो अतीत है), ज्ञानदीपक, अकल्प रहनी, अयाचित, भिक्षा, शब्द, सींगी, अनाहद नाद, कांगुरी, सरोवर, प्याला, ऋद्धि, मुक्ति, ध्यान, समाधि, पेड़, पल्लव, युग।[1]

इस सूची में वेश सँवारने की सामग्री के अतिरिक्त ऐसे शब्द भी हैं, जिनका वेशभूषा से सम्बन्ध न होकर योगी के आचार–व्यवहार और चेष्टाओं से है। इस सूची से योगी–वेश की किसी प्रकार की साकार कल्पना उपस्थित नहीं होती। सूरदास ने अपने भ्रमर–गीत में गोपियों के माध्यम से योगी–स्वरूप का एक हल्का सा चित्र इस प्रकार उपस्थित किया है :

वै हरि कठिन कठिन हौ ऊधौ तुम्हें कह्यो नहि चहिये।
जिनसौं भेंट करी रसरासनि, तिनकौं, जिनकौं जोग पढ़ैयै।।
जिनसौं बचन रसिक रस बोलत, तिनसौं कटुक बखानत।
तुम नीकैं कै वेई ऊधो, और न कोऊ जानत।।
जिन कानन कंचन के भूषन, जरि जराय पहिरावत।
अब तिन कानन मुद्रा मोहन, तुम्हरै हाथ पठावत।।
जिन अंगनि चन्दन लपटैयत, करियत अंग सुहाए।
तिनकों छार मधुप सुनि गोविंद, तुम्हरे हाथ पठाए।।
जिंहिं सिर डारि फुलेल चंप जल, मलि मलि आप न्हवावैं।
तिहिं सिर कौं तुम सों कहिं पठयो, मधुकर जटा बनावैं।।
सोभित चीर दच्छिनी जिंहिं अंग, भगुए तिन्हैं रंगावै।
तुम मधुकर बानत सुखकारी, जे पाटम्बर लावैं।।[2]

कबीर ने भी अपनी बानियों में जोगी के वेश के कतिपय उपकरणों का उल्लेख किया है :

जो जोगी जाके मन में मुद्रा, राति न करई निद्रा।
मन में आसन मन में रहणां, मन का जप तप मनसू कहणा।।

मन में पपरा मन में सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी।
पंच परजारि भरम कर भूका, कहै कबीर सो लहसै लंका।[3]
या जोगिया की जुगति जु बूझै,
राम रमैं ताको त्रिभुवन सूझै।
परकट कन्था, गुपत अधारी, तामैं मूरति जीवन प्यारी।।
है प्रभु नेरे खोजैं दूरी, ज्ञान गुफा में सिंगी पूरी।
अपर बेलि जो छिन छिन पावै, कहै कबीर जो जुग जुग जीवै।।
जोगिया तन को जन्त्र बजाइ, जय तेरा आवागमन मिटाइ।
तत कर ताँति धर्म कर डांडी, सत की सारि लगाइ।।
मन करि निहचल आसंण निहचल, रसना रस उपजाइ।
चित कर बटवा तुचा मेखली, भसमें भसम चढ़ाइ।।
तजि पाषंड पाँच करि निग्रह, खोजि परम पद राइ।।
हिरदै सींगी ग्यान गुणि बाँधो, खोजि निरंजन साचा।
कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति बिना प्यंड काचा।।[4]

सूरदास और कबीर की इन पंक्तियों में जिन योगियों के उपकरणों का उल्लेख है, उनका सम्बन्ध गोरखपन्थ से है, इसका स्पष्ट निर्देश कहीं उपलब्ध नहीं है। अतः इन पंक्तियों के आधार पर गोरखपन्थी योगियों की वेशभूषा की कल्पना निश्चित रूप से नहीं की जा सकती। किन्तु सौभाग्यवश चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में मुसलमान कवियों द्वारा रचे गये प्रेमाख्यान काव्यों यथा—चन्दायन, मिरगावती, पदमावत, मधुमालती आदि में नायकों के योगी—वेश धारण करने की जो चर्चा है, उनमें स्पष्टतः गोरखपन्थ का उल्लेख है और उसके योगियों के वेश की विस्तृत चर्चा है।

मौलाना दाऊद ने "चन्दायन" में इसकी चर्चा इस प्रकार की है :

सुवरन फटिक मुंदरा सर सेली। कण्ठ जाप रूदरा क मेली।।
चकर जगौटा गूथी कन्था। पायं पावरी गोरख पन्था।।
मुख भभूत कर गही अधारी। छाला वेस क आसन मारी।।
दण्ड अखर बैन कै पूरै। नेंह चारचा गावइ झूरे।।
कर किंगरी तिंह बार बजावइ। जिंह चाँदा मुख चितरा पावइ।।[5]

कुतुवन ने 'मिरगावती' में योगी के स्वरूप का इस प्रकार उल्लेख किया है :

केस उदियानी गोरखपन्थ। पाँय पाँवरी मेखलि कन्था।।
जटा चक्र मुद्रा जपमाला। डण्डा खपर केसरि छाला।।
जोगौटा रूदराख अधारी। भसम लेउ तिरसूल संवारी।।

सिंगी पूरे पन्थ संभारा। जपै सुरंगिनि भई अधारा।।
कर किंगरी धंढोर मन मेला। तार बजावइ रैनि अकेला।।[७]

मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पदमावत' में वर्णन इस प्रकार किया है :

तजा राज राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहें बियोगी।।
तन बिसंभर मन बाउर रटा। अरूझा पेम परी सिर जटा।।
चन्द वदन और चन्दन देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा।।
मेखल सिंगी चक्र धंधारी। जोगौटा रूदराख अधारी।।
कन्था पहिरि डंड कर गहा। सिद्धि होइ कहँ गोरख कहा।।
मुद्रा स्रवन कंठ जपमाला। कर उदपान काँध बघछाला।।
पाँवरि पाँ लीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस कै राता।।[८]

जाससी ने योगिनी के वेश की भी चर्चा की है :

जोगिनि एक बार है कोई। माँगे जैस वियोगिनि होई।।
अवहि नवल जोवन तप लीन्हे। फारि पटोरा कन्था कीन्हे।।
बिरह भभूति जटा वैरागी। छाला काँध जाप कंठ लागी।।
मुंद्रा स्रवन डंड न थिर जीऊ। तर तिरसूल अधारी पीऊ।।
छात न छाँह धूप जस मरई। पाय न पांवरि भूँभुरि जरई।।
सिंगी सबद धधांरी करा। जरे सो ठांउ पांउ जहँ धरा।।
किंगरी गहें बियोग बजावे बारहिबार सुनाव।
नैन चक्र चारिहुँ दिसि हेरे दहुँ दरसन कब पाव।।[९]
स्रवन छेदि मुंद्रा में मेले। सबद ओनाउँ कहाँ दहुँ खेले।।
तेहि वियोग सिंगी नित पूरौं। बार बार होइ किंगरी झूरौं।।
को तोहि ले पिउ के डँड लावै। परम अधारी बात जनावै।।
पाँवरि टूटि चलत गा छाला। मन न मरे तन जोबन वाला।।[१०]
भीखि लेहि जोगिनि फिर माँगू। कन्त न पाइअ किये सँवागू।।

• • •

गिरिही महँ में रहे उदासा। अँचल खप्पर सिंगी स्वांसा।।
रहे पेम मन अरुझा लटा। विरह धँधारि परहिं सिर जटा।।
नैन चक्र हेरे पिय पन्था। कया जो कापर सोई कन्था।।

छाला पुहुमि गँगन सिर छाता। रंग रकत रह हिरदे राता।।
मन माला फेरत तंत ओहीं। पांचों भूत भसम तन होहीं।।
कुंडल सो जो सुने पिय बैना पाँवरि पाय परेहु।
डंड एक जाहु गोरा बादल पहँ जाइ अधारी लेहु।।[११]

मंझन ने "मधुमालती" में राजकुमार के योगी रूप धारण करने का इस प्रकार वर्णन किया है,

कठिन बिरह दुख गा न संभारी। मांगेउ खप्पर दंड अधारी।।
चक्र हाथ (मांथ) मुख भसम चढ़ावा। सबन फटिक मुंद्रा पहिरावा।।
उदपानी कसि के कर साटी। गुन किंगरी बैरागी ठाटी।।
कन्था मेखलि चिरकुआ जटा परी सिर केस।
वज्र कछौटा बांधि के किय गोरख का बेस।।
दुख उदास बैराग मेरावा। इन्ह तीनिउ तिरसूल गढ़ावा।।
औ रूद्राछ केरि जपमारी। औ सिंगी गिंय अल्प अधारी।।
बैसाखो गोरख घंघोरी। ध्यान धर न मन पौन संकोरी।।
प्रेम पावरी राखेउ पाऊँ। मृगछाला बैराग सम्हाऊं।।
दरसन लागि भेस सब घेरा। जाँचे दुख मधुमालति केरा।।
ग्यान ध्यान औ आसन सब नैनन्ह लौ लागि।
दरसन लागि भेस सभ कीन्हा मकु गोरख गा जागि।।[१२]

"चितरावली" में उसमान ने भी गोरखपन्थी स्वरूप का उल्लेख किया है :

आगे गोरखपुर भल देसू। निबहै सोइ जो गोरख भेसू।

• • •

ताहि देस बिच आहि सो पन्था। चलै सोइ जो पहिरै कन्था।।
तेल नाँहि सिर जटा बढ़ावै। रजक नासि जे बसन रंगावै।।
भसम देहि पग पांवरि होई। एहि मग विकट चलै पै सोई।।
मेखलि सिंगी चक्र अधारी। जोगौटा रूदराख धंधारी।।[१३]

उपर्युक्त अवतरणों में गोरखपन्थी योगियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों का उल्लेख है। किन्तु प्रत्येक लेखक की सूची में कुछ ऐसे उपकरण हैं जो अन्य में नहीं हैं। इस कारण यह कहना सहज नहीं है कि उन्होंने उपकरणों की सम्पूर्ण सूची प्रस्तुत की है। सब सूचियों को समग्र रूप से लेकर उपकरणों की निम्नलिखित सूची प्रस्तुत की जा सकती है :

१. जटा – जटा का उल्लेख कबीर और 'चन्दायन' के लेखक को छोड़कर सबने किया है। सिर के बालों को बढ़ा कर जटा का रूप देने की चर्चा अति प्राचीन काल से ऋषि–मुनियों के प्रसंग में भारतीय साहित्य में होती रही है। अतः यह गृहस्थ जीवन से विरक्त लोगों के बाह्य रूप का प्रतीक बन गया था। उसी परम्परा में योगियों की वेश–भूषा का यह अंग बना होगा।

२. सेली – सेली का उल्लेख "चन्दायन" के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "नाथ सम्प्रदाय" में नाथ–योगी की वेश–भूषा की चर्चा करते हुए सेली का उल्लेख किया है।[१४] इससे जान पड़ता है कि गोरखपन्थी योगी सेली का प्रयोग करते थे, पर सम्भवतः वह उनके परिधान का आवश्यक अंग न था। "चन्दायन" में जटा का उल्लेख न होने और यह कहे जाने से कि उसका सर पर प्रयोग होता था, अनुमान होता है कि वह कनटोप की तरह की कोई वस्तु होगी।

३. मुद्रा – मुद्रा का उल्लेख सभी लेखकों ने किया है, इससे कहा जा सकता है कि यह योगियों के लिये आवश्यक है। उपर्युक्त अवतरणों में बताया गया है कि वह कान में पहना जाता था। इस प्रकार यहाँ मुद्रा से तात्पर्य कान के कुण्डल से है। गोरखपन्थी योगी कान फाड़ कर कुण्डल (मुद्रा) धारण करते हैं, इसी कारण ये लोग कनफटा योगी भी कहलाते हैं। वे लोग किसी शुभ दिन, विशेषतः बसन्त पंचमी के दिन, कान चिराकर मन्त्र संस्कार के साथ मुद्रा को धारण करते हैं।

सामान्यतः योगी लोग धातु या हरिण के सींग का कुण्डल (मुद्रा) धारण करते हैं किन्तु कुछ लोग मिट्टी का बना कुण्डल पहनते हैं। आजकल इस सम्प्रदाय के धनी महन्त लोग हाथी दाँत अथवा सोने का कुण्डल प्रयोग करते हैं। 'चन्दायन' और 'मधुमालती' में स्फटिक के कुण्डल का उल्लेख है। इन काव्यों में राजकुमारों के योगी होने की बात कही गयी है, कदाचित् इसीलिये उनके अनुरूप मुद्रा के स्फटिक होने की बात कही गयी है। ऐसा जान पड़ता है कि मुद्रा किस वस्तु की हो, इसका सम्प्रदाय में कोई स्पष्ट विधान नहीं है।

कान फाड़ कर कुण्डल पहनने की प्रथा हमारे देश में अति प्राचीन काल से चली आती जान पड़ती है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी और उसके बाद की बनी अनेक मानव–मूर्तियों में फटे हुए कान और उनमें नाना प्रकार के कुण्डल देखे जाते हैं। सातवी–आठवीं शताब्दी ई० और उसके बाद की बनी, देश के विभिन्न भागों से प्राप्त अनेक शिव–मूर्तियों में उनके फटे हुए कान और उन कानों में कुण्डल देखे जा सकते हैं। हो सकता है नाथ सम्प्रदाय में कान फाड़ कर कुण्डल (मुद्रा) पहनने की प्रथा इसी स्रोत से आयी हो। इस अनुमान का समर्थन उनमें प्रचलित इस अनुश्रुति से होता है कि मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दर नाथ) को शिव के कानों में कुण्डल देखकर उन्हें प्राप्त करने की इच्छा हुई और उन्होंने उसके प्राप्त करने के लिये तप किया।[१५] इस सम्बन्ध में गोरखपन्थी लोगों में कुछ दूसरी भी अनुश्रुतियाँ हैं। एक के अनुसार जलन्धरनाथ ने गोपीचन्द की प्रार्थना पर योगियों के इस सम्प्रदाय को अन्य सम्प्रदायों से विशिष्ट व्यक्त करने के लिये इस प्रथा का आरम्भ किया। अन्य कथन यह भी है कि इस प्रथा को गोरखनाथ ने भरथरी के कान फाड़ कर आरमी किया।[१६]

गोरखपन्थी सम्प्रदाय में मुद्रा के अनेक आध्यात्मिक अर्थ कहे जाते हैं। कहा जाता है कि मुद्रा शब्द मुद (प्रसन्न होना) और रा (आदान, ग्रहण) धातुओं से बना है। ये दोनों जीवात्मा और परमात्मा के प्रतीक हैं। इसलिये मुद्रा को साक्षात्कल्याणदायिनी माना जाता है[१७]। वे लोग मुद्रा

के दो रूप मानते हैं : (१) कुण्डल और (२) दर्शन। कुण्डल को वे लोग पवित्री भी कहते हैं। पर दर्शन का सम्मान अधिक है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि दर्शन को धारण करने वाले ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके होते है[१८]।

४. भस्म – भस्म का उल्लेख कुछ लेखकों ने छार[१९] और भभूत[२०] नाम से किया है, पर उसका उल्लेख उपर्युक्त सभी अवतरणों में है। इससे ज्ञात होता है कि यह योगी के वेश का एक आवश्यक अंग है। 'पदमावत' और 'चितरावली' में इसके सारे शरीर में लगाने की चर्चा है और इसी रूप में सूरदास ने भी उल्लेख किया है। किन्तु 'चन्दायन' और 'मधुमालती' में भस्म के केवल मुख पर प्रयोग करने की बात कही गयी है। इससे यह जान पड़ता है कि कुछ योगी सारे शरीर में भस्म लगाते हैं और कुछ मुख पर मल लेना पर्याप्त समझते हैं। यह भी सम्भव है कि इन लेखकों ने मुख पर लगाने की बात केवल इस कारण कही हो कि शरीर का अन्य भाग ढका रहता है और भस्म लगे होने का पता नहीं चलता।

५. रूद्राक्ष की माला – रूद्राक्ष (रूदराख) का उल्लेख सभी प्रेमाख्यानों में हुआ है। इससे जान पड़ता है कि यह भी गोरखपन्थियों के आवश्यक उपकरणों में से एक है। रूद्राक्ष का अर्थ रूद्र (शिव) की आँख है और वह एक प्रकार का फल (अथवा बीज) है जो कठोर होता है और बहुत पवित्र माना जाता है। लोग उसे छेद का माला बना कर उपयोग करते हैं। तन्त्र शास्त्र के अनुसार रूद्राक्ष की माला जप कार्य में विशेष फलदायिनी होती है। उसका महत्व उसमें होने वाली खरबूजे की फाँक जैसी रेखाओं की संख्या के अनुसार माना जाता है। इन रेखाओं को मुख कहते हैं। तदनुसार पंचमुखी रूद्राक्ष का जप के लिये विशेष महत्व माना जाता है। उसके घर में रखने से लक्ष्मी अविचलित हो कर बसती है, ऐसी धारणा है। यह भी विश्वास है कि जिसके गले में एकमुखी रूद्राक्ष हो, उस पर शस्त्र की शक्ति काम नहीं करती। (लोग एकमुखी रूद्राक्ष की पहचान के लिये उसे मेढ़े के गले में बाँध कर परीक्षा करते हैं। रूद्राक्ष पहने हुए मेढे का गला यदि शस्त्र से कट जाय, तो रूद्राक्ष असली नहीं समझा जाता) गृहस्थ योग प्रायः दोमुखी रूद्राक्ष को महत्व देते हैं। ग्यारह मुख वाला रूद्राक्ष भी पवित्र माना जाता है।

'मिरगावती', 'पदमावत' और 'चितरावली' में इस बात का कोई संकेत नहीं है कि योगी लोग रूद्राक्ष का किस प्रकार प्रयोग करते थें। 'मिरगावती' और 'पदमावत' में जपमाला का स्वतन्त्र उल्लेख है, इससे यह जान पड़ता है कि उसका उपयोग जपने की माला के रूप में नहीं किया जाता, किन्तु 'चन्दायन' में इसका उल्लेख 'रूदरा जाप' के रूप में हुआ है और उसे कण्ठ में पहनने की बात कही गयी है। लोग रूद्राक्ष को गले में इस प्रकार पहनते हैं कि यह बार बार निकाली नहीं जा सकती और इस रूप में भी धारण करते हैं कि वह गले से माला के रूप में उतारी पहनी जा सकती है। इस तरह की जाप करने वालीमाला प्रायः ३२, ६४, ८४ या १०८ दानों की होती है। एक छोटी माला भी, जो १८ या २८ दानों की होती है, प्रयोग में आती है और उसे सुमिरनी कहते हैं। इसे लोग कलाई में बाँधते हैं। ब्रिग्स ने कुमायूँ के योगियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे जो जनेउ धारण करते हैं, उसमें रूद्राक्ष का एक दाना लटकता रहता है[२१]। अतः उपलब्ध साधनों में यह स्पष्ट नहीं है कि रूद्राक्ष का योगी किस प्रकार उपयोग करते

थे। वह केवल गले की शोभा मात्र था अथवा उसका उपयोग जपमाला के रूप में होता थां

६. **मेखला** – मेखला अथवा मेखली का 'चन्दायन' के अतिरिक्त सबने उल्लेख किया है। कबीर ने भी उसकी चर्चा की है। किन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि मेखला का उपयोग सब योगी नहीं करते[२२]। मेखला कमर में बाँधी अथवा पहनी जाती है। नाथ पन्थियों की मेखला किस प्रकार की होती है, इसकी चर्चा किसी भी उपलब्ध अवतरण में नहीं है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार सामान्यतः मेखला मूंज की रस्सी की बनी होती है पर कुछ योगी काले भेड़ के ऊन की बनी मेखला धारण करते हैं। ब्रिग्स ने मटंगा नामक मेखला का उल्लेख किया है और कहा है कि उसके धारण करने के बाद योगियों के लिये भिक्षा माँगने के लिये निकलना अनिवार्य है[२३]।

७. **कोपीन (कछौटा)** – 'मधुमालती' में कछौटे का उल्लेख है और रांगेय राघव ने अपनी सूची में कोपीन का नाम दिया है[२४]। इसका उपयोग योगी अधोवस्त्र के रूप में गुप्तांगों को ढँकने के लिये करते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि बहुत से योगी इस काम के लिये केवल मेखला से बंधी लँगोटी का ही उपयोग करते हैं और कुछ तो इस प्रकार के किसी अधोवस्त्र का उपयोग भी नहीं करते[२५]। कदाचित इसी कारण अधिकांश लोगों ने अपनी सूची में इसका उल्लेख नहीं किया है।

८. **कन्था** – कन्था का उल्लेख सभी सूचियों में हुआ है, जिससे जान पड़ता है कि वह योगी वेश का एक आवश्यक उपकरण है। किन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार योगियों के लियें इसका धारण करना अनिवार्य नहीं है[२६]। कन्था फटे पुराने वस्त्रों को जोड़ कर सुजनी किया हुआ चोलना है, जो गले में डाल देने से शरीर को ढक लेता है। इसे गूदरी भी कहते हैं। 'पदमावत' के उल्लेख से ज्ञात होता है कि यह लाल रंग का होता है। सूरदास ने इसे 'भगवा' नाम से अभिहित किया है जिससे इसके गेरूए रंग के होने की बात जान पड़ती है। गेरूआ अथवा लाल रंग ब्रह्मचर्य का साधक माना जाता है। कहते हैं कि इसके धारण करने से वीर्यस्तम्भ की शक्ति बढ़ती है। कुक्स ने एक अनुश्रुति का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार पार्वती ने सर्वप्रथम गोरखनाथ को एक चोलना अपने रक्त से रंग कर दिया था। तभी से लाल (गेरूआ) योगी लोगों का रंग हो गया है[२७]। कन्था गेरूए या लाल रंग का हो ही, ऐसा 'चन्दायन' मिगरावती' आदि की उपलब्ध सचित्र प्रतियों से नहीं जान पड़ता। उनमें योगियों के जो चित्र हैं, उसमें उनके कन्थे को लाल नहीं दिखाया गया है। वरन् वे बेल–बूटेदार हैं।

९. **चिरकुटा** – चिरकुटा सामान्यतः गूदरी का पर्याय है, इस रूप में इसे प्रस्तुत प्रसंग में कन्था अनुमान किया जा सकता है। इसका उल्लेख एकमात्र 'मधुमालती' में हुआ है और वहाँ कन्था और चिरकुटा दोनों नाम है[२८]। इससे जान पड़ता है कि मंझन का चिरकुटा से तात्पर्य कन्था से भिन्न है। हो सकता है यहाँ तात्पर्य ओढ़ने बिछाने की कथरी से हो जो कन्था की तरह ही फटे–पुराने कपड़ों को सुजनी करके बनाया जाता है। हो सकता है कि इसका अभिप्राय जोगौटा से हो, जिसका कि उल्लेख मधुमालती की सूची में नहीं है।

१०. पाँवरी – सभी ने अपनी सूची में पाँवरी का उल्लेख किया है। इससे जान पड़ता है कि यह योगी–वेश का एक आवश्यक उपकरण है। इसका तात्पर्य पैर में पहनने की वस्तु से है। यह जूता जैसी कोई चीज है या खड़ाऊ जैसी, कहना कठिन है। गाँवों में चमड़े के स्थान पर रस्सी के बने चप्पलों अथवा लकड़ी के बने ऐसे खड़ाऊँ को पाँवरी कहते हैं, जिसमें खूँटी के स्थान पर चप्पलों की तरह रस्सी की पट्टियाँ लगी होती हैं और आगे की ओर के फन्दे को अंगूठा और उंगलियों के बीच डालकर पहना जाता है।

११. जोगौटा – 'मधुमालती' के अतिरिक्त जोगौटा का उल्लेख सबने किया है। यह एक प्रकार का वस्त्र है जिसे योगी लोग अपने कन्धे पर रखे रहते हैं और ध्यान करते समय सिर से पैर तक डाल लेते हैं। (जोगौटा < जोगवट्ट < योगपट्ट)

१२. चक्र – चक्र का उल्लेख सभी सूचियों में हुआ है, किन्तु उसका क्या प्रयोजन था, किस प्रकार उपयोग में आता था, इसका कहीं कोई संकेत उपलब्ध नहीं है। 'मधुमालती' में माता प्रसाद गुप्त ने जो पाठ ग्रहण किया है, उससे जान पड़ता है कि वह सिर पर लगाये जाने वाली कोई वस्तु थी किन्तु जिसे उन्होंने 'माँथ' (मस्तक) पढ़ा है उसका एक इतर पाठ 'हाथ' भी उपलब्ध है[२९]। उसके अनुसार यह हाथ में रखने की कोई वस्तु ठहरती है। यदि यह दूसरा पाठ ठीक है तो वह किसी किस्म की अंगूठी हो सकती है। किन्तु ब्रिग्स के कथनानुसार चक्र का दूसरा नाम पवित्री है और वह हरिण के सींग या ताँबा, पीतल आदि धातु की बनी होती है और योगी के जनेउ में बँधी रहती है[३०]। ब्रिग्स का यह कथन कहाँ तक ठीक है, कहना कठिन है। ऊपर हम कह चुके हैं कि पवित्री कुण्डल का नाम है।

१३. सिंगी – हरिण के सींग के बने हुये मुँह से फूँक कर बजाने वाले बाजे को सिंगी कहते हैं (सं०–शृग्ङ) इसके सम्बन्ध में ब्रिग्स का कहना है कि वह जनेउ में बँधा रहता है। इसे योगी प्रातः और सन्ध्याकालीन उपासना तथा भोजन ग्रहण करने के पूर्व बजाते हैं[३१]।

१४. धंधारी – विभिन्न सूचियों में धंधोरा, धंढोर, धंधारी आदि रूप में इसका उल्लेख हुआ है। यह एक तरह का चक्र है। गोरखपन्थी लोग लोहे या लकड़ी की शलाकाओं के हेर–फेर से इस चक्र को बना कर उसके बीच एक छेद कर देते हैं। इस छेद में कौड़ी या मालाकार धागे को डाल देते हैं। फिर मन्त्र पढ़कर उसको निकालते हैं। बिना क्रिया जाने सहसा इस चक्र से किसी के लिये डोरा या कौड़ी निकाल सकना सम्भव नहीं होता। लोक भाषा में इसे गोरखधन्धा भी कहते हैं गोरखपन्थी लोगों का विश्वास है कि मन्त्र पढ़कर गोरखधन्धे (धंधारी) से डोरा निकालने से गोरखनाथ की कृपा से ईश्वर प्रसन्न होते हैं और संसार चक्र में उलझे हुये प्राणियों को डोरे की भाँति इस भवजाल से मुक्त कर लेते हैं[३२]।

१५. अधारी – इसका उल्लेख प्रेमकथाओं में तो हुआ है सूरदास और कबीर ने भी इसकी चर्चा की है। सामान्यतः समझा जाता है कि यह काठ के डण्डे में लगा हुआ काठ का पीढ़ा (आसन) है। इसे योगी लोग लिये फिरते हैं और जहाँ कहीं रखकर उसपर बैठा करते हैं[३३]। बिना अभ्यास के इसपर बैठ सकना सम्भव नहीं होता। अधारी का सहारा लेकर योगी बैठते या सोते

हैं, ऐसा भी कुछ लोगों का कहना है[३४]। इस प्रकार का लकडी का बना आधार अनेक प्रकार के साधुओं के पास देखने में आता है, किन्तु यहाँ अधारी से तात्पर्य उसीका है, यह सहज नहीं कहा जा सकता। 'मिरगावती' में योगी वेशधारी राजकुमार के सम्बन्ध में कहा गया है – 'साँठ अधारी सेंउँ कछु काढसि' [अधारी में से कुछ संजोया हुआ धन (केवट को देने के लिये) निकाल।[३५]] इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि कवि ने योगी की वेश–भूषा के उल्लेख में अधारी की चर्चा झोली अथवा बटुआ के रूप में किया है। 'मधुमालती' में अधारी के साथ अलप (अल्प) विशेषण का प्रयोग हुआ है। इससे भी यही जान पड़ता है कि वह आसन जैसी बड़ी चीज न होकर बटुआ जैसी छोटी चीज ही होगी। कबीर ने योगी की चर्चा करते हुये बटुआ का उल्लेख किया है। रांगेय राघव की सूची में अधारी और झोली दोनों का उल्लेख हुआ है[३६]। हो सकता है योगी झोली और बटुआ (अधारी) दोनों रखते हों। सम्भव है गोरखपन्थी योगी सहारे वाली लकड़ी का प्रयोग करते हों, पर उसकी चर्चा उपलब्ध साहित्यिक उल्लेखों में नहीं प्राप्त होती।

१५. दण्ड – (डण्डा) दण्ड या डण्डा योगियों का एक आवश्यक उपकरण जान पड़ता है। 'मधुमालती' में इसकी चर्चा बैसाखी नाम से की गयी है। योगियों का डण्डा रूलर के आकार का गोल काले रंग का, कदाचित् आबनूस का बना होता है और लम्बाई में हाथ डेढ़ हाथ से बड़ा नहीं होता। बहुत से योगी इसको भैरवनाथ का डण्डा और बहुत से उसे गोरखनाथ का सोटा कहते हैं। इसे घुमाकर योगी लोग चमत्कार दिखाया करते हैं।

१६. त्रिशूल – त्रिशूल का उल्लेख केवल 'मिरगावती', 'पदमावत' और 'मधुमालती' की सूची में है। सम्भवतः यह योगियों के लिये अनिवार्य नहीं है, पर शिव का आयुध होने के कारण कदाचित योगी लोग इसे धारण करते हैं।

१७. किंगरी – चिकारा या सारंगी को किंगरी कहते हैं। यह एक प्रकार का तन्तु–वाद्य है जो धनुष के सहारे बजाया जाता है। यह किन्नरी–वीणा का एक रूप है। कदाचित् इसे ही चाण्डाल–वीणा भी कहते हैं। इसका उल्लेख'चितरावली' को छोड़कर अन्य सभी सूचियों में हुआ है। आज भी भर्तृहरि के गीत गाने वाले योगी इसे लिये घूमते हैं।

१८. जपमाला – इसका उल्लेख रूद्राक्ष के साथ–साथ अलग से 'मिरगावती' और 'पदमावत' में हुआ है। पदमावत में इसके कण्ठ में धारण करने की बात कही गयी है। यह रूद्राक्ष की माला से किस प्रकार भिन्न है, कहना कठिन है।

१६. खप्पर – खप्पर सामान्य भाषा में मिट्टी के घड़े के फोड़े हुये निचले अर्द्ध भाग को कहते हैं। परन्तु उसका प्रयोग भिक्षा पात्र के लिए किया जाता है। आज कल यह भिक्षा पात्र दरियाई नारियल का बनता है। अनेक योगी काँसे के बने खप्पर भी रखते हैं।

२०. उदपानी – 'पदमावत' में हाथ (कर) में उदपानि लेने का उल्लेख है। उदपानी के रूप में यह 'मधुमालती' में भी है, किन्तु अर्धाली में आये परवर्ती शब्दों के पाठ के ठीक होने में हमें सन्देह है। इस कारण पूरे वाक्य और उसके साथ इस शब्द का तात्पर्य समझने में कोई सहायता

नहीं मिलती। इन दोनों उल्लेखें को देखने के बाद हमें जान पड़ा कि 'मिरगावती' में हमने जिसे "केस उदियानी" पढ़ा है, वह वस्तुतः उपर्युक्त उल्लेखों के आशय को व्यक्त करता है, पर सम्प्रति पाठ का निश्चय करना कठिन है। उदियानी का पाठ उदपानी हो सकता है पर केस का वास्तविक पाठ क्या है बता सकना कठिन है। इस प्रकार उदपान या उदपानी से क्या तात्पर्य है कहना कठिन है। माता प्रसाद गुपत ने इसे जलपात्र विशेष बताया है[३७] और वासुदेवशरण अग्रवाल ने उसका अभिप्राय कमण्डल से लिया है[३८]। कमण्डल का उल्लेख रांगेय राघव ने भी अपनी सूची में किया है[३९]।

२१. छाला – चन्दायन में आसन के रूप में छाला (चर्म) का उल्लेख है। उसमें इस बात का कोई निर्देश नहीं है कि वह किस पशु का होना चाहिये। पर 'मिरगावती' में 'केसरिछाला' (सिंह–चर्म) पदमावत में 'बघछाला' (व्याध्र–चर्म) और 'मधुमालती' में 'मृगचर्म' का उल्लेख है। बिछाने के लिये ये सभी चर्म काम में आते हैं।

२२. छाता – योगियों द्वारा छाता के प्रयोग का उल्लेख अकेले मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पदमावत' में किया है। किस सीमा तक योगी इसका प्रयोग करते हैं, यह कहना कठिन है, पर निःसन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि यह उनका आवश्यक उपकरण नहीं है।

२३. जनेउ – प्रेमाख्यान काव्यों में योगी–वेश के जो उपकरण गिनाये गये हैं, उनमें जनेउ का उल्लेख नहीं है। किन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी ने योगियों की वेश–भूषा की चर्चा करते हुये जनेउ का उल्लेख किया है[४०] जिससे ज्ञात होता है कि वह एक आवश्यक उपकरण है। जनेउ (यज्ञोपवीत) धारण करना हिन्दू जीवन का एक आवश्यक संस्कार प्राचीन काल से माना जाता रहा है। अतः हो सकता है कि प्रेमाख्यानक काव्यों के रचयिताओं ने यह मान–समझकर उसका उल्लेख न किया हो कि योगी–वेश धारण करनेवाले राजकुमारों ने अपने जीवन–संस्कार के क्रम में उसे पहले से ही धारण कर रखा होगा। किन्तु योगी लोगों का जनेउ अन्य जनेउओं से सर्वथा भिन्न है। वे लोग काले भेड़ के ऊन का बना जनेउ पहनते हैं[४१]। ब्रिग्स का कहना है कि कुमायूँ के योगी सूत का ही बना जनेउ पहनते हैं और उसमें वे अपनी पवित्री, सिंगी और रूद्राक्ष का एक दाना बाँध कर रखते हैं[४२]। इस पन्थ के कुछ ऐसे भी योगी हैं जो जनेउ बिल्कुल धारण नहीं करते। वे कहा करते हैं कि उन्होंने जनेउ को अपने अन्तर में धारण कर रखा है अथवा वह उनके शारीरिक चमड़े के नीचे है।

नाथ–पन्थी योगियों की वेश–भूषा की इस सूची से ज्ञात होता है कि वे लोग बैठने के लिये व्याध्र या मृग का चर्म प्रयोग करते हैं, धूप आदि से बचने के लिये छाता लगाते हैं। शरीर में भस्म मलते हैं, सिर पर जटा रखते हैं। गले में रूद्राक्ष की माला, शरीर पर जनेउ और कटि में मेखला और वस्त्र के रूप में लंगोटी और कन्था (गूदरी) पहनते हैं। पैरों में वे पाँवरी धारण करते हैं। भिक्षा के लिये खप्पर और जलपात्र के रूप में उदपानी (कमण्डलु ?) रखते हैं। इनके अतिरिक्त उनके पास जोगौटा होता है, जिसका उपयोग वे ध्यान धरते समय करते हैं। वे लोग अपने पास दण्ड, त्रिशूल, किंगरी, सिंगी, अधारी, धंधारी, चक्र, जपमाला आदि वस्तुयें भी रखते हैं। यह भी

जान पड़ता है कि प्रत्येक योगी के पास ये सभी वस्तुयें हों ही, यह अनिवार्य नहीं है। उनके ये सारे उपकरण उनके मतानुसार उनके साम्प्रदायिक विचारों के प्रतीक हैं और उन सबका अभिप्राय है। किन्तु प्रतीकों और अभिप्रायों के रूप में इन वस्तुओं का कोई अध्ययन नहीं किया गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में "योगी सम्प्रदाय विष्कृति" नामक ग्रन्थ में उल्लेखित एक अनुश्रुति का उल्लेख किया है। इस अनुश्रुति में कहा गया है कि मत्स्येन्द्रनाथ से प्रसन्न होकर शिव ने जब वर माँगने को कहा तो उन्होंने उनके ही स्वरूप की याचना की। पहले तो शिव ने आनाकानी की फिर अपना वेश दान करने को राजी हो गये। इसका अभिप्राय यही है कि योगियों ने अपनी वेश-भूषा शिव-स्वरूप अथवा शैव मतावलम्बियों से ग्रहण की है। इस अनुश्रुति में इन वस्तुओं के धारण करने का अभिप्राय भी कहा गया है, ऐसा द्विवेदी जी के कथन से प्रकट होता है पर उन्होंने उसका पूर्ण वर्णन न करके केवल कुछ ही वस्तुओं के सम्बन्ध में बताये गये तात्पर्यों की चर्चा की है। यथा-भस्म धारण करने का अभिप्राय यह है कि योगी अपने को मानापमान से अतीत, जड़धरित्री के समान समझे या अग्नि-संयोग से भस्म रूप में परिणत हुये काष्ठ की तरह ज्ञानाग्नि-दग्ध होकर अपनी कठोरता आदि छोड़ दे और ज्ञानाग्नि के संयोग से अपने कृत्यों को भस्मसात कर दे। ऊर्णादि निर्मित जनेउ जिस प्रकार संसार के अन्य जनेउओं से भिन्न है, उसी प्रकार वह अपने को संसार से भिन्न समझे। नाद (सिंगी) धारण करने का तात्पर्य है कि योगी अपनी उत्पत्ति नाद से समझे।[४३]

卐

---

१. गोरखनाथ और उनका युग, पृ० २२६
२. सूरसागर (ना०प्र०स० संस्करण), खण्ड २, परिशिष्ट १, पृ० ६०, पद १८८।
३. कबीर ग्रन्थावली (ना०प्र०स० संस्करण), पद २०६।
४. वही, पद २०५।
५. वही, पद २०८।
६. चन्दायन (सम्पा० परमेश्वरी लाल गुप्त), कड़वक १७४।
७. मिरगावती (सम्पा० परमेश्वरी लाल गुप्त), कड़वक १०६।
८. पदमावत (सम्पा० वासुदेवशरण अग्रवाल), कड़वक १२६।
९. वही, कड़वक ६०१।
१०. वही, कड़वक ६०३।
११. वही, कड़वक ६०६।
१२. मधुमालती (सम्पा० माता प्रसाद गुप्त), कड़वक १७२-१७३।
१३. चितरावली, कड़वक २०८-२०६।
१४. नाथ सम्प्रदाय, पृ० १४।
१५. वही, पृ० ६।
१६. वही, पृ० १४-१५।

१७. वही, पृ० ७।
१८. वही, पृ० ६–१०
१६. सूरदास।
२०. मौलाना दाऊद।
२१. गोरखनाथ ऐण्ड कनफटा योगीज़, पृ० ११
२२. नाथ सम्प्रदाय, पृ० १६।
२३. गोरखनाथ ऐण्ड कनफटा योगीज़, पृ० ११–१२
२४. गोरखनाथ और उनका चुग, पृ० २२६
२५. नाथ सम्प्रदाय, पृ० १६।
२६. वही, पृ० १२।
२७. वही, पृ० १८।
२८. कन्था मेखलि चिरकुटा, जटा परी सिर केस।
२६. मधुमालती (सम्पा० माता प्रसाद गुप्त), पृ० १४४–१४५।
३०. गोरखनाथ ऐण्ड कनफटा योगीज़, पृ० ११।
३१. वही, पृ० ११।
३२ नाथ सम्प्रदाय, पृ० १७।
३३. वही, पृ० १७।
३४. वासुदेवशरण अग्रवाल (पदमावत, द्वितीय संस्करण), पृ० १४३
३५. कड़वक १६४।
३६. गोरखनाथ और उनका युग, पृ० २२६।
३७. मधुमालती, पृ० १४५।
३८. पदमावत, पृ० १४३।
३६. गोरखनाथ और उनका युग, पृ० २२६।
४०. नाथ सम्प्रदाय, पृ० १६।
४१. वही, पृ० १६।
४२. गोरखनाथ ऐण्ड कनफटा योगीज़, पृष्ठ ११।
४३. नाथ सम्प्रदाय, पृ० १८–१६

नाथयोग और रामभक्ति धारा

डॉ० भगवती प्रसाद सिंह

महायोगी गोरखनाथ भारतीय अध्यात्म साधना के ज्योतिस्तंभ थे। उनकी आचार एवं विचार परंपरा से सारा मध्यकालीन साहित्य ओतप्रोत है। क्या निर्गुण और क्या सगुण दोनों भक्ति–धाराएँ उनकी योग–साधना से प्रभावित हुई और विषय तथा शैली दोनों क्षेत्रों में उनसे प्रेरणा प्राप्त कर समृद्ध हुई। कबीर और जायसी ने नाथ साहित्य एवं नाथपंथी साधकों से प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त की थी, वह उनके दार्शनिक विचारों एवं साधना–प्रणाली से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु सगुण भक्ति साहित्य में यह प्रभाव प्रतिक्रिया के माध्यम से परोक्षरूपेण अभिव्यक्त हुआ। भ्रमरगीत की रचना करते समय सूरदास के मानसनेत्रों के समक्ष अवश्य ही नाथपंथी योग–साधक रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास को तो नाथयोग का बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर लोकमानस से भक्ति–भावना के सर्वथा लुप्त हो जाने की आशंका हो चली थी। यह उनके निम्नांकित उद्‌गार से प्रकट होता है–

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग सों सो केलि ही छरो सो है।।

किन्तु इससे यह भ्रम न होना चाहिए कि रामभक्ति धारा का योग प्रक्रिया से कोई प्रकृत विरोध था। वैष्णवधर्म के प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ भागवत में योग की शारीरिक प्रक्रियाओं को वैधी भक्ति में और मानसिक प्रक्रियाओं को ध्यान में पर्यवसित करके भक्तिसाधना में योग–पद्धति की महत्ता स्वीकृत की गई थी। नवधा के पश्चात् दशधा अथवा प्रेमाभक्ति की साधना आराध्य की रसमयी लीलाओं के ध्यान द्वारा ही होती थी। ऐसी स्थिति में नाथयोग का प्रकट रूप में विरोध करते हुए भी परोक्षरूप में उसके सिद्धांतों का अनुसरण करने से वैष्णव भक्त, चाहे वे रामभक्त हो या कृष्णभक्त, अपने को रोक नहीं सके। इस नये संदर्भ में योग उपासक–उपास्य के संयोगस्थापना का सर्वोत्कृष्ट साधन बन गया।

रामभक्ति साधना में योग धारा का अजस्र प्रवाह स्वामी राघवानन्द के समय से मिलता है उनके शिष्य रामानन्द तथा प्रशिष्य स्वामी अनन्तानन्द से इस भावना के प्रसार में विशेष बल मिला। किन्तु वह पराकाष्ठा को पहुँची श्री कृष्णदास पयहारी की अलौकिक सिद्धियों के प्रकाशन से। पयहारी जी की 'राजयोग' नामक एकमात्र रचना प्राप्त है। इनकी मुख्य साधना–भूमि गलता और पुष्कर थी। नाभादास के भक्तमाल, प्रियादास कृत उसकी टीका और रसिक–प्रकाश–भक्तमाल में इनकी सिदि्धयों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इन्होंने जयपुर के महाराज पृथ्वीसिंह के शासनकाल में तारानाथ योगी को पराजित करके जयपुर दरबार में राज–गुरू का पद प्राप्त किया था।

महायोग के चार सोपानों – मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग में अन्तिम होने से राजयोग योग–साधना की परमोत्कृष्टावस्था है। राजयोग का साधक कुंडलिनी शक्ति के जागरण द्वारा षट्चक्र भेदन कर अनाहत नाद का रसास्वादन करता हुआ, ब्रह्म–जीव की एकता

का रहस्य–ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति की ओर अग्रसर होता है। पयहारी जी ने इसे मुक्ति के लोकप्रचलित चार भेदों सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और साजुज्य से परे बताकर पाँचवीं मुक्ति 'ध्यानलीन दशा' की कल्पना की है और इस पथ के साधक की उसमें स्थिति बताई है। कबीर, दादू आदि निर्गुण भक्तों की भाँति उन्होंने भी 'अनहदनाद' को रामनाम की अखंड ध्वनि का पर्याय माना है। भेद केवल इतना ही है कि जहाँ निर्गुणमार्गी भक्त नाथपंथियों के आदर्श पर मात्र ज्योति का दर्शन करता है वहाँ पयहारी जी उसके अन्तर्गत अपने आराध्य–युगल 'सीताराम' का भी साक्षात्कार करते हैं –

आगे सुपताका उड़त देखि। तहँ सेत छत्र छाया सुपेखि।
आसन सफेद तह अरुन भूमि। चहुँ दिसि प्रकास नहिं बरन घूमि।
को बरनि सकत प्रभु को सरूप। रवि कोटि चंद छवि ते अनूप।।
नभ नील मेघ इति स्याम गात। लखि पीत वसन विद्युत लजात।
इमि बसत राम निज सहित बाम। सब संत कहत तेहि परमधाम।।

पयहारी जी का अनुभव था कि इस स्थिति को प्राप्त करने से सारे भवबंधन छूट जाते हैं। यही योग की परम उपलब्धि है –

तहँ गए मिटत हे जन्म मरन। तेहि हेत जोग जेहि रामसरन।।[1]

'राजयोग' में अपने शिष्य अग्रदास को वे इस योग–साधना का उपदेश देते हुए लिखते हैं–

प्राणहि अपान दृढ़ गाथि डोरि। कुंडलिनि आव सम युक्ति जोरि।
तब चलत पवन जहँ ब्रह्म रंध। तहं छोड़ि जाहिं सब त्रिगुण बंध।।
उलटें सुइला पिंगला नारि। सुषुमना सुदध लीजे बिचारि।
पहुँचै सु जबै अनहद्द गेह। राखै सु एक हरि सो सनेह।।[2]
आठ पहर चौसठि घरी। ररंकार घहराय।
सकल मोह दावा मिटै। तब नाना ठहराय।।[3]

यह सर्वविदित है कि गोरखनाथ जी अवतारवाद के विरोधी थे, अतः दशरथ पुत्र राम के प्रति उनकी अनास्था स्वाभाविक थी –

दस औतार औतिरिया तिरिया बै पणि राम न होई।
कमाई अपनी उनहूँ पाई करता और कोई।।[4]

किन्तु परम्परा से ब्रह्मरूप में सूर्यवंशी महाराज रामचन्द्र को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी, उसकी मूक स्वीकृति 'गोरखबानी' के निम्नांकित छंद में मिलती है। इतना ही नहीं, पयहारी जी ने रामभक्ति की प्राप्ति के लिए योगसाधना की जिस प्रक्रिया की व्याख्या 'राजयोग' की उपर्युक्त पंक्तियों में की है, वह अविकल रूप से नाथयोग में मिल जाती है –

मन रे राजा राम होहलै नृदंद।
मूलै कमलै साजि ले रविचंद।।

अनहद भौरौ भवै त्रिवेणी के घाट।
पीयलै महारस फाटिलै कपाट।।
चंदा करिले षूटा सूरज करिलै पाट।
नित उठि धोबी धोवै, त्रिवेणी के घाट।।
भरिलै नाड़ी षोड़ी। पूरिलै बंक नालि।
बंदत गोरखनाथ अवधू, इम उतरिबौ पार।।[५]

पयहारी जी के शिष्यों ने रामभक्ति शाखा में इस योगमूलक सगुण–निर्गुण–मिश्रित साधना का प्रचार किया। उनके पट्ट शिष्य कील्हदास इसके मुख्य स्तम्भ माने जाते हैं।[६] प्रसिद्ध है कि इनकी ध्यान–समाधि इतनी उच्चकोटि की होती थी कि इस स्थिति में ये सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य हो जाते थे। इनकी परम्परा में अवधूत वेश धारण करने वाले लाखों विचरणशील एवं स्थानधारी रामभक्त महात्मा आज भी भारत के विभिन्न प्रदेशो में पाये जाते हैं। नाथपंथी अवधूतो से इनका पथिक्य केवल तिलक की विभिन्नता से जाना जाता है। इस परम्परा से सम्बद्ध अवधूतसंत मूँज की करधनी, अधारी, विशाल जटाएँ, वस्त्र के नाम पर मात्र केले के सूखे पत्ते, टाट अथवा छः अंगुल चौड़े कपड़े की लंगोटी धारण करते हैं। रामोपासना की यह योगाश्रयी शाखा गोस्वामी तुलसीदास की मर्यादावादी लोकसंग्रही प्रवृत्ति से सर्वथा भिन्न एकांतिक साधना का आदर्श लेकर चली है, जिसमें हठयोग द्वारा शरीर और प्राण को वश में करने के अनन्तर ब्रह्म–जीव के एकात्म्य का संपादन होता है। यही इनकी निर्विकल्पसमाधि है। इस शाखा के साहित्य में गोरखपंथ और नाथ योग के सिद्धांतों की न तो कहीं निंदा मिलती है औन न उन्हें रामभक्ति के विकास में बाधक ही माना गया है। रामभक्ति धारा के प्रसार में इसका विशेष योगदान रहा है। इसके विशाल साहित्य के अन्वेषण परीक्षण से निश्चय ही मध्यकालीन हिन्दी राम काव्य के अनुशीलन में एक नई दिशा मिलेगी। 卐

---

१. राजयोग छं० २५–२
२. वही, छं० ५–८
३. राजयोग : छं० २८
४. गोरखबानी पृ० ५४
५. वही, पृ० ५५
६ गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं त्यों कील्ह करन नहिं काल बस।
रामचरण चिंतवनि रहति निसिदिन लौ लागी।
सर्वभूत सिर नमित सूर भजनानन्द भागी।
सांख्ययोग मत सृदृढ़ कियो अनुभव हस्तामल।
ब्रह्मरंध्र करि गौन भए हरितन करनी बल।
सुमेर देव सुत जो विदित भू विस्तारयो विमल जस।
गांगेय मृत्यु गंज्यो नहीं त्यों कील्ह करन नहिं काल बस।।
— भक्तमाल (रूपकला) पृ० ३१५

गोरक्षनाथ का महत्त्व : निर्गुण संत परम्परा के सन्दर्भ में

डॉ० रामचन्द्र तिवारी

यह इतिहास–सिद्ध है कि निर्गुण संत–परम्परा नाथ पंथ एवं वैष्णव भक्ति–धारा का संश्लिष्ट रूप है। उत्तर भारत में निर्गुण एवं सगुण दोनों ही भक्ति परम्परायें स्वामी रामानन्द से अपना सम्बन्ध स्वीकार करती है। 'भक्तमाल' के अनुसार स्वामी रामानंद के १२ शिष्य थे – १. अनन्त, २. सुखानन्द, ३. सुरसुरानन्द, ४. नरहर्यानन्द, ५. भावानंद, ६. पीपा, ७. कबीर ८. सेन, ९. धना, १०. रैदास, ११. पद्मावती, १२. सुरसुरी। इनमें अनन्त ने 'सगुण' और कबीर ने 'निर्गुण' भक्ति का प्रचार किया। स्वामी रामानन्द के गुरू राघवानंद थे। स्वामी राघवानंद की विचारधारा पर नाथ–पंथ का प्रभाव लक्षित किया गया है। यह प्रभाव रामानंद से होते हुए कबीर आदि निर्गुण संतों की विचारधारा में संक्रमित हुआ।

जहाँ तक कबीर का प्रश्न है, उन्होंने अपने गुरू के रूप में स्वामी रामानंद का उल्लेख नहीं किया है। भक्त व्यास जी, अनंतदास और नाभादास के कथनों से ही स्वामी रामानंद और कबीर का गुरू–शिष्य सम्बन्ध मान्य है। इसके विपरीत गुरू गोरक्षनाथ के प्रति कबीर दास ने स्पष्ट निष्ठा व्यक्त की है। अपने एक पद में उन्होंने कहा है कि सनक, सनंदन, जयदेव, नामदेव सबने भक्ति साधना की, किन्तु 'मन' को नहीं पहचाना। शिव, ब्रह्मा, नारद, ध्रुव, प्रहलाद, विभीषण, शेष आदि ने भी तन के भीतर निहित 'मन' की गति को नहीं समझा। इस 'मन' का भेद कोई नहीं जानता। सुखदेव इस मन में लीन हुये थे। गोरक्षनाथ, भरथरी और गोपीचन्द ने इस मन को स्थिर कर आनंद की अनुभूति की थी। यह शुद्ध मनस्तत्व अकल एवं निरंजन रूप है। यह बसमें व्याप्त है। कबीर ने इसे पहचान लिया है और इसमें लीन हो गया है। पद इस प्रकार है –

ता मन कौं खोजहु रे भाई।
तन छूटे मन कहाँ समाई।।
सनक सनंदन जैदेउ नांमा। भगति करी मन उनहुं न जांना।
सिव विरंचि नारद मुनि ग्यानी। मन की गति उनहूँ नहिं जानी।
धू प्रह्लाद विभीखन सेखा। तन भीतर मन उनहूँ न पेखा।
ता मन का कोई जानै न भेउ। ता मनि लीन भया सुखदेउ।
गोरख भरथरी गोपी चंदा। ता मन सौं मिलि करैं अनंदा।
अकल निरंजन सकल सरीरा। ता मन सौं मिलि रह्यौ कबीरा।।[६]

यही नहीं, कहीं–कहीं तो कबीर ने गोरक्षनाथ के कथनों को थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है। गोरख बानी के एक पद में कहा गया है कि तत्व रूपी बेलि को गोरक्षनाथ जानते हैं। इस बेलि की न तो शाखायें हैं न जड़ है, न फूल है न छाया। यह बेलि बिना पानी के ही बढ़ती रहती है –

तत बेलो लो तत बेली, लो, अवधू गोरखनाथ जांणी।
डाल न मूल पुहुप नहीं छाया, विरधि करै बिन पांणी।।[२]

कबीरदास ने यही बात निम्नलिखित पद में कही है –

राम गुन बेलड़ी रे अवधू गोरषनाथि जांणी।
नाति सरूप न छाया जाके, विरध करै बिन पांणी।[3]

कबीरदास ने जिन काव्य रूपों–साखी, पद, रमैनी, बावनी, चौंतीसा, थिंती, बार, बसंत, चाँचर, हिंडोला, कहरा, वेलि, बिरहुल, विप्रमतीसी–का प्रयोग किया है, उनमें से बहुत से काव्य–रूप गोरखबानी में भी प्राप्त होते हैं। हठयोग की शब्दावली तो पूरे संत–साहित्य में नाथ–योग परम्परा से ही ग्रहण की गई है। तात्पर्य यह कि संतमत के प्रवर्तक कबीरदास स्वामी रामानंद के उतने निकट नहीं है, जितने गुरू गोरक्षनाथ के। स्वामी रामानंद से उन्होंने राम नाम का मंत्र ही प्राप्त किया था किन्तु गोरक्षनाथ की परम्परा से उन्होंने जीवन–पद्धति एवं भाषा–शैली दोनों ही ग्रहण किया था।

संत–परम्परा में कबीर के बाद नानक का महत्व सर्वमान्य है। नानक ने गोरक्षनाथ के प्रति श्रद्धा भाव तो व्यक्त नहीं किया है किन्तु उनके कथनों से प्रकट है कि वे मत्सयेन्द्रनाथ और गोरखनाथ की परम्परा से परिचित अवश्य थे। द्वन्द्वात्मक सृष्टि से पहले तत्व किस रूप में विद्यमान था, इसकी ओर संकेत करते हुये उन्होंने कहा है –

निंदु विंदु नही जीउ न जिंदो। ना तदि गोरखु ना माछिंदो।
ना तदि गिआनु धिआनु कुल ओपति ना को गणत गणाइदा।[4]

नानक का कहना है कि द्वन्द्वात्मक सृष्टि से पहले न 'नाद' था न 'विन्दु', न जीव तत्व था न जीवधारी, न गोरखनाथ थे न मत्स्येन्द्र नाथ, न ज्ञान था न ध्यान, न कुलों की उत्पत्ति थी न कोई गणित की गणना करने वाला था। इस उल्लेख के अतिरिक्त नानक वाणी में हठयोग के अनेक शब्द पाये जाते हैं। 'दस दुआरि', 'उलटियो कमल' अनहद सबद' 'सुंन समाधि' आदि अनेक शब्द नानक की वाणी में उपलब्ध हैं। इससे सिद्ध है कि नानक नाथ–योग की परम्परा से परिचित थे।

संतपरंपरा में तीसरा महत्वपूर्ण नाम 'दादू' का है। दादू ने गोरक्षनाथ, भर्तृहरि और गोपीचन्द का श्रद्धापूर्वक उल्लेख किया है। दादू का कथन है कि सत्य छिपाया नहीं जा सकता। सत्य की साधना करने के कारण ही गोरक्षनाथ, भर्तृहरि, अनंत सिद्ध अ।र गोपीचंद जगत् में विख्यात हैं–

दादू कहाँ था गोरष भरथरी, अनंत सिधौं का मंत।

प्रगट गोपीचंद है, दत्त कहै सब संत।।[५]

उपर्युक्त संतों के अतिरिक्त संत सुंदरदास, संत हरिदास निरंजनी, संत मलूक दास, दरियादास (बिहार वाले), गुलाल साहब, पलटू साहब, धारणी दास, चरण दास आदि अनेक संतों ने गोरक्षनाथ का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है और योग–साधना का महतव प्रतिपादित किया है। संत सुन्दरदास ने विविवत् शास्त्राभ्यास किया था। उन्होंने 'ज्ञान समुद्र' और 'सर्वांग योग' इन

दो ग्रंथों में योग साधना का विस्तृत वर्णन किया है। हठयोग के पूर्वाचार्यों का उल्लेख करते हुये आपने लिखा है –

आदिनाथ मत्स्येन्द्र अरू गोरष चर्पट मीन।
काणेरी चौरंग पुनि हठ सुयोग इनि कीन।।[६]

हठयोग के अन्तर्गत षट् कर्मों–नेती, धोती, बस्ती, त्राटक, नौली मुद्रा (लौलिकी) कपाल भाती (कपाल भाति) – का उल्लेख करने के बाद इनका प्रभाव दिखाते हुये संत सुन्दरदास ने कहा है –

यह षट कर्म सिद्धि के दाता। इन तैं सूक्षम होय सुगाता।
आउँ पित्त कफ रहै न कोई। नख सिख लौं वपु निर्मल होई।।
सदाभ्यास तैं होय सुछंदा। दिन दिन प्रगटै अति आनंदा।।[७]

उपर्युक्त उदाहरणों से प्रकट है कि संत सुन्दरदास हठयोग साधना से न केवल परिचित थे, वरन् उसे संतों के लिए आवश्यक भी समझते थे।

हरिदास निरंजनी ने गोरक्षनाथ को काल पर विजय प्राप्त करने वाला बताया है और कहा है–

नाथ निरंजन देखि अंति संगी सुखदाई।
गोरख गोपीचंद सहज सिधि नव निधि पाई।।[८]

अन्यत्र आपने गोरक्षनाथ को मुनि की संज्ञा दी है और कहा है कि 'उनकी गति–मति को सुर–नर–मुनि कोई भी नहीं जानता। उन्होंने करम–भरम को जीत लिया था, भोग की जगह योग को जानते थे और गगन मंडल में प्रवेश कर सदा महारस पान में मगन रहा करते थे'।[९]

संत मलूकदास ने 'सतगुरू' के तत्व को जानने वाले विरले साधकों का उल्लेख करते हुये अवधूत योगी गोरक्षनाथ का उल्लेख किया है। वे कहते हैं –

हमारा सतगुरू विरले जाने।
सुई के नोक सुमेर चलावै, सो यह रूप बखाने।
की तौ जानै दास कबीरा, की हरिनाकुस पूता।
की तौ नामदेव और नानक की गोरख अवधूता।।[१०]

संत दरियादास ने गोरक्षनाथ को योगियों का आदर्श माना है। वे योगियों का लक्षण निरूपित करते हुए कहते हैं –

जोगी सो जो जोग महँ मातल, मातै भेद विचारि।
पाँच तत्तु अपनेबस करै, दुर्मति सभ दुरि डारि।।

इस आदर्श को प्राप्त करने वाले योगी को वे गोरखनाथ के समकक्ष मानते हैं –

ऐसन जोगी होखै कोई। गोरख तुल वोए गनिए सोई।[११]

प्रकट है कि दरियादास के मन में आदर्श योगी का जो रूप प्रतिष्ठित था, गोरक्षनाथ उसके प्रतीक थे।

गुलाल साहब ने वशिष्ठ, व्यास और सुखदेव जैसे तत्वज्ञों की परंपरा में गोरक्षनाथ को स्थान देते हुये कहा है –

गोरख दत्त बसिस्ट व्यास मुनि, सुखदेव जाति जनाया है।
अनेक साधु संतोष सत्य लिये मन को ध्यान लगाया है।।[12]

पलटू साहब ने योग–तत्व का निरूपण करते हुये कहा है कि यही मत आगम–निगम सम्मत है। ध्रुव प्रह्लाद, सनकादि, व्यास, सुकदेव, दत्तात्रेय, जड़ भरथ, राजा रघु, कपिल, जनक, अष्टावक्र आदि ने इसी का अनुसरण किया है। भगवान कृष्ण ने श्री मुख से इसी का उपेदश उद्धव और अर्जुन को दिया था। इसी योग तत्व की प्रतिष्ठा नौ योगेश्वरों – आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, जालंधरनाथ, गोरक्षनाथ आदि नौ नाथों से तात्पर्य है – ने की है और नानक, कबीर, तुलसी आदि संत भी इसी पथ का अनुसरण करने वाले हैं –

ध्रुव प्रह्लाद सनकादि कीन्हा व्यास और सुकदेवनं।
दत्तात्रेय जड़ भरथ कीन्हा, राजा रघु सोइ धारन।।
सहित जननी कपिल कीन्हा जनक अष्टावक्रनं।
श्री मुख से हरि आपु भाखा सहित उधो अर्जुन।।
सोई नौ जोगेसर कीन्हा नानक तुलसी कबीरनं।[13]

संत धरनीदास ने राम–तत्व के पारखियों की एक लम्बीसूची देते हुये कहा है –

भगति भरथरी की अवर जानि पीपा।
जिन्हों का अमर नाम है दीप दीपा।।
कबीरा गोरखनाथ मीरा बड़ाई।
कामा व नामा सुदामा भलाई।।[14]

संत चरनदास ने तो अपनी तीन कृतियों – 'अष्टांग योग वर्णन', 'योग सन्देह सागर' ओर 'ज्ञानस्वरोदय' – में योग–साधना का विस्तृत वर्णन किया है। निर्गुण संत परम्परा में योग–साधना पर इतना अधिक बल और किसी संत ने नहीं दिया है। इससे योगमत के प्रति इनके लगाव की पुष्टि होती है।

संतमत के अन्तर्गत कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी हैं, जिनका संघटन नाथ–योगियों की परम्परा के अनुसार हुआ है। दादू पंथ के अन्तर्गत 'नागा' ओर 'खाकी' दो उप पंथ ऐसे हैं, जिनके संघटन में योगियों के संस्कार लक्षित किये जा सकते हैं। 'नागा' पथ के सदस्यों को शस्त्र–प्रयोग का अभ्यास कराया जाता है। जयपुर राज्य की ओर से इन नागाओं ने कभी भयंकर युद्ध भी किये थे। इस सन्दर्भ में स्मरण रखना होगा कि नाथ–योगियों ने भी अनेक बार मुसलमानी शासकों के विरूद्ध संघटित होकर शस्त्र उठाया था। दादू पंथ के अन्तर्गत संघटित

'नागा' पंथ में नाथ योगियों की प्राचीन परम्परा के संस्कार अवश्य विद्यमान हैं। 'खाकी' पंथ के संत रमते रहते हैं। यह रमते रहने की प्रवृत्ति नाथ योगियों की ही है। 'रमता योगी बहता पानी' की उक्ति प्रसिद्ध हैं।

संतों की ही परम्परा में अघोर पथ का उल्लेख किया गया है। इसके प्रवर्त्तक कालूराम माने जाते हैं। इसे मूलतः गोरखपंथ की ही एक शाखा कहा जाता है। किनाराम कालूराम के शिष्य थे। किनाराम की बानियाँ संत मत के अनुकूल हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नाथ–योग की परम्परा में ही आगे चलकर अघोर पंथ का संघटन हुआ, जो संतों के संसर्ग में आने पर क्रमशः संतमत में अन्तर्भुक्त हो गया। जो भी हो, इससे इतनातो प्रकट है कि नाथ योगियों के कुछ सम्प्रदायों का सन्त मत से सीधा सम्बन्ध है।

सन्त बीरभान द्वारा प्रवर्तित 'साध सम्प्रदाय' पर भी नाथ–योगियों का सीधा प्रभाव स्पष्ट है। इस सम्प्रदाय के ग्रन्थों में गोरखनाथ और गोपीचन्द के शब्द संगृहीत हैं। इस सम्प्रदाय के मन्दिरों पर 'गोरख' शब्द लिखने की परम्परा भी है। इस सम्प्रदाय के एक सन्त उदादास ने योग–साधना को अधिक महत्व दिया है। सम्प्रदाय में महायोगी 'शिव' को भी महत्व दिया जाता है। इन सभी बातों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस सम्प्रदाय में नाथ योगियों की साधना और सिद्धान्त दोनों का अवशेष विद्यमान है।

उपर्युक्त विश्लेषण से तीन बातें सामने आती हैं। पहल बात यह कि प्रायः सभी महत्वपूर्ण निर्गुण सन्तों ने गुरू गोरक्षनाथ के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। दूसरी बात यह कि नाथ–योग का महत्व प्रायः सभी सन्त सम्प्रदायों में मान्य है। यदि कहीं विरोध है तो उसके तात्विक स्वरूप का नहीं, विरोध साधन को ही साध्य मान लेने का है। तीसरी बात यह कि निर्गुण सन्त–परम्परा के अन्तर्गत ऐसे कई सम्प्रदाय हैं, जिनके स्वरूप संघटन पर नाथ–योग की स्पष्ट छाप लक्षित की जा सकती है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी काव्य की निर्गुण संत परम्परा गोरक्षनाथ से प्रेरित और अनुप्राणित है। जिस प्रकार शिव जी द्वारा प्रवर्तित कहे जाने वाले अनेक सम्प्रदाय श्री गोरक्षनाथ द्वारा संघटित नाथ सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त हो गये थे, उसी प्रकार नाथ–योगियों की परम्परा से सम्बद्ध कई सम्प्रदाय निर्गुण सन्तधारा में अन्तर्भुक्त हो गये होंगे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो कहा भी है कि कबीर दास के पंथ में अनेक पूर्ववर्ती योगी जातियाँ शामिल हो गई थी।[१५] वस्तुतः नाथ सम्प्रदाय का इतिहास अभी भी अल्प ज्ञात है। इस महत्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रवाह का गम्भीर ऐतिहासित अनुशीलन अपेक्षित है। 卐

---

१. कबीर ग्रंथावली, पद ४८, पृष्ठ २८, सं० पारसनाथ तिवारी
२. गोरखबानी, पद १७
३. कबीर ग्रंथावली, पद १६३
४. नानक वाणी, मारू सोलहे, महला १५ पृष्ठ ६४६
५. दादू वाणी, सुमिरण कौ अंग, पृष्ठ २६
६. सुन्दरसार, ना० प्र० स० पृष्ठ ४६
७. वही, पृष्ठ, ५८
८. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृष्ठ, ४७० पर उद्धृत।
९. वही, पृष्ठ, ४७०, पर उद्धृत
१०. संतबानी संग्रह, दूसरा भाग, पृष्ठ, १०२
११. दरिया ग्रंथावली, पृष्ठ, ४०।
१२. महात्माओं की वाणी, पृष्ठ, ३६ शब्द ६६
१३. पलटू साहब की बानी, भाग ३, पृष्ठ ५५
१४. धरनीदास की बानी, पृष्ठ १३।
१५. नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ, १६६।

गुरू गोरखनाथ की सबदी का साहित्यिक विश्लेषण

डॉ० किशोरी लाल गुप्त

गोरखबानी

गोरखनाथ जी की रचनाओं का एक संकलन "गोरखबानी" नाम से १९४२ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन अनेक प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर स्वर्गीय डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने किया था। प्राचीनतम प्राप्त हस्तलेख सम्वत् १७१४ वि० का है। इस ग्रन्थावली में गोरखनाथ जी की निम्नांकित रचनाएं संकलित हैं :–

मूल ग्रंन्थ

१ –	सबदी	–	२७५ छन्द
२ –	पद	–	६२
३ –	सिष्या दरसन	–	४४ पंक्तियों की गद्य–पद्य रचना
४ –	प्राष संकली	–	१६ चौपाई छन्द
५ –	नरवै बोध	–	१४ चौपाई छन्द
६ –	आत्म बोध	–	२२ चौपाई छन्द
७ –	अभै मात्रा जोग	–	६ पंक्ति की गद्य रचना
८ –	पन्द्रह तिथि	–	१७ चौपाई छन्द
९ –	सप्त वार	–	८ चौपाई छन्द
१० –	मछीन्द्र गोरख बोध	–	प्रश्नोत्तर रूप में। प्रश्न गोरख के, उत्तर मछीन्द्र के। कुल १२६ छन्दों में। चौपाई और चौपाई का मिश्रित प्रयोग।
११ –	रोमावली	–	चार पृष्ठों का गद्य ग्रन्थ।
१२ –	ग्यान तिलक	–	सार छन्द की ४५ अर्द्धालियाँ (९० चरण)
१३ –	पंच मात्रा	–	२४ चौपाई छन्द

परिशिष्ट १ क

१ – गोरख गणेश गुष्टि – 'मछीन्द्र गोरख बोध' के ढंग की प्रश्नोत्तर वाली रचना। गणेश पूछते हैं, गोरख उत्तर देते हैं। ४ पृष्ठों की गद्य रचना।

२ – ज्ञान दीप बोध या गोरख दत्त गुष्टि – यह भी 'मछीन्द्र गोरख बोध' के ढंग की रचना है। प्रश्नकर्त्ता गोरख हैं, उत्तर देने वाले दत्तात्रेय। कुल ५२ छन्द। सार, चौपाई, चौपई आदि।

३ – महादेव गोरष गुष्टि – ३ पृष्ठों की गद्य रचना। कर्म पटल और ज्ञान पटल इन दो अध्यायों में विभक्त। यह ग्रन्थ प्रश्नोत्तर रूप में नहीं है, सभी अंश "ईश्वरोवाच"

है–महादेव द्वारा कथित है।

४ – सिस्ट पुराण – १३ पंक्तियों का गद्य ग्रन्थ। इसमें कुल ३२ वाक्य हैं, जो सभी एक वजन के, एक रंग ढंग के हैं। एक वाक्य ले : –

"दया उपरांति धर्म नाहीं।"
(दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं)

५ – दया बोध – १७ चौपाई छन्द

६ – कुछ पद – ३

परिशिष्ट २ ख

१ – सप्तबार नव ग्रह – ८ चौपाई छन्द एवं अन्त में १ अन्य छन्द –

आदित ऑष्याँ, सोम श्रवण, मंगल मुष परवांण।
बुध हिरदै, बृस्पति नाभी, सुक ते इन्द्री जांण।।
शनि गुदा वाय, राह ते मंन, केत ते नासिका रहै।
सप्तवार नवग्रह देवता, काया भींतरि श्री गोरक्ष कहे।।६।।

२ – ब्रत – चौपाई १ दोहा

सील ब्रत, संतोष ब्रत, छिमा दया ब्रत दांन।
ये पाँचो ब्रत जो गहै, सोई साध सुजानं।।६।।

३. – पंच अग्नि – ६ चौपाई। पाँचो अग्नि ये हैं –

१– मूल अग्नि–रेचक २. भुजंगम अग्नि ३– ब्रह्म अग्नि, ४– काल अग्नि ५– रूद्र अग्नि या त्राटिका।

४ – अष्ट मुद्रा – आठ अनुष्टुप छन्द। आठ मुद्रायें हैं –

१– मूलनी–लिंग में, २– जल श्री–नाभि में, ३– खीरनी–हृदय में, ४–खेचरी –मुख में,

५– भूचरी नासिका में, ६–चाचरी–चक्षु में, ७–अगोचरी–कर्ण में, ––उन्मनी–ब्रह्माण्ड में।

एक उदाहरण :

कांम तृष्णा समो कृतवा
मुद्रा तौ भई मूलनी।
नाभी मधे जल श्री मुद्रा,
काल क्रोध ले उतपनी।।

५ – चौबीस सिद्धि – एक पृष्ठ का गद्य ग्रन्थ। चौबीस सिद्धियों के नाम और उनके काम।

६ – बतीस लछन – १० पंक्तियों का गद्य ग्रन्थ। आठ पारछ्या हैं ७ ग्यान, विचार, बमेक (विवेक) संतोष, निर्बल, सहज, सील, सुनि। प्रत्येक परीक्षा अंग में चार–चार लक्षण हैं।

७ – अष्ट चक्र – १ आधार चक्र–गुदा में, ४ दल। २–द्रिष्ट चक्र–लिंगमें, ६ दल। ३–मणिपूर चक्र–नाभि में, १० दल। ४–अनहद चक्र–हृदय में, १२ दल। ५–विशुद्ध चक्र–कण्ठ में, १६ दल। ६–अग्नि चक्र नेत्र में, १६ दल। ७–गिनांन चक्र–ब्रह्मारंध्रमें, एक सहस्त्र दल। ८–सूक्ष्म चक्र–विज्ञान स्थल में, बीससहस्त्र दल।

८ – रह रासि – १६ चरण चौपाई

"गोरखबानी" के प्रकाशन के पहले इन रचनाओं में से केवल एक का प्रकाशन हुआ था। वह है – 'गोरख बोध'। इसे १६१६ ई० में शिवराम शर्मा बुकसेलर, पूरब फाटक़, बनारस ने प्रकाशित किया था। इसकी एक प्रति कारमाइकेल पुस्तकालय वाराणसी में है। इसी का अच्छा संस्करण बाद में डॉ० मोहन सिंह, लाहौर ने अंग्रेजी अनुवाद के सहित सम्पादित किया।

डॉ० बड़थ्वाल 'सबदी' को गोरखनाथ की सबसे प्रामाणिक रचना मानते हैं। जैसे हँड़िया के एक चावल से परख हो जाती है कि चावल पका है या नहीं, उसी प्रकार केवल 'सबदी' के अनुशीलन से गोरखबानी का समस्त वैशिष्ठ्य सहज ही आँका जा सकता है। इसीलिए केवल 'सबदी' का साहित्यिक विश्लेषण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

सबदी

छन्द : 'सबदी' से सामान्यतया निर्गुनियाँ भजन का बोध होता है। सगुन काव्य में जो स्थान पद का हे, वही स्थान निर्गुन काव्य में 'राबद' का हैं ये रचनाएँ खजड़ी पर गाये जाने के लिए हैं। इसी अर्थ में तुलसी ने सबदी का यह प्रयोग किया है।

'साखी, सबदी, दोहरा, कहि किहिनी उपखान।'

कबीर की रचना साखी, सबदी और रमैनी ३ भागों में विभक्त है। सबदी के अन्तर्गत उनके भजन ही हैं।

गोरखबानी में संकलित 'सबदी' का अर्थ दूसरा हैं ये रचनायें भजन नहीं हैं। ये रचनायें संत साहित्य की साखियों जैसी हैं। यहाँ भी एक बहुत बड़ा अन्तर है। साखियाँ दोहों में विरचित हैं, पर गोरखनाथ की ये सबदियाँ दोहों में नहीं है। ये दो–दो दलों में छपी रचनायें हैं। इनकी समस्त संख्या २७५ है। इनमें दोहे मुश्किल से छः सात हैं – १८, २१५, २१८, २४४, २४८, २५०, २५१। अधिकांश रचनायें चौपदी रूप में हैं, जिनमें कई छन्द हैं, जैसे चौपाई, (१६ मात्रा, अन्त में गुरू)

घटि घटि गोरख बाही क्यारी
जो निपजै सो होइ हमारी।
घटि घटि गोरष कहै कहांणी
काचै भांड़ै रहै न पांणी।।३७।।

चौपई (१५ मात्रा, अन्त में गुरू लघु) –

दूधा धारी पर घरि चित्त
नागा लकड़ी चाहै नित्त।
मौनीं करै म्यंत्र की आस
बिन गुरू गुदड़ी नहीं बेसास ।।४०।।

चौपई छंद बहुत हैं। प्रायः चौपाई और चौपई की खिचड़ी भी हो गई है। एक हिन्दीनुमा अनुष्टुप भी हैं :–

एकाएकी सिध नांउं, दोइ रमति ते साधवा।
चारि पंच कुटुम्ब नांउं, दस बीस ते लसकरा।।१७६।।

लम्बा छन्द एक ही प्रयुक्त है, वह है सार या ललित पद। इसके प्रत्येक चरण में १६, १२ के विराम से २८ मात्राएँ होती हैं। इन सबदियों के सार केवल दो दो चरणों के हैं, जैसे नींद पर कही गई है सबदी –

आवति पंच तत्त कूं मोहै, जाती छैल जगावै।
गोरष पूछै बाबा मछिन्दर या न्यंद्रा कहाँ थै आवैं।।१७५।।

दो सबद : इस ग्रन्थ में एक वास्तविक सबद है, जिसे तीन सबदियाँ मान लिया गया है।

असाध कंद्रप विरला साधंत कोई।
सुर नर गण गंध्रप ब्याप्या, बालि सुग्रीव भाई।
ब्रह्मा देवता कंद्रप व्याप्या। यंद्र सहंस्र भग पाई।।१६८।।
अठयासी सहस्र रषीसर कंद्रप व्याप्या असाधि विष्न की माया।
यंन कंद्रप ईस्वर महादेव नाटारंभ नचाया।।११६।।
विष्न दस अवतार थाप्या......
असाधि कंद्रप जती गोरषनाथ साध्या, अनि नीझर झरंता राख्या।।२००।।

इसी प्रकार एक और सबद है, जिसे दो सबदी माना गया है।

जीव क्या हतिये रे प्यंडधारी।
मारि लै पंचभू भ्रगला।
चरै थारी बुधि बाड़ी।
जोग का मूल है दया दाण।
कथंत गोरष मुकति लै मानवा।
मारि लै रे मन द्रोही।
जाके बप वरण मास नहीं लोही।।२२८।।
जिनि मन ग्रासे देव दाण
सो मन मारि लै गहि गुरू ग्यान बांण।।२२६।।

एक अधूरी सबदी

एक सबदी अधूरी है, अर्थ पूरा दिया हुआ है –

'हिन्दू कहते हैं (आखैं, आख्यान करते हैं कि हमारा परमेश्वर) राम है, मुसलमान कहते हैं, खुदा है। किन्तु योगी जिस अलक्ष्य का आख्यान करते हैं, वहाँ न राम है, न खुदा। (अलक्ष्य ब्रह्म राम और खुदा दोनों से परे है।)'

मूल पाठ है –

हिन्दू आषैं अलष कौं, तहाँ राम अछै न षुदाई।।६६।।

इसके पहले की सबदी है –

हिन्दू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद, जहाँ देहुरा न मसीत।।६८।।

इसके वजन पर उक्त अधूरी सबदी का पूर्ण रूप यों होना चाहिए –

हिन्दू आषैं राम को, (मुसलमान खुदाई।
जोगी आषैं अलख को), तहाँ राम अछै न खुदाई।।६१।।

स्पष्ट है, कोष्टककांतरगत अंश छूट गया है।

अन्य सन्तों के छन्द

'सबदी' में कुद छन्द अन्यों के भी संकलित हो उठे हैं। डॉ० बड़थ्वाल को इसका पता था, पर उन्होंने इन्हें निकाला नहीं। इस सम्बन्ध में लिखते हैं :

'गोरख के नाम से नई–नई रचनायें ही नहीं गढ़ ली गई होंगी, इस बात की भी सम्भावना है कि पुरानी अलग–अलग कृतियों में भी पद्यों की संख्या अधिक बढ़ गई होगी। .. ....सबदी में संख्या उत्तरोत्तर अधिक बढ़ती गई है। ......जो सब प्रतियों में समान हैं (१८६ साखी तक) उनको अधिक प्रामाणिक मानना चाहिए। इनमें भी दो एक साखियाँ, जो स्पष्ट ही अन्यों की हैं, इसलिए नहीं निकाली गई हैं कि उनके आगे पीछे के कुछ अंश भी उन कवियों के हों, जिनकी वे जान पड़ती हैं। इस बात की सूचना यथा स्थान पाद– टिपपणी में दे दी गई है।''

अन्य कवियों की संकलित रचनायें निम्नलिखित है :–

१ – लाल नाथ

लाल बोलंति अम्हे पारि उतरिया, मूढ़ रहै उस वारं।
थिति विहूंणा झूठा योगी, ना तस वार न पारं।।१०४।।

डॉ० बड़थ्वाल की टिप्पणी – 'यह सबदी किसी लालनाथ योगी की जान पड़ती है।''

२ – बाबा रतन हाजी

क –ॐ लीहा परी। तांबा तकबीर।
रूपा महंमद। सोना षुदाई।।
दुहु बिचि दुनियां गोता षाई।
हमतो निरालम्भ बैठे देखत रहें।।
ऐसा एक सुषन बाबा रतनहाजी कहें।।११८।।

इस पर डॉ० बड़थ्वाल की टिप्पणी :–

"यह सबदी प्रायः सब प्रतियों में मिलती है, परन्तु यह स्पष्ट ही बाबा रतनाथ की है, गोरख की नहीं।"

ख – हंड ब्रह्मण्ड, चहोड़िया, मानूं बेस्या अंन।
कोई–कोई कोरड़ रह गया, यूं भाषै नाथ रतंन।।२११।।

इस पर टिप्पणी – "यह साखी भी स्पष्ट ही रतननाथ की हैं"

कबीर

कदै न सोभै सुन्दरी, सनकादि के साथि।
जब तक कलंक लगाइसी, काली हांडी हाथि।। २५०।।

इस पर टिप्पणी है –"यह सबदी बीजक के साखी अंग में कबीर की मानी गई है।"

भाषा

डा० बड़थ्वाल के अनुसार गोरखनाथ का समय विक्रम की ११वीं शती है। गोरखबानी जिस रूप में सुलभ है, वह रूप ११वीं शती का है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। फिर भी उस में प्राचीनता के प्रभाव हैं। हरिऔध जी गोरखनाथ को चौदहवीं शती में हुआ मानते हैं और ग्रन्थ की भाषा को १७वीं शती की। गोरखबानी का प्राचीनतम् प्राप्त हस्तलेख सम्वत् १७१४ का है भी। सन्तों की वाणी एक मुख से दूसरे मुख में होती हुई, किञ्चित नवीनता का आ जाना अवश्यम्भावी है। प्राप्त रचनाओं की भाषा १४वीं शती की जान पड़ती है।

गोरखनाथ जी सारे भारत में भ्रमण करने वाले योगी थे। अतः उनकी भाषा में अनेक भाषाओं के अवशेष मिलते हैं।

अदेषि देषिबा, देषि विचारिबा अदिसिटि राखिबा चीया।
पाताल की गंगा ब्रह्मण्ड चढ़ाइबा तहां विमल विमल जल पीया।।२।।

देखिबा, विचारिबा, राखिबा, चढ़ाइबा जैसे प्रयोग राजस्थानी हैं ऐसा हरिऔध जी का

अभिमत है। ऐसे प्रयोग गोरखबानी में बहुत हैं – सैकड़ों हैं। उदाहरणार्थ देखिए सबदी – ७, ८, २२, २७, ३१, ३३, ३४, ५१, ५२, ६३, ६४, ६७, ७२, ८२, ११२, ११३, ११४, १२१, १७३, १८३, १९२, १९३, २०३, २२१।

गुजराती सम्बन्धकारक का चिन्ह "नां" कई पदों में प्रयुक्त है, यथा नां–(१) जीव सीव ना वासा ३–जीव में शिव का वास हो जाय। २–भणंत गोरखनाथ महींद्र ना पूता ११, २४–महीन्द्र का पुत्र। ३–माया ना भौ टारी, १६–माया का भय दूर कर दिया।

४–अलख गुरू ना चेला १६–गुरू का चेला।

नी का प्रयोग १–पुरिष नी पारिखा पाई (४) पुरूष की परीक्षा पाई

२– इन तिहुआं नी मैं घर घरणी ७–मैं इन तीनों के घर की घरनी हूँ। तीनों की पत्नी हूँ।

नैं का प्रयोग – १– निरंजन सिधि नैं रआनं १६– निरंजन की सिद्धि का स्थानों। इसी प्रकार मराठी सम्बन्ध कारक का तिन्ह "चा" भी पदों में यत्र–तत्र प्रयुक्त है।

यथा –

चा – १– तिहां छे काल चा हेरा १–काल का अहेर, मृत्यु का आखेट।

२– बामां अंगे सोइबा जम चा भोगवा १
स्त्री के साथ सोना यम का भोग होना है।

चै – सर्व रस खोईला गुरू बाघनी चै खोले
नाचत गोरषनाथ घूँघरी चै घातै।
सबै कमाई खोई गुरू बाघनी चै राचै –२
बाघनी चै खोले–माया रूपी बाघनी के क्रोड़ में (गोद में)
घूंघरी चै घातैं–घुँघरू के आघात, नूपुर के स्वर
बाघनी चै राचैं–माया रूपी सिंहनी के अनुराग में।

अपादान कारक की राजस्थानी विभक्ति थैं सबदी एवं पदों में भी प्रयुक्त हुई है –

१ – विरिध थै क्यूं करि होइबा बालम ८६

न्यंद्रां कहाँ थें आवै। १७५।

और के अर्थ में "नैं" शब्द का प्रयोग पदों में कई बार हुआ है। पता नहीं यह नैं किस भाषा का शब्द है :–

१ – आवें सोना न आप सोनारी – ६

२ – अहरवि नाद नै ब्यंद हथौड़ा–६

३– अबै अरण ने विषै कोइला–६

४– जाणा नै जोसी जोऔ नै विचारी – ७

(ऐ ज्ञानियो और ज्योतिषियो, देखो और विचारो)

५– नाभ अस्थानक मोरा सासू नै सुसर–१६

६– चोरी नै आंणी गाई–२०

(गाय की चोरी की ओर ले आये)

गोरखबानी में न औ ण दोनों का प्रयोग मिलता है। न के स्थान पर ण का यह प्रयोग कुछ तो अपभ्रन्श का अवशेष है, कुछ पंजाबी का प्रभाव।

नींझर झरणैं अंमीरस पीवणां, षट दल बेध्या जाइ।
चन्द विहूंणां चांदिणां, तहां देख्या श्री गोरषराइ।।१७१।।

सरणै, पीवणां, विहूँणां, चांदिणां सभी में न के स्थान पर णं प्रयुक्त हुआ है। ऐसे प्रयोग सबदी ३७, ६३, ६४, ६५, ६६, ७२, ७४; ८३, ९१, ६६, ९७, १०५, ११३, ११२, १२०, १२५, १२६, १३२, १३६, १३६, १४०, १४३, १४४, १४६ में भी देखे जा सकते हैं।

महाकवि चन्द बरदायी के पृथ्वीराज रासों में जिस प्रकार शब्दों के अनुस्वारांत प्रयोग बहुत मिलते हैं, उसी प्रकार के प्रयोग सबदी में भी बहुत हैं। ये अनुस्वारान्त प्रयोग प्रायः तुकों में मिलते हैं। यथा –

सारमसा रं गहर गंभीरं, गगन उछलिया नांदं।
मानिक पाया फेरि जुंकाया, झूठा बाद–विवादं।।१२।।

भेवं, देवं ३१, अहार, सारं ३४, चोरं जोरं ३५, तूरं, सूरं, ५१, ५४, द्वारं, अपारं ५२, नादं, आदं ५३, पवन, गवनं ५६, चन्दं ज्यंदं ५७, सारं, पारं ५६, टकसालं, संसारं ६०, चौतारं, सारं ६२, तीरं, धीरं ६७। इसी प्रकार ७५, ७६, ७७, ८७, ६३, ६६, ११०, ११२, ११५, ११६, १२१ में भी संस्कृत की यह झूठी नकल देखी जा सकती है।

वर्तमान कालीन क्रियाओं को अन्तांत कर देने की पुरानी पद्धति रही है। उसके भी पूरे दर्शन सबदी में होते हैं। यथा –

१– चलंत पन्था, तूटंत कंथा, उडंत षेहा, बिचलंत देहा।
छूटंत ताली हरि सूं नेहा ।।१६२।।

१– असाघ साधंत गगन गाजंत, उनमनी लागत ताली।
उलटंत पवनं पलटंत बांणीं, अपीव पीवंत जे ब्रह्मज्ञानी।।६०।।

क्रियाओं के ऐसे 'अन्तांत' प्रयोग ११, २४, २८, ३६, ५३, ६५, ६६, ६१, १२२ सबदियों में भी देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखबानी की भाषा प्राचीन है, उस पर भले ही नवीनता की भी प्रर्याप्त छाप है। संस्कृत के तत्सम और तद्‌भव दोनों प्रकार के शब्द यहाँ प्रचुर मात्रा में हैं। कुछ सबदियों में अरबी फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। ऐसी सबदियाँ प्रायः इस्लाम प्रसंग लिए हुए हैं। यथा –

१ – महंमद महंमद न करि काजी, महंमद का विषम विचारं।
महंमद हाथि करद जे होती, लौहे घड़ी न सारं।।६।।

२– दरवेस सोइ जो दर की जाँणै,
पंचे पवन अपूठा आंणै।
सदा सुचेत रहे दिन राति,
सो दरवेस अलह की जाति।।१८२।।

३– महंमद महंमद न करिकाजी, महंमद का बौहोत विचारं।
महंमद साथि पैकंबर सीधा, य लष असी हजारं।।२२५।।

सबदी २६ भी ऐसी ही रही होगी, पर उसे हटा दिया गया है, क्योंकि उसमें साम्प्रदायिक असद्‌भाव की आशंका की गई है। सबदी में अरबी फारसी के कुछ प्रयुक्त शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है : –

४– कतेब
६– कतेबे, करांणै, दुनी (दुनिया)
१०– महंमद, पीरं, काजी
११– कलमा, महंमद
१४– पीर, मुसलमानी, राह, काजी, मुलां (मुल्ला)
६८– मुसलमान, मसीत (मसजिद)
६६– खुदाई
७६– गीद, (गेंद), चौगानं, मैदानं
६५– दारू, पलीता
१०२– विलाइत
१५१– रिजक, रोजी, सदा, हजूर
१७१– लसकरा (लश्कर, सेना)
१६५– गरीबी
२३२– ओजुद (अस्तित्व, शरीर)
२३६– ओजुदा, मगज (मस्तिष्क), ख्याल, बेहाल
२४५–४६ अमली (नसेड़ी)
२६५– कोवत (कुवत, शक्ति)

४– जाणा नै जोसी जोऔ नै विचारी – ७

(ऐ ज्ञानियो और ज्योतिषियो, देखो और विचारो)

५– नाभ अस्थानक मोरा सासू नै सुसर–१६

६– चोरी नै आंणी गाई–२०

(गाय की चोरी की ओर ले आये)

गोरखबानी में न औ ण दोनों का प्रयोग मिलता है। न के स्थान पर ण का यह प्रयोग कुछ तो अपभ्रन्श का अवशेष है, कुछ पंजाबी का प्रभाव।

नींझर झरणै अंमीरस पीवणां, षट दल बेध्या जाइ।
चन्द विहूंणां चांदिणां, तहां देख्या श्री गोरषराइ।।१७१।।

सरणै, पीवणां, विहूँणां, चांदिणां सभी में न के स्थान पर णं प्रयुक्त हुआ है। ऐसे प्रयोग सबदी ३७, ६३, ६४, ६५, ६६, ७२, ७४; ८३, ९१, ९६, ९७, १०५, ११३, ११२, १२०, १२५, १२६, १३२, १३६, १३६, १४०, १४३, १४४, १४६ में भी देखे जा सकते हैं।

महाकवि चन्द बरदायी के पृथ्वीराज रासों में जिस प्रकार शब्दों के अनुस्वारांत प्रयोग बहुत मिलते हैं, उसी प्रकार के प्रयोग सबदी में भी बहुत हैं। ये अनुस्वारान्त प्रयोग प्रायः तुकों में मिलते हैं। यथा –

सारमसा रं गहर गंभीरं, गगन उछलिया नांदं।
मानिक पाया फेरि र्जुकाया, झूठा बाद–विवादं।।१२।।

भेवं, देवं ३१, अहार, सारं ३४, चोरं जोरं ३५, तूरं, सूरं, ५१, ५४, द्वारं, अपारं ५२, नादं, आदं ५३, पवन, गवनं ५६, चन्दं ज्यंदं ५७, सारं, पारं ५६, टकसालं, संसारं ६०, चौतारं, सारं ६२, तीरं, धीरं ६७। इसी प्रकार ७५, ७६, ७७, ८७, ९३, ९६, ११०, ११२, ११५, ११६, १२१ में भी संस्कृत की यह झूठी नकल देखी जा सकती है।

वर्तमान कालीन क्रियाओं को अन्तांत कर देने की पुरानी पद्धति रही है। उसके भी पूरे दर्शन सबदी में होते हैं। यथा –

१– चंलंत पन्था, तूटंत कंथा, उडंत षेहा, बिचलंत देहा।
छूटंत ताली हरि सूं नेहा ।।१६२।।

१– असाघ साधंत गगन गाजंत, उनमनी लागत ताली।
उलटंत पवनं पलटंत बांणीं, अपीव पीवंत जे ब्रह्मज्ञानी।।६०।।

क्रियाओं के ऐसे 'अन्तांत' प्रयोग ११, २४, २८, ३६, ५३, ६५, ६६, ६१, १२२ सबदियों में भी देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखबानी की भाषा प्राचीन है, उस पर भले ही नवीनता की भी प्रर्याप्त छाप है। संस्कृत के तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के शब्द यहाँ प्रचुर मात्रा में हैं। कुछ सबदियों में अरबी फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। ऐसी सबदियाँ प्रायः इस्लाम प्रसंग लिए हुए हैं। यथा –

१ – महंमद महंमद न करि काजी, महंमद का विषम विचारं।
महंमद हाथि करद जे होती, लौहे घड़ी न सारं।।६।।

२– दरवेस सोइ जो दर की जाँणै,
पंचे पवन अपूठा आंणै।
सदा सुचेत रहे दिन राति,
सो दरवेस अलह की जाति।।१८२।।

३– महंमद महंमद न करिकाजी, महंमद का बौहोत विचारं।
महंमद साथि पैकंबर सीधा, य लष असी हजारं।।२२५।।

सबदी २६ भी ऐसी ही रही होगी, पर उसे हटा दिया गया है, क्योंकि उसमें साम्प्रदायिक असद्भाव की आशंका की गई है। सबदी में अरबी फारसी के कुछ प्रयुक्त शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है : –

४– कतेब
६– कतेबे, करांणै, दुनी (दुनिया)
१०– महंमद, पीरं, काजी
११– कलमा, महंमद
१४– पीर, मुसलमानी, राह, काजी, मुलां (मुल्ला)
६८– मुसलमान, मसीत (मसजिद)
६६– खुदाई
७६– गीदं, (गेंद), चौगानं, मैदानं
६५– दारू, पलीता
१०२– विलाइत
१५१– रिजक, रोजी, सदा, हजूर
१७१– लसकरा (लश्कर, सेना)
१६५– गरीबी
२३२– ओजुद (अस्तित्व, शरीर)
२३६– ओजुदा, मगज (मस्तिष्क), ख्याल, बेहाल
२४५–४६ अमली (नसेड़ी)
२६५– कोवत (कुवत, शक्ति)

गोरखनाथ जी का स्थान गोरखपुर है, जो भोजपुरी प्रदेश में पड़ता है। भोजपुरी क्रियाओं की एक विशेषता है उनकी लकारान्तता। ऐसी लकारान्त क्रियाएँ भी सुलभ हैं। यथा : –

१. अलष विनाणीं दोइ दीपक रचिले ५
२. आरम्भ जोगी कथीला एकसार १३६
३. बन्धिलै हस्तिय निज साल भेला ८८

निम्नांकित पदों में तो भोजपुरी का यह दर्शन अनेक बार होता है –

कान्हीं पाव भेटीला गुरू विद्यानग्र सैं।
ताथैं मैं पाईला गुरू तुम्हारा उपदेसैं।।
एतैं कछू कथीला गुरू सबैं भैला भोले।
सर्व रस षोईला गुरू बाघंनी चै षोलैं।।
रस–कुस बहि गईला, रहि गई छोई।
भणत मछिन्द्रनाथ पूता जोग न होई।।
रस–कुस बहि गईला, रहि गइला सारं।
बदंत गोरषनाथ, गुरू जोग अपारं।।
आदिनाथ नाती, मछिंद्र नाथ पूता।
षटपदी भणींलै गोरष अवधूता।।

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि गोरखनाथ की भाषा पचरंग खिचड़ी है या सधुक्कड़ी है। कुछ ऐसा ही रूप कबीर की भाषा का है। सिद्धों की प्राप्त रचनाओं की भाषा के मेल में तो यह है नहीं, उससे कुछ आधुनिक है और फलतः सरल हे। इस पर अपभ्रंश के अवशेष बहुत कम हैं।

अलंकार

गोरख साधुयोगी थे। अपनी बात उन्हें जन साधारण के समक्ष रखनी थी, अतः उन्होंने अलंकारों के चक्कर में पड़ना उचित नहीं समझा। यत्र–तत्र दो एक अलंकार सहज रूप से भले ही आ गये हैं, वे सायास एवं प्रयत्न नहीं लाये गये हैं। निम्नांकित सबदी में सांग रूपक है :

मनवां जोगी, गाया मढ़ी।
पंच तत्त लै कंथा गढ़ी।।
षिमा षड़ांसण, ग्यान अधारी।
सुमति पावड़ी, डंड विचारी।।४८।।

उदाहरण अलंकार का उदाहरण यह सबदी है –

निसपतीं जोगी जानिवा कैसा।
अगनी पांणीं लोहा मांनै जैसा।।१३६।।

कबीर में जो उलटवासियाँ मिलती है, उनका पूरा रूप गोरखबानी में सुलभ है। उलटवासी

एक प्रकार की रूप कातिशयोक्ति ही है। रूपकातिशयोक्ति में उपमा का केवल एक अंग उपमान रहता है, शेष तीन लुप्त रहते हैं, पर वे उपमान साहित्य प्रसिद्ध होते हैं, अतः साहित्यिक रूढ़ियों से परिचित लोगों के लिए उनका अर्थ करने में कोई कठिनाई नहीं होतीं नाथों और सन्तों की उलटवासियों में उपमान अप्रसिद्ध होत हैं, अतः अर्थ करने में कठिनाई नहीं होती। नाथों और सन्तों की उलटवासियों में उपमान अप्रसिद्ध होते हैं, अतः अर्थ करने में कठिनाई होती है। गोरखनाथ जी की दो उलटवासियाँ देखिए –

१– गगन मंडल में ऊंधा कूवा, तहाँ अमृत का वास।
सगुरा होइ सुभरि भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा।।२३।।

२– गिगनि मंडल मैं गाय बियाई, कागद दही जमाया।
छाछि छांणि पिंडता पीवीं, सिषाँ माखण षाया।।१६६।।

गोरखवाणी में एक अलंकार और दिखाई देता है, जिसे लोकोक्ति कहते हैं। लोकोक्तियों का प्रयोग कवि ने अलंकार के लिए नहीं किया है, भाषा के सहज प्रवाह में ये स्वतः प्रयुक्त हो उठे हैं।

१– भर्‌या ते थीरं झलझलंति आधा।
सिधें–सिध मिल्या रे अवधू, बोल्या अरू लाधा।।२८।।

प्रथम पंक्ति में "अधजल गगरी छलकत जाय" की झलक है।

२– घटि–घटि गोरख बाही क्यारी।
जो निपजै सो होइ हमारी।।
घटि–घटि गोरष कहै कहांणीं।
काचै भांड़े रहै न पांणीं।।३६

३– पढ़ि देषि पण्डिता रहि देषि सारं।
अपणीं करणीं उतरिबा पारं।।५१।।

अपनी करनी पार उतरनी की झलक द्वितीय चरण में है।

४– बदंत गोरषनाथ कहि धू साषी।
घटि घटि दीपक, षणि पसू न आंषी।।५६।।

५– हिरदा का भाव हाथ मैं जाणिए, यहु कलि आई षोटी।
बदंत गोरष सुणौं रे अवधू, करकै होइ सु निकसै टोटी।।१२२।।

६– अवधू मन चंगा, तौ कठौती ही गंगा।
बांध्या मेल्हा, तौ जगत्र चेला।।१५३।।

मनोरंजन

अमीर खुसरो की अनेक ऐसी रचनायें हैं जो ऊपर से अश्लील श्रृंगारी अर्थ देती प्रतीत होती हैं पर उनका अर्थ लग जाने पर उनमें श्रृंगार रहता ही नहीं, फिर अश्लीलता कहाँ।

यथा : –

एक नार चातुर कहलावे,
मूरख को ना पास बुलावे।
चातुर मरद जो हाथ लगावे,
खोल सतर वह आप देखावे।
खुसरो की हिन्दी कविता, छन्द ।।१२१।।

इसका ठीक अर्थ है – पुस्तक या पोथी।

इसी प्रकार की एक सबदी गोरखनाथ की है : –

आओ देवी बैसो, द्वादिस अंगुल पैसो।
पैसत पैसत होइ सुख, तब जन्म मरन का जाइ दुख।१२५।

यहाँ देवी कुंडलिनी है और द्वादस अंगुल प्राणवायु है।

लोक कल्याण

गुरू गोरखनाथ का उद्देश्य लोकानुरंजन नहीं था, लोक कल्याण था। सहजयानी सिद्धों के वामाचार का समाज पर अकल्याणकारी प्रभाव पड़ रहा था। गुरू गोरखनाथ पहले सहजयानी बौद्ध थे और उनकी गणना ८४ सिद्धों में की गई है। पर उनसे समाज का अधःपतन नहीं देखा गया और समाज के कल्याण के लिए उन्होंने नाथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उन्हें इस परिवर्तन के कारण ही तिब्बती परम्परा में वह सम्मान नहीं प्राप्त है, जिसके वह अधिकारी है।

"सबदी" का आधा भाग साधना से सम्बन्धित है और आधा भाग लोक कल्याण से। सिद्धों के यहाँ कामिनी का बड़ा महत्व था, वही उनको योगिनी हुआ करती थी। गोरखनाथ ने बिन्दु रक्षा और अखण्ड ब्रह्मचर्य पर अधिक बल दिया है। नारी को उन्होंने केवल माँ के रूप में देखा है। सत्पुरूष की पहिचान बताते हुए वे कहते हैं :

यंद्री का लड़बड़ा, जिभ्या का फूहड़ा,
गोरष कहै ते पंतषि चूहड़ा।
काछ का जती, मुष का सती,
सो सत पुरूष उत्तमो कथी।१५२।

बिन्दु–रक्षा पर वे बल देते हुए कहते हैं :–

१— भग–मुषि व्यंद, अगनि मुषि पारा।
जो राषै सो गुरू हमारा ।१४२।

२— भोग करन्ता जे व्यंद राखै, ते गोरख का गुरूभाई ।१४१।

वे कनक कामिनी से बचने का उपदेश देते हुए कहते हैं :–

१— कनक कांमनीं त्यागे दोइ,
सो जोगेस्वर निरभै होइ ।१०२।

२— धन जोबन की करै न आस,
चित्त न राखै कांमनि पास।
नाद बिन्द जाके घटि जरै,
ताकी सेवा पारबती करै ।१६।

मद्य–मांस निषेध पर गुरू गोरखनाथ ने बड़ा बल दिया है :

१— अवधू मांस भषंत दया धरम का नास,
मद पीवत तहां प्राण निरास।
भांगि भषन्त ग्यांन–ध्यांन षोवन्त,
जम दरबारी ते प्राणी रोवन्त ।१६५।

२— धोतरा न पीवो रे अवधू, भांगि न षावै रे भाई।
गोरष कहै सुणै रे अवधू, या काया होयगी पराई ।२४१।

३— सूकै कंठ अरू भूष सन्तापै,
दह बिसर अरू निन्द्रा ब्यापै।
बुधि बिन बकै विकल होइ जाय,
तातै गोरष भांगि न षाय ।२१३।

४— आफू षाय भांगि भसकावै,
तामै अकलि कहाँ तें आवै।
चढतां पित्त उतरतां बाई,
तातै गोरष भांगि न षाई ।२०८।

गोरखनाथ जी आहार की अल्पता को ही आवश्यक मानते थे :

१— अति अहार यंद्री बल करै,
नासै ग्यांन मैथुन चित धरै।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै काल,
ताके हिरदै सदा जंजाल ।३६।

२– अवधू अहार तोड़ौ, निद्रा मोड़ौ, कबहु न होइगा रोगी ।३३।

नीति की अनेक बातें उन्होंने कही हैं – यथा –

१– त्रियाजीत ते पुरिषा गता,
मिलि भानंत ते पुरिषा गता।
बिसासघातगी पुरिषा गत,
कायरौ तत ते पुरिषा गता।
अभष भषंते ते पुरिषा गता।
सबदहीण ते पुरिषा गता।
उदिक राषंत ते पुरिषा गता,
पर त्रिया राचंत ते पुरिषा गता।
सति सति भाषत गोरष बाला।
इतना त्यागि रहो निराला ।२५६–६०।

२– मन मैं रहिणां, भेद न कहिणां, बोलिबा अंमृत बांणीं।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पांणीं ।६३।

३– हबकि न बोलिबा, ठबकि न चलिबा, धीरैं धरिबा पावं।
गरब न करिबा, सहजैं रहिबा, भणत गोरष रावं ।२७।

४– गिरही को ग्यांन अमली को ध्यांन्
बूचा को कान, बेश्या को मान।
बैरागी अर माया स्यूं हाथ,
या पाँचं को एको साथ ।२४५।

५– रांड मुवा जती, धाये भोजन सती
धन नसे त्यागी, नाथ कहै ये तीन्यौ अभागी ।२४७।

गुरू गोरखनाथ की सबदियों ने निश्चय ही व्यक्ति और समाज के आचरण के शुद्धीकरण में अपूर्व योग दिया। हरिऔध जो के अनुसार, हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की धार्मिक शिक्षाओं के आदि प्रचारक भी गोरखनाथ जी ही हैं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'नाथ सम्प्रदाय' में इस प्रकरण को एक स्वतंत्र अध्याय ही दिया है – 'चौदह लोक भाषाओं में सम्प्रदाय के नैतिक उपदेश'। इसमें उन्होंने सारे उद्धरण सबदी से ही दिये हैं। ये सबदियाँ कबीर आदि सन्तों की साखियों का पूर्व रूप हैं। डॉ० बड़थ्वाल ने भ्रमवश इन्हें यत्र–तत्र साखी भी कह दिया है।

卐

उर्दू एवं फारसी की प्राचीन पाण्डुलिपियों एवं पुस्तकों में गोरक्षनाथ का वर्णन

सैय्यद फजले इमाम रिजवी

यह हमारा तथा सम्पूर्ण भारतवासियों का अत्यनत दुर्भाग्य है कि प्रयत्नों एवं चेष्टाओं के अनन्तर भी हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति की जानकारी के लिए समुचित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं, ठीक यही दशा गोरखनाथ के बारे में भी है। अभी तक इतिहासान्वेषक गोरखनाथ के जीवन काल तथा नाथ–योग–सम्प्रदाय के विषय में किसी निश्चित निर्णय तक नहीं पहुँच सके हैं। आत्मीयता एवं अध्यात्मवाद की शिक्षा देने वाले इस सम्प्रदाय के लोगों की क्या भाषा और बोली थी और विशाल भारत के विस्तृत अंचल में यह कब उत्पन्न हुआ ? अनुमान किया जाता है कि जब भारत में भक्ति आन्दोलन सर्वोत्कृष्ट हो चला था, उस समय यह सम्प्रदाय भी भक्ति–भावना से प्रेरित होकर आदर्श–भक्ति, आध्यात्मिक अनुशासन, ज्ञानेन्द्रियों पर नियंत्रण हेतु वेदान्ती विचार धारा का समन्वय करके नियमित रूप से तपस्या एवं अभ्यास का प्रतिमान बनकर आया होगा।

अभ्यास के लिए मठों, आश्रमों एवं मंदिरों को प्रशिक्षण केन्द्र बनाया गया, जहाँ एकान्त रूप से विचारों का केन्द्रीकरण हो सके। गोरखपुर के गोरखनाथ मंदिर के बारे में उसकी उत्पत्ति का सूत्र पूर्णतः नहीं मिलता है। किन्तु बहादुर सिंह भटनागर, पुत्र हजारी मल, पुत्र लक्ष्मी चन्द्र, पुत्र मूल राज ने जो कायस्थ भटनागर थे और कांदलीवाल गोत्र से सम्बन्धित थे, अपने पूर्वजों के निवास स्थान शाहजहानाबाद (दिल्ली) को छोड़ कर जब अवध राज्य में १८१८ ई० में नवाब गाजीउद्दीन हैदर के शासन में आकर बसे, अपनी प्रसिद्ध फारसी पाण्डुलिपि "यादगारे बहादुरी" में, जो १८२० ई० में आरम्भ होकर सन् १८३८ ई० में पूर्ण हुई, गोरखपंथियों का एक स्थान पर संक्षिप्त वर्णन किया है, किन्तु इससे भी इसकी उत्पत्ति पर सर्वथा प्रकाश नहीं पड़ता।

एक दूसरी फारसी पाण्डुलिपि "बहरे जख्खार" में भी गोरखपंथियों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन मिलता है, जिससे यह ज्ञात होता है कि गोरखनाथ सम्प्रदाय प्राचीनतम है। इसकी पुष्टि फारसी भाषा में लिखित "गोरखपुर का इतिहास" नामक ग्रंथ से होती है, जिसका नाम "तारीखे मुअज्मांबाद" है और जो मई सन् १८७२ ई० में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हुई है, पर इसके लेखक के नाम का पता नहीं चलता है। इस पुस्तक के पृष्ठ ११ पर गोरक्षपुर के सिद्ध पुरूषों दरवेशों, सन्तों, फकीरों के स्थानों, कब्रों एवं समाधियों का वर्णन है। उसमें गोरखनाथ के विषय में निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं :–

"दर फिरकए हिन्दू दान शख्से जोगी अहले फस्वां रयाजत मौसूम व गोरखनाथ बूदा अस्त। साबिक अजीं बाज़–ए–अज़ सूबादाराने अहले इस्लाम मकान मंउफ महल–ए–रसूलपुर बरदाश्ता दादन्द व महल्लए रसूलपुर दरआं शुद। ता दर महल्लए गोरखपुर कोहना बर दन्द। बादं अजाँ दर अहदे सूबादारी नवाब फिदाई खान जमाने सल्तनत बादशाह आलमगीर औरंगजेब अज़ आं ताहम मौकूफ़ साख्ता करीब फजां बतरफे शिमाल कि ता हाल दर आं जा अस्त। वर दन्द आं जमीन।"

अनुवाद : ''हिन्दू सम्प्रदाय में एक योगी तपस्या एवं यौगिक क्रियाओं में निपुण था और गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध था। दिल्ली के कुछ मुस्लिम सूबेदारों ने उनके मण्डप को, जो उनकी सम्पत्ति थी, लेकर एक स्थान पुराने गोरखपुर में दे दिया और उस स्थान पर रसूलाबाद मुहल्ला हुआ। इसके पश्चात् नवाब फिदाई खां जमान जो आलमंगीर औरंगजेब के प्रदत्त पद से विभूषित थे, उन्हें वहाँ से हटाकर उत्तर की ओर कुछ भाग दे दिया जो अभी तक वर्तमान है।''

एक अन्य पुस्तक में गोरखपुर का संक्षिप्त इतिहास पद्य में प्रस्तुत है, जिसका नाम ''महबूबुत्त बारीख'' है और जिसके लेखक स्वर्गीय सैय्यद अहमद अली शाह रईस गोरखपुर हैं, और जो दिसम्बर सन् १९६३ ई० में हैदरी प्रेस, आगरा से प्रकाशित हुई है। इसके पृष्ठ ३६ पर गोरखनाथ का वर्णन है। इससे इनकी पवित्रता एवं प्राचीनता सम्मुख आती है :–

गोरखपुर कोहना[१] जो मशहूर है, तो इस तौर से इसका मज़कूर[२] है।
सलफ[३] में जो यह कुहना आबाद था, तो किरिया[४] की मानिन्द आबाद था।
गोरखनाथ यां एक दरवेश[५] था, हुनूदों का वो खैर अन्देश था।
बसाया उसी ने ये किरिया तमाम, इसी से गोरखपुर हुआ इसका नाम।।''

इसके प्रश्चात् पृष्ठ ४५ पर निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं :

''यही है रवायत पड़ी कान में, कि यह शहर आगे के दौरान में।
सुना हिन्दुओं से बसा गाह था, यह सेहरा पुरअजे[६] हीमाओ काह था।
ये जिसने कहा है सुखन[७] सच कहा, कि यहाँ गुरूओं का ज़खीरा[८] रहा।
पड़ा इस सबब से गोरखपुर नाम, रिवायत हुई दूसरी इख्तताम[९]।।''

(१–पुराना, २–वर्णन, ३–पूर्वजों, ४–देहात, ५–सन्त, ६–घास कतवार से भरा हुआ था, ७–बात, ८–कोष, ९–समाप्त)

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट पता चलता है कि गोरखपुर पहले एक अत्यन्त उजाड़ स्थान था। यह आदि काल से गुरूओं, साधु एवं सन्तों से भरा पड़ा था। उपर्युक्त पुस्तकों के प्रकाश में भी कहा जा सकता है कि बाबा गोरखनाथ ने अपने जीवन काल में मूल्यवान शिक्षाओं एवं मार्मिक प्रवचनों से जन–जीवन में व्यापक रूप से अपना प्रभाव डाला था, तथा अपनी प्रारम्भिक आध्यात्मिक शिक्षा एवं योगासनों से लोगों का हृदय जीत लिया था। उनमें शक्ति, निष्ठा और कर्मण्यता की अनुभूति थी। उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में गोरखपुर नामक स्थान को बाबा गोरखनाथ ने अपनी तपस्या एवं साधना से जीवन प्रदान किया जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में लिखा है कि यह स्थान उजड़े हुए देहात की भाँति था। इसे बाबा गोरखनाथ ने बसाया। दूसरी जनश्रुति से भी यह विदित हो जाता है कि यह स्थान अर्थात् गोरखपुर बाबा गोरखनाथ के पुण्य से ही गुरूओं का केन्द्र था और इन आगन्तुक गुरूओं ने योग–साधना के प्रचार का अवसर नहीं पाया। परिणाम स्वरूप श्रेय, वरिष्टता एवं केन्द्रीयता बाबा गोरखनाथ के भाग्य में आयी और जिसके फलस्वरूप मानव को जीवन की आध्यात्मिक, आत्मीयता, मर्यादा तथा सांसारिक माया

को एक नवीन दिशा का ज्ञान हुआ और सर्वशक्ति–सम्पन्न ईश्वर का स्वरूप योग के अभ्यास के रूप में समक्ष आया। त्याग एवं तपस्या की जो शिक्षाएँ दी गई, उनसे नवीन जीवन सृजित हुआ और मन का विकार दूर हुआ। गुरूओं के प्रचार से सीमावर्ती भाषाओं का भी आदान–प्रदान हुआ। भाषा विज्ञान का अध्ययन करने वाले इस तथ्य से भली–भाँति परिचित होंगे कि नाथ–योग की विषय सामग्री में किस प्रकार नेपाली, तिब्बती, गुरूमुखी, बंगाली, राजस्थानी आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं। केवल हिन्दू धर्म ही नहीं, वरन् इस्लाम धर्म के अनुयायी मुसलमान होते हुए भी नाथ–योग सम्प्रदाय से प्रभावित हुए और आज भी अधिक संख्या में 'योगी' मुसलमानों में ही मिलते हैं। वे सारंगी लिए भगवा वस्त्र धारण किये योग–वियोग के राग से सांसारिक माया–मोह की निन्दा करते हुए, योग के सिद्धांतों का प्रचार करते हुए दिखाई पड़ते हैं। जिसमें उनका विशेष हार्दिक अनुराग है।

संक्षेप में यह बिना संकोच के कहा जा सकता है कि नाथ योग अत्यन्त प्राचीन है। यह किसी विशेष धर्म से सम्बद्ध नहीं है। यह एक पृथक सम्प्रदाय है, जिसके विरह एवं वियोग में भी ईश्वरीय संयोग, कर्मठता, निष्ठा एवं सत्यता है।

卐

हमारा पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्यभूमि है। यहीं बड़े बड़े महात्माओं तथा ऋषियों का जन्म हुआ है, यही सन्यासएवं त्याग की भूमि है तथा यहीं – केवल यहीं – आदि काल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला हुआ है। मैंने पाश्चात्य देशों में भ्रमण किया है, भिन्न भिन्न राष्ट्रों तथा जातियों से मिला जुला हूँ और मैं यह कह सकता हूँ कि प्रत्येक राष्ट्र का एक–न–एक मुख्य आदर्श अवश्य होता है। वह आदर्श ऐसा होता है कि राष्ट्र के समस्त जीवन में उसका संचार होता रहता है – कह सकते हैं कि वह आदर्श उस राष्ट्र की रीढ़ होती है। भारतवर्ष में भी यही बात है परन्तु अंतर इतना ही है, कि इस देश का आदर्श राजनीति नहीं है, सैन्य शक्ति भी नहीं है, व्यावसायिक आधिपत्य भी नहीं है और न यांत्रिक शक्ति ही है, वरन् इसका आदर्श है धर्म– केवल धर्म ही इसका मेरूदण्ड है– धर्म ही इसका सर्वस्व है। धर्म और आध्यात्मिकता ही सदैव से भारत की निधि रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द

हिन्दी सूफी काव्य पर नाथ–पंथ का प्रभाव

डॉ० कन्हैया सिंह

हिन्दी में सूफीकाव्य–रचना का प्रवाह चौदहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इस समय उत्तरी भारत में सिद्ध–साधकों, नाथ–पंथ पंथी योगियों एवं विभिन्न तांत्रिक मतों का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। योग–साधना के बल पर प्राप्त सिद्धियों के कारण लोगों पर योगियों का सिक्का जम चुका था। इनकी साधना योगपरक और अनुभूतिमूलक थी। इन साधकों में बज्रयानी सिद्ध और नाथपंथी योगियों का नाम लिया जाता है। इनमें भी गुरू गोरखनाथ सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "विक्रम संवत् की दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के महान् गुरू गोरखनाथ का आविर्भाव हुआ। शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरूष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने कोने में उनके अनुयायी आज भी पाए जाते हैं। भक्ति–आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली आन्दोलन गोरखनाथ का योग–मार्ग ही था। भारतवर्ष की ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें गोरखनाथ सम्बन्धी कहानियाँ न पाई जाती हों।"[१]

ऐसे प्रभावी व्यक्तित्व का प्रभाव और उसके साधना–मार्ग का निरूपण किसी न किसी रूप में परवर्ती हिन्दी काव्य में पर्याप्त दीख पड़ता है। हिन्दी का समूचा सन्तकाव्य और सूफीकाव्य गोरखपंथी योगमार्ग के प्रभावों से आवेष्ठित है। उनके पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग, उनके साधना मार्ग का निरूपण, उनकी कहानियों एवं वेशभूषाओं आदि की चर्चा हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों में प्रभूत मात्रा में मिलती है। साथ ही अनेक सूफीसन्तों के जीवन में साधना एवं सिद्धि की कहानियाँ प्राप्त होती हैं। सिद्धों एवं योगियों की ही भाँति सूफी सन्तों ने भी करामातें हासिल की थीं। जिनके पीछे योग आदि साधना के होने का अनुमान होता है। स्वयं मलिक मुहम्मद जायसी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे योगबल से शेर बन कर अमेठी के जंगलों में भ्रमण करते थे और एक दिन राजा ने उन्हें वास्तविक शेर समझ कर गोली का निशाना बनाया और उनकी मृत्यु हो गई[२]। शेख निजामुद्दीन औलिया ने करामात को चार भागों में विभक्त किया है। उन्होंने ख्वाजा अबू हफ्स निशापुरी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बताया है कि वे मक्का यात्राा के मार्ग में बगदाद पहुँते थे। यद्यपि उन्हें अरबी का ज्ञान नहीं था, फिर भी उन्होंने ख्वाजा जुनैद से सुन्दर अरबी में बातचीत की[३]।

जायसी ने 'पदमावत' में अपने काल में प्रचलित नाना हिन्दू पन्थों की चर्चा की है। सिंहल द्वीप में स्थान–स्थान पर तीर्थस्थान हैं, जहाँ जपी और तपी आसन लगाए बैठे रहते हैं। इस प्रसंग में उन्होंने लिखा है कि ऋषीश्वर, सन्यासी, रामजन, मठवासी, ब्रह्मचारी, दिगम्बर, सरस्वती, सिद्ध, योगी, निराश–पंथी, माहेश्वर जंगम, जती, देवी के उपासक आदि वहाँ मिलते हैं[४]। इससे पता चलता है कि उस काल में अनेक उपासना–पंथ हिन्दुओं में प्रचलित थे किन्तुलोक–प्रभाव की दृष्टि से ब्राह्मण या पौराणिक धर्म एवं नाथपंथ अथवा योग–सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव था। इनमें परस्पर संघर्ष होते रहते थे। जायसी ने भी इस बात का संकेत किया है। हीरामनि सुआ सिंहलगढ़ में पहुँच कर पद्मावती से शिकायत करता है कि उसका पिता

गंधर्बसेन ब्राह्मणों का पूजक और योगियों को मरवाने वाला है –

> हीरामनि भुइँ धरा लिलाटू। तुम्हँ रानी जुग जुग सुख पाटू।
> जेहिं के हाथ जरी और मूरी। सो जोगी नाहीं अब पूरी।
> पिता तुम्हार राज कर भोगी। पूजै बिप्र मरावै जोगी।[५]

इस प्रकार के संघर्ष का पता गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं से भी लगता है। गुरू गोरक्षनाथ का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा –

> गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।

साथ ही उन्होंने कलि–काल का वर्णन करते हुए मानस में योगियों और सिद्धों की भर्त्सना की –

> असुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
> तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं[६]।।

यहाँ पर गोसाईं जी ने भी योगियों और सिद्धों के कलियुग में पूज्य होने की बात कही है। तत्कालीन समाज में इनका बड़ा प्रभाव था वह एक निर्विवाद तथ्य है।

सूफियों को योगियों और सिद्धों में अपने मत से बहुत सी समानताएँ प्राप्त हुई। अतः उन्होंने तत्कालीन समाज में समरस होने के लिए इनके साधना–मार्ग को आत्मसात करने और अपनी रचनाओं में उनके उल्लेख की बात सोची, होगी। परिणाम स्वरूप हिन्दी–सूफी काव्य में योगियों और सिद्धों का प्रचुर प्रभाव पद–पद पर परिलक्षित होता है।

योगी वेश

हिन्दी के सूफी कवियों के ऊपर नाथपंथ का प्रभाव इस बात से भी प्रकट होता है कि लगभग सभी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रेम–मार्ग पर अग्रसर होने वाले साधक को योगी बनकर निकलने का उल्लेख किया है और उन्हें अपने प्रिय को प्राप्त करने के लिए जो वेश–भूषा ग्रहण करनी पड़ती थी, वह नाथपंथी योगियों की ही वेश–भूषा है। "नाथ योगी को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। मेखला, श्रृंगी, सेली, गूदरी, खप्पर कर्णमुद्रा, बाघम्बर, झोला आदि चिन्ह ये लोग धारण करते हैं। पहले ही बताया गया है कि कान फाड़कर कुण्डल धारण करने के कारण ये लोग कनफटा कह जाते हैं[७]।"

मुल्ला दाऊद ने 'चन्दायान' में गोबरगढ़ का वर्णन करते हुए मन्दिरों और देवस्थानों में कनफटे साधुओं के रहने का उल्लेख किया है। गोबर के एक गाँव में पाँच सहस्त्र योगी रहते थे जो भस्म लगाते और श्रृंगी बजाते थे[८]।"

आगे चलकर जब लोरिक चन्दा को प्राप्त करने के लिए देव मन्दिर में जाता है तो वह नाथ–पंथी योगी का वेश धारण कर लेता है –

सुदन फटिक मुदरा सर सेली। कण्ठ जाप रूदरा कै मेलो।
चकर जगौटा गूँथी कंथा। पाँय पाँवरी गोरखपंथा।
मुख भभूत कर गही अधारी। छाला बैस कै आसन मारी।
दण्ड अखर बैन कै पूरी। नेह चारचा पावे भोरी।
कर किंगरी तिंह बार बजावइ। तिंह चाँदा मुख चितरा पावै।।[६]

कुतुबन ने राजकुमार के 'मृगावती' को प्राप्त करने के लिए योगी बनने का उल्लेख किया है तथा इस संदर्भ में उसके मृगछाला, साँठ, अधारी लेने की बात कही है –

बहु संगधी जोगिन्ह के आई। छाला उठाइ गोदावरिहि जाई।
हौं जानौं गोरख संग लागा। केंहि सुध होहि कहे को मागा।

. . .

तुरी छाड़ि के कपरा काढेसि। जोगी भयेव भोग मन छाड़सि।

. . .

साँठ अधारी सौं कुछु काढ़िसि। दै केवट कहँ फेंडए बांधिसि।[१०]

वह किंगरी भी बजाता है, जिसमें वियोग की रागिनी छिड़ती है –

किंगरी लिहिस वियोग बजावा। जे रे सुना सो देखे धावा।[११]

मलिक मुहम्मद जायसी ने राजा रत्नसेन के योगी बनने और योगियों के वेश धारण करने की विस्तृत चर्चा की है। राजा ने हाथ में किंगरी ली, सिर पर जटा, शरीर में भस्म, साथ में मेखला, श्रृंगी, धँधारी, चक्र, जगौटा, (जोग–पट्ट) रूद्राक्ष की माला और अधारी ले लिया। कँथरी पहन कर उसने हाथ में दण्ड लिया और सिद्ध होने के लिए गोरखनाथ का नाम स्मरण किया। उसके कानों में कुंडल, कंठ में जप–माला, हाथ में कमण्डल, कंधे पर बाघम्बर, पैरों में खड़ाऊँ, सिर पर छत्र, एक हाथ में खप्पर तथा शरीर पर लाल रंग का वस्त्र सुशोभित है।[१२] उसके साथ सोलह सहस्त्र कुमार योगी बनकर निकल पड़े, जिनके गैरिक वेश की शोभा दर्शनीय है –

चला कटक योगिन्ह कर, कै गेरूआ सब भेषु।
कोस बीस चारिहुँ दिसि, जानेहुँ फूला टेसू।[१३]

मंझन ने 'मधुमालती' में राजकुँवर के योगी वेश ग्रहण करने के सम्बन्ध में लिखा है –

कठिन बिरह दुख गा न संभारी, माँगेहु खप्पर दण्ड अधारी।
चक्र माथ मुख भसम चढ़ावा, सुअन फटिक मुद्रा पहिरावा।
उदपानी कसि कै कर सांटी, गुन किंगरी बैरागी ठाटी।
कंथा मेखलि चिरकुटा, जटा परी सिर केस।
बज्र कछौटा बाँधि कै, किय गोरख का बेस।

दुख उदास बैराग मेखावा। इन्ह तीनिउ तिरसूल गढ़ावा।
औ रूद्राछ केरि जप भारी। औ सिंगी गिय अल्प अधारी।
बैसाखी गोरख धंधोरी। ध्यान धरन मन पौन संकोरी।
पेम पावरी राखेउ पाऊ। मृगछाला बैराग सम्हाऊ।
दरसन लागि भेस सब घेरा। जाँचे दुख मधुमालति केरा।[१४]

उस्मान की 'चित्रावली' में भी नायक के योगी बनने और श्री गोरखनाथ के उच्चारण का उल्लेख हुआ है। परेवा गुरू ने कुँवर की विरह से विपन्न दशा को देखकर उपदेश दिया –

कहिसि कुँवर अब आप सम्हारहु। राज काज कर साज उतारहु।
काढ़हु दगल सुहावन राता। पहिरहु चिरकुट कंथा गाता।
मनि कुण्डल मकराकृत डारहु। फटिक मुंदरा स्रवन सवाँरहु।
तजहु सेल कर लेहु धंधारी। और सुमिरिनी चक्र अधारी।
सिंगी पूरहु जटा बढ़ावहु। खप्पर लेहु भीख जेहिं पावहु।
काँधै लेहु बाँधि मृगछाला। गीवँ पहिरहु रूद्राष क माला।
करहु कान जनि एकहु, कहै कोऊ जौ लक्ख।
पहिरि लेहु पग पाँवरी, बोलहु सिरी गोरक्ख।।[१५]

परवर्ती प्रेमाख्यानों में भी सूफी कवियों ने नायकों के योगी बनने का प्रसंग उपस्थित किया है।

नाथयोगियों का उल्लेख

सूफी कवियों ने स्थान स्थान पर गुरू गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ आदि का उल्लेख किया है। 'गोरख' शब्द तो गुरू का ही पर्याय हो गया था। मृगावती में रूकमिनी राजकुँवर से प्रश्न करती है कि तुम किस देश से आए हो और किस 'गोरख' के चेले हो? तो उत्तर मिलता है –

पूछिसि कवन देश सों आयेहु, को गोरख को चेला।
पुरूखनाथ गुरू आह हमारे, गोरखपुर सों मेला।।[१६]

जायसी ने भी 'गोरख' शब्द का प्रयोग गुरू के अर्थ में कई बार अपनी प्रसिद्ध रचना 'पदमावत' में किया है। हीरामनि पद्मावती को राजा का संदेश देकर लौटता है, तो राजा रत्नसेन से कहता है कि 'गोरखनाथ (गुरू) मिले और उनका (तुम्हारे लिए) उपदेश भी मिला। तुम्हारे ऊपर गुरू ने बड़ी कृपा की उन्होंने तुम्हारा प्रणाम स्वीकार कर लिया और उसे आदिनाथ (शिव) को दे दिया।[१७] यहाँ पद्मावती गुरू के रूप में चित्रित की गई है। नाथ और सन्त मत में गुरू शब्द ब्रह्म का भी पर्याय है। इसी प्रकार का प्रयोग उस समय भी हुआ है, जब विवाहोपरान्त पद्मावती की सखियाँ उसे लेकर राजा रत्नसेन के शयनागार में पहुँचती हैं। पद्मावती के रूप को देखकर राजा मूर्छित हो जाता है और सखियाँ उससे कहती हैं –

अबहुँ जगावहिं चेला जागू। आवा गुरू पाय उठि लागू।
बोली सबद सहेली कान लागि गहि माथ।
गोरख आइ ठाढ़ भा उठु रे चेला नाथ।
गोरख सबद सुद्ध भा राजा। रामा सुनि रावन होइ गाजा।[१८]

गोरखनाथ के अतिरिक्त मछन्दर नाथ (मत्स्येन्द्रनाथ)[१६] गोपीचन्द और कदली बन[२०] तथा योगी भरथरी (भर्तहरि)[२१] आदि लोक प्रसिद्ध नाथ पन्थी योगियों का उल्लेख सूफी काव्यों में बराबर मिलता है। राजा गोपीचन्द के योगी होकर कदली बन जाने की कथा तो प्रसिद्ध ही है, पर सूफी प्रेमाख्यानों में नायक भी योग ग्रहण करके कदलीबन की यातना सहन करते हुए चित्रित किए गए हैं। 'मृगावती' का नायक भी उस अंधकूप और पंथ हीन कदली बन[२२] में पहुँचता है, जहाँ सिंह और शार्दूल चिग्घाड़ते रहते हैं[२३]। 'मधुमालती' का नायक भी अगम पंथ, कठिन और दुखपूर्ण असूझ कदली बन में पहुँचता है।[२४] इस प्रकारकदली बन योगियों और सूफियों दोनों के काव्य में सांकेतिक रूप में प्रयुक्त हुआ है।

साधना मार्ग

नाथपंथियों के उपास्य शिव हैं। उनके अनुसार परम शिव ही सृष्टि करने की इच्छा धारण करने पर दो तत्वों के रूप में प्रकट होता है –शिव और शक्ति। प्रथम तत्व पाँच अवस्थाओं से गुजरता हुआ परमात्मा सा सगुण शिव और द्वितीय तत्व भी पाँच अवस्थाओं से अग्रसर होता हुआ कुण्डली या कुण्डलिनी के रूप में प्रकट होता है[२५]। साथ ही जैसे ब्रह्माण्ड में ये तत्व विद्यमान हैं, वैसे ही लघु रूप में पिण्ड में भी विद्यमान है। संसार में जो कुछ भी है, वह वस्तुतः उसी प्रक्रिया से गुजरता हुआ बना है, जिस अवस्था से यह समूचा ब्रह्माण्ड बना है।"[२६] सबमें वही तत्व ज्यों के त्यों हैं।

गजपति यह मन सकती सीऊ।
पै जेहि पेम कहाँ तेहि जीऊ।[२७]

मन के अन्दर ही शिव और शक्ति के विद्यमान होने के कारण अन्तरंग साधना द्वारा परमानन्द को प्राप्त करना योगियों का उपदिष्ट मार्ग है, यह मार्ग योगमार्ग है, जिसे हठयोग, कुण्डलिनीयोग सुरति–शब्द–योग भी कहा गया है। इसमें मेरूदण्ड के नीचे अवस्थित अधोमुख कुण्डलिनी शक्ति को योग द्वारा ऊर्ध्वमुख करके षट्–चक्रों से होते हुए ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाते हैं। यह अवरूद्ध ब्रह्मरन्ध्र को खोलकर बाहर निकल आती है, तब अनाहत नाद होता है। कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से प्रवाहित होती है, जिसके अगल–बगल दो नाड़ियाँ इड़ा और पिंगला हैं। इन्हें योगियों ने संकेत रूप से गंगा और यमुना कहा है। मनुष्य के शरीर में नव द्वार (दो कान, दो आँख, दो नासिका छिद्र, मुख, मल–द्वार, और मूत्र द्वार) हैं। इनके अतिरिक्त दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र है। कुण्डलिनी शक्ति जब ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचती है तो योगी परमानन्द या जीवनमुक्ति सा सहज–समाधि या सर्वशून्य–अवस्था में पहुँच जाता है।

हिन्दी सूफी कवियों पर बेज्रयानी सिद्धों एवं नाथपंथी योगियों की इस साधना का पर्याप्त प्रभाव था। इस साधना के पारिभाषिक शब्दों और रूपकों को उन्होंने ज्यों का त्यों ग्रहण किया है। प्रेमाख्यानकार सूफियों में लगभग सभी ने कथा के नायक के योगी बनने, साधना करने और मरजीया दशा को प्राप्त करने का उल्लेख किया है। पर मलिक मुहम्मद जायसी और मंझन ने तो इस साधना का व्यापक निरूपण किया है।

जायसी ने सिंहल गढ़ का वर्णन करते हुए इस शरीर को भी एक गढ़ के समान चित्रित किया है। यह वर्णन योगियों के शरीरस्थ चक्रों, नवद्वारों, दशम् द्वार, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों एवं अनहद नाद के संकेतों एवं प्रतीकों से परिपूर्ण है। उनके अनुसार इस शरीर में नव द्वार हैं और नौखण्ड हैं। जो इन नवखण्डों पर चढ़ जाता है, वह ब्रह्माण्ड में पहुँचता है।[२८] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "नौ पौरी शरीर के द्वार हैं, जिनका उल्लेख अथर्ववेद के 'अष्टचक्रानवद्वारा देवानां पूरवोध्या' इस वर्णन से ही मिलने लगता है। जायसी ने इन नवों द्वारों की कल्पना को शरीरस्थ चक्रों के साथ मिला दिया है और उन्हें नौ खण्डों के साथ सम्बन्धित करके एक एक खण्ड का द्वार कहा है। इन नौ के ऊपर दसवाँ द्वार है (दसम दुआर गुपुत एक नाँकी, अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी, २।५, ४)। मध्यकालीन युग में इस दसवें द्वार का बहुत उल्लेख आता है। कहा है कि सहस्रार का अमृत इसी दशम् द्वार से होकर नीचे झरता है। सुषुम्ना जिस मार्ग से ब्रह्माण्ड या मस्तक में प्रवेश करती रहती है, वहीं यह दसवाँ द्वार है।[२९]

इन नवों द्वारों का भेदन अत्यन्त दुर्गम है। इन द्वारों पर बज्र किवाड़ लगे हैं और इन पर अजेय पहरेदार भी बैठे हैं। पाँच कोटवार सदैव भ्रमण करते रहते हैं।[३०] इन नवों द्वारों के ऊपर दशम् द्वार है, जिस पर राजघड़ियाल बजता रहता है।[३१] इस गढ़ के ऊपर नीर और खीर की दो नदियाँ हैं। इसमें एक अमृत कुण्ड है जो मोतीचूर्ण ओर कर्पूरकीच से युक्त है। इसके निकट ही एक सुवर्ण वृक्ष है जो कल्पतरू के समान है।[३२] ये नवद्वार शरीर स्थित नव इन्द्रिय द्वार है और दशम् द्वार ब्रह्माण्ड स्थित ब्रह्मरन्ध्र है। पाँच कोटवार शरीरस्थ पाँच इन्द्रियों के रस हैं – श्रवण, दर्शन, घ्राण, स्पर्श तथा रसन। दशम् द्वार पर बजनेवाला राजघड़ियाल अनहद नाद तथा नीर खीर की नदियाँ इड़ा ओर पिंगला नाड़ियाँ हैं। अमृत कुण्ड मूलाधार चक्र है, जहाँकुण्डलिनी स्थित रहती है। इसी को जायसी ने 'गढ़तर सुरंग कुण्ड' कहा है। कवि ने अपने सिंहल गढ़ के प्रतीकों को स्वयं स्पष्ट करते हुए लिखा है –

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया।
परख देसि तैं ओहि की छाया।[३३]

सिद्धों और नाथों की भाँति शरीर की रचना का उल्लेख करके जायसी ने उनकी ही भाँति योग–साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करने का उल्लेख किया है। जायसी के अनुसार 'दशम द्वार ताड़ के वृक्ष के समान ऊँचा है। जो उलटी दृष्टि करता है, वही उसे देख पाता है। इस द्वार तक वही पहुँचता है जो अपनी श्वास और अपने मन को बन्दी बना लेता है, जैसा कालिन्दी में गोता लगाते समय कृष्ण ने किया था। इसलिए तू प्राणायाम द्वारा अपने मन को वश में कर।'[३४] इस

कथन में योग–साधना के आवश्यक अंग प्राणायाम और उसके द्वारा इन्द्रिय–निग्रह का उल्लेख तो है ही, साथ ही योगियों में प्रचलित उलटी–दृष्टि की भी चर्चा है। नाथ योगियों में उलटा–साधन का बहुत प्रचार था।[३५] कबीर आदि ने भी मन के उलटने की चर्चा की है।[३६]

इस साधना का स्पष्ट संकेत देते हुए जायसी ने रत्नसेन की योग–साधना का वर्णन किया है –

राजा यहाँ तैस तपि झूरा। गा जरि बिरह छार कर कूरा।
गही पिंगला सुसमन नारी। सुन्नि समाधि लागि गो तारी।
बुन्दहि समुंद्र जैस होई मेरा। गा हेराइ तस मिलै न हेरा।
रंगहिं पानि मिला जसि होई। आपुहिं खोइ रहा होइ सोई।[३७]

जायसी ने नाथ योगियों के पारिभाषिक शब्दों जैसे सूर्य–चन्द्र, द्वादश–बानी सोना, कैलाश आदि का प्रयोग किया है, जिसका सुन्दर विवेचन डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने पद्मावत के संजीवनी भाष्य की भूमिका में किया है।[३८]

मंझन ने अपने गुरू शेख मुहम्मद गौस की साधना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि चुनार की पहाड़ियों एवं जंगलों में बारह वर्ष तक उन्होंने साधना की। यह साधना योग–साधना ही हे, क्योंकि इसमें अपान–वायु को साधने और ब्रह्म–समाधि लेने का स्पष्ट उल्लेख है –

मन मत्तंग मारि बस किया। ग्यान महारस अंब्रित पिया।
साहस उदित उपान सांधि कै, लीन्हि सिद्धि अवराधि।
बारह बरिष रहे बन परबत, लाए जो ब्रह्म समाधि।[३९]

ऊर्ध्वमुख श्वास द्वारा प्राणायाम साधने, अनहद धुनि सुनने और सर्वशून्य अवस्था रूपी कबिलास (कैलाश) या शून्य–मंदिर की प्राप्ति का उन्होंने स्पष्ट संकेत किया है।[४०] नाथ योगियों में प्रचलित सहज समाधि या शून्य–समाधि लेने का उल्लेख भी मंझन ने किया है।[४१] सहज–समाधि की ही भाँति योगियों में 'अजपा जाप करने का उल्लेख किया है[४२] अली मुराद ने अपने ग्रन्थ 'कुवरावत' में पदमासन लगाने और अजपा जाप करने का उल्लेख किया है। निसार कृत 'युसुफ जुलेखा' में अनहद नादि के दश प्रकारों का उल्लेख है तथा साधकी जाग्रत, सवप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था का भी वर्णन है।[४३] यह वर्णन योग साधना के अनुकूल है। नूर मुहम्मद ने अपनी रचना 'इन्द्रावती' में अनहद नाद का उल्लेख इस प्रकार किया है –

नाद अनाहद अंहद, सुनै अनाहद कौन।
सिद्ध होइ अपने गुन, सुनै अनाहद तौन।[४४]

योग साधना – एक सोपान

हिन्दी सूफी कवियों के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने अपने काव्य में योग–साधना का समन्वय कर लिया था। प्रेम मार्ग में अग्रसर होने के लिये योग–साधना एक आवश्यक सोपान प्रतीत होती है। इसके लिये प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं द्वारा इन्द्रिय–निग्रह तथा समाधि

द्वारा अविचलित अवस्था प्राप्त करना सूफियों की दृष्टि में भी कदाचित आवश्यक था। उस्मान कवि ने 'चित्रावली' में साधक के मार्गों में पड़ने वाले चार नगरों का उल्लेख किया है – १–भोगपुर–जो सामान्य विषयानुरक्त जीवन का प्रतीक है, २–गोरखपुर–जो साधना द्वारा प्राप्त सिद्धावस्था का सूचक है, ३–नेह नगर जो संसार से विरत होकर एकनिष्ठ ब्रह्म–प्रेम का सूचक है ओर ४–रूप नगर–जो साक्षात् दर्शन का सूचक है।

गोरखपुर गोरखपंथी साधना की अवस्था है। इस पुर के मार्ग पर वही चल सकता है, ज़ो नाथ पंथी योगी का वेश धारण करे तथा साथ ही उसके हृदय की भी दृष्टि खुली रहे।[४५] उस्मान ने इस पुर का वर्णन भी योग मार्ग के अनुकूल ही किया है।

परकाय–प्रवेश

नाथपंथी योगियों को साधना के बल पर अनेक सिद्धियाँ प्राप्त थीं, पर इनमें परकाय–प्रवेश का सबसे विशिष्ट स्थान था। गुय मत्स्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि एक बार वे संसार के पर्यटन पर निकले। मार्ग में जिस समय वे एक नगर में पहुँचे, वहाँ के राजा का स्वर्गवास हो गया था। उसके नौकर राजा के शरीर को बैकुंठी में रखकर जलाने के लिये ले जा रहे थे। इस पर मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शरीर की रक्षा का भार अपने शिष्यों पर सौंप कर, परकाय प्रवेश विद्या के बल पर उस राजा के शरीर में प्रवेश किया। इस पर वह राजा जी उठा और उसके साथ के सभी लोग हर्ष मनाने लगे।[४६] इस विद्या का उल्लेख कुतुबन ने अपनी रचना 'मृगावती' में राजा भोज के प्रसंग में किया है –

कहा भोज चारिदस निधाना।
परकाया परवेश जो जाना।[४७]

जायसी ने भी अपनी पदमावत में कई स्थलों पर इस विद्याा का उल्लेख किया है।

कौन सो करनी कहु गुरू सोई।
परकाया परवेश जो होई।[४८]

वाममार्ग की भर्त्सना

नाथपंथ के अभ्युदय के पूर्व भारत में वाममार्गी साधना का प्रचार था। बज्रयानी सिद्धों की कठोर योग–साधना मद्य, मांस, मीन, मुद्रा एवं मैथुन आदि पंचमकारों की सिद्धि में बदल गई थी। स्त्री–संसर्ग तथा सुरापान इनकी साधना के अंग बन गये थे। गुरू गोरखनाथ ने इन सबका निषेध किया और अपने पंथ में उन्होंने ब्रह्मचर्य एवं शुक्र–रक्षा की प्रतिष्ठा की। उनका हठयोग सदाचार पूर्ण सात्विक साधना का मार्ग था। जायसी ने इसी प्रभाव से वाममार्ग को त्याय और दक्षिणमार्ग को ग्राह्य बतलाया है –

तेलि बैल जस बांए फिरे। परा भौंर महँ सौंह न तिरै।
तुरी औ नाव दाहिन रथ हाँका। बाएं फिरै कोंहार कै चाका।
दाहिन फिरै सो अस उजियारा। जस जग चांद सुरूज और तारा।[४९]

इस प्रकार हिन्दी के सूफी कवियों के ऊपर नाथपंथ अथवा गोरखपंथ का प्रभूत प्रभाव दीख पड़ता है। इन कवियों ने केवल इस पंथ की वेश-भूषा, पारिभाषिक शब्दावली तथा वाह्य रूप रेखा का ही निरूपण नहीं किया है। प्रत्युत उनकी साधना के आन्तरिक तत्वों का भी सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। 卐

१- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ ६६
२- पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली (भूमिका)
३- मोहम्मद नूर नवी : डेवलपमेन्ट आफ मुस्लिम रिलिजस थाट इन इण्डिया, पृष्ठ ७८
४- माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द ३०
५- माता प्रसाद गुप्त पद्मावत, छन्द २५६
६- माता प्रसाद गुप्त : राम चरित मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ६८
७- हजारी प्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ १४
८- परमेश्वरी लाल गुप्त : चन्दायन, छन्द २०
९- परमेश्वरी लाल गुप्त : चन्दायन, छन्द १७४
१०- शिवगोपाल मिश्र : मृगावती, छन्द १२४, १२५
११- वही, छन्द १७३
१२- माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द १२६
१३- वही, छन्द ३४
१४- माता प्रसाद गुप्त : मधुमालती, छन्द १७२, १७३
१५- जगन्मोहन वर्मा : मृगावती, छन्द २२०
१६- शिवगोपाल मिश्र : मृगावती, छन्द १२३
१७- माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द १८२
१८- माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द ३०३, ३०४
१९- वही, छन्द २३८
२०- वही, छन्द १३०
२१- वही, छन्द १३२
२२- शिवगोपाल मिश्र : मृगावती, छन्द १२४
२३- वही, छन्द १९८
२४- माता प्रसाद गुप्त : मधुमालती, छन्द १८१
२५- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ १०४
२६- वही, पृष्ट १६०

२७— माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द १४२
२८— माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द ४०
२६— डॉ० बासुदेव शरण अग्रवाल : पद्मावत, (भूमिका) पृष्ठ ५६
३०— माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द ४१
३१— वही, छन्द ४२
३२— वही, छन्द ४३
३३— माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द २१५
३४— माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द २१६
३५— वासुदेव शरण अग्रवाल : पद्मावत (भूमिका) पृ० ६०
३६— कबीर ग्रन्थावली (सभा) पृ० ६३
३७— माता प्रसाद गुप्त : पद्मावत, छन्द २३५
३८— वासुदेव शरण अग्रवाल : पद्मावत (भूमिका) पृ० ५३ से ७४
३६— माता प्रसाद गुप्त : मधुमालती, छन्द २१ पृ० ५३ से ७४
४०— बही, छन्द ३१ पृ० ५३ से ७४
४१— माता प्रसाद गुप्त : मधुमालती, छन्द ३२
४२— सरला शुकलः जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य (पाद टिप्पणी) पृ० १०३
४३— वही, पृ० १०४, १०५
४४— नूर मुहम्मद : इन्द्रावती, पृ० १२१
४५— जगनमोहन वर्मा : चित्रावली, छन्द २०६, २१०
४६— डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : नाथ संप्रदाय, पृष्ठ ५०
४७— शिव गोपाल मिश्र : मृगावती, छन्द ३७७
४८— माता प्रसाद गुप्त : पद्मावती, छन्द २५७
४६— वही, छन्द ३६७

आद्याशक्ति अम्बिका

श्री माता प्रसाद त्रिपाठी

भारतीय धर्म–दर्शन के इतिहास में पुरूष–प्रकृति की विराट् सार्वभौमिक सत्ता की कल्पना अत्यन्त पुरातन है। भारतीय संस्कृति अपने उषः काल से ही प्रकृति की अनेकविध शक्तियों से परिवेष्ठित है। उषा, दिवा, संध्या, रात्रि – (सदैव) 'समया–शक्ति' का नैसर्गिक संचार शाश्वतिक है किन्तु इन सब में आदिम प्रकृति 'माँ' का कृतित्व परिव्याप्त है – वह अनादि प्रकृतिस्थ "माँ" जो रूपों की निर्मात्री है, जिजीविषा की धात्री है। वैदिक 'अम्बिका' वस्तुतः परमा मातृदेवी या आद्याशक्ति है, जिसके द्वारा जलीय, स्थलीय, आन्तरिक्ष व स्वर्गीय सभी प्रकार के तत्वों की सर्जना होती है तथा इस सृजनक्रिया का उर्वरता से अविच्छेद्य सम्बन्ध है।

यद्यपि 'अम्बिका' शब्द का उल्लेख उत्तरवैदिक–साहित्य (सर्वप्रथम वाजसनेयि–संहिता) में हुआ किन्तु मातृ–शक्ति के विचार यहाँ ऋग्वेद से भी पुरातन हैं। पुरा–ऐतिहासिक नग्न या अर्द्ध नग्न स्त्री–मृण्मूर्तियाँ, मुद्रांकित देवियाँ, योनि–मुद्रायें तथा ऋग्वेदीय वाङ्मय में उल्लिखित अदिति, पृथिवी, उषा, सरस्वती, वाक् एवं रात्रि प्रभृति अनेक देवियों का मातृत्व स्फुट है, अन्य अनेक प्रतीकों की परम्परा भी इसे प्रमाणित करती है। इतना ही नहीं, पुरा–ऐतिहासिक बलूचिस्तान से लेकर सम्पूर्ण सैन्धव क्षेत्र तथा पूर्व में गंगा घाटी तक उपलब्ध पुरावशेष विशेषकर अर्द्धनग्न स्त्री–मृण्मूर्तियाँ एवं 'पाषाण–छल्ले' निस्सन्देह इस बात की पुष्टि करते हैं कि विविध स्वरूपों के होते हुए भी परमा देवी मूलतः मातृत्व से पूरित है। प्रायः समस्त देवियों में मातृत्व की अवधारणा प्रबल है। उदाहरण के लिये मातृत्व से पूरित है। प्रायः समस्त देवियों में मातृत्व की अवधारणा प्रबल है। उदाहरण के लिये प्रज्ञादेवी सरस्वती यदि नदियों एवं देवियों में श्रेष्ठ कही गयी तो सर्वप्रथम वह 'अम्बिका' (माताओं में श्रेष्ठ) है।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्म नस्कृधि। ऋग्वेद २.४१.१६

अम्बिका > अम्बा > अम्मा > मा – सभी मातृबोधक पर्याय–शब्द हैं। यही शब्द अम्बि (अम्बी = अम्मी या मम्मी), अम्बिका एवं अम्बालिका इत्यादि अनेकविध रूपों में जाना जाता है। उमा (हैमवती) की औपनिषदिक् परम्परा में अम्बिका ही परब्रह्मात्मिका–जगद्धात्री है। अम्बिका या उमा पश्चाद्वर्ती त्र्यम्बक (शिव=परम पुरूष) की सहचरी (प्रकृति=शिवा या पार्वती) के रूप में विख्यात हुई, किन्तु भारतीय 'शिव–शक्ति=धारण' के विकास में अम्बिका का ऋग्वेदीय स्वरूप कुछ विलक्षण–सा है। आरम्भ में (सर्वप्रथम वाजसनेनिय संहिता में) अम्बिका त्र्यम्बक (रूद्र) की पत्नी नहीं भगिनी (स्वसा) के रूप में वर्णित है, जिसके साथ वे यज्ञ में हव्य प्राप्त करते हैं। तैत्तिरीय–आरण्यक में सर्वप्रथम अम्बिका को रूद्र की पत्नी बताया गया है, जहाँ वह दुर्गा, वैरोचनी, कात्यायनी एवं कन्याकुमारी के पर्याय–रूप में ीय है। वैदिक–देवशास्त्र में वस्तुतः यह अर्थान्तर एक परम्परा–विशेष के सन्दर्भ में भले ही विलक्षण समझा जाये, किन्तु वैदिक अवधारणा में यह 'देव–धर्म' का परिचायक है, किसी सामाजिक परम्परा का बोधक नहीं।

वैदिक 'देव–धर्म', जिसकी प्रामाणिकता निरूक्तकार यास्क ने 'दक्ष–अदिति' के उदाहरण से स्पष्ट किया, उल्लेखनीय है। ऋग्वेद में दक्ष को अदिति का पुत्र तथा अदिति को दक्ष की पुत्री एवं माता बताया गया है और दोनों को एक–दूसरे से उत्पन्न बताया गया है।

'अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिस्परि' (ऋग्वेद १०.७२.४)
'अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव' (ऋग्वेद १०.७२.५)

भला इससे बड़ा विलक्षण उदाहरण और कौन हो सकता है ? वस्तुतः परस्पर जनयितृत्व–गुण की प्रधानता के कारण वैदिक 'ब्रह्म' की व्यापक एकरूपता दिखाई देती है, सम्भवतः इसीलिये एक ही 'देवी–देवता' के अनेक रूप मिलते हैं। अदिति को ही देखिये – वह रूद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की बहन तथा अमृत की नाभि है।

'माता रूद्राणं दुहिता वसूनां स्वसादित्यानां अमृतस्य नाभि है। (ऋग्वेद ८.१०१.१५)

जगन्मातृत्व – वैदिक साहित्य में 'सृष्टि' के प्रसंग में बहुधा अदिति, जल अंथवा पृथिवी को मूलभूत मातृशक्ति माना जाता है –

विश्वा हि वो नमस्यामि वन्द्या नमानि देवा, उत यज्ञियानि वः।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्रस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम्।। (ऋग्वेद १०.६३.२)

प्रथित पृथिवी पर उत्पन्न अनेकविध जीव–जन्तु एवं वनस्पतियाँ उसकी सन्तान हैं, प्रकृत्या वह आदिमाता है। अदिति 'देव–माता' कही गयी है और उसे जन्म तथा जन्म का कारण बताया गया है। इसी प्रकार आपोमयी सृष्टि के आख्यान जल के मातृत्व को सूचित करते हैं। इस विचार के अनुसार आरम्भ में जल ही जल था, फिर किसी परम–सत्ता ने सृष्टि की, जिससे चराचर की उत्पत्ति हुई – इस प्रकार के आख्यान भारत में ही नहीं भारतेतर पुराकथाओं में भी मिलते हैं।

जल को ही 'अम्ब' या 'अम्बु' तथा सरस भी कहते हैं, 'सर' 'सरस', 'सरोवर', सरसीरूह' और 'सरस्वती' इत्यादि सभी शब्द मूलतः 'जलीयगर्भ के द्योतक हैं। 'श्रीलक्ष्मी' का निवास कमल में होता है, उर्वरता का यह प्रतीक 'पद्म' जल से सम्बद्ध है अतएव 'जलीयगर्भ' सृजनक्रिया का बोधक है और सृष्टि–प्रक्रिया की मानवीकृता की 'अधिष्ठात्रीदेवी' के रूप में यही 'अम्बिका' है, जिसमें अम्ब < अम्भ < अम्भस् की अभिव्यजना मिलती है।

जगन्मातृत्व का विकास मार्कण्डेय–पुराण के 'देवी–माहात्म्य' में देखा जा सकता है, जहाँ वह 'जननी परा' कही गयी है। यह जननी 'विश्व–सृष्टि की स्थिति, पालन और संहृति–इन सभी तत्वों की अधिष्ठात्री है। शायद इसीलिये वह 'महादेवी' ही नहीं, 'महासुरी' भी कही गई है। ध्यातव्य है कि यजुर्वेदीय मैत्रायणी–संहिता और तैत्तिरीय–ब्राह्मण में अम्बिका एक आसुरी–शक्ति के रूप में रूद्र की सहायिका बताई गई है, इस तरह अम्बिका 'सौम्या' ही नहीं अपितु 'घोरा' भी समझी जा सकती है, ठीक उसी तरह जैसे 'रूद्र' एवं शिव के व्यक्तित्व का महत्व है।

अम्बिका ही गुणत्रयविभावनी प्रकृति है। वेदों में यही विराज' नाम से अभिहित है। पृश्नि

(गो–माता) का मातृत्व भी अम्बिका का एक प्रसिद्ध स्वरूप है, जिसके पवित्र दुग्ध से ही 'सृष्टि' का पालन सम्भव है। परमेष्ठी, विराज, योधा एवं गौरी इत्यादि 'महीमाता' के विविध नाम हैं जिनमें जगन्मातृत्व के लक्षण स्पष्ट हैं।

त्र्यम्बक – वैदिक साहित्य में 'त्र्यम्बक' शब्द. रूद्र के लिये व्यवहृत हुआ है। कालान्तर में यह 'रूद्र–शिव' के लिए रूढ़ हो गया, किन्तु इसका अर्थ विवादास्पद है। 'त्रि + अम्बक' संयुक्त होकर 'त्र्यम्बक' कहलाता है, परन्तु इसकी निष्पत्ति विविध प्रकार से की जाती है। इस शब्द में 'अम्बक' के अर्थ पर ध्यान देना आवश्यक है। नीचे लिखे हुए 'अम्बक' के कुछ महत्वपूर्ण व्युत्पत्तिगत अर्थ इस प्रकार हैं :

(अ) 'अम्ब' का एक अर्थ है – पिता। इस दृष्टि से 'त्र्यम्बक' ऐसा देवता है, जिसके तीन पिता हों। वैदिक देवताओं में 'अग्नि' ही एक ऐसा देवता है, जो पृथिवी आकाश और द्यु–लोक में जन्म लेता है, साथ ही रूद्र से उसका तादात्म्य वेदों में स्पष्ट है। सम्भव है इसीलिए रूद्र 'त्र्यम्बक' कहे गये हों।

(ब) 'अम्बक' का एक अर्थ 'नेत्र' होता है, अतः त्र्यम्बक तीन आँखों वाला (त्रिनेत्रधारी) देवता हुआ। संभवतः इसीलिए 'शिव' को 'विरूपाक्ष' भी कहा जाता है और उनके तीसरे नेत्र की परम्परा भारतीय–साहित्य एवं कला में सुविदित है ही। किन्तु यह अवधारणा पौराणिक है।

(स) डॉ० कीथ के विचार से 'अम्बक' ऋतृ अथवा 'लोक' का परिचायक है, अतः त्र्यम्बक तीन ऋतुओं अथवा तीन लोकों का अधिनायक है।

(द) वायुपुराण (३१.४६) में यह एक ऐसा देवता बताया गया है, जिसे तीन पात्रों में हव्य प्रदान किया जाता है।

(य) 'अम्बक' मातृसंज्ञक है, फलतः 'त्रि + अम्बक=तीन माताओं से संम्बद्ध देवता हो सकता है।

वस्तुतः त्र्यम्बक शब्द का अन्तिम अर्थ ही उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि 'रूद्र–शिव' (जिसके लिय यह शब्द रूढ़ है) निश्चय ही तीन माताओं से सम्बद्ध हैं। ये तीन मातायें ही महामाता (**Magna Mater**) की विधि शक्तियाँ हैं। इस शब्द से भारतीय धर्म–दर्शन की मौलिक–दृष्टि व्यंजित है जिसके अनुसार सृष्टि, पालन एवं विनाशकारी त्रिदेवों का ऐक्य–बोध होता है। इसी के अनुरूप ही सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा (पार्वती) त्रिदेवियाँ हैं, जो आदिमाता, परमाशक्ति या अम्बिका की त्रिविध शक्तियाँ हैं और जिनसे सम्बद्ध परमपुरूष देव 'शिव' त्र्यम्बक कहलाये। इस प्रकार 'रूद्र–अम्बिका' का सम्मिलित व्यक्तित्व उर्वरत्व का बोधक है। अर्द्ध–नारीश्वर के रूप में यही 'पृरूष–प्रकृति' के द्योतक हैं। फलतः उर्वरताधिदेव 'रूद्र–शिव' एवं उर्वरताधिदेवी 'अम्बिका' का संयुक्त आभधान 'त्र्यम्बक (त्वं स्त्री त्वं पुमान्) विचार के विकास के साथ ही शंकर के लिये 'त्रिनेत्र' एवं 'त्र्यम्बक' शब्द प्रचलित या यों कहिये कि रूढ़ हो गये। संभवतः इसीलिए

'देवी–माहात्म्य' में 'देवी' को 'त्रिनेत्रा' और 'त्र्यम्बका' – इन दोनों नामों से पुकारा गया है। प्रतिमा निर्माण–विद्या में भी अम्बिका या दुर्गा के ये स्वरूप देखे जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में त्र्यम्बक' शब्द के उक्त सभी अर्थ 'रूद्र–शिव' के विकास में समाहित हो गये। यही कारण है कि अम्बिका 'त्रिनेत्रा' और 'त्रयम्बका' कही गयी।

अग्रास्यमुग्रवीर्य च तथैव महाहनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी।। देवी माहात्म्य ३.१८।।

सर्वमंगलमागल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।। दे० मा० १६.१।।

नवमातृकायें एवं कुमारी–पूजन – नवरात्र काल में कुमारी–पूजा भी विहित है। इस अवधि में प्रतिदिन क्रमशः एक विशेष देवी की उपासना की जाती है। इन्हीं देवियों को 'नव–दुर्गा' कहा जाता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं – **ह्लल्लेखा, गगना, रक्ता, महोच्छूष्मा, करालिका, इच्छा, ज्ञान, क्रिया** एवं **दुर्गा**। 'कौल–सम्प्रदाय के लोग कुमारी–पूजा रात्रि में करते हैं जब कि स्मार्त्तों में यह उपासना मध्या के बाद की जाती है। सबसे विचित्र और महत्वपूर्ण बात यह है कि 'महाकालसंहिता' में कुमारी के १६ नाम मिलते हैं जो क्रमशः उसके १६ वर्षो की अवस्था–क्रम के परिचायक हैं। **संध्या, सरस्वती, त्रिघामूर्ति कालिका, सुभगा, उमा, मालिनी कुब्जिका, काल संघर्षा, अपराजिता, रूद्राणी, भैरवी, महालक्ष्मी कुलनायिका, क्षेत्रज्ञा**, एवं **चण्डिका** – ये सोलह नाम मूलतः परमशक्ति के होते हैं, यहाँ उर्वरत्व की मर्यादा में इन्हें 'कुमारी' के षोड़स वर्षीय स्वरूपों की अभिव्यक्ति दी गयी है।

इसमें सन्देह नहीं कि देवी का 'कौमार्य–पक्ष' भी दार्शनिक दृष्टि से सबल है किन्तु यह अवधारणा तन्त्रयुगीन है। दूसरे शब्दों में इसे तांत्रिक दृष्टि कहेंगे, भले ही इसकी परम्परा तन्त्र–युग से पूर्व ज्ञात रही हो। जहाँ तक संख्या का प्रश्न है, वह वैदिक–युग से ही भारतीय तत्वविद्या की एक विलक्षण विधा है। यहाँ देव ही नहीं, देवी के भी **'त्रयी–विद्या'** के अन्तर्गत अनेकविध स्वरूप लक्षित होते हैं। मुण्डक–उपनिषद् में उल्लिखित अग्नि की सप्त जिहृवाये सात देवियों के रूप में वर्णित हैं और यहीं से सप्तसंख्यक परम्परा का विकास दिखाई देता है। शांखायन तथा हिरण्यकेशी गृहयसूत्र और तैत्तिरीय आरण्यक में सप्तमातृकाओं का अभिज्ञान होता है।, पश्चाद्वर्ती प्रतिमायें जिनका समर्थन करती हैं। वस्तुतः यह परम्परा ऋग्वेदीय है और इसी की परिधि में एक, दो, त्रि, चटुष्ट्व, पंच, सप्त एवं 'नवम्' ही नहीं, अपितु शत–शहस्त्र की परम्परा चल पड़ी। ये समस्त विचार मूलतः प्राणिभूत जगत की आदि स्रोत 'वाक्' में देखे जा सकते हैं, जहाँ वह **'सहत्राक्षरा'** कही गई है।

गौरीर्मियाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी या चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्त्राक्षरा परमे व्योमन्।। (ऋग्यवेद १.१६४.४१)

नव–पत्रिका – 'अग्नं वै प्राणः' की अभिव्यक्ति अन्न की महत्ता दिग्दर्शित करती है, अतः आदिम युग से ही अन्न को 'दिव्य' समझना अस्वाभाविक नहीं था। प्रागैतिहासिक काल से ही

अम्बिका (आदि–माता) का सम्बन्ध वानस्पतिक जगत से भी रहा है। बंगाल में आज भी 'नवपत्रिका–उत्सव' मनाया जाता है, जिसमें अन्नात्मा (कॉर्न स्पिरिट) को शक्ति मानकर उसकी उपासना की जाती है। **रम्भा, कश्वी, हरिद्रा, जयन्ती, बेल, दाड़िम, अशोक, मान** एवं **धान्य** – इन नव–पत्रिकाओं पर क्रमशः **ब्रह्माणी, कालिका, दुर्गा, कृत्तिका, शिवा, रक्तदन्तिका, शोकरहिता, चामुण्डा,** एवं **लक्ष्मी** का प्रभुत्व रहता है। अतः, इन वनस्पतियों में भी नव–मातृकाओं की परम्परा मिलती है। वनस्पतिजगत एवं पशु–जगत से 'अम्बिका' का सम्बन्ध निश्चय ही उन्हें वैदिक 'अरण्यानी' के निकट लाता है। कालान्तर में यही 'सिहवाहिनी दुर्गा' के रूप में प्रसिद्ध हुई और नव–पत्रिकाओं की श्रेणी में न होते हुये भी 'निम्बार्या' और 'शाकम्भरी' के नाम का प्रचलन अधिक रहा। ज्ञातव्य है कि 'सिंहवाहिनी' दुर्गा की प्रतिमायें गुप्त–युग में आरम्भ हुई किन्तु मृण्मूर्तियों के रूप में इसके पूर्व ही यह परम्परा प्रकाश में जा चुकी थी।

इस प्रकार आज भी भारत में लोक–कल्याण की भावना से (धन–धान्य की सुरक्षा तथा सन्तति–लाभ के हेतु) नवरात्र–काल में अम्बिका या दुर्गा की उपासना की जाती है, जिसकी एक विशिष्ट परम्परा विकसित हुई, भले ही यह परम्परा कालान्तर में अनेक उप–परम्पराओं में विभक्त हो गयी हो। वस्तुतः समस्त प्राणियों में जो मातृरूप से स्थित है (या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थित।) वही सार्वभौमिक प्रकृति – 'आद्याशक्ति–अम्बिका' है, जिसके मातृत्व में ही यह विश्व पूरित है। –

त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।

卐

गोरख–बानी

ॐकार आछै बाबू मूल मंत्र धारा,
ॐकार व्यापीले सकल संसारा।
ॐकार नाभी ह्रदै देव गुर सोई,
ॐकार साधे बिना सिधि न होई।।

गोरख दर्शन एवं हठ–योग

श्री राधेश्याम तिवारी

श्री गोरखनाथ जी द्वारा चलाई गई दार्शनिक पद्धति में योगी लोग पिण्ड को ब्रह्माण्ड का ही वैयक्तिक मूर्त रूप मानते हैं। वे ब्रह्माण्ड और पिण्ड को एक ही मानते हैं। प्रत्येक मानव प्राणी विश्व का जीवित एवं चल रूप है। उनकी धारणा है कि व्यक्ति के पिण्ड के रहस्यों के पूर्ण ज्ञान एवं उस पर पूर्ण आधिपत्य के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और उस पर विजय भी प्राप्त की जा सकती है।

श्री गोरक्षनाथ जी के योग–सिद्धान्त के अनुसार विश्वशक्ति तत्व की भेदात्मक आत्माभिव्यक्ति है। शक्ति–तत्व शिव या ब्रह्म (परम तत्व) से शाश्वत रूप से सम्बद्ध तथा अभिन्न है, किन्तु यह शिव के परम श्रेष्ठ आत्म–प्रकाश रूप को अपने भेदात्मक रूप से आच्छादित रखता है। यही शक्तितत्व प्रत्येक प्राणी के बीच में क्रियाशील है और वही शिव सभी का वास्तविक आत्म–तत्व है। शिव और शक्ति तत्व के आनन्दमय आच्छादित एकत्व की पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड में अनुभूति तथा व्यक्तिगत जीवन एवं विश्व प्रपंच में व्याप्त प्रकृति की समस्त क्रियाओं एवं विकास चेष्टाओं में बन्धनातीत एवं परम तत्व की प्रत्यक्षानुभूति करना प्रत्येक योगी का परम लक्ष्य है।

इस दार्शनिक प्रणाली के अनुसार परमतत्व का वास्तविक स्वरूप शिव और शक्ति के शाश्वत मिलन के द्वारा प्रकट किया जाता है। या शक्ति को शिव के असीम वक्षस्थल पर शाश्वत रूप से नृत्य करती हुई मानकर, परम तत्व के वास्तविक स्वरूप की कल्पना की जाती है। शिव अविकृत एकत्व है और शक्ति क्रिया–शील एवं आत्म विस्तारिणी है। शिव एक, नित्य निःसीम अपरिवर्तनशील तत्व है, जो कालातीत एवं सीमातीत है और शक्ति असीम, गतिशील एवं क्रियाशील तत्व है, जो सदैव काल ओर सीमा के रूप में अपने को व्यक्त करता है। शिव शुद्ध, भेदरहित, अज्ञेय, चेतन तत्व है, जब कि शक्ति अपने को विविधगोचर चेतन तत्वों, अनेक बौद्धिक, भावात्मक एवं संकल्पात्मक प्रवृतियों के रूप में व्यक्त करती है। श्री गोरखनाथ जी का योग मन की साधना प्रणाली पूजा–विधान तथा शारीरिक एवं मानसिक संयम दोनों को महत्व देता है। एक पूजक सम्प्रदाय के रूप में गोरखपंथी योगी मुख्यतः शैव हैं। वे शिव और शक्ति को सम्पूर्ण सत्ता का एक मात्र कारण तथा जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानकर उनकी पूजा करते हैं। उन्होंने श्रद्धापूर्वक देश के कोने–कोने में शिव और काली के मन्दिरों का निर्माण कराया है। वे हिन्दुओं के सभी देवी–देवताओं को पूजा करते हैं। दक्षिण भारत, पश्चिमी भारत, बंगाल तथा कई अन्य स्थानों के वैष्णव भक्त भी अपने सिद्धान्तों को गोरखनाथ से ही उदभूत मानते हैं। हिन्दू समाज की जातिगत संकीर्णता का भी इस सम्प्रदाय में अभाव है। एक मानसिक एवं शारीरिक साधना के रूप में इसे 'षडांग योग' भी कहते हैं।

षडांग योग

इसके अन्तर्गत केवल छः प्रमुख स्थितियाँ आती हैं। उदाहरणार्थ आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार

धारणा, ध्यान और समाधि। यम और नियम जिसे महर्षि पतंजलि ने योग साधना के प्रथम दो सोपान बतलाया है, उन्हें इनसे जोड़ देने पर इनका अष्टांग योग बन जाता है। यम और नियम का उल्लेख श्री गुरु गोरक्षनाथ जी ने नहीं किया है। कदाचित इसका कारण यही प्रतीत होता है कि इन दो का सम्बन्ध नैतिकता, शुचि एवं पवित्रता से है जिसका सभी साधु स्वतः पालन करते हैं। समाधि की उच्चतम स्थिति में परम सत्य की अनुभूति होती है, शिव और शक्ति के शाश्वत–आनन्दमय एकत्व का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। मानवात्मा को कैवल्य या पूर्ण एकत्व की प्राप्ति होती है और वह सभी प्रकार के बन्धनों, दुःखों और सीमाओं से मुक्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में योगी साधक विश्वनाथ शिव से अभिन्न हो जाता है। योग साधना के अन्तर्गत योगाभ्यास को मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग में भी विभाजित किया गया है, किन्तु श्री गोरक्षनाथ जी के सम्प्रदाय में हठयोग पर ही विशेष बल दिया जाता है।

हठयोग

श्री गोरक्षनाथ जी तथा उनके अनुयायियों ने हठ योग की साधना को एक निश्चित वैज्ञानिक रूप दिया और उन विविध शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया, जिसके अभ्यास से शारीरिक अवयवों, नाड़ी मण्डल तथा इन्द्रिय और मन पर परिपूर्ण संयम स्थापित किया जा सकता है। योग साधना के क्षेत्र में उनकी इस महत्वपूर्ण उपलब्धि ने अन्य क्षेत्रों की उपलब्धियों को आच्छादित कर दिया है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि योगी सम्प्रदाय से सम्बद्ध अनेक उपलब्ध कृतियों में मुख्यतः आसन, प्राणायाम, मुद्रा, धौति, चक्र भेद, नाड़ी शुद्धि आदि की कठिन प्रक्रियाओं तथा इनके महत्वपूर्ण परिणामों का ही उल्लेख किया गया है। श्री गोरक्षनाथ जी के सम्प्रदाय को संक्षेप में नाथ सम्प्रदाय कहते हैं। नाथ–प्रणाली में कर्म, भक्ति और ाान के समन्वय की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है और इस लक्ष्य पर अधिक बल दिया गया है कि योगाभ्यास की सभी क्रियाएँ पूर्ण आत्मानुभूति, सभी प्रकार की दुर्बलताओं, दुःखों और बन्धनों से मुक्ति तथा शिव तत्व से एकत्व प्राप्ति के उच्चतम आदर्श की प्रधानता स्वीकार करके ही ग्रहीत हो सकती है।

यम के दस भेद सक प्रकार हैं –

अहिंसा सत्यमस्तेयम् ब्रह्मचर्यम् क्षमाधृतिः।
दयार्जवमिताहारः शौच चैव यमो दश।।
नियम की दस विधियाँ बताई गई हैं।
तप सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम्।
सिद्धान्त वाक्य श्रवणं ही मतिश्च जपो हुतम्।।
नियमा दश संप्रोक्ता योगः शास्त्र विचार दैः।

परिभाषा

हठ योग का नाथ योगी संप्रदाय के लोग विशेष ज्ञान रखते हैं। जो आदिनाथ के (जो

सम्प्रदाय के आदि गुरू थे ओर महायोगेश्वर शिव से अभिन्न समझे जाते हैं) शिष्य श्री मत्स्येन्द्र नाथ जी ओर उनके शिष्य श्री गुरू गोरक्षनाथ जी, जिन्हें शिव का महिमामय अवतार माना जाता है तथा अन्य महा योगी, जिन्होंने इन लोगों का अनुसरण किया, सभी ने योग साधना के इस विशिष्ट प्रकार के सम्बन्ध में बहुमूल्य ज्ञान प्रदान किया है। इन लोगों ने हठ योग का विस्तार किया, शिक्षा दी और इसे इतना अधिक लोकप्रिय बना दिया कि सामान्य व्यक्ति के लिए संकीर्ण अर्थ में योग से तात्पर्य हठ योग से ही हो गया है। सामान्यतः हठ योग का अर्थ है "हठेन बलातकारेण–योग–सिद्धि" अर्थात् बल पूवर्क योग साधना से सिद्धि लाभ करना। किन्तु सम्प्रदायान्तर्गत इसका विशेष अर्थ यह प्रचलित है कि "ह" सूर्य को कहते हैं जो शरीर के भीतर इड़ा नाम से जाना जाता है, "ठ" चन्द्र को कहते हैं जिसे पिंगला नाम दिया गया है। कभी–कभी "ह" से प्राण "ठ" से अपान का तात्पर्य ग्रहण किया जाता है। पुनः "ह" से बिन्दु "ठ" से रज का भी अर्थ लेते हैं। शास्त्र के अनुसार सभी शारीरिक अवयवों की क्रियाएँ ज्ञान, भावना, इच्छा और क्रिया तत्वों के सभी कार्य तथा सभी आन्तरिक चेष्टाएँ चाहे स्वेच्छा से हों अनिच्छा से हों, चाहे चेतन स्थिति में हों या अचेतन स्थिति में, यह सभी कुछ नाड़ी मण्डल के द्वारा, जिनकी सं० ७२ हजार है, संयमित एवं नियोजित होती हे। यह नाड़ी मण्डल भी इड़ा पिंगला तथा सुषुम्ना तीन प्रमुख नाड़ियों से सम्बद्ध और शासित है। सुषुम्ना सूक्ष्म केन्द्रीय नाड़ी है। जो पृष्ठप्रदेश के उच्चतम से निम्नतम सीमान्तों तक निकलती है और इड़ा तथा पिंगला पृष्ठ प्रदेश के दोनों तरफ हो कर गुजरती है। ये सुषुम्ना से विशेष बिन्दुओं पर मिलती हैं, जिन्हें चक्र कहते है। शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंगों ओर अवयवों को संगठित तथा क्रियाशील करने में ये दोनों बहुसंख्यक सामान्य नाड़ियों द्वारा बहुत ही महत्वपूण भाग लेती हैं, ये दोनों श्वास–इन्द्रियों से अत्यधिक सम्बद्ध हैं और श्वास–क्रिया से संचालित होती हैं। शरीर के भीतर कार्य करने वाली सभी प्राण शक्तियाँ, प्राण, अपान, समान, उदान, और व्यान, इड़ा और पिंगला की सुचारू क्रियाशीलता और श्वास–क्रिया की नियमित व्यवस्था पर निर्भर करती हैं जिसके द्वारा प्रतिक्षण वाह्य वातावरण से शुद्ध वायु फेफड़ों में जाती है ओर भीतरी वायु बाहर निकलती रहती है। जीवन के सामान्य क्रम में श्वास–क्रिया, इड़ा और पिंगला का संचालन, प्राण शक्तियों की क्रियाशीलता, नाड़ियों की सामन्य कार्य–प्रणाली, ये सभी प्रकृति के कार्य हैं जो रात–दिन जागृत एवं सुप्त अवस्था में बिना किसी प्रकार की इच्छा या प्रत्यत्न के स्वयं होते रहते हैं। शरीर के भीतर होने वाली प्रायः सभी महत्वपूर्ण क्रियाएं सामान्यतः हमारे नियंत्रण या इच्छा से नहीं स्वतः होती है। इन सभी को अपनी इच्छा–शक्ति ओर विवेक से संयमित करना तथा इनमें पूर्ण सुखद सामन्जस्य और एकता स्थापित करना ही हठ योग का लक्ष्य है। इड़ा ओर पिंगला की सुषुम्ना से प्राण और अपान वायु की जीवनी शक्ति के केन्द्र बिन्दु से, बिन्दु और रज को सम्पूर्ण मानसिक शारीरिक शक्ति के केन्द्र बिन्दु से और अन्तः चेतना की उच्चतम स्थिति में शिव और शक्ति की एकता स्थापित करना हठ योग की साधना का अन्तिम साध्य है।

शास्त्र ग्रन्थों में हठ योग

शास्त्र ग्रन्थों में हठ योग साधारणतः प्राण–निरोध–प्रधान साधना को ही कहते हैं। "सिद्ध सिद्धांत पद्धति" में "ह" का अर्थ सूर्य और "ठ" का अर्थ चन्द्र बतलाया गया है। इसी सूर्य और चन्द्र के योग को हठ योग कहते हैं।

हकारः कथितः सूर्यष्ठकारश्चंद उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योणात् हठयोगो निगद्यते।।

सूर्य से तात्पर्य प्राणवायु का और चन्द्र से तात्पर्य अपान वायु का है। इन दोनों का योग अर्थात् प्राणायाम से वायु का विरोध करना ही हठ योग है। दूसरी व्याख्या यह है कि सूर्य इड़ा नाड़ी को कहते हैं और चन्द्र पिंगला को ("हठै० ३–१५") इसलिए इड़ा और पिंगला नाड़ियों को रोक कर सुषुम्ना मार्ग से प्राण वायु के संचालित करने को भी हठयोग कहते हैं। इस हठ योग को हठ सिद्धि देने वाला कहा गया है। वस्तुतः हठ योग का मूल अर्थ यही जान पड़ता है कि कुछ इस प्रकार अभ्यास किया जाता है कि जिससे हठात् सिद्धि प्राप्त हो जाय। हठ योग शब्द का उल्लेख प्राचीन गुह्य समाज में आता है, वहाँ बोधिप्राप्ति की विधि को बता लेने के पश्चात् आचार्य ने बतलाया है कि यदि इसके पश्चात् भी बोधि–प्राप्ति न हो तो हठयोग का आश्रय लेना चाहिए।

"योग स्वरोदय" में हठयोग के दो भेद बतलाये गये हैं। प्रथम में आसन, प्राणायाम तथा धौति आदि षट्कर्म का विधान है, इनसे नाडियाँ शुद्ध होती हैं। शुद्ध नाड़ी में पूरित वायु मन को निश्चल करता है और फिर परमानन्द की प्राप्ति होती है। दूसरे भेद में बताया गया है कि नासिका के अग्रभाग में दृष्टि निर्बद्ध करके आकाश में कोटि सूर्य के प्रकाश को स्मरण करना चाहिए और श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण रंगों का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से साधक दीर्घायु होता है और हठात् ज्योर्तिमय होकर शिव रूप हो जाता है। यह सिद्धि सेवित मार्ग है। हठ योग की ये विधियाँ हैं – एक तो श्री गोरखनाथ की पूर्ववर्ती जिसका उपदेश मुकुन्द पुत्र (मारकण्डेय) आदि ने किया था और दूसरी गोरक्षनाथ आदि द्वारा उपदिष्ट प्रधान भेद यह बताया जाता है कि पहली सभी आठ अंगों को स्वीकार करतो है जिन्हे पातजल योग के संदर्भ में हम देख आये हैं और दूसरी केवल अन्तिम छः अंगो को। किन्तु हठ योग के ग्रन्थों में अष्टांग और षड़ांम दोनों की ही बातें आती हैं। श्री गोरक्ष शतक में षड़ांग योग और सिद्ध सिद्धांत संग्रह में अष्टांग योग की बात कही गई है।

हठ योगी को शरीर की बनावट को समझना आवश्यक होता है। मेरूदंड जहाँ सीधे आकर वायु और उपस्थ के मध्य भाग में लगता है वहाँ एक स्वयंभू लिंग है जो एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है। इसे अग्नि–चक्र कहते हैं। इसी त्रिकोण या अग्नि–चक्र में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़ेतीन वलयों में लपेटकर सर्पिणी की भाँति कुन्डलिनी अवस्थित है। यह कभी–कभी आठ वलयों में लपेटकर सोई हुई भी बताई गई है। यह ब्रह्मांड में व्याप्त महाकुण्डलिनी रूपी शक्ति

का ही व्यष्टि में व्यक्त रूप है। यह शक्ति ही है जो ब्रह्म द्वार को रोक कर के सोई हुई है। इसे जगाकर शिव से समरस कराना योगी का परम लक्ष्य है। अन्यान्य विधियो से भी मोक्ष प्राप्त किया जाता है, परन्तु चाभी से जिस प्रकार ताला हठात् खुल जाता है, उसी प्रकार कुण्डलिनी के उद्‌बोधन से हठात् मोक्ष द्वार अनायास ही खुल जाता है। हठात् मोक्ष द्वार खोलने की विधि बताने के कारण भी इस योग को हठ योग कहते हैं। इस कुण्डलिनी उद्‌बोध की कई विधियाँ हो सकती हैं।

शरीर में तीन अद्‌भुत एवं महान शक्तियाँ विद्यमान हैं किन्तु चंचल होने के कारण वे मनुष्यों के काम नहीं आ पाती हैं। १ – बिन्दु या शुक्र २ – वायु ३ – मन। हठ योग का सिद्धान्त है कि इनमें से किसी एक को यदि वश में कर लिया जाय तो दूसरे दो स्वयंमेव वश में हो जाते हैं। कभी–कभी चौथी शक्ति वाणी को भी वश में करने की बात कही जाती है।

अमरौध शास्त्र में लिखा है कि मेरूदंड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयंभू लिंग है जिसे पश्चिम–लिंग कहते हैं यही पुरूषों के शुक्र और स्त्रियों के रज स्खलन का मार्ग है। यही काम, विषहर और निंरजन का स्थान है। वीर्य स्खलन की दो अवस्थायें होती हैं। इन दोनों के पारिभाषिक नाम प्रलयकाल और विष काल हैं। इन दो अवस्थाओं में जो आनन्द होता है, वह घातक है। एक का अधिष्ठाता काम है और दूसरी का विषहर, तीसरी अवस्था भावाभाव–विर्निमुक्त सहजानन्द की अवस्था है। इसमें बिन्दु ऊर्ध्वमुख होकर ऊपर उठता है, तबवह सहज समाधि प्राप्ति होती है जिसमें मन और प्राण अचंचल हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य ओरप्राणायाम द्वारा इस बिन्दु को स्थिर और ऊर्ध्वमुख किया जाता है, परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि नाड़ियों को शुद्ध किया जाय। हठ योग षट्‌कर्म द्वारा वही कार्य करता है। धौति, बरित, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति को षटकर्म कहते हैं। नाड़ी के शुद्ध होने से बिन्दु स्थिर होता है, सुषुम्ना का मार्ग स्वच्छ हो जाता है, प्राण और मन क्रमशः अचंचल होते हैं और प्रबुद्ध कुण्डलिनी परमेश्वरी सहस्रार चक्र में स्थित शिव के साथ समरस हो जाती है और योगी चरम प्राप्तव्य पा जाता है। इस क्रिया के द्वारा ही लोग उस एक जाली मुद्रा का अभ्यास करते हैं जिसमें नानविधियों से पुरूष स्त्री के रज को और स्त्री पुरूष के शुक्र को आकर्षित करके ऊर्ध्वमुख करती है। यह साधना केवल पारमार्थिक अर्थ में ही ग्रहीत है।

नाड़ी शुद्धि के बाद प्राणादि वायु का समन सहज ही हो जाता है। नानाप्रकार के आसनों और प्राणायामों से सुषुम्ना मार्ग खुल जाता है। दक्षिणांगी में व्याप्त नाड़ियाँ सूर्य के अंग है ओर बाम भाग वाली चन्द्रमा के अग। इन दोनों के बीच सुषुम्ना है। जब अभ्यास से योगी चन्द्र और सूर्य मार्गा को बन्द कर देता है और उनमें बहने वाली वायु शक्ति संयमित होकर योनि केन्द्र के मूल में स्थित सुषुम्ना की मध्यवर्तिनी ब्रह्मनाड़ी के मुख को खुला पाकर उस मार्ग से ऊपर उठती है तो वस्तुतः कुण्डलिनी ही ऊर्ध्वमुख होती है। प्राणायाम से कुण्डलिनी का उद्‌बोध सुकर जो जाता है।

यह कुण्डलिनी जब उद्‌बुद्ध होती है तो प्राण स्थिर हो जाता है और साधक शून्य पथ से

निरन्तर उस अनाहत ध्वनि या अनहदनाद को सुनने लगता है जो अखण्ड रूप से निखिल ब्रह्माण्ड में निरंतर ध्वनित हो रहा है। अनुभवी महानुभावों ने बताया है कि पहले तो शरीर के भीतर समुद्र–गर्जन, मेघ–गर्जन ओर भेरी, माँझर आदि का शब्द सुनाई देता है और फिर मर्दल, शंख, घन्टा और काहल की सी आवाज सुनाई देती है ओर अन्त में बन्शी और वीणा की झंकार सुनाई देने लगती है, परन्तु ज्यों–ज्यों साधक का चित्त स्थिर होता जाता है त्यों–त्यों इन शब्दों का सुनाई देना बन्द हो जाता है क्योंकि उस समय आत्मा अपने स्वरूप में क्रमशः स्थिर होती जाती है और फिर तो बाह्य विषयों से उसका सरोकार ही नहीं रह जाता।

इस प्रकार हठ योगी प्राण वायु का निरोध करके कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध करता है। उद्‌बुद्ध कुण्डलिनी क्रमशः षट् चक्रों का भेदन करती हुई सातवें अन्तिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। प्राण वायु ही इस उद्‌बोध और शक्ति संगमन का हेतु है। इसलिए हठ योग में प्राण वायु निरोध का बड़ा महत्व है।

षट् चक्र–भेदन

त्रिकोण चक्र के ऊपर चार दलों के आकार का एक चक्र है जिसे मूलाधार चक्र कहते हैं, उसके ऊपर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है, जिसका आकार छः दलों के कमल का है, इस चक्र के ऊपर मणिपूर चक्र है और उसके ऊपर भी हृदय के पास अनाहद चक्र स्थित है। दोनों क्रमशः दस और बारह दलों के कमलों के आकार के हैं। इसके भी ऊपर काण्ठ के पास विशुद्ध चक्र है, जिसका आकार १६ दल के कमल के समान है और भी उपर जा कर भू–मध्य में आज्ञा नामक चक्र है जिसके सिर्फ दो ही दल हैं। ये षट् चक्र हैं। इनमें सबके दलों की संयुक्तसंख्या ५० है और यही समस्त स्वर और व्यंजनों की सम्मिलित संख्या भी है। प्रत्येक दल पर एक–एक अक्षर की कल्पना की गई है। प्रत्येक कमल की कर्णिका में कोई न कोई देवता निवास करता है। ये सब बातें साधकों के काम की हैं। इन षट् चक्रों का भेदन करने के बाद मस्तिष्क में वह शून्य चक्र मिलता है जहाँ उद्‌बुद्ध कुण्डलिनी को पहुँचा देना योगी का लक्ष्य है। यह सहस्त्र दलों के कमल के आकार का है इसीलिए इसे सहस्र सार भी कहते हैं यही इस पिण्ड का कैलाश है, यहीं पर शिव का निवास है। इस महातीर्थ तक ले जाने वाली नाड़ी सुषुम्ना को इसीलिए शाम्भवी शक्ति कहा जाता है, क्यां कि वैसे तो प्राण वायु को वहन करने वाली नाड़ियों की संख्या ७२ हजार है पर असल में यह शाम्भवी शक्ति सुषुम्ना ही सार्थक है। बाकी सब निरर्थक हैं। इससे स्पष्ट है कि हठ योग वास्तव में प्राण वायु के निरोध को कहते हैं ओर राजयोग मन के निरोध को। योगार्शशोपनिषद में राज–योग अन्य भाव से वर्णित है। उक्त उपनिषद में भी ४ प्रकार के योग का वर्णन है – मंत्र योग, हठ योग, लय योग और राज योग, इनमें हमारा प्रकृति विषय हठ योग है। मंत्र योग में कहा गया है कि जीव के निश्वास प्रश्वास में 'ह' ओर 'स' वर्ण उच्चरित होते हैं। हकार के साथ प्राण वायु बाहर जाती है और सकार के साथ भीतर जाती है इस प्रकार जीव सहज ही हंस इस मंत्र का जाप करता है। गुरू वाक्य जान लेने पर मार्ग में यही मंत्र उल्टी दिशा में उच्चरित हो कर (सोहं) हो जाता है। और इस

प्रकारयोगी सः के साथ में अहम का अभेद अनुभव करने लगता है, इसी मंत्र योग के सिद्ध होने पर हठ योग के प्रति विश्वास पैदा होता है। इस हठ योग में हकार सूर्य का वाचक है और सकार चन्द्रमा का। इन दोनों का योग ही हठ है। हठ योग से जड़िमा नष्ट होती है और आत्मा पर परमात्मा का अभेद सिद्ध होता है। इसके बाद वह लय योग प्रारम्भ होता है, जिसमें पवन स्थिर हो जाता है और आत्मानन्द का सुख प्राप्त होता है। इस लय योग की साधना से भिन्न अन्तिम मार्ग राज योग है। योनि के महाक्षेत्र में जया और बन्धूक पुष्पों के समान लाल रज रहा करता है। यह दैवी तत्व है इस रज के साथ रेत का जो योग है वही राज योग है। इसमें अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। निश्चय ही यहाँ पारिभाषिक अर्थ में रज, रेत (शुक्र) का उल्लेख हुआ है। शिश्न–मूल कारेतस शिव तत्व है। श्री गोरखनाथ जी ने स्वयं कहा है कि जो व्यक्ति छः चक्र, १६ आधार, दो लक्ष्यों तथा व्योम पंचक को नहीं जानता, वह सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता।

आधार १६ है :– दृष्टि को स्थिर करने वाला (१) पादांगुष्ठ अग्नि को दीप्त करने वाला (२) मूलाधार संकोच विकास के अभ्यास द्वारा अपान वायु को वज्र गर्भ नाड़ी में प्रवेश कराकर शुक्र और रज को आकर्षण करने वाली बज्रोली के सहायक (३) गुह्यधार और (४) बिन्दु चक्र, मल मूत्र और कृषि का विनाशक (५) नाड़न्शोधार नादोत्पादक (६) नाभि मण्डलाधार, प्राण वायु का रोचक (७) हृदयधार, इड़ा पिंगला मेंप्रवाहमान वायु को रोकने वाला (८) कण्ठाधार और कंठमूल का वह (६) क्षुबुंध–टीकाभार जिसमें दो लिंगाकार लोने लटक रही हैं यहाँ जिह्वा पहुँचाकर ब्रह्म–रन्ध्र में स्थित चन्द्र मण्डल का झरता हुआ अमृत रस पीना सहज हो जाता है। खेचरी मुद्रा का सहायक (१०) ताल मन्ताधार जिहृवा के अधोभाग में स्थित (११) रसाधार, रोग नाशक (१२) ऊर्ध्व दन्त, मूल मन को स्थिर करने वाला (१३) नासिकाग्र ज्योति को प्रत्यक्ष करने में सहायक (१४) नासा मूल, सूर्याकाश में मन को लीन करने वाला (१५) भूमध्याधार और (१६) नेत्राधार जिसमें ज्योति प्रत्यक्ष अवभाषित होती है। यह सब वाह्य लक्ष्य है। अन्तर लक्ष्य षंट चक्र हैं। दो लक्ष्य यही है। ५ आकाश इस प्रकार हैं :– (१) श्वेत वर्ण ज्योति रूप आकाश हवा के भीतर (२) रक्त वर्ण ज्योति रूप प्रकाश है : इसके भी भीतर (३) धूम्रवर्ण महाकाश (४) नील वर्ण ज्योति रूप (५) सूर्याकाश हैं।

इन विविध ध्यानों को आसन प्राणायाम और मुद्रा के अभ्यास से सिद्ध किया जाता है। मुद्रा का उद्देश्य शक्ति को ऊपर की ओर चलाना है, इसलिए अमरौध शासन में मुद्रा को सारणा (चलाने वाली) कहा गया है। अब अगर विचार किया जाय तो जीव के जन्म मरण का कारण इस सृष्टि चक्र में पचपच कर मरने का रहस्य सिर्फ यही है कि किसी अनादि काल में शिव और शक्ति जिस दिन समरस होकर एकमेव हो जायेंगे उस दिन यह सारा प्रतीयमान सृष्टि–चक्र अपने आप निःशेष हो जायेगा शक्ति, कुण्डलिनी रूप में देह में स्थित है और शिव भी सहस्रार में विराजमान हैं। जन्म जन्मान्तर के संचित मलों के भार से कुण्डलिनी दबी हुई है। एक बार यदि मनुष्य ध्यान धारणा के बल से वायु को संयमित करे और नाड़ियों को शोध कर पवित्र करे तो वह परम पवित्र सुषुम्ना मार्ग खुल जाय जिसमें ब्रह्म–रंध्र को ढक कर परमेश्वरी कुण्डलिनी सोई हुई है। वस्तुतः यह सृष्टि की कुण्डली है। यह दो प्रकार की है, स्थूल और सूक्ष्म।

साधारणतः स्थूल रूपा कुण्डलिनी को ही लोग जानते हैं। अज्ञान के बोध से दबे रहने के कारण इसके सूक्ष्म रूप को नहीं जान पाते। सिद्धियाँ स्थूल कुण्डलिनी के ज्ञान से ही मिल पाती हैं परन्तु सर्वोत्तम ज्ञान रूपिणी पराशक्ति को जो साक्षात् महेश्वरी शक्ति है, उसको पहचाने बिना परम पद नहीं मिलता। शक्ति जब उद्‌बुद्ध होकर शिव के साथ समरस हो जाती है इसी को पिण्ड ब्रह्माडैक्य भी कहते हैं, तो योगियों की परम काव्य कैवल्य अवस्था वाली सहज समाधि प्राप्त होती है, जिससे बढ़कर आनन्द ओर नहीं है। यह सब गुरू की कृपा से होता है, वेद पाठ से भी नहीं, वैराग्य से भी नहीं। जो इस सहज समाधि रूप परम विश्राम को पाना चाहे वह अच्छे गुरू के चरण कमलों की सेवा करे। उनकी कृपा होने से न परम पद ही दूर रहेगा और न शिव शक्ति सामरस्य ही –

अनुवुभूषति यो निज विभ्रम।
स गुरूपाद सरोरूहमाश्रयेत।
तदनुसंसरषात परम पद
समरसी करणं च न दूरतः। ।सि०सि०सं० ५५१।

विशिष्ट

श्री गोरखनाथ सम्प्रदाय के साधुओं को नाथ जी कहते हैं उनकी विशिष्टता यह होती है कि वह कानों में कुण्डल पहने होते हैं। उनके शिष्य गण गले में काला धागा लटकाये रहते हैं जिसमें नाथ सम्प्रदाय के चिन्ह श्रृंगी इत्यादि पहने रहते हैं। इन्हें औघड़ या ब्रह्मचारी कहते हैं। कर्ण कुण्डल, आवेष्टितनाथ सम्प्रदाय के भगवा वस्त्र धारी साधु उच्च कोटि के सन्यासी होते हैं। इन्हें दर्शनी योगी भी कहते हैं। इनका हिन्दू समाज तथा साधु समाज में बड़ा ही उच्च स्थान एवं सम्मान है। कुछ नाथ साधु भगवा वस्त्र न धारण करके श्वेत वस्त्र भी धारण करते हैं किन्तु इनके महन्त एवं पदाधिकारी काशाय वस्त्र ही धारण करते हैं। इनकी एक देश व्यापी संस्था है, जिसका नाम है अखिल भारत वर्षीय अवधूत भेष वारह पंथ योगी महासभा। सभी नाथ साधू, जिन्हें योगी भी कहा जाता है, इस संस्था के सदस्य हैं, उन्हें संस्था की ओर से एक परिचय पत्र भी दिया जाता है, यह लोग अपनी संस्था को भेष भी कहते हैं। संस्था का प्रधान कार्यालय श्री गोरक्षनाथ मन्दिर हरिद्वार ओर उप कार्यालय श्री गोरक्षनाथ मन्दिर गोरखपुर है। योगी महासभा ने समय–समय पर देश धर्म और समाज की महत्वपूर्ण सेवायें की हैं। इसके वर्तमान अध्यक्ष श्री महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर हैं। नाथ सम्प्रदाय में आज भी अनेक सिद्ध एवं योगी विद्यमान हैं।

卐

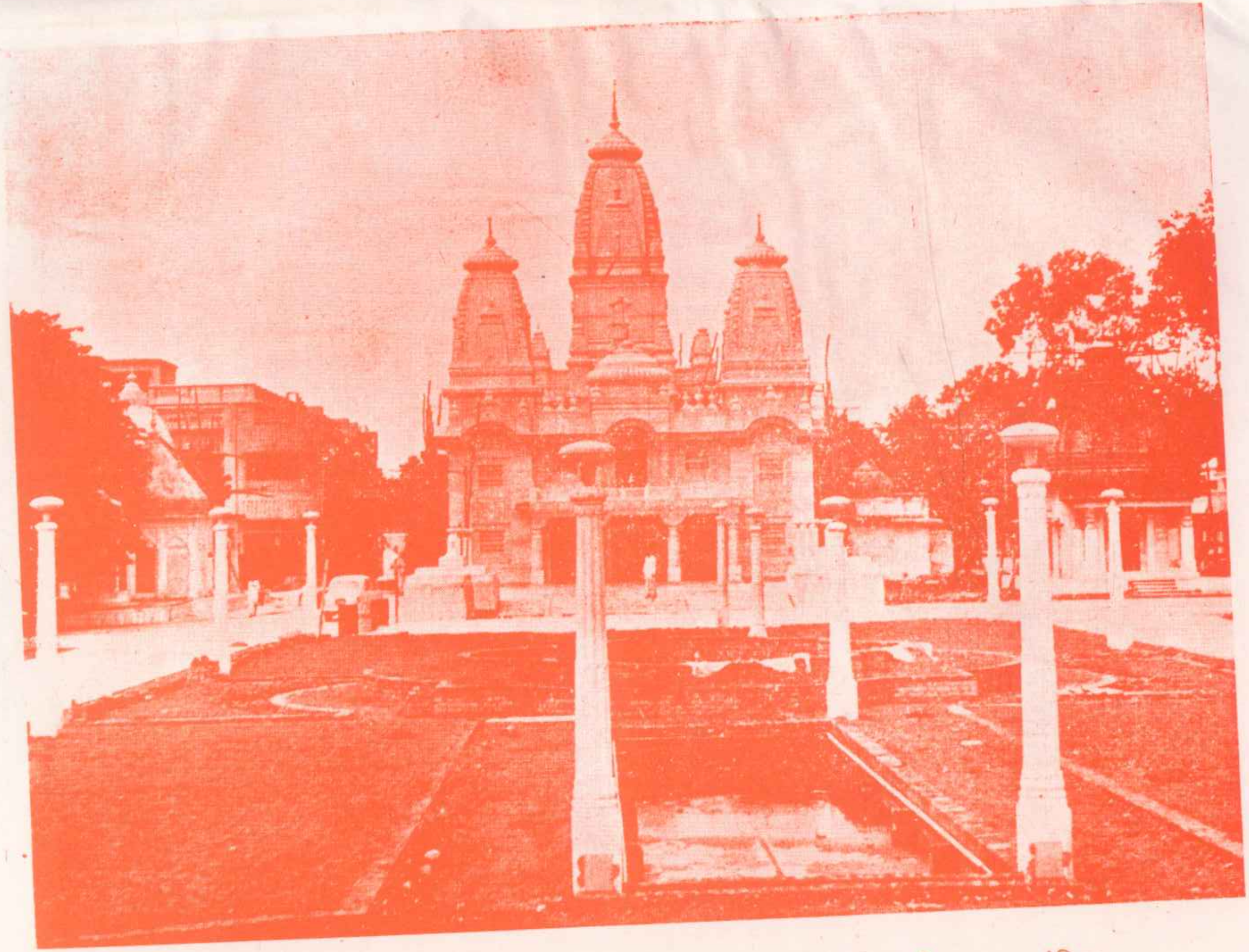

श्री महन्त दिग्विजयनाथ के स्वप्नों का प्रतीक भव्य विशाल नवीन गोरक्षनाथ मंदिर

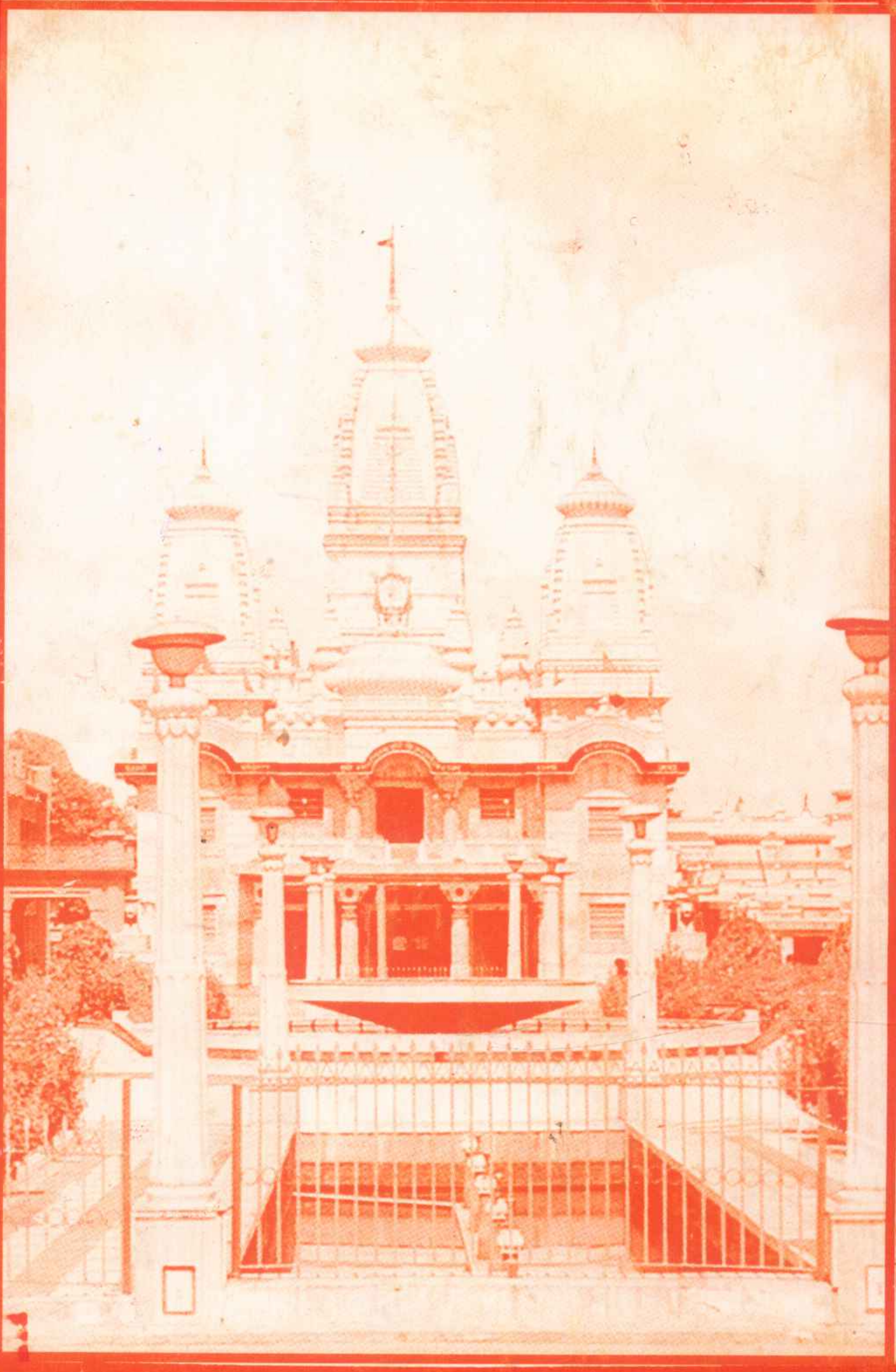

THE EUREKA PRINTING WORKS—Asuran Chungi, Gorakhpur Phone : 2280979, 2282309